Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037

Aug. 2025

Volume 13, Issue 8

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

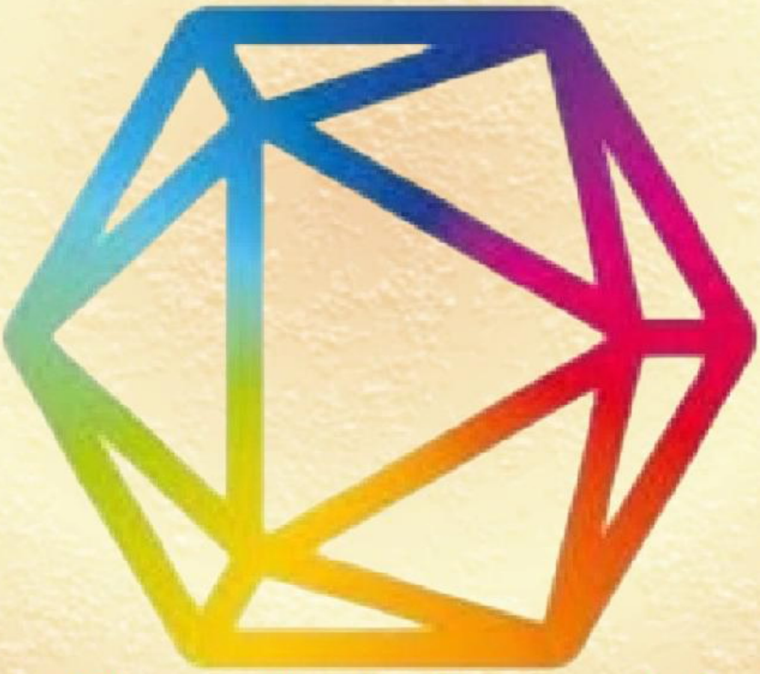

New Dimension in Research from the Indian Perspective

Special Issue Editor
Dr. Neeraj Ruwali,
Mohit Kumar Sharma
Jyotsana Bhatt

Editor
Dr. Rekha Soni
Chief-Editor
Dr. Naresh Sihag

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 8 | अगस्त : 2025 (विशेषांक) | आईएसएसएन : 2321-8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. नीरज रूवाली,
मोहित कुमार शर्मा,
ज्योत्सना भट्ट

मार्गदर्शन :
डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

सं.	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	सम्पादकीय	मोहित कुमार शर्मा	07–08
2.	भारतीय ज्ञान परंपरा में बौद्ध दर्शन का महत्त्व एवं योगदान	अनूप कुमार जायसवाल	09–14
3.	कंबुज में बौद्ध धर्म : ऐतिहासिक निरंतरता और सांस्कृतिक रूपांतरण का एक अध्ययन	आनन्द विश्वकर्मा	15–18
4.	डॉ. विद्या विंदु सिंह की कहानियों में मानवीय गुण	जे. अशोक कुमार जैन, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	19–22
5.	भारतीय भाषाओं में इतिहास–लेखन की परंपराएं और चुनौतियाँ	अशोक कुमार	23–26
6.	भारतीय राष्ट्रवाद के विविध आयाम	विवेक कुमार, प्रो. ज्योति साह	27–33
7.	समकालीन भारतीय सिनेमा में स्त्री	सुंदरम साहू, डॉ. ऋचा सुकुमार	34–37
8.	धूणी तपे तीर में वर्णित भील और मीणा जाति का संघर्ष	सुजाता, डॉ. पूनम चालिया	38–41
9.	क्रांतिकारी गतिविधियां और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन	शुभम कुमार	42–50
10.	मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था की भूमिका	डॉ. राकेश बघेल	51–57
11.	आयुर्वेद चिकित्सा : वर्तमान ग्रामीण समाज की आवश्यकता	नरेन्द्र कुमार त्रिपाठी	58–62
12.	भारतीय शिक्षा प्रणाली की विकास यात्रा का एक नवीन युग : NEP 2020	डॉ. रमेश राम	63–69
13.	मीरा के काव्य में विरहानुभूति व स्त्री स्वाधीनता	जगदीश	70–73
14.	हिंदी राष्ट्रवादी कवियों के काव्य में साहित्यिक सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत के सन्दर्भ में	काजल पौनयाँ, डॉ. अंजू बंसल	74–80
15.	1857 की क्रांति के स्वरूप पर औपनिवेशिक इतिहास लेखन का समीक्षात्मक अध्ययन	कोमल सोनी	81–85
16.	जहाँगीर कालीन चित्रकला	लक्ष्मी कुमारी	86–89
17.	कुमाऊँ (कपकोट) की बदियाकोट भगवती मंदिर का धार्मिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन	माला	90–96

18.	भारतीय शिक्षा प्रणाली का युगांतकारी परिवर्तन : NEP 2020	डॉ. कंचन आर्या	97–104
19.	नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : संभावनाएं एवं चुनौतियां	डॉ. रूपा आर्या	105–110
20.	एकदानैमिषारायेे में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन	डॉ. प्रदीप कटारा	111–115
21.	राजा भोज परमार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	आशा शर्मा	116–121
22.	पूर्वी उत्तर प्रदेश की शुंग–कुषाण कालीन मृद्भाण्ड परम्पराएं	जकिया खान	122–125
23.	नव–उदारवादी अर्थव्यवस्था का भारतीय कृषि पर प्रभाव	मृदुल मलय	126–130
24.	ख्याल परम्परा और अलीबख्श	राजेश कुमार	131–133
25.	उत्तर प्रदेश में बाल श्रम उन्मूलन संबंधी सरकार की नीतियां	निधि लोधी	134–138
26.	चाय बागानों में महिला श्रमबल भागीदारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (कौसानी चाय बागान के विशेष संदर्भ में)	डॉ. सावित्री	139–146
27.	सुमित्रानन्दन पंत जी के काव्य में श्रमिक–मजदूर वर्गो का संघर्ष	राजकुमार	147–151
28.	चन्द्रावती (सिरोही) : मध्यकालीन भारत का एक सांस्कृतिक तीर्थ	सोहन लाल	152–158
29.	पश्चिमी राजस्थान में स्वदेशी व्यापारियों की संरचना एवं भूमिका	विनोद कुमार शर्मा	159–163
30.	ऐतिहासिक हस्तिनापुर, पर्यटन एवं पर्यटक : एक अध्ययन	प्रो. देवेंद्र कुमार गुप्ता, दीपक कुमार	164–170
31.	चंदेल कालीन स्थापत्य कला एवं संस्कृति का विशेष अंकन	कु. आदिती जायसवाल	171–175
32.	सामुदायिक विकास और समाज कल्याण कार्यो में टाटा स्टील का योगदान	डॉ. रीना कुमारी	176–184
33.	डिजिटल युग में ऑटिज्म प्रभावित बच्चों में योग अभ्यास की सामाजिक भूमिका	संदीप सैनी	185–193
34.	प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था का विकास	रविकांत वर्मा	194–198
35.	भारतीय विचार के दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक आयाम : एक समीक्षा	यदुनंदन	199–203
36.	वृषभ का प्रतीकात्मक विकास : सिंधु से गुप्त काल तक मुद्राओं में एक अनुशीलन	विशाखा पाण्डेय	204–207

37.	छत्तीसगढ़ के महान संत बाबा गुरू घासीदास जी का समाज दर्शन	अविनाश बनर्जी	208–214
38.	समकालीन पत्रकारिता की दृष्टि में 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम	विशाल, प्रो. आशा यादव	215–222
39.	साठोत्तरी हिंदी गजल में सामाजिक यथार्थबोध	अमन कुमार	223–227
40.	हिंदी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श – सूरज सिंह नेगी के संदर्भ में	बी. कमला, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	228–233
41.	मीडिया का समाज पर प्रभाव	डॉ. सविता	234–239
42.	हर्षवर्धन कालीन समाज एवं संस्कृति : हर्षचरित के विशेष संदर्भ में	हर्ष वार्ष्णेय	240–244
43.	बेरीनाग गुफा चित्रकारी 'गंगावली क्षेत्र' की प्रागैतिहासिक खोज	अमन कुमार, बबीता बोहरा	245–248
44.	भारतीय राजनीति में जयप्रकाश नारायण का चिंतन के विशेष संदर्भ में	शिव राम, डॉ. नीता भारती	249–256
45.	पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद एवं विकसित भारत एक अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण	प्रो. मधुरेन्द्र कुमार, कमलेश्वर	257–264
46.	पैसरा की मध्य पाषाणकालीन संस्कृति : औजार प्रौद्योगिकी, जीवन शैली और तुलनात्मक अध्ययन	अमित कुमार, प्रो. (डॉ.) बदर आरा	265–271
47.	सामाजिक समरसता के सूत्रधार : गुरू नानक	डॉ. रजिंदर कौर	272–277

सम्पादक की कलम से......

प्रिय पाठकों,

भारत एक ऐसा देश है, जिसकी आत्मा उसकी ज्ञान–परंपरा और शोध–संस्कृति में रची–बसी है। यहाँ का हर कण, हर ध्वनि और हर प्रतीक गहरी ऐतिहासिक चेतना से भरा है। भारतीय चिंतन केवल दर्शन या अध्यात्म तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने समाज, राजनीति, साहित्य, विज्ञान, कला, शिक्षा और संस्कृति को भी अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से आलोकित किया है। इसी कारण भारतीय शोध हमेशा से बहुआयामी और बहुविषयक रहा है। इस विशेषांक का विषय "New Dimension in Research from the Indian Perspective" इसी परंपरा और आधुनिक वैश्विक आवश्यकता का जीवंत संगम है।

भारतीय अनुसंधान केवल तथ्यों की खोज भर नहीं, बल्कि जीवन–मूल्यों और मानवीय आदर्शों की तलाश भी है। वेद, उपनिषद, बौद्ध त्रिपिटक, जैन आगम और गीता की व्याख्या इस तथ्य की पुष्टि करती है कि यहाँ ज्ञान केवल बौद्धिक चेष्टा न होकर साधना और आत्म–साक्षात्कार का माध्यम रहा है। यही कारण है कि भारतीय शोध हमेशा समाज और संस्कृति से गहराई से जुड़ा रहा है।

आज जब वैश्विक विमर्श पूँजी और तकनीक पर केंद्रित हो गया है, तब भारतीय दृष्टिकोण शोध को मानवीयता और समरसता की राह दिखाता है। शोध का उद्देश्य केवल 'जानना' नहीं, बल्कि 'समझना' और समाज को दिशा देना है। यही दृष्टि इस अंक के शोध–पत्रों में भी दिखाई देती है। कहीं प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली और नालंदा–तक्षशिला की विरासत पर चर्चा है, तो कहीं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के परिवर्तनकारी स्वरूप पर विमर्श। कहीं 1857 की क्रांति की स्मृतियाँ जीवित होती हैं, तो कहीं डिजिटल युग में बच्चों के समाजीकरण की भूमिका का विश्लेषण है।

भारतीय शोध की शक्ति उसकी विविधता में है। इस विशेषांक में ईको–फेमिनिज्म, चिपको आंदोलन और जनजातीय ज्ञान–परंपरा जैसे आलेख यह बताते हैं कि हमारी शोध दृष्टि प्रकृति को जीवन और संस्कृति का हिस्सा मानती है। वहीं स्त्री विमर्श से जुड़े आलेख मीरा की काव्य–परंपरा से लेकर आधुनिक संदर्भों तक स्त्री की भूमिका को उजागर करते हैं। इस विशेषांक में अतीत की स्मृतियाँ और समाज की सांस्कृतिक चेतना साथ–साथ गूँजती हैं : जहाँ क्रांतिकारी बलिदान की कहानियाँ हैं, वहीं लोक आंदोलनों और जन–संघर्षों की प्रेरक विरासत भी शामिल है।

इस अंक में विज्ञान और तकनीक पर भी गंभीर अध्ययन किया गया है। प्राचीन भारत की पुल–निर्माण तकनीक, औपनिवेशिक युग में सार्वजनिक भवनों का निर्माण और श्रमिकों की भूमिका–ये सब दर्शाते हैं कि भारत, परंपरा का संरक्षक होने के साथ–साथ नवाचार का भी अग्रदूत रहा है।

भारतीय दृष्टिकोण शोध को केवल आंकड़ों की कसौटी पर नहीं, बल्कि नैतिकता और मानवीय मूल्यों से भी परखता है। यही कारण है कि योग, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, संगीत, लोकनाट्य और संत परंपराएँ भी शोध का विषय बनती हैं। इस विशेषांक में छत्तीसगढ़ के संत बाबा गुरु घासीदास का समाज–दर्शन और भारतीय दार्शनिक परंपराओं की पुर्नव्याख्या इस परंपरा को और पुष्ट करती है।

भारत का शोध दृष्टिकोण स्थानीय होते हुए भी वैश्विक संदर्भों को स्पर्श करता है। भारत–नेपाल संबंध, बांग्लादेश की राजनीति का भारत पर प्रभाव, दिल्ली सल्तनत और मध्य एशिया के संबंध, तथा 21वीं सदी में वैश्विक दक्षिण में भारत की भूमिका – ये सभी आलेख भारत को वैश्विक विमर्शों से जोड़ते हैं।

इस विशेषांक की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह शोध को विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं रखता, बल्कि लोकजीवन, संस्कृति और समाज से भी जोड़ता है। यहाँ शोध का अर्थ है–अपनी परंपराओं को समझना, वर्तमान की चुनौतियों से संवाद करना और भविष्य की राह तय करना। इस प्रकार यह विशेषांक अतीत की स्मृतियों और भविष्य की संभावनाओं, दोनों को समेटे हुए है। इसमें धर्म और दर्शन के विमर्श हैं, विज्ञान और तकनीक की चुनौतियों का विश्लेषण है, और समाज की विविध परतों की आवाजें दर्ज हैं। यही बहुआयामिकता इसे विशिष्ट बनाती है और "New Dimension in Research from the Indian Perspective" की थीम को सार्थक करती है।

अंत में, मैं उन सभी विद्वानों और लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस विशेषांक को समृद्ध बनाने में अपनी बौद्धिक ऊर्जा और दृष्टि प्रदान की। मैं विशेष रूप से विशेषांक संपादक डॉ. नीरज रुवाली सर एवं संपादक डॉ. नरेश कुमार सिहाग सर का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी दूरदृष्टि, रचनात्मक नेतृत्व और संपादन दक्षता के कारण यह अंक अपनी विषयगत गरिमा और गुणवत्ता को साकार रूप दे सका है। साथ ही, मैं अपनी शोध–सहयोगी और मित्र ज्योत्सना भट्ट का भी धन्यवाद करता हूँ, जिनका रचनात्मक सहयोग और विचारशील सहभागिता इस विशेषांक को एक समृद्ध और सारगर्भित रूप देने में सहायक रही है। संपादन मंडल का भी धन्यवाद, जिनके सहयोग के बिना यह अंक संभव न होता।

आशा है कि यह विशेषांक पाठकों के चिंतन को समृद्ध करेगा और उन्हें अपनी सांस्कृतिक जड़ों को आधुनिक दृष्टिकोण से समझने की प्रेरणा देगा।

–मोहित कुमार शर्मा
विशेषांक संपादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 9–14

भारतीय ज्ञान परंपरा में बौद्ध दर्शन का महत्त्व एवं योगदान

अनूप कुमार जायसवाल
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शोध सार :–

बुद्ध के धर्म–सिद्धान्त और ज्ञान–दर्शन की आधारशिला नैतिकता थी। त्रिपिटक में बौद्ध धर्म की चिन्तन पद्धति पर सविस्तार विचार किया गया है तथा उसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध–चिन्तन पद्धति आचार शास्त्र के अधिक निकट है। किन्तु इस के साथ–साथ मनुष्य जीवन के विभिन्न कार्य–कलापों को भी बौद्ध –दर्शन सन्निविष्ट किए हुए है। बौद्ध दर्शन के कुछ मूल सिद्धान्त इस प्रकार है :–

- **चार आर्य सत्य :–** दु:ख, दु:ख समुदाय, दु:ख निरोध और दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपदा।
- **अष्टांगिक मार्ग :–** सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मान्त, सम्यकआजीव, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति एवं सम्यक समाधि।
- **अनात्मवाद :–** स्थायीआत्मा के अस्तित्व का खण्डन।
- **प्रतीत्यसमुत्पाद :–** सभी घटनाओं की परस्पर निर्भरता का सिद्धान्त।

आज भी बौद्ध–दर्शन की प्रासंगिकता विभिन्न क्षेत्रों में बनी हुई है।

- मानसिक शांति एवं ध्यान की तकनीकों के लिए।
- पर्यावरण संरक्षण के दृष्टिकोण से।
- वैज्ञानिक चिंतन से समानता के लिए।
- अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सद्भाव का संदेश प्रसारित करने के लिए बौद्ध दर्शन ने भारतीय चिंतन परंपरा को एक नई दिशा दी और वैश्विक स्तर पर भारतीय ज्ञान का प्रसार किया। इसका प्रभाव आज भी विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

बौद्ध दर्शन ने भारतीय ज्ञान परंपरा को बहुत गहरे तरीके से प्रभावित किया है। तथा यह महात्मा बुद्ध के काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। इस शोध पत्र में हम बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धांतों, विशेषताओं और भारतीय ज्ञान परंपरा में उनके योगदान का प्रमाणिक साक्ष्यों के आधार पर अध्ययन करते हुए विश्लेषण करेंगे।

बीज शब्द :– दर्शन, चिंतन, परंपरा, अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, शून्यवाद, तर्कशास्त्र, अहिंसा आदि।

प्रस्तावना :–

भारतीय दर्शन में चिंतन एवं ज्ञान की परम्परा प्राचीन काल से ही विद्यमान है। भारतीय दर्शन का जो प्रारम्भ वैदिक काल से हुआ वह उपनिषद् काल तक आते–आते अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। परन्तु बौद्ध–दर्शन का विकास महात्मा बुद्ध के पश्चात् ही हुआ। महात्मा बुद्ध मानवतावाद के प्रबल व्याख्याकार थे तथा मनुष्य के उत्कर्ष के लिए निरन्तर सोंचा करते थे। समकालीन मतवैभिन्य का देखते हुए बुद्ध ने अपने अनुयायियों को सम्बोधित किया था कि "भिक्षुओं, इसे कहते हैं मतों में जा पड़ना, मतों की महनता और मतों का अन्तर, मतों का दिखावा, मतों का फन्दा तथा मतों का बन्धन। इन मतों के बन्धन में बंधा हुआ मनुष्य, जिसमें सद्धर्म को नहीं श्रवित किया, वह जन्म, जरा और मरण से मुक्त नहीं होता। शोक से रोने–धोने से, पीड़ित होने से, चिन्तित होने से भी वह मुक्त नहीं होता। मैं कहता हूँ कि वह दुःख से विमुक्त नहीं होता"[1] बुद्ध के चिन्तन में धर्म ही मनुष्यों में श्रेयस्कर था, इस जन्म में भी और उस जन्म में भी[2] उनके अनुसार मानव का लौकिक और पारलौकिक उत्कर्ष धर्म की आधारशिला पर होता है। मनुष्य के लिए इस जन्म और दूसरे जन्म के लिए धर्म ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार वह जीवन का विषय है, मृत्यु का नहीं। उसका निवारण इसी जन्म में होता है। वस्तुतः बुद्ध का धार्मिक चिन्तन और तर्क बुद्धिवाद पर आधारित था।

उद्देश्य :– प्रस्तुत शोध पत्र में हम विभिन्न प्रमाणिक साक्ष्यों के आधार पर बौद्ध दर्शन एवं उसके भारतीय ज्ञान परम्परा में योगदान की समीक्षा करेंगे।

शोध परिणाम :–

बौद्ध दर्शन की शुरूआत गौतम बुद्ध के ज्ञान प्रप्ति के बाद हुई। बौद्ध दर्शन में गौतम बुद्ध के कुछ मूल सिद्धान्त थे, जिनके आधार पर ही बौद्ध दर्शन को समझा जा सकता है। बौद्ध दर्शन में चार बातों को सर्वमान्य माना गया है– 1. ईश्वर को न मानना, 2. आत्मा को नित्य न मानना, 3. किसी ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण न मानना, 4. जीवन प्रवाह को इस शरीर के पूर्व एवं पश्चात् भी मानना।

बौद्ध दर्शन को समझने के लिए इन चार मूल सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है।

1. ईश्वर को न मानना :–

ईश्वरवादी कहते हैं चूंकि हर एक कार्य का कारण होता है, इसलिए संसार का भी कोई कारण होना चाहिए, यदि यह कारण ईश्वर है तो प्रश्न किया जा सकता है, कि ईश्वर किस प्रकार का है? यदि ईश्वर जगत का कारण है तो जगत ईश्वर का रूपान्तरण है। फिर संसार में जो भी भलाई–बुराई, सुख–दुःख, दया–क्रूरता देखी जाती है, इन सभी का कारण ईश्वर है। फिर तो ईश्वर सुखमयी की अपेक्षा दुःखमय अधिक है, क्योंकि दुनिया में दुःख का पलड़ा भारी है।[3] ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह मानना भी ठीक नहीं। यदि सृष्टि अनादि है, तो उसको किसी कर्ता की जरूरत नहीं, क्योंकि कर्ता होने के लिए उसे कार्य से पहले उपस्थित रहना चाहिए। यदि सृष्टि आदि है, तो करोड़, दो करोड़, खरब दो खरब वर्ष नहीं अचिन्त्य अनन्त वर्षों से लेकर सृष्टि उत्पन्न होने के समय तक उस क्रिया– रहित ईश्वर के होने का प्रमाण क्या? क्रिया ही उसके अस्तित्व में प्रमाण हो सकती है।[4] अतः बौद्ध दर्शन में ईश्वर को मनुष्य की मानसिक सृष्टि माना गया है।

2. आत्मा को नित्य न मानना :-

बुद्ध के पहले उपनिषद् के ऋषियों को आम आत्मा के दर्शन का जबरदस्त प्रचार करते देखते हैं। साथ ही उस समय चार्वाक की तरह के भौतिकवादी दार्शनिक भी थे, महात्मा बुद्ध ने नित्यवादियों के आत्मा–अवधी विचार को दो भागों में बांटा है,[5] एक वह जिसमें आत्मा को रूपी (इन्द्रिय–गोचर माना जाता है) दूसरे में उसे अरूपी माना गया है।

अपने दर्शन में अनात्मा से बुद्ध को अभावात्मक वस्तु अभिप्रेत नहीं है। उपनिषदों में आत्मा को ही नित्य, ध्रुव, वस्तु माना जाता था। बुद्ध ने उसे निम्न प्रकार से उत्तर दिया :–

(उपनिषद्)	–	आत्मा = नित्य,	ध्रुव = वस्तुसत्
(बुद्ध)	–	अन–आत्मा = अ–नित्य,	अ–ध्रुव= वस्तुसत्

इसलिए वह एक जगह कहते हैं :–

''रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है अज्ञा, संस्कार, विज्ञान, सारे धर्म अनात्मा है।"[6] अतः बौद्ध दर्शन में शरीर की पृथक आत्मा को काई चीज नहीं माना है।

3. किसी ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण मानना :-

स्वतः प्रमाण होने का दावा करने वाला सिर्फ एक ग्रन्थ नहीं है। सभी धर्म वाले अपने–अपने ग्रन्थ स्वतः प्रमाणित मानते और मनवाने की कोशिस करते हैं। ब्राह्मण वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं जिसकी बहुत सी बाते अन्य धर्म वालों की पुस्तकों एवं विज्ञान की कितनी प्रयोग द्वारा सिद्ध बातों के विरूद्ध पड़ती है। फिर ऐसा ग्रन्थ स्वतः प्रमाण कैसे माना जा सकता है? किसी ग्रन्थ का स्वतः प्रमाण मानना उसमें वर्णित विषयों पर सन्देह न कर आगे की जिज्ञासा को रोंक देना है। ग्रन्थ के स्वतः प्रमाण होने के लिए उसके कर्ता को सर्वज्ञ मानना पड़ेगा– सर्वज्ञ भी सभी देव, सभी काल, सभी वस्तु के समन्वय में। फिर यदि कोई सर्वज्ञ हमारे पैदा होने से हजार वर्ष पूर्व हमारे द्वारा किये जाने वाले अच्छे–बुरे सभी कर्मों को जानता था, तब तो हम आज वैसा करने पर मजबूर है, अन्यथा उसकी सर्वज्ञता झूठ हो जायेगी। फिर मनुष्य ऐसे सर्वज्ञ के हाथ में क्या कठपुतली मात्र नहीं है? परिशुद्ध और मुक्त बनने के लिए कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र होना जरूरी है। कर्म करने की स्वतन्त्रता के लिए बुद्धि का स्वतन्त्र होना जरूरी है। बुद्धि–स्वतंत्र के लिए किसी ग्रंथ की परतंन्रता का न होना आवश्यक है। वस्तुतः किसी ग्रन्थ की प्रमाणिकता उसके बुद्धि पूर्वक होने पर निर्भर है, न कि बुद्धि की प्रमाणिकता ग्रन्थ पर।[7]

4. जीवन प्रवाह को इस शरीर के पूर्व एवं पश्चात् भी मानना :-

बच्चे की उत्पत्ति के साथ उसके जीवन का आरम्भ होता है। बच्चा क्या है शरीर एवं मन का समुदाय। शरीर भी कोई एक इकाई नहीं है, बल्कि एक काल में असंख्य अणुओं का समुदाय है। यह अणु हर क्षण बदल रहे हैं एवं उनकी जगह उनके समान दूसरे अणु उत्पन्न हो रहे हैं। इस प्रकार क्षण–क्षण शरीर में परिवर्तन हो रहा है। वर्षों बाद वस्तुतः वही शरीर नहीं रहता, किन्तु परिवर्तन सदृश परमाणुओं द्वारा होता है, इसलिए कहते है– वह वही है।

जीवन–प्रवाह को इस शरीर से पूर्व और पश्चात् काल भी मानने पर हम निकम्मे से निकम्मे आदमी को भी बेहतर बनने की आशा दिला सकते हैं।[8]

बुद्ध की शिक्षा और दर्शन इन चार सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। पहले तीन सिद्धान्त बौद्ध धर्म को दुनिया

के अन्य धर्मों से प्रथक करते हैं। ये तीनों सिद्धान्त भौतिकवाद ओर बुद्ध–धर्म में समान है। किन्तु चौथी बात, अर्थात जीवन–प्रवाह को इसी शरीर तक परिसीमित न मानना, इसे भौतिकवाद से प्रथक करता है। इन चारों सिद्धान्तों का एकत्र सम्मेलन ही बौद्ध–दर्शन है।

बौद्ध दर्शन में बुद्ध के चार आर्य सत्यों को विशेष महत्त्व दिया गया है।

(क) दुःख :– दुःख की व्याख्या करते हुए बुद्ध ने कहा है– जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, मरण, शोक, रानगी दुःख है। अप्रिय से संयोग प्रिय से वियोग भी दुःख है, इच्छा करके जिसे नहीं पता वह भी दुःख है। संक्षेप में पांचों उपादान स्कन्द दुःख है।[9]

(पांच उपादान स्कंध) – रूप, वेदना, प्रज्ञा, संस्कार, विज्ञान, यही पांचो उपादान स्कंध है।

(ख) दुःख समुदाय :– दुःख समुदाय क्या है? तृष्णा– काम (भोग) की तृष्णा, भवकी तृष्णा विभव की तृष्णा। इन्द्रिय को जितने प्रिय विषय या काम हैं, उन विषयों के साथ संपर्क, उनका ख्याल, तृष्णा को पैदा करता है।

(ग) दुःख निरोध :– उसी तृष्णा के अत्यन्त निरोध परित्याग, विनाश को दुःख निरोध कहते है। तृष्णा के नाश होने पर उपादान (विषयों के संग्रह करने) का निरोध होता है। उपादानों के निरोध से भव (लोक) का निरोध होता है। भव निरोध से जन्म (पुनर्जन्म) का निरोध होता है। जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मरण, शोक, रोना, दुःख मन की खिन्नता, हैरानगी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार दुःख का निरोध होता है। यही दुःख निरोध बुद्ध के सारे दर्शन का केन्द्र बिन्दु है।

(घ) दुःख निरोध गामिनी मार्ग :– दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? आर्य आष्टांगिक मार्ग हैं। आर्य– आष्टांगिक मार्ग को आठ बातों को ज्ञान (प्रज्ञा), सदाचार (शील) और योग (समाधि) इन तीन भागों (स्कधों) में बॉटने पर वह होते हैं :–

- **सम्यक् दृष्टि** – कायिक, वाचिक, मानसिक, भले बुरे कर्मों के ठीक–ठीक ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते हैं।
- **सम्यक् संकल्प** – राग, हिंसा, प्रतिहिंसा– रहित संकल्प को ही सम्यक् संकल्प कहते हैं।
- **सम्यक वचन** – झूठ, चुगली, कटुभाषण और बकवास से रहित सच्ची, मीठी बातों को बोलना।
- **सम्यक् कर्म** – हिंसा, चोरी, व्याभिचार रहित कर्म ही सम्यक् कर्म है।
- **सम्यक् जीविका** – झूंठी जीविका छोड़ सच्ची जीविका से शरीर यात्रा चलाना। प्राणी हिंसा सम्बन्धी निम्न जीविका को बुद्ध ने झूठी जीविका कहा है– ''हथियार का व्यापार, प्राणी का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्द का व्यापार, विष का व्यापार।
- **सम्यक् व्यायाम** – इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावना को रोकने तथा अच्छी भावनाओं के उत्पादन का प्रयत्न, उत्पन्न अच्छी भावनाओं को कायम रखने का प्रयत्न ही सम्यक् व्यायाम है।
- **सम्यक् स्मृति** – काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मों की ठीक स्थितियों उनके मलिन, क्षण–विध्वमी आदि होने का सदा स्मरण रखना।
- **सम्यक् समाधि** – चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते है। ठीक समाधि वह है जिसमें विक्षेपों को हटाया जा सके बुद्ध की शिक्षाओं को अत्यन्त संक्षेप में एक पुरानी गाथा में इस प्रकार कहा गया है–
  ''सारी बुराइयों का न करना, अच्छाइयों का संपादन करना, अपने चित्त का संयम करना, यह बुद्ध की

शिक्षा है।''[10]

क्षणिकवाद :-

बुद्ध का दर्शन घोर क्षणिकवादी है, किसी वस्तु को वह एक क्षण से ज्यादा रहने वाली नहीं मानते, किन्तु इस दृष्टि से उन्होंने समाज की आर्थिक व्यवस्था पर लागू नहीं करना चाहा। सम्पत्तिशाली शासक शोषक–समाज के साथ इस प्रकार शान्ति स्थापित कर लेने पर उनके जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिक का ऊपर के तबके में सम्मान बढ़ना लाजिमी था। पुरोहित वर्ग के कूटदन्त, सोनदण्ड जैसे धनी प्रतिभाशाली ब्राह्मण उनके अनुयायी बनते थे, और राजा लोग उनकी आवाभगत के लिए उतावले दिखाई पड़ते थे।

प्रतीत्य समुत्पाद :-

यद्यपि कार्य कारण को बुद्ध अविच्छिन्न सन्तति नहीं मानते, तो भी यह मानते हैं कि ''इसके होने पर यह होता है।''[11] (एक के विनाश के बाद दूसरी की उत्पत्ति इसी नियम को बुद्ध ने प्रतीत्य–समुत्पाद का नाम दिया) हर एक उत्पाद का कोई प्रत्यय है। प्रत्यय और हेतु (कारण) समानार्थक शब्द मालूम होते है, किन्तु बुद्ध प्रत्यय से वही अर्थ नहीं लेते, जो कि दूसरे दार्शनिकों हेतु या कारण से अभिप्रेत है। प्रत्यय से उत्पाद का अर्थ है, बीतने से उत्पाद–यानी एक के बीत जाने नष्ट हो जाने पर दूसरे की उत्पत्ति। बुद्ध का प्रत्यय ऐसा हेतु है, जो किसी वस्तु या घटना के उत्पन्न होने से पहले क्षण सदा लुप्त होते देखा जाता है। प्रतीत्य समुत्पाद कार्य–कारण नियम को विच्छिन्न प्रवाह बतलाता है। प्रतीत्य समुत्पाद के इसी विच्छिन्न प्रवाह को लेकर नागार्जुन ने शून्यवाद को विकसित किया।

प्रतीत्य समुत्पाद बुद्ध के सारे दर्शन का आधार है, उनके दर्शन के समझने की यह कुंजी हैं यह खुद बुद्ध के इस वचन से मालूम पड़ता है।[12]

''जो प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है, वह धर्म (बुद्ध दर्शन) को देखता है, जो धर्म को देखता है वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है। यह पांच उपादान स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) प्रतीत्य समुत्पाद (विच्छिन्न प्रवाह के तौर पर उत्पन्न) है।''

बौद्ध दर्शन के महत्त्वपूर्ण पहलू निम्नलिखित है :-

- पंचस्कंध सिद्धान्त
- रूप (भौतिक शरीर)
- वेदना (संवेदना एवं भावनाएं)
- संज्ञा (धारणा एवं पहचान)
- संस्कार (मानसिक संस्कार एवं इच्छाएं)
- विज्ञान (चेतना एवं जागरूकता)

कर्म सिद्धान्त बौद्ध में कर्म का अर्थ है हमारे सही कार्यों का परिणाम होता है। यह तीन रूपों में होता है।

- कायिक कर्म (शारीरिक कार्य)
- वाचिक कर्म (वाणीं से किए गए कार्य)
- मानसिक कर्म (मन से किए गए कार्य)

मध्यम प्रतिपदा बुद्ध ने अति–भोग और अति–तप दोनों को त्याग कर मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। यह

संतुलित जीवन का मार्ग है।

बौद्ध धर्म के तीन रत्न है :-

- बुद्ध (ज्ञान प्राप्त गुरू)
- धम्म (शिक्षाएं)
- संघ (धर्मिक समुदाय)

निष्कर्ष :-

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर देखा जाए तो बौद्ध दर्शन ने भारतीय ज्ञान परम्परा को विशेष रूप से प्रभावित किया है। एवं भारतीय ज्ञान परम्परा के विभिन्न क्षेत्रों में अपना योगदान भी दिया है, भारतीय दर्शन के अतिरिक्त शिक्षा में नालन्दा, बल्लभी जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना तर्क एवं वाद विवाद परम्परा का विकास एवं अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक आदान प्रदान को बढ़ावा देने का काम किया।

बौद्ध दर्शन का यह योगदान न केवल ऐतिहासिक महत्त्व का है, बल्कि वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है। इसने मानवीय मूल्यों वैज्ञानिक सोंच और सामाजिक समानता के विचारों को बढ़ावा दिया, जो आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध दर्शन की तार्किक और विश्लेषणात्मक पद्धति ने भारतीय चिंतन परम्परा को एक नई दिशा दी और इसका प्रभाव विश्व के विभिन्न भागों में फैला।

सन्दर्भ :-

1. मज्झिमनिकाय, 1.1.1।
2. दीघनिकाय, 3.4।
3. सांकृत्यायन, राहुल, बौद्ध दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, पृ0—2
4. वही, पृ0— 4
5. महानिदान — सुत्त, दीघनिकाय, 2/15 (बुद्धचर्या, पृ0— 131, 132)
6. चूलसच्चक—सुत्त, मज्झिमनिकाय, 1/4/5 (अनु0 पृ0— 138)
7. सांकृत्यायन, राहुल, बौद्ध दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, पृ0— 14
8. वही, पृ0— 17
9. महासतिपठ्ठान—सुत्त (दीघनिकाय, 2/6
10. सांकृत्यायन, राहुल, बौद्ध दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, पृ0— 26
11. ''अस्मिन, नति इदं भवति।' (मज्झिम निकाय, 1/4/8, अनुवाद, पृ0— 155)
12. मज्झिम निकाय, 1/3/8

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 15–18

कंबुज में बौद्ध धर्म : ऐतिहासिक निरंतरता और सांस्कृतिक रूपांतरण का एक अध्ययन

आनन्द विश्वकर्मा
शोधार्थी, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

दक्षिण–पूर्व एशिया का ऐतिहासिक परिदृश्य धार्मिक अंतःक्रियाओं, सांस्कृतिक समन्वय और राजनीतिक पुनर्रचना से गहराई से प्रभावित रहा है। कंबुज में बौद्ध धर्म की उपस्थिति केवल आध्यात्मिक प्रवृत्ति न होकर एक सुदृढ़ सांस्कृतिक शक्ति के रूप में विकसित हुई। फूनान राज्य (1वीं–6वीं शताब्दी ई.) में भारतीय व्यापारिक संपर्कों द्वारा महायान बौद्ध विचारधारा का प्रवेश हुआ, जिसे ओके–एओ और अंगकोर जैसे स्थलों से प्राप्त शिलालेख व मूर्तियाँ पुष्ट करते हैं। चेनला काल (6वीं–9वीं शताब्दी ई.) में ब्राह्मण और बौद्ध परंपराओं का समन्वय स्पष्ट था। "बोधिसत्व" और "धर्मराज" जैसे शब्द इस संस्थागत सह–अस्तित्व को दर्शाते हैं। अंगकोर युग में, विशेषतः जयवर्मन सप्तम (1181–1218 ई.) के शासन में, महायान बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ। बायोन और नेआक पान जैसे मंदिर इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। 13वीं शताब्दी में श्रीलंका से थेरवाद परंपरा का आगमन हुआ, जिसने 14वीं शताब्दी तक प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया। इसने न केवल धार्मिक संस्थाओं को परिवर्तित किया, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाओं को भी पुनर्परिभाषित किया। यह समूची प्रक्रिया कंबुज में धार्मिक अनुकूलन की निरंतर परंपरा को रेखांकित करती है।

प्राचीन कंबुज प्रारंभिक रूप में फूनान (1वीं–6वीं सदी ई.) और तत्पश्चात चेनला (6वीं–9वीं सदी ई.) दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभावों के प्रमुख केंद्रों में सम्मिलित रहा। भारतीय व्यापारियों, बौद्ध भिक्षुओं और राजनयिकों ने केवल व्यापारिक वस्तुएँ ही नहीं, अपितु बौद्ध धर्म की मूल शिक्षाएँ भी इन क्षेत्रों तक पहुँचाई। फूनान में भारतीय ब्राह्मणों और बौद्धों की उपस्थिति का उल्लेख चीनी यात्रियों कांग ताई और चुंग त्सु के यात्रा–वृत्तांतों में मिलता है। ब्राह्मी लिपि, संस्कृत भाषा, और बौद्ध विचारधारा का समावेश शासन–प्रणाली, शिक्षा और स्थापत्य में परिलक्षित होता है। चेनला काल में महायान बौद्ध धर्म राजपरिवार और कुलीन वर्गों में प्रतिष्ठित हुआ। अवलोकितेश्वर एवं प्रज्ञापारमिता की मूर्तियाँ उस काल की बौद्ध कला का सशक्त उदाहरण हैं इनमें गुप्त एवं पल्लवकालीन भारतीय शैलियों की छवि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो यह दर्शाती है कि भारत ने कंबुज में बौद्ध धर्म के प्रसार में निर्णायक भूमिका निभाई। आठवीं शताब्दी में महायान बौद्ध धर्म का विस्तार कंबोडिया (कंबुज) में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।[1] कंबुज की आदिवासी जनजातियाँ– 'मेर, मोंग एवं

अन्य जिनकी धार्मिक आस्थाएँ प्रकृति–पूजा, तंत्रवाद एवं पूर्वज–आराधना पर आधारित थीं, उन्होंने बौद्ध धर्म के मूल तत्वों को स्थानीय प्रतीकों, अनुष्ठानों एवं मिथकों में आत्मसात किया। यह सांस्कृतिक समायोजन केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि लोककथाओं, उत्सवों एवं सामाजिक संरचनाओं में भी दृष्टिगत होता है। विशेष रूप से अवलोकितेश्वर की आराधना को स्थानीय देवता प्रेतह के साथ समन्वित कर एक "मेर बौद्धता" का विकास हुआ, जो बौद्ध एवं आदिवासी परंपराओं के संलयन का विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। फूनान और चेनला काल के स्थापत्य अवशेष, जैसे वत्त फू और सम्भोर प्रेई कुक, इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म की संस्थागत उपस्थिति के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इन स्थलों से प्राप्त संस्कृत एवं प्राचीन 'मेर भाषा के शिलालेखों में धार्मिक दान, मठ–स्थापना एवं भिक्षु आचार–संहिता का उल्लेख मिलता है, जो शाही संरक्षण के साथ–साथ जनसामान्य में भी बौद्ध धर्म की स्वीकृति और सांस्कृतिक समावेशन को प्रमाणित करते हैं।

कंबुज का अंगकोर काल (9वीं–13वीं शताब्दी ई.) सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध युग था। इस काल में महायान बौद्ध धर्म एक संगठित धार्मिक व्यवस्था के रूप में उभरा। अंगकोर शासकों द्वारा प्राप्त संरक्षण, मंदिरों के माध्यम से बौद्ध प्रतीकों की प्रतिष्ठा, और सामाजिक स्तर पर इसकी व्यापक स्वीकृति ने कंबुज को दक्षिण–पूर्व एशिया में एक प्रमुख बौद्ध सांस्कृतिक केंद्र के रूप में स्थापित किया। महायान बौद्ध धर्म का उत्कर्ष अंगकोर के शासक जयवर्मन सप्तम (1181–1218 ई.) के काल में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वे स्वयं लोकेश्वर (अवलोकितेश्वर) के उपासक थे और उन्हें देवस्वरूप में प्रस्तुत करते थे।[2] उनके शासन में लोकेश्वर की अनेक मूर्तियाँ निर्मित हुईं, जो शासक की बौद्ध पहचान को दर्शाती हैं। यद्यपि अंगकोर साम्राज्य में महायान बौद्ध धर्म का प्रभुत्व रहा, तथापि वहाँ की धार्मिक नीति समन्वयवादी थी। महायान बौद्ध धर्म ने स्थानीय देवताओं को अपने बोधिसत्वों में समाहित कर लिया, जिससे यह विविध संस्कृतियों में लोकप्रिय हो सका।[3] मंदिर केवल उपासना के स्थल न होकर, शैक्षिक, बौद्धिक एवं सामाजिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंगकोर साम्राज्य के पतन के साथ कंबुज के धार्मिक परिदृश्य में गहरा परिवर्तन प्रारंभ हुआ। जहाँ महायान बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवादी परंपराएं शासकीय संरक्षण के अभाव में क्षीण होती गईं, वहीं थेरवाद बौद्ध धर्म ने एक सुलभ, नैतिक और व्यावहारिक धार्मिक मार्ग के रूप में लोकप्रियता प्राप्त की।

थेरवाद ने अपनी सरल शिक्षाओं, ध्यान पर आधारित साधना और निर्वाण की स्पष्ट अवधारणा के माध्यम से ग्रामीण तथा शहरी वर्गों में शीघ्र स्वीकार्यता प्राप्त की। थेरवाद की सादगी ने महायान की दार्शनिक जटिलताओं और देवत्व–आधारित अनुष्ठानों की तुलना में एक जनोन्मुखी और सामाजिक दृष्टि से व्यवहारिक विकल्प प्रस्तुत किया, जिससे यह कंबुज की धार्मिक–सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग बन गया। 13वीं सदी के प्रारंभ में श्रीलंकाई बौद्ध धर्म (थेरवाद) कंबोडिया में आया और धीरे–धीरे महायान परंपरा का स्थान ले लिया।[4] 13वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में थेरवाद बौद्ध धर्म कंबोडिया पहुँचा और धीरे–धीरे महायान बौद्ध धर्म को प्रतिस्थापित करने लगा। अंगकोर साम्राज्य के पतन के पश्चात 14वीं शताब्दी में थेरवाद बौद्ध धर्म को कंबुज में राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ, थेरवाद भिक्षु संघ बेहतर संगठित था और समाज को नैतिक मार्गदर्शन देने में अधिक सक्रिय भूमिका निभाता था।[5] जयवर्मन सप्तम के उत्तराधिकारियों ने बौद्ध धर्म का महायान रूप त्याग दिया और थेरवाद की ओर झुकाव बढ़ा।[6]

विहार अब केवल धार्मिक साधना के केंद्र न होकर शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, और सामाजिक नैतिकता के संस्थान के रूप में विकसित हुए। महायान से थेरवाद की ओर संक्रमण एक क्रमिक प्रक्रिया थी, जिसमें

सांस्कृतिक और धार्मिक समायोजन भी सम्मिलित थे।[7] थेरवादी मूर्तिकला में एकल ध्यानस्थ बुद्ध की प्रतिमाओं की प्रधानता दिखाई देती है, जबकि मंदिरों का स्थापत्य सरल और उपयोगमुखी हो गया। थेरवाद ने पूर्वज पूजा, नाग–आस्था जैसे स्थानीय विश्वासों से समन्वय स्थापित कर 'लोक बौद्ध धर्म' की अवधारणा को जन्म दिया। इस प्रकार थेरवाद बौद्ध धर्म ने कंबुज की सामाजिक संरचना में स्थायित्व, नैतिक अनुशासन और सांस्कृतिक पुनर्गठन की प्रक्रिया को सुदृढ़ किया। कंबोडिया में थेरवाद बौद्ध धर्म ने स्थानीय पंथों और अनुष्ठानों को आत्मसात किया, जिससे यह विशिष्ट रूप से ख्मेर शैली का बन गया।[8]

प्राचीन कंबुज में बौद्ध धर्म स्थापत्य, मूर्तिकला और शिलालेखों में गहराई से रचा–बसा था, जो धार्मिक आस्था के साथ–साथ सांस्कृतिक स्मृति, दार्शनिक विचार और सामाजिक संरचना का भी प्रतीक था, विशेषकर अंगकोरकालीन मंदिरों में। कंबोडियाई थेरवाद बौद्ध परंपरा में पूर्व–बौद्ध प्रेतवादी और पूर्वज–पूजा परंपराओं का समावेश देखा जाता है।[9] बायोन मंदिर की मीनारों पर उत्कीर्ण अवलोकितेश्वर के बहुवदन चेहरे करुणा और सर्वज्ञता के प्रतीक हैं। मंदिरों की मंडलात्मक संरचना, चार दिशाओं में प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा, तथा गर्भगृह में ध्यानमग्न बुद्ध या बोधिसत्व की स्थापना, यह दर्शाती है कि स्थापत्य केवल स्थापत्य नहीं, एक धार्मिक अनुभव था। अंगकोर युग की मूर्तिकला महायान परंपरा की जटिल प्रतीकात्मकता का प्रतिबिंब है। वहीं थेरवाद काल में बुद्ध की ध्यान मुद्रा, भिक्षु वेश और परिनिर्वाण प्रतिमाएँ प्रमुखता से उभरती हैं, जो शांति, त्याग और आत्मिक अनुशासन को केंद्र में रखती हैं। कंबोडिया के मठ शिक्षा, सामाजिक अनुशासन और सांस्कृतिक संरक्षण के केंद्र के रूप में कार्य करते थे।[10] इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म की उपस्थिति केवल आध्यात्मिक प्रवृत्ति न होकर, एक प्रभावशाली सामाजिक–सांस्कृतिक शक्ति के रूप में उभरी यह निरंतरता दर्शाती है कि शिलालेख केवल शासकीय घोषणाएँ नहीं, बल्कि बौद्ध धार्मिकता की ऐतिहासिक धारा के प्रमाण भी हैं।

कंबुज (आधुनिक कंबोडिया) में बौद्ध धर्म की निरंतरता का क्रम :–

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब कंबोडिया फ्रांसीसी उपनिवेश बना, तब बौद्ध धर्म न केवल एक आध्यात्मिक पथ, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की चुनौती से जूझता एक जीवंत अनुभव था। फ्रांसीसी शासन ने एक ओर धर्म पर नियंत्रण स्थापित किया, तो दूसरी ओर अंगकोर के प्राचीन मंदिरों का उत्खनन कर कंबोडियाई जनमानस में अतीत की स्मृति पुनः जाग्रत की। यह स्मृति केवल अतीत का गौरवगान नहीं थी, बल्कि एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चिंगारी थी जिसमें बौद्ध धर्म, राष्ट्र की आत्मा बनकर उभरा। किन्तु 20वीं सदी के मध्य में, ख्मेर रूज शासन के दौरान, यह आत्मा बर्बर हिंसा की शिकार बनी। पोल पॉट के नेतृत्व में बौद्ध धर्म को 'प्राचीन दमनकारी व्यवस्था' कहकर व्यवस्थित रूप से मिटाया गया। हजारों मठ ध्वस्त किए गए, पवित्र ग्रंथ जलाए गए, और लगभग 60,000 भिक्षुओं को नृशंसता से मार डाला गया। यह एक धार्मिक दमन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक उच्छेदन था। कंबोडिया की स्मृति, आत्मा और अस्तित्व को समाप्त करने का प्रयास। फिर भी, बौद्ध परंपरा की जड़ें जनता के मानस में सुरक्षित रहीं। आधुनिक संविधान द्वारा बौद्ध धर्म को 'राष्ट्रीय धर्म' का दर्जा दिए जाने के बाद यह परंपरा पुनर्जीवित हुई। आज का बौद्ध धर्म कंबोडिया में केवल पूजा–पद्धति नहीं, बल्कि सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक उत्तराधिकार और सामाजिक संतुलन का प्रतीक बन गया है। फूनान की प्राचीन गूंजों से लेकर अंगकोर की भव्यता और आधुनिक पुनर्निर्माण तक, बौद्ध धर्म की यह यात्रा इतिहास में स्थायित्व, परिवर्तन और पुनर्जन्म की अनूठी गाथा है जो कंबोडिया की आत्मा में अब भी धड़क रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कोडेस, जॉर्ज, (1975). द इंडियनाइज्ड स्टेट्स ऑफ साउथईस्ट एशिया (अनुवाद : सुसान ब्राउन कोविंग), यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई प्रेस, पृ. 95
2. कोडेस, जॉर्ज, (1975) पूर्वोक्त, पृ. 169
3. कोडेस, जॉर्ज, (1975) पूर्वोक्त, पृ. 172
4. हाजरा, के. एल., (1982). हिस्ट्री ऑफ थेरवाद बुद्धिज्म इन साउथ–ईस्ट एशिया : विथ स्पेशल रेफरेंस टू इंडिया एंड सीलोन, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर प्रा.लि., पृ. 125
5. दत्त, नलिनाक्ष, (1978). बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर प्रा. लि., पृ. 15
6. हजरा, के. एल. (1982). पूर्वोक्त पृ. 126
7. होल्ट, जॉन क्लिफर्ड, किनार्ड, जैकब एन., और वॉल्टर्स, जोनाथन एस. (संपा.), (2003). कॉन्स्टिट्यूटिंग कम्युनिटीज : थेरेवाद बुद्धिज्म एंड द रिलिजियस कल्चर्स ऑफ साउथ एंड साउथ ईस्ट एशिया, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, पृ. 59
8. होल्ट, जॉन क्लिफर्ड, किनार्ड, जैकब एन., और वॉल्टर्स, जोनाथन एस. (संपा.), (2003). पूर्वोक्त पृ. 62
9. बॉल्कविल, स्टेफनी, और बेन, जेम्स ए. (संपा.), (2022), बौद्ध स्टेटक्राफ्ट इन ईस्ट एशिया, ब्रिल बॉस्टन, पृ. 91
10. बॉल्कविल, स्टेफनी, और बेन, जेम्स ए. (संपा.), (2022), पूर्वोक्त पृ. 92
11. हॉल, डी. जी. ई. (1981), हिस्ट्री आफ साउथ–ईस्ट एशिया. मैकमिलन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 19-22

डॉ. विद्या विंदु सिंह की कहानियों में मानवीय गुण

जे. अशोक कुमार जैन, पी.एच.डी शोधार्थी
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी, (VISTAS), पल्लावरम, चेन्नई।

सार :–

मानवता प्रथम धर्म है अर्थात मानवता सर्वोत्कृष्ट धर्म है, यह एक गहरी और व्यापक भावना है जो मनुष्य भीतर निहित, करुणा, सहानुभूति, प्रेम, दया, और एक–दूसरे की सहायता करने की प्रवृति को दर्शाती है। यह वह गुण है जो हमें एक जैविक–जंतु समाज–सांस्कृतिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है। अनेक साहित्यकार इन गुणों का चित्रण करते है।

डॉ. विद्या विंदु की कहानियों में साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सद्‌गुणों के साथ–साथ मानवीय गुण भी यत्र–तत्र मिलते हैं। ये मानवीय गुण ही मनुष्य को मनुष्य बनाए रहने में सहायक सिद्ध होते हैं। वरन मनुष्य के भीतर की राक्षसी प्रवृत्ति बहार आकर तांडव करने लगेगी। डॉ. विद्या विंदु सिंह अपनी कलम के माध्यम से मानव समाज को चेता रही है। वह पूर्वजों द्वारा मिली हुई ऐतिहासिक धरोहर को संजोए रखने हेतु प्रयासरत हैं, और आने वाली पीढियों के लिए उसे सुरक्षित कर रही हैं। इनके साहित्य में मानवीय मूल्य एवं जनमानस के उत्थान के लिए अनेक उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात की पुष्टि करती हैं।

इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से मानवीय गुण को उजागर करते हुए समाज को नई दिशा प्रदान की है। जब–जब हमारे मानवीय धर्म एवं संस्कृति पर चोट हुआ, और भारतीय इतिहास की अस्मिता खतरे में पड़ी तब–तब ऋषियों ने संत साहित्य की रचना की। उनकी रचनाएं आधुनिक समाज के लिए प्रेरणास्रोत हैं। यह साहित्य मनुष्य को मानवीय गुणों से भर देता है। डॉ. विद्या विंदु सिंह की कहानियाँ भी वास्तव में प्रेरणादाई है, क्योंकि इसमें इन्होंने भारतीय संस्कृति को कायम रखने वाली वसुधैव कुटुंबकम, वास्तविक शिक्षा, उदार सभ्यता, करुणा, अहिंसा आदि मानवीय गुणों की चर्चा की।

"जिनकी यश : सुरभि है सुरभित हम करते हैं पदरज वंदन" – यह एक पंक्ति मात्रा पंक्ति नहीं है बल्कि किसी मंत्र से कम नहीं है। इस मंत्र को पालन करने से मनीषियों का सदा से ही आदर होता है, उनके प्रति सम्मान भी कायम रहता है।

"उत्तरं यत समुद्रस्य हिमाद्रिएश्चैव दक्षिणम वर्ष तत भारत नाम भारती यत्र संततिः।' इस प्रकार भारतीय संस्कृति हमेशा त्यागमयी रही है। इसमें भोग की स्थान नहीं है, त्याग और बलिदान की प्रधानता अधिक रही है। जन्मभूमि को स्वर्ग से अधिक गरिमामयी माना गया है यहां परोपकार एवं मानवता को श्रेष्ठ धर्म माना जाता है।

हमारे शास्त्रों में मानवीय मूल्यों को बढ़ाने के लिए कुछ यम नियमों का विधान रखा गया है। इनमें सर्वप्रथम अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि अनुव्रतों को पालन करने के लिए कहे गए हैं। जो मुख्य रूप से जैन साहित्य में पाए जाते, इन व्रतों से आत्मकल्याण के साथ–साथ विश्व बंधुत्व की भावना भी बढ़ती जाती है। अतः हमें इन मानवीय गुणों को यथाशक्ति पालन करना चाहिए। विद्या विंदु ने अपनी कहानियों में इन्ही मानवीय गुणों का बखूबी चित्रण किया हैं।

'काशीवास' शीर्षक कहानी में लेखिका ने मानव मूल्य का विघटन और यथार्थ की बोध का सजीव चित्रण करते हुए अपनी बात की पुष्टि की हैं कि मानवता का विखंडित रूप हर पल हमें चारों ओर दिखाई दे रहा है। आजकल सब अपने स्वार्थी पूर्ति के लिए एकल परिवार को अधिक चाहने लगे हैं। इसी कारण हमारी सांस्कृतिक परंपरा का बोध प्रतिदिन गिरता जा रहा है। वस्तुतः हमारे रहन–सहन आचार–व्यवहारों में भी बहुत कुछ परिवर्तन आ गया है। अत, मूल्यों का ह्रास चरम पर है।

'काशीवास' कहानी की मानवीय संवेदना का चित्रण हुआ है। इस कहानी में मानवीय मूल्य की बात एक वाक्य से स्पष्ट होता है– "वृंदा ने डॉक्टर से हाथ जोड़कर कहा, "आप तो हमारे लिए ईश्वर का रूप है, हम आपका ऋण कभी नहीं अदा कर पाएंगे। इस वाक्य में वृंदा अपनी कृतज्ञता भाव व्यक्त करती है। एक पागल भिखारिन वृंदा अपने दोनों हाथ जोडकर डॉक्टर के समक्ष खड़ी होती हैं और उन्हें साक्षात ईश्वर का रूप मानती है। यह भाव भारतीय संस्कृति को उजागर करने में सक्षम है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सहायता करने वालों को दिल से मान–सम्मान देना चाहिए तथा असहाय लोगों को बिना कुछ अपेक्षा के सहायता करनी चाहिए।

करमा बुआ शीर्षक कहानी की मुख्य पात्र कर्मवती है। इस समाज में व्याप्त अंधविश्वास पर इस कहानी में प्रहार किया गया है। कर्म बुआ एक ऐसी सुंदर हँसमुख स्त्री है जो खुद दुखी होकर भी दूसरों को सुख पहुँचाना चाहती है। गाँव के हर एक व्यक्ति से उनका नाता बहुत अच्छा था। सादा जीवन उच्च विचार वाली महिला थी। कभी ऊँची आवाज में बात तक नहीं करती थी। लोग प्यार से उसे करमा बुआ कहकर बुलाते थे।

उसे जब यह पता चलता है कि उसके पति बच्चा पैदा करने में असमर्थ है तो वह किसी अनाथ बच्चों को गोद लेने के लिए कर्मवती सोचती है, पर पति मानने के लिए तैयार नहीं होता क्योंकि पति यह मानता था कि पराया खून, तो पराया ही होता है।

करमा अपने कर्म को लेकर चिंतित थी, आखिर वही हुआ जो नहीं होना था। "मेरा नाम तो करमावती था, पर मेरे कर्म तो फूट थे, पर मैं अपने कर्म से तुम लोगों को सुधारना चाहती हूँ। तुम लोग पढ़ने से ही जी न चुराओ 'बारी–बारी' शीर्षक कहानी का मुख्य पात्र श्रीनाथजी है। इनके दो बेटे और दो बेटियाँ हैं। पाँच वर्ष पहले इनकी पत्नी भगवान के प्यारे हो गई थी। बच्चे बारी–बारी से उनके पास रहने का कर्तव्य निभाते हैं। फिर कुछ दिन बाद अपनी परेशानियाँ बताने लगते हैं। वे हर बेटे के घर में चार–चार महीने रहने लगे, जैसे भी हो करके वहाँ समय बिताने लगे। एक दिन उनकी बहू कीर्ति पार्टी के लिए चली जाती है। घर में अकेले रहने से श्रीनाथजी को डर लग रहा था, तो वह अपने गाँव वापस आ जाते हैं। अपनी पत्नी को याद करके दुखी हो जाते हैं। उन्हें ऐसा लगता हें कि उनकी पत्नी शक्ति बनकर उनके समाने आ गई है। वह सोच लेता है कि अब किसी के आगे दया की भीख नहीं मांगेंगा।

इस कहानी के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि आज मध्यवर्गीय तथा कथित अभिजात वर्ग आडम्बर युक्त

जीवन जी रहा है मध्यम वर्गीय परिवार में आज मानव मूल्य गिरता जा रहा है। विद्या विन्दु सिंह मुल्यों के पक्षधर होने के कारन इस मूल्यहीनता को देखकर विचलित होती है। अतः अपनी रचनाओं के माध्यम इस मूल्यहीनता पर प्रहार करती हैं।

'दाई माँ' (बाघ बाबा का चौरा) शीर्षक कहानी का कनू अपने विद्यालय के दलों के साथ अनाथालय, कुष्ठ आश्रम, जेल आदि देखने गया था। वहाँ वह अपनी को देखता है। दादी जो हमेशा उसे सीने से लगा के रखती थी वह आज अनाथ की तरह उस आश्रम में रह रही है। उसने देखा कि दादी डलिया बुन रही थी। उम्र के साथ–साथ उनके चेहरे की झुरियाँ साफ दिख रही थीं। कनू की दादी के चचेरे बहन शकुंतला देवी, बाल विधवा थी। उन्होंने ही कनू के पिता को पाला था। उनके चेहरे पर सफेद दाग से आ गए थे। डॉक्टरों के परामर्श से पता चला कि उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। कुष्ठ रोग से पीड़ित दादी को देखकर कनु का दिल टूट गया। वह और भी दुखी हो गया जब उसने यह देखा कि उसकी दादी के पीछे दीवार पर एक बोर्ड टंगा था जिसमें लिखा गया था कि "कुष्ठ रोग एक रोग है, अभिशाप नहीं। कुष्ठ रोगी से घृणा मत कीजिए, उससे सहयोग कीजिए। कुष्ठ रोगी को दया नहीं सहारा चाहिए। कुष्ठ रोग उपचार से पूरी तरह ठीक हो जाता है। (बाघ बाबा का चौराहा पृष्ट संख्या 30)

इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि मानवीय मूल्यों की रक्षा करना सबका परम कर्तव्य है। यह कहानी नई पीढ़ी के मन पर कुछ प्रभाव छोड़ सकती है। यह कहानी वास्तव में जागरुकता अभियान का मुहिम हैं।

'पुजारिन अइया' कहानी में पुजारी अइया का वास्तविक नाम यमुना था। छोटी यमुना की माँ प्लेग की बीमारी के कारण गुजर जाती है। उस समय घर की पूरी जिम्मेदारियाँ उसके ऊपर आ जाती हृै। छोटी उम्र में ही बड़ी–बड़ी जिम्मेदारियों को निभाना सीख गई। पिता को सहारा देती थी और माँ बनकर भाई की देखभाल करती थी। अंग्रेज राज होने के कारण उसके पिता क्रांतिकारियों की मदद करते थे, एक दिन वह अंग्रेजों की गोली का शिकार हो जाता है। पुजारी अइया स्वयं को संभाल कर भाई को सहारा देती है। गाँव के लोग सहायता न करने पर भी वह संघर्ष करना नहीं छोड़ती। अचानक एक क्रांतिकारी नवयुवक से उसकी भेंट होती है। वह उसे देखकर डरने की बजाय ढाँढस से काम लेती है। क्रांतिकारी नवयुवक को अपना समझकर तन, मन से पति के रूप में स्वीकार करती है। जैसे ही उसने बेटी को जन्म दिया उसकी सास उसका तिरस्कार करती है, लेकिन पुजारी ने अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह से निभाती है। सास की सेवा करती है, अपनी बेटी को पढ़ा–लिखा कर उसकी शादी करवाती है। अनगिनित समस्याओं का सामना करते हुए वह मानवीय मूल्यों की मार्ग प्रशस्त करते हुए एक प्रेरणादाई नारी के रूप में अपने आपको समाज के सामने एक मिसाल के रूप में प्रकट करती है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने यह प्रतिपादित किया है कि इस बात को लेखिका महोदय ने अपने लेखनी के माध्यम से स्पष्ट करने की कोशिश किए हैं।

"स्पर्श और मौन प्यार की भाषा है"। पुजारी अइया, पृष्ट संख्या. 47

एडियही काकी शीर्षक कहानी में लेखिका ने विमला के माध्यम से समाज में व्याप्त ज्वलंत समस्या को सरल व सहज ढंग से सुलझाने का प्रयास किया है। उन्होंने यह निरुपित किया है कि एक परिवार में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका होते है।

विमला की अनेक भूमिकाए होती हैं जैसे पत्नी, बहु, माँ आदि। बहु के रूप में घर में रहने वाले लोगों का ध्यान रखती हैं, बुजुर्ग लोगों का सम्मान करती है और उनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करती है।

विमला के माध्यम से भारतीय नारी के सभी गुणों को मानवीय मूल्यों को हम इस कहानियों के माध्यम से हम देख पाते है तथा नारी की सहनशीलता, संघर्ष, साहस आदि का परिचय दिया गया है। कहना ना होगा कि लेखिका विद्या बिंदु सिंह भारतीय संस्कृति और संस्कारों के पक्षधर हैं। अतः उन्होंने अपनी बहुमूल्य रचनाओं के माध्यम से यह निरूपित करने का प्रयास किया है कि संसार में मनुष्य बनकर रहना सबसे कठिन है। मानव जन्म लेने से मात्र कोई व्यक्ति मनुष्य नहीं बन जाता, अपितु उसमें मानवीय गुना का होना अनिवार्य है।

व्यक्तित्व के निर्माण में मानवीय गुण सहायक बनते हैं। ईमानदारी, सच्चाई, करुणा, दयालुता और अनुशासन जैसे मानव गुण हमारे आत्मीय वैयक्तिक गुणो को और मजबूत बनाते हैं। यही मानवीय मूल्य सोच, व्यवहार और जीवन शैली को गहराई से प्रभावित करते हैं। जीवन के मूल्य वे होते हैं जो हमारे मन के संतुलन बनाने में सहायक बनते हैं। अतः हमें इन मानवीय गणों को यथाशक्ति बनाए रखना चाहिए तभी आत्मकल्याण के साथ–साथ विश्वबंधुत्व की भावना भी बढ़ती है। विश्व बंधुत्व से ही हम सबका कल्याण हो सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. विद्या विंदु सिंह, काशीवास, ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण, (पृष्ठ संख्या 20)–2012.
2. डॉ. विद्या विंदु सिंह, करमा बुआ, प्रतिभा प्रतिष्ठान, प्रथम संस्करण, (पृष्ठ संख्या–95)–2007.
3. डॉ. विद्या विंदु सिंह, बाघ बाबा का चौरा, सौम्या बुक्स, प्रथम संस्करण–2016.
4. डॉ. विद्या विंदु सिंह, विद्या विंदु सिंह की 21 कहानियाँ, कल्पना प्रकाशन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 23-26
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

भारतीय भाषाओं में इतिहास–लेखन की परंपराएं और चुनौतियाँ

अशोक कुमार
सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
जीडीसी मेमोरियल महाविद्यालय, बहल (भिवानी)

सारांश :–

यह शोध पत्र भारतीय देशज भाषाओं में इतिहास–लेखन की परंपराओं, उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टताओं और समकालीन चुनौतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में ऐतिहासिक लेखन केवल तथ्यों का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण नहीं बल्कि एक गहरे बौद्धिक संवाद का हिस्सा रहा है, जिसकी जड़ें पुराणों, वंशावलियों, चरितों, बुरंजी, बखर और तारीख जैसी विविध शैलियों में मिलती हैं। यह शोध उन दबावों को भी रेखांकित करता है जो औपनिवेशिक विरासत, भाषाई वर्चस्व और आधुनिक अकादमिक संस्थाओं के एकरूपी ढांचे से उत्पन्न हुए हैं। अंततः यह पत्र इस बात पर बल देता है कि भारतीय भाषाओं में इतिहास–लेखन को केवल संरक्षण की नहीं, बल्कि नवाचार और विस्तार की भी आवश्यकता है।

मुख्य केन्द्र :– देशज इतिहास–लेखन, भारतीय भाषाएँ, ऐतिहासिक परंपरा, अकादमिक शोध, भाषाई राजनीति, अनुवाद, निष्पक्षता, बौद्धिक सत्ता।

भूमिका :–

भारत में इतिहास–लेखन की परंपरा केवल औपनिवेशिक समय की उपज नहीं है। यदि हम ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा रचित इतिहास को थोड़ी देर के लिए अलग रखें, तो यह स्पष्ट होता है कि भारत की ऐतिहासिक चेतना हजारों वर्षों से सक्रिय रही है। प्राचीन काल में संस्कृत में लिखे गए पुराणों से लेकर मध्यकालीन फारसी तारीखों और आधुनिक काल की हिंदी, बंगाली, मराठी रचनाओं तक, यह लेखन समाज की स्मृति, आत्मबोध और सांस्कृतिक संरचना से गहराई से जुड़ा रहा है।

पारंपरिक ऐतिहासिक लेखन की विविध शैलियाँ :–

भारतीय भाषाओं में ऐतिहासिक लेखन की विविध परंपराएं रही हैं। उदाहरणस्वरूप :

1. **संस्कृत पुराण :** इतिहास, मिथक और नैतिक शिक्षा का मिश्रण।

2. **फारसी तारीखें :** मुस्लिम दरबारों में रचित राजनीतिक इतिहास।

3. **बंगाली मंगलकाव्य :** धार्मिक आख्यानों में सामाजिक यथार्थ का समावेश।

4. **मराठी बखरें :** पेशवाओं और मराठों की शौर्यगाथाएँ।

5. **असमिया बुरंजी :** अहोम राजवंश का विस्तृत दस्तावेजीकरण।

इन सभी रूपों में ऐतिहासिक तथ्य, लोकस्मृति, धार्मिक विश्वास और साहित्यिक सौंदर्य का अनोखा समावेश होता है। आधुनिक इतिहास–दृष्टिकोण से भले ही इनकी आलोचना की जाए, परंतु इनसे उपजे ऐतिहासिक बोध को नकारा नहीं जा सकता।

भाषाई इतिहास और राजनीतिक दुरूपयोग :–

इतिहास–लेखन का राजनीतिक दुरुपयोग भारत में कोई नई बात नहीं है। औपनिवेशिक काल से लेकर समकालीन भारत तक, इतिहास को बार–बार राजनीतिक उद्देश्यों के लिए पुनर्लेखित किया गया है। धार्मिक अस्मिता, जातिगत गौरव और क्षेत्रीय पहचान को स्थापित करने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। कभी आर्य–द्रविड़ विवाद, कभी मुगल–विरोध, तो कभी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद इन सबका मूल इतिहास की एकपक्षीय व्याख्याओं में छिपा है। यह प्रवृत्ति भाषाओं के संदर्भ में भी देखने को मिलती है, जहाँ एक भाषा विशेष को "ऐतिहासिक सत्य" की वाहक बना दिया जाता है और अन्य भाषाओं को हाशिये पर डाल दिया जाता है।

पेशेवर इतिहास–लेखन और निष्पक्षता की चुनौती :–

अकादमिक इतिहास–लेखन का आधार वैज्ञानिक पद्धति, साक्ष्य और वस्तुनिष्ठता होता है। तथापि, हर इतिहासकार की वैचारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि उसके लेखन को प्रभावित करती है (Thapar, 2013)। हिंदी समेत अधिकांश भारतीय भाषाओं में इस पेशेवर निष्पक्षता का अभाव है, क्योंकि इतिहासकारों को अनुवाद में कठिनाई होती है। स्रोतों की उपेक्षा होती है। अकादमिक संस्थानों में भाषाई भेदभाव व्याप्त है। इससे गुणवत्ता प्रभावित होती है और स्थानीय शोध वैश्विक विमर्श से कट जाता है।

इतिहास–लेखन की समकालीन प्रवृत्तियाँ :–

बीते कुछ दशकों में इतिहास–लेखन की दिशा में परिवर्तन आया है। अब केवल 'राजा–रानी' के इतिहास तक सीमित न रहकर अनुसूचित जातियाँ, महिलाएँ, जनजातियाँ, लोक संस्कृति, स्थापत्य, चित्रकला, और पर्यावरण भी इतिहास के दायरे में आ रहे हैं। लेकिन यह भी देखा गया है कि इन नवविषयों पर अधिकतर शोध अंग्रेजी में हो रहा है, जिससे देशज भाषाओं की भागीदारी सीमित हो जाती है।

हिंदी में इतिहास–लेखन की स्थिति :–

हिंदी में इतिहास लेखन की स्थिति अभी भी संतोषजनक नहीं कही जा सकती।

1. उच्च स्तरीय शोधपत्रों की कमी।
2. अंतरराष्ट्रीय विमर्श से कटाव।
3. गुणवत्तापूर्ण इतिहासकारों का अंग्रेजी की ओर झुकाव।

4. पुराने पाठ्यक्रम और निम्न स्तरीय शोध पत्रिकाएँ।

भाषा और सत्ता का द्वंद्व :-

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सत्ता और वर्चस्व का उपकरण भी है। अंग्रेजी का प्रभुत्व इसे बौद्धिक श्रेष्ठता का प्रतीक बना देता है, जिससे अन्य भाषाओं को दोयम दर्जे पर रखा जाता है। यह केवल भाषिक पक्षपात नहीं बल्कि सामाजिक विषमता को भी बढ़ावा देता है। जब शोध की भाषा अंग्रेजी तक सीमित होती है, तो भारत के विशाल ग्रामीण और क्षेत्रीय समाज उस ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। इससे ज्ञान का लोकतंत्रीकरण बाधित होता है।

समाधान और संभावनाएँ :-

समस्याओं के समाधान हेतु कुछ व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत हैं :

अनुवाद और सरल प्रस्तुति :-

- अंग्रेजी में प्रकाशित स्तरीय पुस्तकों का हिंदी, मराठी, तमिल आदि भाषाओं में अनुवाद हो।
- अनुवाद मात्र भाषांतरण नहीं बल्कि अर्थांतरण हो।

मौलिक लेखन को बढ़ावा :-

- शोधार्थियों को स्थानीय भाषाओं में मौलिक ग्रंथ लिखने हेतु प्रोत्साहित किया जाए।
- शोधवृत्तियों और संस्थागत सहायता को इससे जोड़ा जाए।

उच्च स्तरीय पत्रिकाओं की स्थापना :-

- नियमित, संपादकीय रूप से नियंत्रित और खुली समीक्षा प्रणाली वाली पत्रिकाएं प्रारंभ की जाएं।

बहुभाषिकता की प्रवृत्ति :-

- शोधकर्ताओं को कम से कम तीन भाषाओं (स्थानीय, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय) में दक्ष बनाया जाए।

शोध की स्वतंत्रता :-

पीएच.डी. स्तर पर भाषा चयन की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जाए, जिससे शोधकर्ता अपनी मातृभाषा में गहराई से काम कर सकें।

निष्कर्ष :-

भारतीय भाषाओं में इतिहास लेखन की परंपरा अत्यंत समृद्ध, विविध और जीवंत रही है। किंतु आधुनिक काल में औपनिवेशिक प्रभाव, अंग्रेजी का वर्चस्व और अकादमिक संस्थानों की एकरूपता ने देशज भाषाओं को हाशिए पर ढकेल दिया है। आज आवश्यकता है एक बहुभाषी, समावेशी और लोकतांत्रिक अकादमिक ढांचे की, जहाँ भारतीय भाषाओं को इतिहास लेखन का केंद्रीय स्थान प्राप्त हो। ऐसा केवल अनुवाद, मौलिक लेखन और संस्थागत परिवर्तन के माध्यम से ही संभव है। यदि यह प्रयास सामूहिक रूप से हुआ, तो हम न केवल अपने अतीत को समझ पाएंगे बल्कि एक अधिक न्यायसंगत और बौद्धिक रूप से स्वतंत्र भविष्य की ओर भी अग्रसर होंगे।

संदर्भ सूची :-

1. अकील, रजीउद्दीन और पार्थ चटर्जी, सं. (2008). हिस्ट्री इन दि वर्नाकुलर. नई दिल्ली, परमानेंट ब्लैक।
2. कर्ली, डेविड. (2008). पोएट्री एंड हिस्ट्री : बंगाली मंगल–काव्य एंड सोशल चेंज इन प्रिकॉलोनिअल बंगाल. नई दिल्ली, क्रॉनिकल बुक्स।
3. घोष, अंजन और चटर्जी, पार्थ, सं. (2002). हिस्ट्री इन दि प्रेजेंट. नई दिल्ली, परमानेंट ब्लैक।
4. चटर्जी, कुमकुम. (2009). दि कल्चर्स ऑफ हिस्ट्री इन अर्ली मॉडर्न इंडिया, परशिआनाइजेशन एंड मुगल कल्चर इन बंगाल. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. थापर, रोमिला. (2013). दि पास्ट बिफोर अस : हिस्टोरिकल ट्रडिशन्स ऑफ अर्ली नॉर्थ इंडिया. नई दिल्ली, परमानेंट ब्लैक।
6. राव, वेल्चे, नारायण, शूलमन, डेविड और सुब्रह्मण्यम, संजय. (2001). टेक्सचर्स ऑफ टाइम, राइटिंग हिस्ट्री इन साउथ इंडिया, 1600–1800. नई दिल्ली, परमानेंट ब्लैक।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 27-33

भारतीय राष्ट्रवाद के विविध आयाम

विवेक कुमार, शोधार्थी
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
प्रो. ज्योति साह, इतिहास विभाग,
डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर कॉलेज, ऊँचाहार, रायबरेली।

सारांश :-

प्रस्तुत शोध पत्र ''भारतीय राष्ट्रवाद के विविध आयाम'' में भारत के प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक विचारकों के चिंतन में राष्ट्रवाद की झलक परिलक्षित हुई है। यहाँ वैदिक काल, महाजनपद कालों के काल, मौर्य काल, गुप्तकाल, राजपूत काल आदि में भारतीय राष्ट्रवाद की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी, आर्थिक शोषण की नीति, भारतीय जुलाहों एवं किसानों को गरीब करने की नीति तथा लार्ड डलहौजी को अनुचित नीतियों ने भारत में 1857 की क्रांति को अनिवार्य कर दिया। 1857 की क्रांति के बाद भारतीय पुनर्जागरण के उद्धारकों क्रमशः राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती ऐनीबीसेंट आदि के प्रयासों से भारतीय जनता ने जागरुक होकर अंग्रेजों के विरुद्ध कार्यवाही करने का मन बनाया। अंग्रेजी शिक्षा, रेल–डाक–तार सुधार, मार्गो की सुव्यवस्था ने यातायात एवं संचार के साधन सुलभ कर दिये। अंग्रेजी शिक्षा ने पाश्चात्य दर्शन एवं अंग्रेजी संस्थाओं से परिचित करवाया। फलतः 1885 में भारत में क्रांति का सूत्रपात हुआ जिसे अंग्रेजों ने शक्ति के बल पर कुचल दिया।

क्रांति के बाद लार्ड लिटन की नीतियों (दुर्भिक्ष की असफलता, शस्त्र विधेयक, सिविल सर्विस (आयु 21 से 19 करना), प्रेस अधिनियम) ने भारतीयों के क्रोध को चरम पर पहुँचा दिया। एक अंग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम ने इसे शांत करने हेतु 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। कांग्रेस के तीन युग उदारवादी (1885–1905), उग्रवादी (1906–1918), गाँधीवादी (1919–1945) के प्रयासों एवं क्रांतिकारियों (भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि) की विस्फोटक नीति, सुभाष चन्द्र बोस द्वारा स्थापित 1938 में फावर्ड ब्लाक आदि कार्यों ने भारतीय विभाजन को आवश्यक कर दिया। अन्ततः 1947 में भारत की स्वतंत्रता को भारत के विभाजन द्वारा स्वीकार किया गया। इस प्रकार इस शोध–पत्र में यह बताया गया है कि राष्ट्रवाद के विभिन्न आयामों ने स्वतंत्रता की दहलीज तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की।

मुख्य शब्द : राष्ट्रवाद, क्रांति, स्वतंत्रता।

प्रस्तावना :-

''राष्ट्रवाद एक ऐसी सशक्त विचारधारा है जो प्रत्येक राष्ट्र को जिन्दा रखती है। सामान्य अर्थ में यह एक

मानसिक मनोवृत्ति है जो मानव में स्वदेश के लिए मर मिटने की भावना का सृजन करती है। प्रत्येक राष्ट्र के सृजनात्मक विकास हेतु राष्ट्रवाद का होना आवश्यक है। राष्ट्रवाद का अर्थ है विशाल समष्टि के साथ सर्जनात्मक तादाम्य। इस प्रकार का तादाम्य तभी सम्भव है, जब हम क्षुद्रता का अतिक्रमण करें। मनुष्य के आत्मिक प्रसारण में राष्ट्रवाद का महत्वपूर्ण स्थान है।'' राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के नातियों (Nation) से हुई है, जिसका अर्थ है 'जन्म'। 1939 में रॉयल इन्सीट्यूट ने अपनी रिपोर्ट में राष्ट्र की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया[1]—

1. राष्ट्र के कुछ सामान्य हित होते हैं। यह राज्य के साधनों द्वारा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
2. राष्ट्र में विद्यमान नागरिकों में राष्ट्रीय भावना की धारणा का होना अनिवार्य है।
3. राष्ट्र ऐसे समूह का परिभाषित प्रदेश होता है जिसमें उसे स्थापना का अधिकार होता है।

प्रो. रेम्जेम्योर ने राष्ट्र की परिभाषित करते हुए लिखा है, ''राष्ट्र वह जनसमुदाय है जिसके सदस्य अपने को स्वाभाविक रूप से एकता के कुछ ऐसे सूत्रों से बंधा हुआ महसूस करते हैं जो इतने सुदृढ़ तथा वास्तविक होते हैं कि उनके कारण वे प्रसन्नता पूर्वक साथ—साथ रह सकते हैं, उनके पृथक हो जाने पर वे दुःखी होते है और ऐसे लोगों को अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते जो इन बन्धनों के अन्तर्गत नहीं है।[2]

रेम्जेम्योर की इस परिभाषा से यह परिभाषित होता है कि राष्ट्र ऐसे लोगों की बिरादरी का एक समूह होता है जिसमें रहने वाले लोग इस बात का अनुभव करते हैं कि वे सब एक हैं। इसमें स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व आदि जैसे तत्व होते हैं, जो सामुदायिक जीवन की भावना को संगठित करते हैं।

राष्ट्रीयता –

राष्ट्र शब्द का अर्थ जानने के बाद हमें राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय भावना को जानना आवश्यक है। वस्तुतः राष्ट्रीयता राष्ट्र से बनी भाववाचक संज्ञा है, जो एक विशिष्ट जन—समूह की ओर इंगित करती है। अतः राष्ट्रीयता उस जन—समूह में पाई जाने वाली भावना की द्योतक है। यह भावना देश—प्रेम, राज भक्ति, आत्मीयता की भावना को अभिव्यंजित करती है। प्राचीन यूनान की सभ्यता, रोम की सभ्यता में राष्ट्रीयता की भावना के व्यापक होने से ही इन सभ्यताओं ने अतीत में गौरवशाली इतिहास की नींव रखी।[3]

16वीं से 18वीं शताब्दी तक यूरोप में राष्ट्रवादी गतिविधियों का बोलबाला रहा। किन्तु 19वीं शताब्दी में एशिया में राष्ट्रवाद का प्रादुर्भाव हुआ। जैसा कि डॉ. वी.पी. वर्मा का कहना है, ''19वीं शताब्दी के मध्य से एशिया का मन तथा आत्मा एक बार पुनःनिश्चित रूप से जाग गये। जिन प्रमुख नेताओं ने इस एशियाई कुम्भकरण के इस जागरण का श्रेय प्राप्त किया उनमें चीन के सुन—यात—सेन, भारत के तिलक एवं गाँधी तथा टर्की के कमाल पाशा है जिन्हें विशेषतः उच्च एवं अद्भुत स्थान प्राप्त है।''[4]

राष्ट्रवाद की परिभाषाएँ –

इतिहासकार बक्शी के अनुसार, ''भारत का 19वीं शताब्दी का राष्ट्रवाद यह प्रदर्शित करता है कि समस्त विश्व कई अलग—अलग राष्ट्रों में विभक्त था किंतु उनमें एकरूपता थी।''[5]

राधामोहन उपाध्याय के अनुसार, ''राष्ट्रीयता एक मानसिक प्रवृत्ति है जो मनुष्य में अपने देश के लिए मर—मिटने की भावना का सृजन करती है। भारतीय परम्परा में राष्ट्रीयता का सृजन होना आवश्यक था।''[6] डॉ.

वी.पी. वर्मा के अनुसार, ''भारतीय राष्ट्रवाद का अर्थ है– समूचा भारत देश एक है, इस प्रकार की भावना का सबके अन्दर होना। भाषा, वर्ग तथा अन्य प्रकार की विभिन्नताओं के बावजूद जब हम यह कहते हैं कि सारा भारत एक है और इसके निवासियों को अपना भाग्य निर्माण स्वयं करना चाहिए, तब यही भावना राष्ट्रवाद की भावना कही जा सकती है।

राष्ट्रवाद की उपरोक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त भारतीय पुनर्जागरण के विचारकों ने भी अपने विचार निम्नलिखित रूप से रखे हैं –

स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्रवाद –

विवेकानन्द ने भारत की जनता को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''हे वीर! निर्भीक बनो, साहस करो, मैं भारतीय हूँ और प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। बोलो, ज्ञानहीन भारतीय, दरिद्र तथा अकिंचन भारतीय, ब्राह्मण भारतीय, अछूत भारतीय मेरा भाई है। भारतीय मेरा जीवन है, भारत की भूमि पर मेरा परम स्वर्ग है, भारत का कल्याण मेरा कल्याण है।''[8] स्वामी विवेकानन्द द्वारा राष्ट्र की उन्नति एवं जागरण के लिए दिया गया यह वक्तव्य राष्ट्रवाद का ही परिचायक है।

गोखले का राष्ट्रवाद –

गोखले ने राष्ट्रवाद में अपनी पूर्ण निष्ठा व्यक्त की। उनके अनुसार, ''अपनी मातृभूमि के लिए मेरी आकांक्षाएँ अनन्त और असीमित हैं। मैं अपने देश, अपने देशवासियों के लिए उसी स्तर और सम्मान की रक्षा करूँगा जो किसी भी दूसरे देश में वहाँ के देशवासियों को प्राप्त हो। मेरी यह आकांक्षा है कि मेरे देश के स्त्री और पुरुष को, उच्चतम स्तर तक विकास के अवसर प्राप्त हों।''[9]

रानाडे का राष्ट्रवाद –

भारतीय राजनीतिक विचारक, महादेव गोविन्द रानाडे ने 'मराठों के इतिहास' को भारतीय राष्ट्रीयता का स्त्रोत मानते हुए महाराष्ट्र के धर्म, भाषा, नस्ल तथा साहित्य संबंधी एकता का सारे भारत के राष्ट्रानुभव का आधार बताया।[10]

तिलक का राष्ट्रवाद –

तिलक की मान्यता थी कि राष्ट्रीयता के विकास के लिए राष्ट्रीय एकता का होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि ''भारतीय अपने धार्मिक विश्वास, भाषा, जाति, प्रान्त आदि का ध्यान न रखते हुए अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम रखें तथा देशप्रेम की भावना से लोग एकता के सूत्र में बंधे रहें।'' एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा कि ''स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और इसे मैं लेकर ही रहूँगा।''[11] तिलक शिवाजी की भाँति ही एक पक्के हिन्दू और स्वतंत्रता प्रेमी थे। 1879 ई. में उन्होंने कानून की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद पूना न्यू इंग्लिश स्कूल में उन्होंने वेतन पर प्राध्यापक का कार्य किया। कुछ समय बाद उन्होंने 'केसरी' (मराठी भाषा में) और 'मराठा' (अंग्रेजी में) पत्रों को निकाला। उनके ये दोनों पत्र ब्रिटिश शासन की बुराईयों को उजागर करने के लिए महत्वपूर्ण अस्त्र थे।[12]

तिलक ने महाराष्ट्र के निवासियों में देशभक्ति की भावना भरने के लिए गणपति त्यौहार का अवलम्बन लिया। जिसका उद्देश्य न केवल धार्मिक था अपितु राजनीतिक भी था। इससे महाराष्ट्र के लोगों को अनुशासन की प्रेरणा मिली। 1895 में उन्होंने शिवाजी महोत्सव की स्थापना की, ताकि भारत के युवक मातृभूमि को विदेशी

बंधन से मुक्त करने में शिवाजी के उदाहरण से प्रेरित हो सकें। शिवाजी द्वारा अफजलखां के वध के बारे में तिलक ने कहा था, ''यदि चोर हमारे घर में घुस आये और उन्हें भगाने के लिए हममें पर्याप्त शक्ति न हो तो हमें उनको घर में बंद करके जीवित जला देना चाहिए।''[13]

लाला लाजपत राय का राष्ट्रवाद –

लाला लाजपत राय की राष्ट्र की अवधारणा 19वीं शताब्दी के इटली के राष्ट्रवादियों से मिलती–जुलती है। उन्होंने 'अनहैप्पी इंडिया' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ''भारत को शक्तिशाली स्वतंत्र जीवन का निर्माण करके अपने आप को सबल बनाना चाहिए, और यह उसका अधिकार है। शासितों की सम्मति किस प्रकार का एकमात्र तर्कसंगत तथा वैद्य आधार है।'' अपनी एक अन्य पुस्तक 'द आर्य समाज' में उन्होंने स्पष्ट किया कि ''हिन्दू धर्म का भारतीय राष्ट्रवाद के महत्तर धर्म के साथ सामन्जस्य स्थापित किया जाय।'' उन्होंने यह भी कहा कि आधुनिक परिस्थितियों में 'भारतीयों को राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष करना सीखना चाहिए और उन्हें उन हथियारों का प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए जिनका उनके विरुद्ध अंग्रेज प्रयोग करते हैं।'[14]

अरविंद का राष्ट्रवाद –

अरविन्द के दर्शन में प्राचीन वेदान्त तथा पुराणों की झलक मिलती है। इसलिए उनका राष्ट्रवाद इनसे प्रभावित है। सचमुच में अरविन्द राष्ट्रवाद की एक महान् विभूति थे जिनमें देशभक्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी। वे कवि, तत्वशास्त्री, साहित्य दृष्टा, मनीषी, मानवता के प्रेमी और राजनीतिक दार्शनिक थे। वेलेंटाइन शिरोल ने उनके संबंध में लिखा है, ''अरविंद के सक्रिय आत्म त्याग के बारे में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है। उनकी दृष्टि में ब्रिटिश शासन तथा पश्चिमी सभ्यता जिसका वह समर्थन करता है, दोनों हिन्दुत्व के जीवन के लिए खतरनाक हैं।'' अरविंद का राष्ट्रवाद आध्यात्मिक दृष्टि से प्रेरित था।[15]

गाँधीजी का राष्ट्रवाद –

गाँधीजी एक आदर्शवादी विचारक थे इसलिए उनका राष्ट्रवाद अन्तर्राष्ट्रीय था। उनके अनुसार, ''राष्ट्रवाद राजनीतिक विकास की चरम अवस्था नहीं हो सकता। वह साध्य नहीं है, एक बीच की अवस्था है। उसका निर्माण अन्तरराष्ट्रवाद के मार्ग में आवश्यक कदम है।'' एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा कि ''श्रमिक को हर लाभदायक काम के लिए समुचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए। सरकार का यह कर्तव्य है कि वह कम से कम इतना सबके लिए सुनिश्चित करे। जो सरकार इतना भी नहीं कर सकती वह सरकार नहीं है। वह अराजकता है। ऐसे राज्य का शान्तिपूर्वक विरोध करना चाहिए।''[16]

पं. जवाहर लाल नेहरू का राष्ट्रवाद –

नेहरू एक महान् राष्ट्रवादी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि राष्ट्रवाद तत्वतः अतीत की उपलब्धियों, परम्पराओं एवं अनुभवों की सामूहिक स्मृति है और राष्ट्रवाद जितना शक्तिशाली आज है उतना पहले कभी नहीं था। जब कभी संकट आया है तभी राष्ट्रवादी भावना का उत्थान हुआ है और लोगों ने अपनी परम्पराओं से शक्ति तथा सांत्वना प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। अतीत और राष्ट्र का पुनरान्वेषण वर्तमान युग की एक आश्चर्यजनक प्रगति है।''[17]

सुभाषचन्द्र बोस का राष्ट्रवाद –

सुभाशचन्द्र बोस यह मानते थे कि स्वाधीनता प्राप्ति के लिए महान नैतिक तैयारियों की आवश्यकता है।

इस प्रकार यद्यपि विदेशी नौकरशाही के विरुद्ध संघर्ष के संबंध में उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी था, किन्तु वे इस तथ्य को भी स्वीकार करते थे कि भारतीय जनता को आत्म–त्याग तथा कष्ट सहन किये बिना सफलता नहीं मिल सकती। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि ''इतिहास का न्याय अनिवार्यतः अपने मार्ग का अनुसरण करेगा, राजनीतिक संघर्ष तथा सामाजिक संघर्ष साथ–साथ चलेगा। जो दल भारत के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करेगा वही दल जनता को सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता भी दिलायेगा।[18]

भारत में राजनीतिक जागरण के कारण –

इसी प्रकार राष्ट्रवाद को शक्तिशाली बनाने हेतु भारत की धार्मिक एकता ने एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। हिन्दुओं के प्राचीन ग्रंथ वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत इन सब में राष्ट्रवादी की भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इस भावना ने भी यहाँ के नागरिकों में एकता का सूत्रपात किया, जो राष्ट्रवाद की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। तीव्र परिवहन तथा संचार साधनों के विकास ने भी राष्ट्रवादी की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य के हितों की सुरक्षा हेतु भारत में पक्के मार्गों का जाल बिछा दिया, जिससे एक प्रांत दूसरे प्रांत से जुड़ गया इस दिशा में रेलवे ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। 1853 में भारत की पहली रेल लाईन बम्बई से ठाणे तक प्रारम्भ हुई, इसके बाद 1880 तक लगभग 2500 मील लम्बी और 1900 तक 25000 मील लम्बी रेलवे लाईन बिछाई गई। इसके अतिरिक्त आधुनिक डाकघर एवं बिजली के तार ने देश को संगठित करने में सहायता प्रदान की, डाकखानों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पत्र भिजवाने सफल हो गए, जिससे भारत में राजनीतिक जागरण की भावना का विकास हुआ, जो राष्ट्रवाद की ही एक महत्वपूर्ण कड़ी है।[19]

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त ऋषि मुनियों एवं धर्म प्रचारकों ने भी भारतीय एकता एवं जागरण की दृष्टि से कार्य किया। शंकराचार्य ने कन्याकुमारी से लेकर हिमालय के श्रृंगों तक अपने सिद्धांतों का प्रचार किया एवं चैतन्य ने बंगाल से लेकर वृंदावन तक अपने भक्ति आंदोलन की धारा को प्रसारित किया। इसके अतिरिक्त रामानंद ने भक्ति आंदोलन में मील के पत्थर की भांति कार्य करते हुये दक्षिण से उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार किया, इस दिशा में कबीर, गुरुनानक, वल्लभाचार्य आदि संतों की एक महती भूमिका रही। अतः इन सब संतों ने भारत में कुरीतियों को दूर कर जागरुकता का वातावरण बनाया। यही जागरुकता राष्ट्रीयता की दिशा में एक सार्थक कदम थी।[20]

राजनीतिक एकता की दृष्टि से अंग्रेजी शिक्षा ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सर्वप्रथम 1829 की लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति को लागू कर भारत में अंग्रेजी शिक्षा को प्रारंभ किया गया, इसका उद्देश्य था भारतवासियों को मुंशी बनाना। इसी क्रम में 1854 में लार्ड डलहौजी ने चार्ल्स वुड अधिनियम पारित कर लंदन विश्वविद्यालय की तरह बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना की योजना रखी, आगे चलकर लार्ड रिपन के काल में 1882 में एक शिक्षा आयोग की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष सर विलियम हंटर थे। उन्होंने निजी शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देने की घोषणा की तथा माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिया। इसके पीछे अंग्रेजों का यह स्वार्थ था कि भारत में साम्राज्यवाद की नींव पक्की हो जाये, किन्तु अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को विचारों के आदान–प्रदान का एक मंच प्रदान किया जिससे भारत में राजनीतिक जागरण की भावना विकसित हुई।[21]

लार्ड लिटन (1876–80) की अनुचित नीतियाँ –

लार्ड लिटन ने अपने काल में कई अनुचित कार्य किये जैसे दिल्ली दरबार को बुला कर भारतीय धन का अपव्यय करना, सिविल सर्विस के लिये निर्धारित आयु 21 से घटा कर 19 वर्ष करना, वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम पारित करना, शस्त्र विधेयक पारित करना, अनावश्यक रूप से द्वितीय अफगान युद्ध कर भारतीय सैनिकों को आहूत करना एवं धन का अपव्यय करना आदि घटनाओं ने समस्त भारत वर्ष में अंग्रेजों के विरुद्ध असंतोष का वातावरण तैयार कर दिया। इस असंतोष को दूर करने के लिये लार्ड रिपन (1880–1884) ने शस्त्र अधिनियम एवं वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम को रद्द कर दिया किन्तु वह इल्बर्ट बिल विधेयक को ज्यों का त्यों पारित करवाने के कारण अंग्रेजी की करनी एवं कथनी के अंतर को स्पष्ट रूप से इंगित कर दिया।[22]

उपरोक्त घटनाओं से भारतीयों का असंतोष अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। इसलिये अंग्रेजी जहाज को बचाने के लिये एक सेवानिवृत्त अंग्रेजी अधिकारी मिस्टर ए.ओ. ह्यूम ने 1885 में लार्ड डफरिन (गवर्नर जनरल) की सहायता से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। कांग्रेस के प्रारम्भिक नेता गोखले, सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी, फिरोज शाह मेहता, दादाभाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैयब जी, जो पूर्णरूप से भारतीय राष्ट्रवादी थे, किन्तु उनकी अंग्रेजों के प्रति राजभक्त होने, अंग्रेजों के कोरे आश्वासनों से संतुष्ट होने तथा अंग्रेजी संसद एवं संस्थाओं के प्रति स्वामिभक्ति की नीति होने के कारण भारतीय राजनीति में एक नई विचारधारा उग्रवाद के रूप में पनपी, जिसके नेता थे लाल–बाल–पाल। 1907 की सूरत की फूट में उग्रवादी दल की स्थापना को अनिवार्य कर दिया।

निष्कर्ष –

भारतीय राष्ट्रवाद विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ अंग्रेजों की प्रतिक्रियावादी नीतियों एवं उनके काले कारनामों, भारतीय साहित्यकारों–विचारकों के संदेश, अंग्रेजी शिक्षा, भारत की राजनीतिक एकता एवं कतिपय गवर्नर जनरलों की अनुचित नीतियों ने 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना को अनिवार्य कर दिया। 1885 से 1947 तक कांग्रेस ने विभिन्न चरणों एवं संघर्षों–उदारवादी काल (1885–1905), उग्रवादी काल (1906–1918), गाँधीवादी काल (1919–1947) तथा क्रांतिकारियों के साहसिक कारनामों, स्वराज पार्टी (देशबंधु चितरंजन दास एवं मोती लाल नेहरू) तथा सुभाष चन्द्र बोस के फारवर्ड ब्लॉक ने भारतीय राजनीति को अंतिम चरण तक पहुँचा दिया जिससे 1947 में भारत के विभाजन पर भारत की स्वतंत्रता स्वीकार की गई। इस वर्ष भारत दो हिस्सों (पाकिस्तान एवं हिन्दुस्तान) में बँट गया। अतः असंख्य भारतीयों की कुर्बानियों के बाद भारतीय राष्ट्रवाद अपनी चरम सीमा स्वतन्त्रता तक पहुँचने में सफल हो गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. शर्मा, एच.सी., राष्ट्रवाद और राष्ट्र निर्माण सिद्धान्त एवं प्रक्रिया द्वारा उद्धरत, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2007, पृ. 15
2. ऐनसाइक्लोपिडिआ, अमेरिकन वाल्यूम 19, पृ. 185
3. हेज और मून, प्राचीन सभ्यताओं का इतिहास, पृ. 225
4. वर्मा, वी.पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, आगरा, 1998, पृ. 1–2
5. बक्शी, एस.आर., रूट्स ऑफ नेशलिज्म इन इंडिया, दिल्ली, 2006, पृ. 11–12

6. उपाध्याय राधामोहन, राष्ट्रीय एकता की खोज, अनुराग प्रकाशन, हावड़ा, 1994, पृ. 88–90
7. वर्मा, वी.पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, आगरा, 1998, पृ. 141–142
8. उपर्युक्त।
9. गोखलेज लास्ट बिल एण्ड टेस्टामेंट, 'गोखले सेन्चुरी सेवानायर' से उद्धत, 1886, पृ. 50–53
10. बर्थवाल, सी.पी., नेशनल इंटीग्रेशन इन इंडिया सिन्स इन्डपेंडेंस, न्यू रॉयल बुक कं., लखनऊ, 2001, पृ. 105–110
11. एन.जी. जोग, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग और संचार मंत्रालय, दिल्ली, 1999, पृ. 105–110
12. सूद, जे.पी., आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक विचार की मुख्य धाराएँ, पृ. 390–392
13. वही, पृ. 392
14. वर्मा, वी.पी. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, आगरा, 1998, पृ. 323
15. एफ. वेलेंटाइन शिरोल, पूर्वोवत, पृ. 90–97
16. नेहरू, जवाहर लाल, दि डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृ. 456
17. वही, पृ. 456
18. बोस, दि इंडियन स्ट्रगल, पृ. 412–414
19. विपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी एवं आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद का भारत (1947–2000) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2002, पृ. 113
20. उपर्युक्त।
21. लूनिया, बी.एन., भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ. 13
22. ग्रोवर, बी.एल., अलका मेहता एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास–एक नवीन मूल्यांकन (1707 ई. से वर्तमान समय तक) एस. चन्द एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 292

मो0 : 7042866123

Email : kumarvermavivek@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 34–37

समकालीन भारतीय सिनेमा में स्त्री

सुंदरम साहू, शोध छात्र (जे.आर.एफ.)
डॉ. ऋचा सुकुमार, प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
हेमवती नंदन बहुगुणा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लालगंज, प्रतापगढ़।

दुःखद पहलगाम हमला ! कर्नल सोफिया कुरैशी और विंग कमांडर व्योमिका सिंह इस पूरे ऑपरेशन सिंदूर के दौरान फोकस पर रही, रियल लाइफ एब्सलूट सिनेमा! न केवल देश ने देखा बल्कि संपूर्ण विश्व की तरफ ये संदेश गया कि, भारत में महिलाएं अब केवल चौका–चूल्हा तक सीमित नहीं हैं बल्कि देश के सबसे बड़े फैसलों में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है और सिनेमा में भी वही देखने को मिलता है जो समाज में चल रहा है, इसी क्रम में देखे तो गुंजन सक्सेना य जो कारगिल युद्ध में सेवा करने वाली पहली भारतीय वायु सेना की महिला पायलट थीं, इन पर बनी बॉलीवुड फिल्म "गुंजन सक्सेना : द कारगिल गर्ल" (2020) जिसमें जाह्नवी कपूर ने गुंजन सक्सेना की भूमिका निभाई है, फिल्म का एक यादगार उद्धरण, जो गुंजन सक्सेना (जाह्नवी कपूर) ने कहा है : "मैं उड़ना चाहती हूँ, अपने सपनों के पीछे नहीं, अपने आसमान में।" यह उद्धरण उनकी महत्वाकांक्षा को दर्शाता है कि वे लैंगिक बाधाओं को तोड़कर पुरुष–प्रधान सैन्य उड्डयन क्षेत्र में ऊँचाइयों को छूना चाहती हैं। एक वो समय था 1999 का जब स्त्रियां समानता के लिए समाज में जूझ रही थी और एक आज का समय 2025 जब देश के महत्वपूर्ण सामरिक निर्णयों में महिलाओं की भूमिका निर्णायक साबित हो रही है निश्चय ही इसी राह पर चलकर भारत अपने डेमोग्राफिक डिविडेंड को हार्नेस कर सकता और विश्वगुरू बन सकता है –"Just as a bird cannot soar with a single wing, a nation cannot truly progress by sidelining half of its population. उद्धरण दिखाता है कि जनसंख्या के एक हिस्से को पूरी तरह नजअंदाज कर के किसी देश में विकास संभव नहीं।

भारतीय सिनेमा न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह समाज का दर्पण भी है, जो उसकी मान्यताओं, मूल्यों, और परिवर्तनों को दर्शाता है। खास तौर पर, भारतीय सिनेमा में स्त्री की छवि और भूमिका समय के साथ नाटकीय रूप से बदली है। जहाँ प्रारंभिक सिनेमा में महिलाएँ ज्यादातर पारंपरिक और रूढ़िगत भूमिकाओं (माँ, पत्नी, प्रेमिका) तक सीमित थीं, वहीं समकालीन सिनेमा में वे अधिक स्वतंत्र, सशक्त, और बहुआयामी किरदारों में नजर आ रही हैं। यह लेख समकालीन भारतीय सिनेमा में स्त्री की बदलती छवि, उनके सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करता है।

भारतीय सिनेमा का इतिहास 1913 में दादासाहेब फाल्के की मूक फिल्म राजा हरिश्चंद्र से शुरू होता है। इस दौर में महिलाओं की भागीदारी सीमित थी, और सामाजिक रूढ़ियों के कारण अभिनय को सम्मानजनक पेशा

नहीं माना जाता था।

1940 और 1950 में मदर इंडिया (1957) जैसी फिल्मों ने महिलाओं को बलिदानी और आदर्शवादी रूप में प्रस्तुत किया, इसकी समानता साहित्य में प्रेमचंद युग की कहानियों से की जा सकती है जहां नायिकाएं आदर्शवाद से पीड़ित है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद की कहानी बड़े घर की बेटी की नायिका आनंदी बलिदान और त्यागवाद की पुतली थी। इस दौर में नरगिस, मीना कुमारी, और मधुबाला जैसी अभिनेत्रियों ने अपनी अभिनय क्षमता से दर्शकों का दिल जीता, लेकिन उनके किरदार ज्यादातर पितृसत्तात्मक ढांचे में बंधे थे। 1960 और 1970 के दशक में, जीनत अमान और परवीन बॉबी जैसी अभिनेत्रियों ने अधिक स्वतंत्र और आधुनिक महिलाओं के किरदार निभाए, फिर भी, ये किरदार अक्सर समाज द्वारा स्वीकार्यता की सीमाओं में बंधे रहते थे। समकालीन भारतीय सिनेमा, विशेष रूप से 2000 के दशक से, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति, और सामाजिक जागरूकता के प्रभाव से बदल रहा है। इस दौर में महिलाओं के किरदारों में विविधता और गहराई आई है।

पिछले दो दशकों में, महिला–केंद्रित फिल्मों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। ये फिल्में न केवल महिलाओं के अनुभवों को केंद्र में रखती हैं, बल्कि सामाजिक मुद्दों जैसे घरेलू हिंसा, लैंगिक असमानता, और यौन स्वायत्तता पर भी प्रकाश डालती हैं। उदाहरण के लिए : क्वीन (2013), यह फिल्म एक ऐसी युवती की कहानी है, जो अपने मंगेतर द्वारा ठुकराए जाने के बाद अकेले हनीमून पर जाती है और आत्म–खोज की यात्रा पर निकलती है। रानी का यह संवाद उसकी आत्मनिर्भरता को दर्शाता है : "मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं। मैं जैसी हूँ, वैसी ही ठीक हूँ।" ठीक यही भाव राजेश जोशी की 'भेड़िया' कहानी की नायिका द्वारा दिखाई देता है, वो कहती है : ''हमें न पति चाहिए न घर हमें बस थोड़ा सा भरोसा दो..।"

'पिंक (2016), फिल्म ने सहमति (Consent) और यौन हिंसा जैसे संवेदनशील मुद्दों को उठाया, मीनल (तापसी पन्नू) का यह संवाद फिल्म का केंद्रीय संदेश है : "नो का मतलब नो होता है।" यह संदेश पितृसत्तात्मक मानसिकता के ऊपर तमाचा है जो बोलते है "लड़कियों के ना में भी हा होती है।" जो कुछ फूहड़ रोमांटिक बॉलीवुड फिल्मों में दिखाया जाता और ये सोच आजकल के अधिकांश युवा ले के चल रहे हैं।

तुम्हारी सुलु (2017), विद्या बालन ने एक गृहिणी से रेडियो जॉकी बनी महिला का किरदार निभाया, जो अपनी महत्वाकांक्षाओं और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाती है, सुलोचना (सुलू) कहती हैं–" मैं सिर्फ गृहिणी नहीं हूँ, मैं कुछ और भी कर सकती हूँ।" यह संवाद पारंपरिक भूमिकाओं से बाहर निकलकर अपनी पहचान बनाने की इच्छा को व्यक्त करता है।

थप्पड़ (2020), यह फिल्म घरेलू हिंसा के एक छोटे से प्रकरण (एक थप्पड़) के इर्द–गिर्द घूमती है और महिलाओं के आत्मसम्मान और स्वायत्तता पर सवाल उठाती, अमृता (तापसी पन्नू) का यह संवाद आत्मसम्मान की माँग करता है : "बस एक थप्पड़? लेकिन नहीं मारना चाहिए था।" यह संवाद घरेलू हिंसा के प्रति शून्य सहनशीलता (Zero Tolerance) और आत्मसम्मान के महत्व को रेखांकित करता है।

मसान (2015), फिल्म जो यौन स्वायत्तता की खोज करती है, भारतीय सिनेमा में एक नया दृष्टिकोण लाता है, वो कहती है : "मैंने कुछ गलत नहीं किया, फिर क्यों मुझे शर्मिंदगी महसूस हो रही है?'' यौन नैतिकता कौन निर्धारण करेगा? यही समस्या दिनकर रचना उर्वशी में भी दिखाई देती है।

लिपस्टिक अंडर माय बुरका (2016), में भी चार महिलाओं की कहानी है, जो अपनी यौन इच्छाओं और

स्वतंत्रता की खोज में सामाजिक बंधनों को तोड़ती हैं। रिहाना (प्लबिता बोरठाकुर) पात्र बगावत को दर्शाता है : 'हमारी जिंदगी हमारी, हमारे सपने हमारे।' यह उन्मुक्त यौन मानसिकता को दिखाता है जिसका चित्रण समकालीन उपन्यासों तथा कहानियों में भी मिलता है। कथाकार कृष्णा सोबती इनमें अग्रणी है मित्रो मरजानी और सूरजमुखी अंधेरे के इसका उत्कृष्ठ उदाहरण है। इसके अतिरिक्त चित्रा मुद्गल जैसी कथाकारों ने भी कई रचनाओं के यही भाव व्यक्त किया है इनके उपन्यास एक जमीन अपनी में नीता, सुधीर के साथ बिना किसी हिचकिचाहट के लिव इन रिलेशन में रहती है।

समकालीन सिनेमा एक ओर जहां साहित्य में प्रेमचंद युग की नायिकाओं को दूसरी ओर सिनेमा में मदर इंडिया जैसी फिल्मों को चुनौती देता है जहां महिलाओं को त्याग की मूर्ति समझा जाता था। मर्दानी (2014), इस फिल्म में रानी मुखर्जी एक पुलिस अधिकारी के रूप में मानव तस्करी के खिलाफ लड़ती हैं। यह किरदार न केवल शारीरिक रूप से मजबूत है, बल्कि मानसिक रूप से भी दृढ़ है : "मैं मर्द नहीं, मगर मर्दानी हूँ।" समकालीन विद्वानों ने भी इस पर बहुत सवाल उठाए है जो चीज शारीरिक रूप से मजबूत है उसे मर्द का पर्याय क्यों बनाना? कुछ यही मजबूती हमें गंगूबाई काठियावाड़ी (2022) में दिखाई देता है जिसमें आलिया भट्ट ने एक वेश्या से सामाजिक कार्यकर्ता बनी महिला का किरदार निभाया, जो अपने समुदाय के लिए लड़ती है। यह फिल्म समाज के हाशिए पर रहने वाली महिलाओं की आवाज को उठाती है–"नाम है गंगूबाई काठियावाड़ी, ना डरती हूँ, ना डरने देती हूँ।' यह संवाद समाज के हाशिए पर रहने वाली महिलाओं की आवाज को सशक्त बनाता है।

देशप्रेम से ओतप्रोत, राष्ट्रवादी विचारों वाली नायिकाएं भी बॉलीवुड सिनेमा में दिखती है। राजी (2018), आलिया भट्ट ने एक जासूस का किरदार निभाया, जो देश के लिए बलिदान देती है। उनका यह संवाद उनकी देशभक्ति और साहस को दर्शाता है :– "मैं अपने वतन के लिए कुछ भी कर सकती हूँ।" यह संवाद महिलाओं को केवल पारंपरिक भूमिकाओं से बाहर निकालकर उन्हें राष्ट्रीय नायक के रूप में प्रस्तुत करता है। जैसा आज भी भारत में कर्नल सोफिया कुरैशी और विंग कमांडर व्योमिका सिंह के द्वारा देखा जा सकता है। यही राष्ट्रप्रेम कवि कथाकार जयशंकर प्रसाद के कहानी नाटकों में भी दिखाई देता है। कहानी में प्रसाद की पुरस्कार कहानी की नायिका मधुलिका जो देश के लिए अपने प्रेमी का बलिदान कर देती है और नाटकों में चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त (देवसेना) में राष्ट्रप्रेम से भरी हुई नायिकाएं दिखाई देती है।

महिलाओं का शोषण ना केवल घर के बाहर या वर्किंग प्लेस पर देखा जाता है बल्कि घर के अंदर भी दिखाई देता है। हाइवे (2014) फिल्म की नायिका, जिसका शोषण उसके चाचा ही करते हैं और मां सब जानते हुए भी चुप, अंत में मौका मिलता है तो कुछ कहती नहीं सिर्फ चीखती है, इसी तरह की तमाम घटना आज हमारे समाज में हो रही है आए दिन ये खबर सुनने को मिलती है, स्त्रियां अपने घर के अंदर ही सुरक्षित नहीं है।

हालांकि समकालीन सिनेमा में महिलाओं का चित्रण सकारात्मक दिशा में बढ़ रहा है, फिर भी कई चुनौतियाँ बाकी हैं, कई व्यावसायिक फिल्में अभी भी महिलाओं को वस्तु (Objectification) के रूप में प्रस्तुत करती हैं। आइटम सॉन्ग्स और अनावश्यक ग्लैमरस दृश्य महिलाओं को उनकी शारीरिक बनावट तक सीमित कर देते हैं। उदाहरण के लिए कबीर सिंह (2019), एनिमल जैसी फिल्मों में महिलाओं के किरदारों को गहराई देने के बजाय सतही तौर पर दिखाया गया और महिलाओं को केवल एक ऑब्जेक्ट के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हालांकि कुछ महिला निर्देशक जैसे मेघना गुलजार (राजी, तलवार), जोया अख्तर (जिंदगी ना मिलेगी दोबारा,

गली बॉय), और किरन राव (लापता लेडीज) आदि ने उल्लेखनीय योगदान दिया है, फिर भी फिल्म निर्माण में महिलाओं की भागीदारी सीमित है। अधिकांश फिल्में पुरुष निर्देशकों और लेखकों द्वारा बनाई जाती हैं, जिससे महिला दृष्टिकोण को पूरी तरह शामिल करना चुनौतीपूर्ण होता है। एक और समस्या कास्टिंग काउच (Casting Couch) है, आए दिन कई अभिनेत्री अपने साथ हुए यौन उत्पीड़न का खुलासा कर रही है।

हाल के वर्षों में, क्षेत्रीय सिनेमा (तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, बंगाली, भोजपुरी आदि) ने भी महिलाओं के किरदारों को नए आयाम दिए हैं। ये फिल्में अक्सर स्थानीय संस्कृति और सामाजिक संदर्भों को दर्शाती हैं, जिससे महिलाओं की कहानियाँ अधिक प्रासंगिक और प्रभावशाली बनती हैं। उदाहरण के लिए तेलगु फिल्म पुष्पा[१] और पुष्पा[२] में भी स्त्रियों को बहुत सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया गया है, इस फिल्म का नायक किरदार पुष्पा अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता है और उसको दिया वचन हर हाल में पूरा करता है, परन्तु साउथ की अधिकतर फिल्मों में स्त्रियों का ऑब्जेक्टिफाई रूप ही दिखाया जाता है, यही हाल कुछ भोजपुरी फिल्मों में भी हैं जिसने फूहड़ता की हद लांघ दी है।

ओटीटी प्लेटफार्म भी आजकल बहुत फेमस चल रहा है इसमें भी द्वंद्व दिखाई देता है एक तरफ जहां दिल्ली क्राइम जैसी वेबसरीज बन रही है जो महिलाओं को केंद्रीय भूमिका देता है। वहीं दूसरी तरफ उल्लू ओटीटी प्लेटफार्म में थर्ड ग्रेड फ्लॉप एक्टर एजाज खान जैसे बेहूदा लोग हाउस अरेस्ट जैसे शो के माध्यम से महिलाओं को ऑब्जेक्टिफाई करने का काम कर रहे है, इसी तरह इंडियाज गॉट लेटेंट शो भी विवादों में रहा है।

नाटक (टीवी. सीरियल) की बात की जाए तो स्टार प्लस का लोकप्रिय सीरियल अनुपमा और झनक भी नायिका केंद्रित सीरियल है, जिसमें नायिकाओं का संघर्ष दिखाया गया है।

इन फिल्मों ने सहमति, घरेलू हिंसा, और लैंगिक समानता जैसे मुद्दों पर खुली चर्चा को बढ़ावा दिया है। ये फिल्में समाज में बदलाव की मांग करती हैं और दर्शकों को अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं। हालांकि, अभी भी रूढ़िगत चित्रण और फिल्म निर्माण में महिलाओं की सीमित भागीदारी जैसी चुनौतियाँ बाकी हैं। भविष्य में, अधिक महिला निर्देशकों, लेखकों, और निर्माताओं की भागीदारी से सिनेमा और भी समावेशी और प्रगतिशील बन सकता है।

सन्दर्भ :–

1. भारतीय सिनेमा : महेंद्र मिश्र।
2. भारत में हिंदी सिनेमा : डॉ० दीनानाथ साहनी।
3. हिन्दी सिनेमा में राम : डॉ० रमेश गौतम।
4. सिनेमा परिचय : शरद सिंह।
5. हिन्दी कहानी का विकास : मधुरेश।
6. स्त्री–पुरुष कुछ पुनर्विचार : राजकिशोर।
7. समसामयिक मैगजीन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 38-41
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

धूणी तपे तीर में वर्णित भील और मीणा जाति का संघर्ष

सुजाता, शोधार्थी,
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।
डॉ. पूनम चालिया, शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, माता सुंदरी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सामाजिक सरोकारों से जुड़कर जनजीवन की विसंगतियां तथा विद्रूपताओं को कलात्मक ढंग से अपनी रचनाओं में सार्थकता के साथ उभरने वाले ख्यात नाम रचनाकार हरीराम मीणा अपने विविध पक्षी है पक्षीय लेखन से हिंदी जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान एवं मुकाम हासिल किया है। इन्होंने आदिवासी संस्कृति, सभ्यता के साथ–साथ दिन दुखियों, शोषित, पीड़ित और दमितजनों के जनजीवन को एक अध्येता के रूप में गहराई से निरूपित करने के पश्चात् 2001 से निरंतर ऐतिहासिक ग्रंथो, सरकारी कार्यालयों एवं आस–पास के एकत्रित प्रमाणों के आधार पर 2008 में 'धूणी तपे तीर' नाम से एक उपन्यास प्रकाशित कराया, जो जलियांवाला बाग हत्याकांड 13 अप्रैल 1919 से 6 वर्ष पूर्व 17 नवंबर 1913 में अंग्रेज एवं सामंती सबको शासकों के अत्याचार एवं निरकुंशता के विरुद्ध मानगढ़ की पहाड़ी पर लड़ी गई थी। यहां जलियांवाला बाग हत्याकांड से भी भीषण नरसंहार हुआ था।

ऐतिहासिक पुस्तकों, आधिकारिक प्रमाण, अभिलेखागार, पुस्तकालयों, महाराणा मेवाड़ के पोथीखाना एवं उस नरसंहार में मारे गए परिवार के परिजनों से पूछताछ के बाद एकत्रित आंकड़ों एवं साक्ष्यों से मिले निष्कर्ष में यह संख्या लगभग ढाई हजार बैठती है, जिसमे निहत्थे आदिवासी, बुजुर्ग बच्चे एवं महिलाओं की हत्या की गई थी। परन्तु इसे महज एक घटना बताकर नजरंदाज कर दिया गया। जब उपन्यासकार ने उस घटना के बारे में अध्ययन किया तो बहुत सी चौंकाने वाली बातें सामने आई जिसको आधार बनाकर यथार्थ से परिपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की। ऐसी दर्दनाक, भयानक, क्रूरतम, ह्रदय को द्रवित करने वाले नरसंहार की ओर ना ही किसी इतिहासकार की दृष्टि गई और ना ही किसी साहित्यकार ने इसे अपने साहित्य में जगह दी। यह नरसंहार केवल एक घटना बन कर रह गई थी जिसे उपन्यासकार ने अपनी पूरी आस्था, लग्न एवं परिश्रम से समाज के सामने उजागर किया है। इस नरसंहार को सबके सामने लाकर सोचने को मजबूर कर दिया। इस क्रूरतम एवं विभत्स नरसंहार के बारे में शंभूनाथ तिवारी लिखते हैं– "आदिवासी अंचल की जिस ऐतिहासिक – वास्तविक घटना को अंतिम परिणीति (मानगढ़ पर सामूहिक बलिदान) तक ले जाने के लिए उपन्यासकार ने बहुत श्रम किया है।"[1]

इस उपन्यास के नायक गोविंद गुरु हैं, जिनका जन्म सन् 1858 में एक बंजारा परिवार में हुआ था। वे शुरू से ही आदिवासियों के उद्धार और उनको संगठित करने के लिए अपना सब कुछ त्याग कर निस्वार्थ भाव से समर्पित होकर उन्हें जागुरूक करने का काम करते रहें। आदिवासियों के शोषित होने के लिए दो तरह की समस्याएं थी :– आदिवासी समाज की आंतरिक समस्याएं दूसरी राज द्वारा थोपी गई समस्याएं। आंतरिक समस्याओं में नशाखोरी और राज की समस्याओं में बेगार, लगान–इजाफा, बेदखली आदि अहम समस्याएं थी। गोविंद गुरु अपने साथियों के साथ मिलकर संप सभा का गठन कर इन समस्याओं से लड़ने का प्रण लेते हैं और गांव–गांव में जाकर इन समस्याओं के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए धूणी धामों की स्थापना करते हैं। धीरे–धीरे ये धूणी धाम आदिवासियों के लिए जागृति केंद्र बन जाते हैं।

गोविंद गुरु का आंदोलन वास्तव में एक धार्मिक और समाज सुधारक आंदोलन बनकर उभरता है। अब आदिवासी बेगारी करने से मना कर देते थें। वे अपनी मजदूरी मांगने से कतराते नहीं थे।

मुख्यधारा के साथ आदिवासियो संबंध :–

'धूणी तपे तीर' में हरिराम मीणा ने 19 वी सदी के उत्तरार्द्ध और 20 वी सदी के पूर्वार्द्ध में दक्षिणी राजस्थान के आदिवासियों के संघर्ष की दास्तान कही है। यहॉ मुख्यधारा के समाज के रूप में शोषण की पूरी श्रृंखला है जिसमें अंग्रेज हकिमो से लेकर महाराणा–महारावल, सेठ साहूकार, पुलिस प्रशासन, जमीदार–जागीरदार तक शामिल है। आदिवासियो के साथ सख्ती से निपटने की मेवाड़ के महाराणा को सलाह देते हैं। उस दौर में आदिवासियों से संबंधित कानून बनाए गए और उनके विधिवत शोषण की प्रक्रिया शुरू हुई। जिन जंगलों पर आदिवासियों का हजारों सालों से अधिकार रहा जो उनकी मातृभूमि रहें, उन्हीं से पैदा होने वाले संसाधनों यानि वनोपज पर पाबंदी लगा दी गई। नई आबकारी नीति लागू दी गई। अंग्रेज सरकार ने देसी रियासत के शासकों के सहयोग से ऐसे कई बदलाव किए जो वस्तुतः स्थानीय आदिवासी जनता के खिलाफ थे।

धूणी तपे तीर' में उपन्यास के नायक गोविंद गुरु ने अपने पहले सार्वजनिक वक्तव्य में शोषक तंत्र से पैदा हुई आदिवासी समस्याओं को उठाते हुए कहते हैं, "रियासत का कोई हाकिम या जागीरदार बिना मेहनताना भूखे पेट किसी से बेगार करवाता है तो यह कहा का न्याय है...... 'रखवाली' और 'बोलाई' की वसूली तो सैकड़ों सालों से करते आए थे और उस आमदनी का अधिकांश हिस्सा गांव की भलाई में काम आता था। राज ने इस उगाई पर पाबंदी क्यों लगा दी? खेतो पर लगा। बढ़ाया जाएगा इसलिए खेतों की नापजोत की जा रही है...... जंगलों की उपज पर तो हमारा पुश्तैनी हक था। यह हमारे उपयोग की चीज रही है फिर भी राज ने इनको ठेके पर देना क्यों शुरू कर दिया?.... साहूकार से हम अनेक कारज के लिए कर्ज लेना पड़ जाता है। कौन सा हिसाब–किताब है जो की कई बार चुकाने के बाद भी कर्जा माथे चढ़ा रहता है।"[2]

जब आदिवासियों पर क्रूर शासन व्यवस्था का अत्याचार अधिक बढ़ गया तो उन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठाने का निश्चय किया। अंत में जब हजारों आदिवासी अपने अधिकार के लिए मानगढ़ की पहाड़ी पर आंदोलन की रणनीति बनाने के लिए एकत्रित हुए, तब यह देख कर बांसवाड़ा, डूंगरपुर, संप के शासकों और अधिनस्त जागीरदारों ने अंग्रेजो के साथ मिलकर उनके आंदोलन को दबाने की कोशिश की। जिसमें कमांडर

मेजर बेली ने 17 नवंबर 1913 को मेवाड़ के भील कोर, 104 वेलसेल रायफल नवी राजपूत, जाट रेजीमेंट एवं राजवाड़ा के सैनिकों के साथ मिलकर मानगढ़ की पहाड़ी पर हमला कर दिया जिसमें निहत्थे बुजुर्गों, औरतों, बच्चों पर गोलियां बरसाना शुरू कर दिया। जिसके जवाब में संप सभा के नौजवान भी पत्थर, तीर–धनुष, भाला व बंदूक से जवाब देना शुरू कर किया। महिलाएं भी सबका साथ देने के लिए वीरांगना बनकर सामने आ गई और डटकर उनका सामना किया। "कमली की सहेली मंगली अब स्त्रियों में नए प्राण फूक कर उनके दल का मोर्चा संभाले हुए थी। अपनी प्रिय सहेली कमली व पानो की मौत के बाद वह कुछ पलों के लिए ही सदमें में रही थी।....... गोफन और कुल्हाड़ी उसके हथियार थे। कुछ के बाद धनुष बाण भी। अनेक रणचंडी भवानीयों की तरह वे अपने हिस्से की लड़ाई लड़ रही थी।[3]

जय भोलेनाथ! जय भैरव बाबा! जय गुरु महाराज के साथ रक्षा दल के युवक शिवजी की गणों के समान अंग्रजो के मशीनी के सामने भी खड़े होकर फिरंगी फौज के दांत खट्टे कर रहे थे जिससे कैप्टन स्टॉकले और मेजर बेली का शरीर पीपल के पत्ते के समान कांप रहा था। हरिया ने अपनी मंगेतर दल्ली के बलात्कारी अपराधी सूबेदार लियाकत अली का कुल्हाड़ी के एक ही वार से गर्दन काट दी। यह देखकर अंग्रेज सैनिक हतप्रभ रह गये। इस घटना के बाद अंग्रेज सैनिकों ने पर्वत को घेरकर अंधाधुंध गोलियां बरसायी और लगभग 2,500 हजार बुजुर्ग, बच्चों, महिलाओं की हत्या कर दी।

यह वीभत्स, दर्दनाक, नरसंहार, हृदय विदारक त्रासद को देखकर सभी कांप गये। गोविंद गुरु हताहतों के बीच दौड़ते हुए चिल्लाए– "नरभक्षी भेड़ियों तुमने बहुत सारे भोले–भाले आदिवासियों की हत्या कर दी। निहत्थों, बुजुर्गों, बच्चों पर भी रहम नहीं किया।[4]

इस वीभत्स और क्रूरतम नरसंहार के बारे में शंभूनाथ तिवारी लिखते हैं – "विद्रोह को दबाने के प्रयास में अंग्रेजों की दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप स्वंत्रता के इतिहास की एक ऐसी क्रूरतम घटना घटित हो जाती है, जो जलियांवाला कांड से भी वीभत्स और भयावह कही जा सकती है।[5]

निष्कर्ष :–

'धूणी तपे तीर' उपन्यास हमें राजस्थान के मानगढ़ में हुए नरसंहार और आदिवासियों के संघर्ष के बारे में जानकारी प्रदान करता है। उपन्यास में आदिवासियों के अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम और अपनी अस्मिता को बचाने के लिए दिए गए बलिदान का उल्लेख मिलता है। उपन्यास में स्त्री पत्रों के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि जिस स्त्री को हम अबला और नाजुक समझते हैं। वह विपदा आने पर अपनी और अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए विकराल रूप धारण कर लेती है और शत्रु को परास्त कर सकने में सक्षम है। दूसरी बात हमें इस उपन्यास में यह देखने को मिलती है कि आदिवासी समुदाय के लोग अपनी जमीन, जंगल और प्रकृति से बहुत प्रेम करते हैं उनके लिए उनकी जमीन, जंगल और प्रकृति से जो भी उन्हें मिला है वह उनके लिए अमूल्य संपदा है। आरंभ में उबड़–खाबड़ पड़ी जमीन को कृषि योग्य बनाने के लिए जी–तोड़ मेहनत आदिवासियों ने ही की। अपनी मर्जी के कायदे कानून बनाकर विदेशी और देसी सत्ता ने उन्हें उसी जमीन से बेदखल कर दिया। अपनी जमीन को बचाने के लिए उन्होंने आंदोलन किए और कुर्बानियां भी दी। आंदोलन और

उनके द्वारा दी गई कुर्बानियों से यह सिद्ध होता है कि जमीन से उनका रिश्ता अटूट है।

संदर्भ सूची :-

1. मनीष कुमार गुप्ता, आदिवासी समाज और हिंदी उपन्यास, अनुसंधान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2017 पृ. 70
2. हरिराम मीणा, धूनी तपे तीर साहित्य उपक्रम, द्वितीय संस्करण 2010
3. वही, पृ. 211
4. वही, पृ. 144
5. वही, पृ. 371

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 42-50
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

क्रांतिकारी गतिविधियां और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

शुभम कुमार
शोधार्थी, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार।

सारांश :-

भारत के इतिहास में 19वीं सदी का उत्तरार्ध एक ऐसा युग कहा जा सकता है जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रकोप अपनी चरम अवस्था में था तथा भारतीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर चुका था। ब्रिटिश सत्ता को भारत से निष्कासित करने का छिट–पुट प्रयास 17वीं शताब्दी से प्रारंभ हो चुका था, जिसका व्यापक रूप 1857 ईस्वी के विद्रोह में देखने को मिला। इस विद्रोह का व्यापक परिणाम तो नहीं हुआ पर इसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की भावना को नई दिशा और ऊर्जा प्रदान की, जिसने कालांतर में देश को आजादी के द्वार तक पहुंचाया। स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किया जाने वाला यह दीर्घकालिक संघर्ष बहुआयामी रहा। इसमें एक तरफ तो गाँधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह से अभिभूत, शांतिपूर्ण एवं अहिंसक संघर्ष चलता रहा तो दूसरी ओर प्रबल राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित उग्रवादी आंदोलन भी गतिशील रहा। इसी उग्रवादी आंदोलन को कालांतर में क्रांतिकारी आंदोलन की संज्ञा दी गयी।

राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास को मुख्यतः दो चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण सन 1885 से 1900 ईस्वी तक और द्वितीय चरण सन 1920 से 1935 ईस्वी तक। इन दोनों चरणों में क्रांतिकारियों ने अलग–अलग उग्र गतिविधियों के माध्यम से देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने का प्रयास किया।

दोनों चरणों के क्रांतिकारी आंदोलन उद्देश्य में समान होते हुए भी उदय होने की परिस्थितियाँ तथा विचारधारा की दृष्टि से भिन्न थे। प्रथम चरण का आंदोलन अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरोध में उभरा था। इस चरण में क्रांतिकारियों के समक्ष क्रांति का कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं था। अतः जनता का अपेक्षित सहयोग प्राप्त न कर सका। अतः 1915 ईस्वी यह आंदोलन समाप्त होने की कगार पर आ गया। ब्रिटिश सरकार के कठोर दमनात्मक नीति के कारण कई क्रांतिकारी मारे गए या फिर जेल में बंद किए गए हैं। पर इन मुट्ठीभर क्रांतिकारियों ने जिस अदम्य साहस का परिचय दिया था वह आगे चलकर भारत में राष्ट्रीयता को मजबूत करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ।

क्रांतिकारी आंदोलन के दूसरे चरण का स्वरूप कुछ भिन्न था। इसका आरंभ गांधी जी के असहयोग आंदोलन को वापस ले लेने के परिणामस्वरूप हुआ। एक समय इस क्रांतिकारी आंदोलन के सभी सदस्य गाँधी जी के समर्थक थे। चंद्रशेखर आजाद भी गाँधी जी से भी प्रभावित होकर आंदोलन में उतरे थे। ये क्रांतिकारी शक्ति और चिंतन दोनों के सम्मिलित रूप से देश की राजनीति में परिवर्तन लाना चाहते थे। इस आंदोलन ने

मजदूरों एवं किसानों को भी अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर बिपिन चंद्र ने अपनी पुस्तक 'नेशनलिज्म एंड कोलिनियालिज्म इन नॉर्दन इंडिया' में क्रांतिकारियों की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– "राष्ट्रवाद के उद्देश्य की वजह से ही क्रांतिकारियों के देश को जागृत करने और अपने देशवासियों का प्यार व आदर प्राप्त कर पाने में सफलता मिली। यह कोई मामूली सफलता नहीं थी, पर इस सफलता का लाभ परंपरागत कांग्रेसी नेताओं ने बटोर लिया, जबकि क्रांतिकारियों ने उन्हें बुर्जुआ और मध्यवर्ग कहकर उनकी निंदा की थी और यह आशा थी कि उनका स्थान कोई नई शक्ति लेगी"। इस दौरान जो क्रांतिकारी हिंसा का उपयोग किया गया उससे लोगों का भावनात्मक समर्थन प्राप्त करने में सहायता मिली। इससे लोगों में विशेष रूप से नवयुवकों में यह आत्मविश्वास पैदा हुआ कि वे असुरक्षित और कमजोर नहीं है। किंतु इनकी गंभीर सीमाएं भी थी। उन्होंने समस्याओं को उच्चतम स्तर पर उठाया किंतु वे अपने आंदोलन को अधिक समय तक जारी नहीं रख सके। इसके पीछे प्रमुख कारण थे :–

(क) आंदोलन की स्वयं अपनी प्रकृति।

(ख) ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीति।

(ग) उन प्रमुख राजनीतिक संगठनों की उदासीनता जिनको आंदोलनकारियों ने चुनौती देने का प्रयास किया था।

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रांतिकारियों की गतिविधियों और उनके महत्त्व को देखते हुए निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि क्रांतिकारी विशुद्ध देशभक्त थे। वे विदेशी शासन को अभिशाप मानते थे और उसे समूल नष्ट करने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर थे। उन्होंने अपने कार्यों और बलिदानों के द्वारा अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। आज भी इन क्रांतिकारियों के कार्यों एवं बलिदानों को याद किया जाता है। अतः आज भी इनकी प्रासंगिकता बनी हुई है और आगे भी निरंतर बनी रहेगी।

मुख्य शब्द :– राष्ट्रीय आंदोलन, क्रांतिकारी, राष्ट्रवाद, उग्रवाद, प्रत्यांकवादी।

परिचय :–

भारत का संपूर्ण इतिहास इस बात की साक्षी है कि यद्यपि विदेशियों ने विभिन्न कारणों से इस देश को पराजित कर इसे पूर्णतया परतन्त्र बना लिया किंतु राष्ट्र का अंतर्निहित स्वाभिमान ये विदेशी शासक कभी भी दबा न सके। इसीलिए जब कभी इन विदेशियों ने सत्ता के मद से चूर होकर इस राष्ट्रीय स्वाभिमान पर प्रहार करने का प्रयास किया तभी इस राष्ट्रीय चेतना ने जाग्रत और साकार होकर प्रहारकर्ता को हुई धूल चटा दी। भारत देश अपने बाह्य रूप में तो परतन्त्र बना लिया गया था किंतु उसकी आत्मा सदैव स्वतंत्र रही। संपूर्ण भारतीय राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास ऐसी गौरवपूर्ण गाथाओं से ओतप्रोत है।

भारत के इतिहास में 19वीं सदी का उत्तरार्ध एक ऐसा युग कहा जा सकता है जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रकोप अपनी चरम अवस्था में था तथा भारतीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर चुका था। ब्रिटिश सत्ता को भारत से निष्कासित करने का छिट–पुट प्रयास 17वीं शताब्दी से ही प्रारंभ हो गया था, जिसका व्यापक रूप 1857 ईस्वी के विद्रोह में देखने को मिला। इस विद्रोह का व्यापक परिणाम तो नहीं हुआ पर इसने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की भावना को नई दिशा और ऊर्जा प्रदान की जिसने कालांतर में देश को आजादी के द्वार तक पहुंचाया।[1] स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किया जाने वाला यह दीर्घकालिक संघर्ष बहुआयामी रहा। इसमें एक तरफ

तो गाँधी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह से अभिभूत, शांतिपूर्ण एवं अहिंसक संघर्ष चलता रहा तो दूसरी ओर प्रबल राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित उग्रवादी आंदोलन को कालांतर में क्रांतिकारी आंदोलन की संज्ञा दी गई।[2] भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उस में जो लोग आये वे एक बिंदु पर टिके नहीं रहे। वह समय के साथ बराबर प्रगति करते रहे विचारों में, तकनीक में। प्रारंभिक क्रांतिकारियों के मन में स्वतंत्रता का केवल एक स्पष्ट नक्शा था कुछ ऐसे भी थे जो गैरिवाल्डी और मेजिनी से अनुप्रेरित होने के कारण लोकतान्त्रिक राजतन्त्र के विचार रखते थे पर जब 1917 ई० की महान सोवियत क्रांति आई तो वह समाजवाद की तरफ झुक गए क्योंकि इस सत्य को सहज ही वे समझ गए कि समाजवाद के बिना स्वतंत्रता बांझ, बेईमानी और व्यर्थ रहेगी। यदि गोरों की जगह काले–भूरे आ गए और यूनियन जैक की तरह तिरंगा फहर गया, अंग्रेजी की जगह देसी भाषाएं आ गई तो फर्क पड़ता है, पर बहुत नहीं। रूस में रूसी शासक थे, सारे राजकार्य रूसी भाषा में होते थे फिर भी उन्हें 1917 ई० के क्रांति की जरूरत पड़ी। यही कारण था कि हमारे क्रांतिकारियों ने समाजवाद के बिना स्वतंत्रता को बांझ, बेमानी और व्यर्थ कहा है।[3] यद्यपि अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ क्रांतिकारी गतिविधियों की छुट–पुट घटनाएं 1857ई० से ही शुरू हो गई थी फिर भी राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास को मुख्यतः दो चरणों में बांटा जा सकता है– प्रथम चरण सन 1895 से 1915 ई० तक तथा द्वितीय चरण 1920 से 1935 ई० तक। इन दोनों चरणों में क्रांतिकारियों ने अलग–अलग उग्र गतिविधियों के माध्यम से देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का प्रयास किया।

दोनों चरणों के क्रांतिकारी आंदोलन उद्देश्य में समान होते हुए भी उदय होने की परिस्थितियों तथा विचारधारा की दृष्टि से भिन्न थे। 19वीं शताब्दी के अंत में भारत में अकाल और प्लेग जैसी आपदाएं फैली और उदारवादी नेताओं से बार–बार आग्रह करने से भी जब ब्रिटिश सरकार ने इन समस्याओं से निपटने हेतु कोई सटीक कार्यवाही नहीं की तो जनता के मन में घोर निराशा हुई। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान यूरोप एवं एशिया में घटित कुछ घटनाओं से अंग्रेजों के अजेय होने का भ्रम टूटा। बेकारी और अंग्रेजों के नस्लवादी भेदभाव की नीति से भारत के शिक्षित नौजवानों में असंतोष बढ़ा, जिससे ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध उग्रवादी आंदोलन का जन्म हुआ।[4] पहले तो कांग्रेस के भीतर ही एक विशेष विचारधारा पनपी थे जिसे उग्रवादी विचारधारा के नाम से जाना जाता है। यह विचारधारा यद्यपि भारतीय राजनीति को कोई डर निर्णायक दिशा नहीं दे पायी परंतु इसने क्रांतिकारी आंदोलन को पनपने में पर्याप्त भूमिका निभाई।[5]

आरंभ में क्रांतिकारियों की रणनीति स्पष्ट नहीं थी। वे इतना मान कर चल रहे थे कि एक क्रूर शासन को हिंसा के माध्यम से ही हटाया जा सकता है। ये क्रांतिकारी नेता राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे किंतु इस संघर्ष में जनता को साथ लेकर चलने और स्वतंत्र भारत में नए समाज के निर्माण के संबंध में इनकी नीतियां सुनियोजित नहीं थी।[6] क्रांतिकारियों में दो विचारधाराएं थीं और उनके क्रियाकलाप के दो केंद्र भी थे। कुछ नेता अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र आंदोलन करने हेतु भारतीय सेना की सहायता लेने के पक्ष में थे। उनका यह मानना था कि जो देश अंग्रेजों के विरुद्ध हैं उन्हें भी मित्र बनाया जाए और उनसे अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता प्राप्त की जाए।[7] क्रांतिकारियों का दूसरा दल देश में हिंसात्मक कार्यक्रम जैसे कि ब्रिटिश अफसरों, पुलिस और क्रांतिकारी नेताओं के विरुद्ध सूचना देने वाले लोगों का कत्ल करने की नीति में विश्वास करता था।[8] यद्यपि भारत के भिन्न भिन्न भागों में क्रांतिकारियों की राजनीतिक विचारधारा में मतभेद देखा जा सकता है, परंतु उन सबका उद्देश्य

मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना था।[9] क्रांतिकारी आंदोलन प्रायः संपूर्ण देश में चल रहे थे। भारत से बाहर अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि में भी इन आंदोलनों का कार्यक्षेत्र था। इन आंदोलनों की प्रमुख गतिविधियों को क्रमशः इस प्रकार देखा जा सकता है।

क्रांतिकारी आंदोलन के प्रथम चरण (1895 ई०–1915 ई०) की गतिविधियां :–

बंगाल में क्रांतिकारी घटनाएं बंग–भंग (बंगाल विभाजन) और उसके विरुद्ध आंदोलन के साथ शुरू हुई। बंगाल की 'अनुशीलन समिति' पहली क्रांतिकारी संस्था थी। यह 1907ई० में बारींद्र कुमार घोष और भूपेंद्र दत्त के नेतृत्व में स्थापित की गई थी।[10] इसके अलावा कई गुप्त समितियां भी थी। 30 अप्रैल 1908 ई० को खुदीराम बोस और प्रफुल्ल कुमार चाकी द्वारा किंग्सफोर्ड को मारने का प्रयास किया गया। प्रफुल्ल चाकी ने कैद में आत्महत्या कर ली। खुदीराम बोस को फांसी दे दी गई। इनके बलिदान ने बंगाल में क्रांति की ज्वाला और भड़का दी।[11] वारींद्र कुमार घोष को एक सरकारी वकील और पुलिस के डिप्टी सुपरिटेंडेंट की गोली मारकर हत्या करने के जुर्म में आजीवन कालापानी की सजा दे दी गई।[12] आतंकवादी गतिविधियों को रोकने हेतु सरकार ने विस्फोटक पदार्थ अधिनियम (1908 ई०) और समाचार–पत्र (अपराध प्रेरक) अधिनियम (1908ई०) पास किए। 1908 ई० में 'केसरी', 'स्वराज्य', 'अरुणोदय' आदि समाचार पत्रों पर मुकदमा चलाया गया। क्रांतिकारी अब गुप्त तरीके से आंदोलन चलाने लगे।

महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन का उदय 1895ई० में रैंड एवं महारात की हत्या से शुरू हुआ।[13] 1906 ई० में विनायक दामोदर सावरकर ने लंदन में 'अभिनव भारत' की स्थापना की, जिसकी कई गुप्त शाखाएँ भारत में भी स्थापित की गई। फ्रांस के श्यामजी कृष्ण वर्मा और श्रीमती काम ने भारत में गुप्त रूप से शस्त्र भिजवाते थे। पी.एन. बापट को रूसी क्रांतिकारियों से बम बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु पेरिस भेजा गया।

दिल्ली, जयपुर, जोधपुर और मद्रास में भी कुछ क्रांतिकारी गतिविधियों की सूचना मिलती है। 23 दिसंबर 1912 ई० को रास बिहारी बोस ने दिल्ली में भारत के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड हार्डिंग को मारने की कोशिश की। वहीं दक्षिण में तेलुगू क्षेत्र के आदिवासी समुदाय के क्रांतिकारी अल्लूरी सीताराम राजू ने 1918 ई० में अपने मित्र को बचाने एवं अपने लोगों को अंग्रेजों की प्रताड़ना से बचाने हेतु अंग्रेजों से सीधा तक कर लिया।

पंजाब में अजीत सिंह, सूफी अंबा प्रसाद और लाला लाजपत राय ने उग्रवादी आंदोलनों की शुरुआत की। 1907 ई० में विपिन चंद्र पाल ने मद्रास का दौरा किया, वहाँ के युवाओं में क्रांति की चेतना को जगाने का प्रयास किया। 1911 ई० में मद्रास में टिनेवली के क्रांतिकारियों ने वहाँ के मजिस्ट्रेट को गोली मार दी, जो प्रत्यक्ष रूप से क्रांतिकारियों की सरकारी दमनचक्र के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी।[14] 1905 ई० में श्याम जी कृष्ण ने इंग्लैंड में होमरूल सोसाइटी की स्थापना की। इसके सदस्य विनायक दामोदर सावरकर ने भारत में शस्त्र भेजें तथा अन्य सदस्य मदनलाल धींगरा ने लंदन में कर्नल विली की गोली मारकर हत्या कर दी। परंतु इनमें सबसे प्रसिद्ध गदर पार्टी थी जिसका संगठन अमेरिका में था, जिसकी स्थापना 1913 ई० में लाला हरदयाल द्वारा की गई थी। पेरिस में मैडम भीकाजी कमा ने भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए प्रचार–प्रसार किए। तमिल युवक चम्पक रमन पिल्लई ने बर्लिन में एक 'भारतीय राष्ट्रीय दल' की स्थापना की और हरदयाल व अन्य बंगाली युवकों को इसका सदस्य बनाया। राजा महेंद्र प्रताप ने 'आजाद हिंद सरकार' की स्थापना अफगानिस्तान में की। अतः क्रांतिकारी आंदोलन के प्रथम चरण (1895 ई०–1920 ई०) में क्रांतिकारियों ने भारत एवं भारत के बाहर से विभिन्न संगठनों

के माध्यम से अंग्रेजों के खिलाफ कार्रवाईयां की। प्रथम चरण का आंदोलन सफल इन मायनों में नहीं हुआ कि भारत स्वतंत्र नहीं हो सका पर इस प्रयास के दौरान जो तजुर्बे प्राप्त हुए और लोगों के मन पर जिस प्रकार का प्रभाव पड़ा, वह बहुत बड़ी उपलब्धि रही।[15]

क्रांतिकारी आंदोलन के द्वितीय चरण (1920 ई०–1935 ई०) की गतिविधियाँ :-

प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने देश के अंदर तथा विदेशों में चालू महायुद्धकालीन क्रांतिकारी आंदोलनों को बहुत ही खतरनाक माना तदनुसार जस्टिस रौलेट की अध्यक्षता में सिडीशन कमेटी बिठायी गई जिसकी रिपोर्ट के आधार पर ही रौलेट एक्ट (अराजक और क्रांतिकारी अपराध अधिनियम) 1919 ई० पारित हुआ। इसी के खिलाफ प्रदर्शन के दौरान अमृतसर में जलियांवाला बाग हत्याकांड हुआ। इसी समय गाँधी जी का भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर पर्दापण होता है। उन्होंने इस एक्ट के खिलाफ असहयोग आन्दोलन कर स्पष्ट कर दिया कि क्रांतिकारी आंदोलनों को बताए उपायों से उनका स्पष्ट प्रत्यक्ष संबंध था। क्रांतिकारियों ने उनके लिए रंगमंच खाली कर दिया यही कारण है कि जब तक असहयोग आंदोलन चलता रहा और चौरी–चौरा में 19 पुलिसवालों को जिंदा जला दिए जाने के कारण बंद नहीं किया गया तब तक भूतपूर्व तथा भविष्य के क्रांतिकारी जैसे शचींद्र नाथ सान्याल, चंद्रशेखर आजाद, रोशन सिंह आदि इस आंदोलन में भाग लेते रहे पर असहयोग आन्दोलन के एकाएक वापस लिए जाने से उत्साही युवकों की उम्मीदों पर पानी फिर गया। अहिंसक आंदोलन से उनका विश्वास उठने लगा। इनमें अधिकांश ने मान लिया था कि सिर्फ हिंसात्मक तरीके से आजादी हासिल की जा सकती है।[16] धीरे–धीरे क्रांतिकारी आंदोलन की दो धाराएं विकसित हुईं।

एक पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार में तथा दूसरी बंगाल में, यह दोनों धाराएं सामाजिक बदलाव से उपजी नई सामाजिक शक्तियां से प्रभावित हुईं। इनमें एक थी प्रथम विश्व युद्ध के बाद उपजा मजदूर संगठन।[17] क्रांतिकारियों को इस वर्ग की क्रांतिकारी क्षमता का अंदाजा था। वे इसका इस्तेमाल राष्ट्रीय क्रांति के लिए करना चाहते थे। दूसरी बड़ी प्रभावकारी घटना थे रूसी क्रांति। भारत के युवा क्रांतिकारियों के लिए यह घटना प्रेरणादायक थी और वे नए समाजवादी रूस तथा उनके सत्तारूढ़ दल बोल्शेविक पार्टी से मदद लेने को इच्छुक थे। तीसरी प्रभावकारी घटना थी नए साम्यवादी समूह का उभरना, जो मार्क्सवाद, समाजवाद और सर्वहारा के सिद्धांत का प्रचार कर रहे थे।[18]

क्रांतिकारी आंदोलन के कुछ क्रांतिकारियों का परिचय :-

राम प्रसाद बिस्मिल :-

अशफाक उल्ला खान और पंडित रामप्रसाद बिस्मिल की मित्रता और बलिदान भावना शायद ऐसी पहली घटना थी जिसने भारत माता के दो पुत्रों हिंदू और मुसलमानों को एक साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित किया। काकोरी कांड के सिलसिले में 19 दिसंबर 1927 ई० के दिन दोनों ने खुशी–खुशी फांसी के फंदे को वरण किया। वो जाते–जाते कह गए :–

"भारत न अब रहेगा, हरगिज गुलामखाना,
आजाद होगा, होगा, आया है वह जमाना।
अब जेल की यहाँ पर परवाह ही किसे है?
खेल हो रहा है फांसी पर झूल जाना"।

अशफाक उल्ला खां :–

अशफाक को जब–जब फांसी से छुड़ा लेने या जेल से भगा देने की बात कही गई, तब–तब उन्होंने यही कहा कि भाई एक मुसलमान को भी तो शहीद होने दो, हिंदुओं में तो बहुत से हैं। उन्होंने अपनी बलिदानी से सिद्ध कर दिया कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही भारत माता के पुत्र हैं और दोनों पर भारत माता की परतंत्रता की बेरियों को काटने का दायित्व समान रूप से है। वो अक्सर कहा करते थे :–

"कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह,
रख दे कोई जरा सी खाके वतन कफन में"।

भगत सिंह :–

27 मार्च 1931 ई० को लाहौर जेल में क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह की हत्या। हाँ फांसी नहीं, हत्या ही। क्योंकि फांसी तो दूसरे दिन होने वाली थी और वह दी भी जाती है प्रातःकाल। फिर निश्चित समय से पूर्व ही फांसी क्यों स्पष्ट था कि ब्रिटिश सरकार को कोई भय अथवा आशंका थी, जिसके कारण उसे सरदार भगत सिंह को वैधानिक फांसी देने के बजाय उनकी अवैधानिक हत्या करनी पड़ी। शायद देश की आजादी के लिए उनके बलिदान की जरूरत थी और विधाता को यही मंजूर था। आज उनके बलिदान से ही लोगों को त्याग और बलिदान की प्रेरणा मिलती है। सरदार भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी नेताओं के सामने अपना कार्यक्रम और तथ्य बिल्कुल स्पष्ट था। ना कहीं कोई भ्रम और ना कोई अस्पष्टता। इसलिए एक बार जब उनके साथी ने पूछा, "सरदार हम लोग आजादी की लड़ाई अपनी जान पर खेलकर लड़ रहे हैं। हम जानते हैं कि हम में से अधिकांश आजादी आने से पहले ही किसी न किसी रूप में मरेंगे और आजादी की झलक भी ना देख सकेंगे, तो फिर ऐसी कौन सी भावना मरते समय हमें संतोष प्रदान करेगी"? भगत सिंह ने बोला "बंधुवर यदि हम सहस्त्रों लोग अपने प्राण देकर सिर्फ देश में 'इंकलाब जिंदाबाद' की हवा बहा सके, तो वही हमारे जीवन, प्रयासों और प्राणों की सबसे बड़ी कीमत होगी, हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है इससे अधिक और कुछ नहीं"। इन थोड़े से शब्दों में उस बलिदानी ह्रदय में कितना गहन जीवन दर्शन छुपा हुआ था, जो देश के लिए मरने के अनुपम शक्ति प्रदान कर रहा था।

चंद्रशेखर आजाद :–

आजाद को यह चिंता नहीं थी कि इतिहास में उनका नाम आए या उन्हें कोई बड़ी ख्याति मिले। वह सच्चे अर्थों में निष्काम कर्मयोगी के अनुयायी थे। एक बार उनके दोस्त भगत सिंह ने उनसे पूछा, "पंडित जी इतना तो बता दीजिये की आपका घर कहाँ है और वहाँ कौन– कौन है? ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर हम उनकी सहायता कर सके तथा देशवासियों को एक शहीद का ठीक से परिचय मिल सके। इस पर आजाद बहुत बिगड़ पड़े। उन्होंने साफ कह दिया था "इतिहास में मुझे अपना नाम नहीं लिखवाना है और न परिवार वालों को किसी की सहायता चाहिए"। आजाद का उद्देश्य केवल ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष करने तक ही सीमित न था, बल्कि उनके सामने एक ऐसे समाज का चित्र स्पष्ट था जो वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बनाना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी पार्टी के नाम में 'समाजवाद' शब्द जोड़ा था। उनके उदघोषित तथ्यों मैं स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख है कि उनकी पार्टी मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के विरुद्ध है।

सुभाष चन्द्र बोस :-

नेताजी में वीरता और साहस की मात्रा कल्पनातीत थी। भारत में अंग्रेजी सरकार की सख्त निगरानी के बाद भी उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त और अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी पहुँच गए तथा हिटलर से मिलकर अंग्रेजी सरकार को उलटने की योजना बनाने में सफल हुए। उससे भी बड़ी बात वह जर्मनी से एक पनडुब्बी में बैठकर दक्षिण–पूर्व एशिया में पहुँच गए। नेताजी के कर्मशीलता के दो फल सबसे मीठे थे। एक तो आजाद हिंद सरकार की स्थापना और दूसरी आजाद हिंद फौज का निर्माण। यद्यपि सरकार बनाने का उद्योग कोई नया न था। 1915 ई० में राजा महेंद्र प्रताप अफगानिस्तान में ऐसी सरकार स्थापित कर चुके थे जो कुछ समय तक चली भी थी, लेकिन जो सफलता नेताजी अर्जित कर सकें, वह इसके पूर्व संभव ना हुई। नेताजी ने जिस अस्थायी सरकार की स्थापना की उसका मुख्य कार्यालय सिंगापुर में था जिसकी अपनी फौज, अपना सिक्का, अपना रेडियो स्टेशन आदि सभी कुछ था। नेताजी की यह सफलता भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास की अभूतपूर्व उपलब्धि थी।

उपर्युक्त वर्णित क्रांतिकारियों के अतिरिक्त सैंकड़ों क्रांतिकारियों ने क्रांतिकारी आंदोलन को ऊर्जा प्रदान की और देश के ऊपर अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया। इन क्रांतिकारियों में कई महिलाएं भी थीं, जैसे दुर्गा भाभी, कुमारी प्रीति, लता वादेदार, रानीगिडालु, नलिनी, शान्ति घोष आदि। इनमें से अधिकांश को कारावास की सजा दी गई थी।

क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियों को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने हेतु विभिन्न क्रांतिकारी संगठनों की स्थापना की, जिनमें प्रमुख थे–अनुशीलन समिति, युगांतर, यंग मेन्स एसोसिएशन, हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन, नौजवान भारत सभा, हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन आदि।

क्रांतिकारियों की विचारधारा :-

आरंभ में क्रांतिकारी आंदोलन शुद्ध रूप से पिस्तौल और बम के राजनीति करने में विश्वास रखता था।[19] परन्तु जैसे–जैसे आंदोलन का क्षेत्र बढ़ता गया क्रांतिकारियों के विचारों में परिवर्तन आता गया। क्रांतिकारी युवा व्यक्तिगत हिंसा की राजनीति छोड़कर धीरे–धीरे संगठित क्रांतिकारी कार्यवाहियों में विश्वास करने लगे थे। दूसरे चरण के क्रांतिकारियों में भगत सिंह और उनके साथी लोग प्रबुद्ध विचारक थे। 1925 ईस्वी में हिंदुस्तान रिपब्लिकन आर्मी के घोषणा–पत्र में कहा गया था कि संगठन का उद्देश्य उन तमाम व्यवस्थाओं का उन्मूलन करना है, जिसके तहत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है। भगत सिंह ने समाजवाद को वैधानिक ढंग से परिभाषित किया जिसका अर्थ था पूँजीवाद और वर्ग–प्रभुत्व का पूरी तरह खात्मा।

क्रांतिकारी हिंसावादी थे या नहीं?

भारत के क्रांतिकारियों ने कभी अपने आप को हिंसावादी घोषित नहीं किया। गाँधी जी की तरफ से क्रांतिकारियों को कभी–कभी हिंसावादी कहा गया और ब्रिटिश सरकार की तरफ से वे आतंकवादी घोषित किए गए। क्रांतिकारियों ने जब भी इन शब्दावलियों में अपने को व्यक्त किया तो अपने को 'काउंटर टेररिस्ट' या 'प्रत्यांकवादी' कहा, इसका मतलब यह था कि आतंकवादी तो ब्रिटिश सरकार है, वे तो महज अपनी तुच्छ सामर्थ्य के अनुसार उसका यदा–कदा कुछ जवाब देते हैं ताकि जनता को यह ज्ञात हो जाए कि अभी राष्ट्र की आत्मा जीवित है, वह मरी नहीं है, उनमें धड़कन जारी है, वह संग्राम करने को तैयार है और वह वास्तविक

रूप से संग्राम कर रही है। आतंक के तो सारे साधन ब्रिटिश सरकार के हाथों में थे, जेल थी, अदालतें थीं, पुलिस थी, फौज थी, सर्वोपरि मिथ्या प्रचार था। अतः क्रांतिकारियों को हिंसावादी, आतंकवादी की संज्ञा देना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। कैसी विचित्र बात है कि जिन महामानवों ने अपना जीवन सर्वस्व राष्ट्र को अर्पित कर अपने प्राण त्याग दिए, वे ही क्रांतिकारी आज देश के आजाद होने पर कुछ पूर्वाग्रही व्यक्तियों द्वारा लुटेरों और हिंसक। के रूप में जाने जाते हैं। दुर्भाग्य से आजादी के बाद हमने इन शहीदों और बलिदानियों को बिल्कुल भुला दिया और उसके साथ ही भुला दिया उनके कठिनतम विपत्तियों से जूझने वाले कार्यों और देश की आजादी के लिए प्राणों को उत्सर्ग करने वाले जीवन–दर्शन को। शायद हमने कभी भी यह नहीं सोचा था कि आजादी मिलने के बाद उसकी रक्षा के लिए त्याग, संघर्ष और बलिदान की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए देशवासियों के समक्ष उस प्रकार के आदर्श सदैव रहने चाहिए।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का पूरक आंदोलन था। समय–समय पर क्रांतिकारियों ने अपने गतिविधियों से राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने में एक उत्प्रेरक का काम किया। क्रांतिकारियों के प्राणोत्सर्ग की दृढ़ भावना ने भारतीय जनमानस को झकझोर दिया और उनमें देशभक्ति, साहस और बलिदान की वह भावना जगाई जिसके बल पर आगे चलकर देश स्वतंत्रता प्राप्त कर सका। हमारा यह दायित्व बनता है कि हम उन महान क्रांतिकारियों के महानतम कार्यों को सदैव अपनी स्मृतियों में बनाए रखें ,अपने जीवन के हरेक पहलू में उतारें और आने वाली पीढ़ी को उनके इन कार्यों से अवगत कराते रहे ताकि एक बेहतर भविष्य का निर्माण किया जा सके।

''शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही अंतिम निशां होगा''।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दत्त, रजनीपाम, "आज का भारत", दिल्ली, 1940, पृष्ठ–281
2. अग्रवाल, आर. सी., "भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन" आगरा, 2001, पृष्ठ 210–211
3. गुप्त, मन्मथनाथ, "क्रांतिकारी आंदोलन का वैचारिक इतिहास" निधि प्रकाशन, दिल्ली, 1980
4. ग्रोवर, बी.एल. यशपाल, "आधुनिक भारत का इतिहास", दिल्ली, 2001, पृष्ठ–198–199
5. चन्द्र, बिपिन, "आधुनिक भारत का इतिहास", दिल्ली, 1990, पृष्ठ–219
6. चटर्जी, जे.सी., "इंडियन रिवोल्यूशनरीज इन कॉफ्रेंस, नई दिल्ली, पृष्ठ–16–19
7. यशपाल, "सशस्त्र क्रांति की कहानी : सिंहावलोकन", लखनऊ, पृष्ठ 20
8. पटोरिया, राजेन्द्र, "50 क्रांतिकारी", आगरा, पृष्ठ– 57–58
9. खुराना, के.एल. "भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन", आगरा, 2006, पृष्ठ–51
10. कीर, धनन्जय, "सावरकर एण्ड हिज टाईम" बाम्बे, 1950, पृष्ठ–63
11. सरकार, सुमित, "आधुनिक भारत का इतिहास", नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ–78
12. विशज, "भारत के महान क्रांतिकारी", नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ–31

13. सिंह, अयोध्या, "भारत का मुक्ति संग्राम", दिल्ली, 1977, पृष्ठ–223
14. इन्द्र, विद्या वाचस्पति, "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास", दिल्ली, 2008, पृष्ठ–29
15. आविद, रिजवी, "देश के अमर सेनानी", मथुरा, 2009, पृष्ठ–113
16. सरकार, सुमित, "आजुनिक भारत का इतिहास", नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ–213
17. वही– पृष्ठ–213
18. नारायण, रूप, "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सुनहरे प्रसंग", दिल्ली, 2000, पृष्ठ–214
19.. पटोरिया, राजेंद्र, "50 क्रांतिकारी", दिल्ली, 2007, पृष्ठ–167

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 51-57

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था की भूमिका

डॉ. राकेश बघेल
सहायक प्राध्यापक वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर आदर्श महाविघालय, झाबुआ (म.प्र.)

प्रस्तावना :–

मध्य प्रदेश मे नवीन पंचायती राज्य का क्रियान्वयन लोकतंत्र की अन्तराष्ट्रीय विरासत है। अधिकारों के विकेन्द्रीकरण की दिशा में नौकरशाही पर लोकतंत्र की सम्प्रभुता स्थापित करने का प्रयास पंचायती राज में किया जाता हैं। सरकार कों स्वंय का संरक्षण करने के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा है कि पंचायती राज व्यवस्था में ''मेजर सर्जरी'' करना जरूरी हैं और इसके लिए सत्ता का सम्पूर्ण विकेन्द्रीकरण पारदर्शिता के साथ ईमानदारी से किया जाए, तो निश्चित ही गाँधी जी की परिकल्पना का ग्राम स्वराज का सपना साकार होने में ज्यादा समय नही लगेगा। यहां सारी सत्ता का हस्तान्तरण समुदाय को ही हो। इससे ग्रामीण परिवेश में बदलाव हेतु 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से इसे देश में लागू किया गया है।

मध्यप्रदेश पुरे देश में पहला राज्य है जहाँ 73वें संविधान का पालन करते हुए एक नया पंचायती राज अधिनियम प्रभावशील किया गया और त्रिस्तरीय (गांव, ब्लाक, जिला) पंचायती राज की स्थापना कर दी गई है। 1 नवम्बर 1956 को स्थापित मध्य प्रदेश राज्य सें छत्तीसगढ़ 1 नवम्बर 2000 को अलग हुआ और एक नए मध्यप्रदेश की स्थापना हुई। मध्यप्रदेश राज्य में सर्वप्रथम 1962 मे मध्य प्रदेश पंचायत अधिनियम बनाकर पंचायतों में एकरूपता लाई गई।

मध्यप्रदेश में पंचायती राज्य विधायक 30 दिसम्बर 1993 को विधानसभा द्वारा पारित किया गया। 24 जनवरी 1994 को राज्यपाल की स्वीकृति के बाद त्रिस्तरीय पंचायती राज्य का गठन किया गया। यह अधिनियम 25 जनवरी 1994 को सम्पूर्ण म.प्र. मे लागू हुआ है।

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था का परिचय :–

ग्राम पंचायते पंचायती राज की आधारशीला है जिस क्षेत्र के लिए ग्राम सभा सामान्य संगठन के रूप में कार्य करती है। उसी क्षेत्र के लिए ग्राम पंचायत एक व्यवस्थापिका संस्था है। पंचायते लोगो की निकटतम प्रतिनिधि संस्था है जो प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित ईकाई है। यही वह आधारशीला है जिस पर पंचायती राज संस्थाओ के अन्य स्तरो का ढाँचा आधारित होता है। यह लोगो के प्रति सीधे उत्तरदायित्व की भावना में भी वृद्धि करती है।

पंचायती राज का अर्थ है – जनता द्वारा चुने गये व्यक्ति एक समिति या पंचायत के माध्यम से ग्रामीण

क्षैत्रो मे स्वयं स्थानीय स्वशासन का संचालन करे। पंचायती राज संस्थाए कई प्रकार के कार्यक्रमो के लिए उत्तरदायी है। जैसे– कृषि का विकास, ग्राम उद्योगो की स्थापना, चिकित्सा, सफाई, सड़को, कुओ एवं तालाबो आदि का रख–रखाव, पेयजल की व्यवस्था एवं बाल कल्याण के कार्यक्रम आदि। पंचायती राज संस्थाए इन कार्यक्रम को लागू करने के लिए प्रशासंनिक तंत्र की सेवाएं लेती है। वास्तविकता तो यह है कि भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया में ग्रामीण अंचल के नागरिको को स्थानीय मामलो में प्रशासन संचालन का जो अधिकार दिया गया है वह ग्राम सभा एवं पंचायती राज संस्थाओ में जनता की सक्रिय भागीदारी से ही कार्यांवित किया जा सकता है।

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास :–

भारतीय लोकतांत्रिक ईतिहास के संदर्भ में देखे तो हजारो साल पहले भगवान बुद्ध से प्रभावित होकर तत्कालीन लिच्छावि राजवंश ने शासन की एक नई प्रणाली शुरू की थी तब इसे गणराज्य कहा गया था। इतिहास यह बताता है कि "लिच्छावि गणराज्य संसार में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का पहला उदाहरण है"। दुनिया की इस लोंकतात्रिक शासन प्रणाली के दो आधार स्तंभ थे एक शासन व एक मजबूत केन्द्र में समाज के हर वर्ग को शासन चलाने की जिम्मेदारी देना। इसी प्रकार भी ग्राम संस्थाओं का उल्लेख रामायण तथा महाभारत जैसे काव्य ग्रंथों मे मिलता है। स्मृति ग्रंथो में भी स्थानीय संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति के अनुसार "ग्रामिक" ग्रामीण शासन के लिए उत्तरदायी होता है। इसका मुख्य कार्य ग्रामवासियों को एकत्रित करना था प्रसिद्व इतिहासकार मेगस्थनीज ने भी अपनी रचना ''इंडिका'' में उनका उल्लेख किया है। यह सच हैं कि प्राचीन ऐतिहासिक व्यवस्था से आज का पंचायती राज्य का कातिपय संदर्भ में अलग है। हालांकि कातिपय लोगो में पंचायती राज के जन्म और अवधारणा के विषय में मत–भेद भी रहा है। लेकिन इस के बावजुद अनेक विचारकों ने ग्रामीण विकास के लिए इन संस्थाओं के महत्व और उपयोगिता को मान्य किया है। रूस के ''मिर'' जर्मन के ''मार्क'' इग्लैंड के ''मेनोर'' को ही तरह भारत का पंचायती राज था।

इसी प्रकार कौटिल्य का अर्थशास्त्र मौर्य काल में प्रचलित ग्रामीण प्रशासन की व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रदान करता है। कौटिल्य के अनुसार प्रत्येक ग्राम का शासन पृथक–पृथक होता था। ग्राम के शासन प्रमुख को ''ग्रामीक'' कहते थे कौटिल्य का मत था कि दस ग्रामों के मध्य ''संग्रहण'' 200 ग्रामों के मध्य ''स्थानीय'' नामक संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए।

"पंचायत" शब्द संस्कृत भाषा के पंचायतन शब्द उद्धत से हुआ है, संस्कृत भाषा के ग्रंथो के अनुसार किसी आध्यात्मिक पुरुष सहित पांच पुरुषो के समूह अथवा वर्ग को पंचायतन के नाम से सम्बोधित किया जाता था। कालान्तर में इस आध्यात्मिक अवधारणा से परिवर्तन होता गया, वर्तमान में पंचायत की अवधारणा का अभिप्रायः इस प्रकार की निर्वाचित सभा से है। जिसकी सदस्य संख्या प्रधान सहित पाँच होती है। पंचायती राज हमारी अपनी प्राचीन संस्था या व्यवस्था है जो गांव में सुख, शान्ति व तरक्की के लिए लिए जिम्मेदार होती थी। पंच परमेश्वर को प्राचीन काल से ही भारत मे मान्यता मिली हुई है। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की प्राचीनकाल से चली आ रही प्रक्रिया का मुर्त रुप पंचायती राज है। अंग्रेजो ने भारतीय ग्रामीण व्यवस्था को ग्रामीण गणराज्य कहाँ था। सत्ता के स्थानीय स्वशासन में विकेन्द्रीकरण से स्थानीय सरकार के गलत निर्णय केवल स्थानीयता को

प्रभावित करते है। संम्पूर्ण राष्ट्र को नही पंचायती राज का चिंतन स्थानीयता का अहसास है।

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था की भूमिका :-

11वी अनुसूची में जिला पंचायतो, पंचायत समितियों और ग्राम पंचायतों के बीच कोई कार्य विभाजन के दिशा निर्देश नही दिए गए है। पंचायती राज संस्था की भूमिका निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट हैं :–

(1) **ग्राम सभाओ को शक्ति प्रदान करना :–** ग्राम सभाओ के माध्यम से गांव की जनता को अधिक से अधिक शक्ति प्रदान कर उन्हें गांव के विकास, स्वच्छता और व्यापार की प्रगति को बढाने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारिया सौंपना ताकि गांव की जनता स्वयं अपने गांव के प्रशासन को चला कर, विकास करें।

(2) **सभी स्तरों पर सम्पूर्ण क्षमता का विकास करना :–** पंचायत राज संस्थाओ के द्वारा सभी स्तरो पर गांव की जनता को संचालित कर गांव वालो को उनको संपूर्ण क्षमता के साथ विकास के अवसर उपलब्ध कराना ताकि वे गांव के विकास का मार्ग प्रशस्त करे ।

(3) **महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करना :–** गांव में महिलाओ के विकास विकास के लिए गांव की पंचायत में महिलाओ की महत्वपूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित करना ताकि गांव का विकास महिला सशक्तिकरण के साथ किया जा सके।

(4) **समस्या निदान के लिए कदम उठाना :–** गांव में अनुसूचित जनजातियों एवं अनुसूचित जातियों की सभी आवश्यक समस्याओ के निदान के लिए उचित कदम उठाना।

(5) **ई–गवर्नेस तकनीक पंचायतो में उपलब्ध कराना :–** सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा ई–गवर्नेस तकनीक पंचायती राज संस्थाओ को उपलब्ध कराके पंचायती राज संस्थाओ सभी आवश्यक समस्याओ का निदान करना।

(6) **विकास का लेखा जोखा सरकार को दे :–** पंचायती राज संस्थाओ में हर स्तर पर गांवो के विकास का लेखा जोखा सरकार को दे जिससे संस्थाओ में व्याप्त कमियों को दुर किया जा सके।

(7) **प्राथमिकता के आधार पर आर्थिक मामले निपटाना :–** प्रत्येक पंचायती राज संस्थाओ की समस्याओ को आर्थिक लेन देन के माध्यम से प्राथमिकता के आधार पर निपटाना।

(8) **व्यापार बढ़ाने की प्रेरणा :–** पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से गांव में व्याप्त व्यापार के अवसर की संभावना को खोजना और ग्रामीण व्यापारीक गतिविधियो को बढ़ाने के लिए सशक्त कदम उठाना और गांव के लोगों को प्रेरित करना।

(9) **जन चेतना का विस्तार :–** मध्य प्रदेश में पंचायती राज की ग्रामीण विकास के लिए जन जाग्रती उत्पन्न करने मे महती भूमिका है। ग्रामीण संस्थाओं का पंचायती राज केन्द्र बिन्दु बन चुका है।

(10) **जनजागरूकता का उद्घोष :–** मध्य प्रदेश में पंचायती राज से ग्रामीण समाज में नव चेतना का संचार हुआ है। ग्रामीण जनजीवन में छुपी ऊर्जा को पंचायतो ने उजागर किया है महिलाओं, दलितों एवं कमजोर तबके के लोगो में जागरूकता बढ़ी है। जनप्रतिनिधियों के साथ–साथ ग्रामीण जन. साधारण भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए है।

(11) **सामुदायिक सहभागिता का विकास :–** मध्य प्रदेश में पंचायत राज के कारण ग्रामीण समाज की

प्राथमिकताए तय होना है। पंचायतो का निवार्चन केवल सत्ता प्राप्ति के लिए निर्वाचन न होकर ग्रामीण में विकास के लिए सहयोग की भावना जाग्रत करने मे सफल हो रही है। इससे स्वराज्य को यथार्थता का ठोस धरातल प्राप्त हो रहा है।

(12) **जनकल्याण के कार्यों में गति :–** मध्य प्रदेश में पंचायती राज के माध्यम से जनकल्याण के कार्यो में उपलब्ध संसाधनों के साथ सामंजस्य व समन्वय होने से गतिशीलता आई है। ग्रामीण क्षेत्र के विकासात्मक कार्य करने का पंचायते माध्यम बन गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में शोषण का अंत हो रहा है। स्थानीय आवश्यकताओं के साथ समस्याओं का उचित समाधान भी सम्भंव हो रहा है। ग्राम स्वराज्य ने आत्मनिर्भरता का अहसास गांव में जगाया है।

(13) **सम्पर्क राजनीति की शुरूआत :–** मध्य प्रदेश में पंचायतीराज से ग्राम स्वराज्य व जिला सरकार में उभरता नया राजनैतिक नेतृत्व पंचायती राज की सफलता की कसौटी है। स्थानीय नेतृत्व पंचायती राज का महत्वपूर्ण आधार है। ग्राम पंचायतो के प्रति विगत दशक में आई राजनीतिक क्रान्ति ने सम्पर्क राजनीति के बढ़ाया है।

(14) **सामाजिक-आर्थिक राजनीतिक चेतना का विकास :–** मध्य प्रदेश में गांवों का आर्थिक सामाजिक राजनीतिक विकास एक अनिवार्य आवश्यकता है। ग्रामीण समुदाय में महत्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक राजनीतिक प्रजातांत्रिक परिवर्तन हो रहे है। ग्रामीण समाज का सामाजिक स्तर पर भेदभाव का नजरिया बदल रहा है। आरक्षण के कारण महिलाओं, दलितों व अन्य पिछड़े वर्ग में सम्मान की भावना जाग्रत हुई है। महिला उद्धार, महिला आरक्षण के कारण सम्भव हुआ है। महिलाएं प्रशासन मे महत्वपूर्ण भागीदार बनकर उभरी है।

(15) **अधिकारों के प्रति जागरूकता :–** मध्य प्रदेश में पंचायती राज ने ग्रामीण समाज के कर्णधारों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का शंखनाद किया है। जनसाधारण के साथ चुने हुए प्रतिनिधियों मे अपने अधिकारों के साथ उत्तरदायित्व की भावना का उद्‌य हुआ है। महिला अपने अधिकारों के प्रति आरक्षण के कारण सजग हुई है। दलित व अन्य पिछड़े तबके के लोगो में सम्मान के साथ सिर उठा करके जीने की भावना का विकास हुआ है। महिला सशक्तिकरण की दिशा में पंचायती राज एक महत्वपूर्ण कदम है।

मध्यप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था में समस्याएँ –

प्रस्तुत शोध अध्ययन में ग्राम पंचायतों की ग्राम विकास के सन्दर्भ में कई समस्याएँ है। उन समस्याओं के बारे में पूछा गया– साक्षात्कार अनुसूची के अनुसार हितग्राहियों की समस्याएँ निम्नलिखित है।

(1) मध्य प्रदेश में अधिकांश हितग्राहियों ने बताया कि उन्हें योजनाओं के लाभ प्राप्त करने के सन्दर्भ में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। क्योंकि हितग्राहियों को जाति प्रमाण–पत्र, मूल निवासी प्रमाण–पत्र एवं अन्य प्रपत्रों को तैयार करवाने में कई प्रकार की औपचारिकाताओं को पूर्ण कराना होता है। जिसकी जानकारी हितग्राही को नही होती है। इस कारण अधिकारी हितग्राही मध्यस्थ की सहायता लेते है, साथ ही प्रमाण–पत्र प्राप्त करने के लिए कलेक्टर कार्यालय भी बार–बार जाना पड़ता है।

(2) मध्य प्रदेश में हितग्राहीयो का मानना है कि योजनाओं से लाभ प्राप्त करने की कार्य प्रणाली काफी

कष्टप्रद एवं थकाने वाली है। जिसमें समय भी काफी लग जाता है। कभी–कभी हितग्राहियों को लाभ प्राप्त करने में काफी समय लग है।

(3) मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों की योजनाओं से पलायन रुका है पर फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी व्याप्त है। बेरोजगारी की समस्या के कारण हितग्राहियों में अभी भी काम की तलाश जारी है।

(4) मध्य प्रदेश मे ग्राम पंचायतों की योजनाओं से लाभ प्राप्त करने के लिए कई बार निजी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(5) मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों की योजनाओं का विज्ञापन ग्रामीण क्षेत्रों में न होने के कारण योजनाओं की जानकारी का अभाव होता है।

(6) मध्य प्रदेश में महिला हितग्राहियों के अनुसार अशिक्षा की कमी के कारण उन्हें योजनाओं से लाभ प्राप्त करने की औपचारिकता का ज्ञान नहीं हो पाता है। ग्राम एवं जिला पंचायतों की योजनाओं से शिक्षा का स्तर बढ़ा है। फिर भी हितग्राहियों के अनुसार ग्रामीण स्तर अशिक्षा विद्यमान है। जो सभी प्रकार के कार्यों में बड़ी बाधा है।

(7) मध्य प्रदेश में हितग्राहियों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल या आँगनवाड़ी तो पर्याप्त है पर वहां शिक्षकों एवं कार्यकर्ता की कमी के कारण अशिक्षा विद्यमान है।

(8) मध्य प्रदेश में हितग्राहियों के अनुसार संचार एवं भौतिक सुविधाओ का भी अभाव है। जिससे समय पर सूचना नही मिल पाती हैं।

(9) मध्य प्रदेश में हितग्राहियों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन की मजदूरी आज भी शहर की तुलना में बहुत कम है। जो जीवन स्तर के विकास में बड़ी बाधा हैं।

(10) मध्य प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक रीति–रिवाज भी कभी–कभी योजनाओं से लाभ प्राप्त में बाधाएँ है।

(11) मध्य प्रदेश में अशिक्षा तथा गरीबी के कारण भी हितग्राही योजनाओं के लाभ से वंचित है।

(12) मध्य प्रदेश में संचार माध्यम से जन–जाग्रति बढ़ी है। फिर भी ग्रामीण क्षैत्रों में पूर्ण जागरुकता की कमी है।

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था में सुधार व परिवर्तन :-

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था मे विगत एक दशक मे आमूल चूल परिवर्तन आ चुके है। यथा स्थिति कुछ सुधार ऐसे है। जिनकी मांग निरन्तर होती आ रही है। तथा बिना नए संविधान संशोधन के यह सुधार संभव नहीं है।

(1) जिस प्रकार केन्द्र एवं राज्य सरकार शासन के तीन अंगो विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में विभक्त है उसी प्रकार ग्राम पंचायतों को भी तीन अंगो में स्पष्टतः विभाजित किया जाए। ग्राम विधायिका में सरपंच, पंचो के साथ–साथ चुनाव मे दुसरे नम्बर पर रहे सभी प्रत्याक्षी, पुर्व जनप्रतिनिधि, जातियो के मुखिया सेवानिवृत्त कार्मिक सम्मिलित किये जाए। यह ग्राम विधायिका ग्राम पंचायत के समस्त कानून बनाए।

(2) ग्राम विधयिका द्वारा बनाए गए कानूनों का क्रियान्वयन ग्राम कार्यपालिका अर्थात ग्राम पंचायत करें। सरपंच इसके प्रमुख कार्यपालन तथा पंचो की भूमिका मंत्रियों जैसी हो। पंचो को विभागवार पद दिये जाए तथा उनकी सहायतार्थ ग्राम विधायिका से कुछ सदस्य लेकर समितियां गठित कर दी जाए। ग्राम पंचायत का अपना "ग्राम सचिवालय" होना चाहिए।

(3) ग्राम विधायिका के कानूनों की व्याख्या तथा छोटे–मोटे झगड़ों का निस्तारण ग्राम न्यायालय करें। आज भी गांवों में जातिगत पंचायते तथा चुनी हुई ग्राम पंचायते दीवानी एवं फौजदारी मामलों में निर्णय करते सामानान्तर न्याय प्रणाली चलती ही है।

(4) पंचायत राज्य संस्थाओं विशेष रूप से ग्राम पंचायतो के सरपंच एवं पंचो हेतु चुनाव जीतते ही 6 माह के अन्दर प्रशिक्षण लेना अनिवार्य कर देना हितकर होगा। इस प्रशिक्षण का 75 प्रतिशत व्यय सरकार वहन करें।

(5) ग्राम पंचायतो को बहुत सारे विभाग तथा कार्मिक हस्तान्तरित कर दिये गये है।

(6) रोजगार के अवसरों में वृद्धि की जाए जिससे कि मध्य प्रदेश से हो रहा पलायान को रोका जा सके।

(7) मध्य प्रदेश में शिक्षा पर भी जोर दिया जाए और महिला शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए ताकि पंचायती राज विकास में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।

(8) सरकार द्वारा प्रत्येक प्रकार की योजनाओं का बड़े पैमाने पर प्रचार प्रसार किया जाए ताकि प्रत्येक घर तक यह सूचना पहुंच सकें।

(9) प्राथमिक स्वास्थ्य, शिक्षा एवं आंगनवाड़ी कर्मचारीयों की कमी को दूर किया जाए और इनके माध्यम से भी योजना का प्रचार प्रसार किया जाए।

(10) सरकार द्वारा सामाजिक रीति रिवाज में बदलाव लाने के लिए कानून बनना चाहिए और समानता लाने का प्रयास किया जाए।

(11) सरकार द्वारा जागरूकता हेतु प्रचार–प्रसार किया जाए।

(12) महिला आरक्षण में वृद्धि कर समाज में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

(13) ग्राम पंचायत में योजनाओं को चला कर वंचित, पीड़ित, शोषित वर्गों को मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जाए।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत शोध से ज्ञात होता है कि मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों के सभी क्रियाकलापों का ग्राम विकास में योगदान हैं। जहाँ मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों की व्यवस्था से ग्राम विकास के लिए कई प्रकार से सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं तथा हितग्राहीयों को कई प्रकार से लाभान्वित कर उन्हें आर्थिक सम्पन्नता की ओर ले जाया जा रहा है। इससे प्रत्येक ग्राम स्तर पर आर्थिक सम्पन्नता बढ़ रही है और लोग समृद्धशील हो रहे है। मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों की योजनाओं से ग्राम स्तर पर एक सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ है। जिससे ग्रामों में रोजगार और ग्राम विकास की संभावनाओं बढ़ी है और ग्राम विकास के लिए ग्रामों के सभी निर्णय एवं समस्याओं का समाधान ग्राम स्तर पर ही निपटाए जा रहे है या पूर्ण किये जा रहे है। मध्य प्रदेश मे ग्राम पंचायतों

की व्यवस्था से ग्राम स्तर पर जनजागरुकता, आर्थिक सुदृढ़ता बढ़ रही है। वही आदिवासी क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है। जिससे ग्रामों से लोगों का पलायन रुका है। साथ ही महिलाओं की भी मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों की सभी व्यवस्था में पूर्ण भागीदारी है जो ग्राम पंचायतों की भूमिका को स्पष्ट करते है।

अतः निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों की व्यवस्था से जीवन स्तर, उपभोग स्तर, सामाजिक परिवर्तन हुआ है तथा आर्थिक सम्पन्नता बढ़ी है। फिर भी ग्राम स्तर पर ग्रामीण विकास धीमा है जो ग्राम स्तर तथा ग्रामीण के विकास के लिए कई सम्भावनाओं को उजागर करता है और रोजगार और विकास की सम्भावनाओं का बतलाता है। जो भावी ग्राम विकास की एक सकारात्मक सोच है।

संदर्भ सूची :-

1. ग्रामीण विकास एव ंपंचायती राज :– कुलदीप सिंह।
2. भारत में पंचायती, डॉ. पी के अग्रवाल।
3. पंचायती राज व्यवस्था :– डॉ. नीतू रानी।
4. https://en.wikipedia.org
5. https://panchayat.gov.in
6. मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 58-62

आयुर्वेद चिकित्सा : वर्तमान ग्रामीण समाज की आवश्यकता

नरेन्द्र कुमार त्रिपाठी
शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।

सारांश :–

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक आयुर्वेद भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा रहा है। इस शोध पत्र की महत्ता इस बात में है कि वर्तमान बदलते जीवन शैली में लोगो का रुझान इस उपयोगी तथा तुलनात्मक रूप से किफायती चिकित्सा पद्धति के तरफ बढ़ा है जिससे समाज का गरीब ग्रामीण तबका काफी लाभान्वित हुआ है। प्राकृतिक तत्वों से तैयार की गयी तथा किसी प्रकार के कोई चिकित्सकीय दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट्स) से रहित यह पद्धति आज के समय में काफी लोकप्रिय सिद्ध हुई है जिससे न सिर्फ शहरी बल्कि ग्रामीण समाज भी तेजी से अपना रहा है तथा इससे लाभान्वित हो रहा है।

इस शोध पत्र में हमारा मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद पद्धति की ग्रामीण समाज में वर्तमान जरुरत, उससे सम्बन्धित चुनौतियाँ, सरकारी प्रयास तथा नीतियां, एवं आयुर्वेद तथा पश्चिमी चिकत्सा के समन्वित प्रयास की पड़ताल करना है।

कुंजी शब्द :– आयुर्वेद, ग्रामीण समाज, 21वी सदी, पश्चिमी चिकित्सा, सरकारी नीतियां।

प्रस्तावना :–

भारत का त्रिस्तरीय स्वास्थ्य ढ़ाचा प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक लगभग पूरी तरह से एलोपैथिक पद्धति पर निर्भर हैं। कुल स्वास्थ्य बजट का 90 प्रतिशत से अधिक हिस्सा सिर्फ एलोपैथी को दिया जा रहा हैं तथा अन्य देशज पद्धतियों की तरफ उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है किंतु हाल के वर्षो में सरकार के रूख में परिवर्तन देखने को मिला हैं जिससे आयुर्वेद तथा अन्य देशज तरीको के तरफ लोगो का रुझान बढ़ा हैं (शंकर, 2015)।

ग्रामीण समाज में देशज चिकित्सा की स्वीकार्यता काफी प्राचीन समय से देखने को मिलती है किन्तु हाल के वर्षो में इस स्वीकार्यता में और वृद्धि देखने को मिली है जिसके पीछे कई कारण जिम्मेदार है जैसे पश्चिमी चिकित्सा का दिन–प्रतिदिन मूल्य प्रतिकूल होता जाना, साइड इफेक्ट्स, साथ ही साथ इतनी विशाल जनसंख्या की आपूर्ति सिर्फ पश्चिमी चिकित्सा से संभव ना हो पाना क्योंकि हर पद्धति की अपनीं सीमा है तथा अन्य पद्धतियों के तरफ ध्यान देना आज के समय की मांग हैं (पयाम्पल्लिमना, 2010)।

ग्रामीण समाज नगरीय समाज के अपेक्षा प्रकृति के ज्यादा करीब रहा है। इसलिए सहजता से आयुर्वेदिक चिकित्सा को अपनाने में भी अग्रणी रहा है। इसके साथ–साथ वर्तमान समय में आयुर्वेद में भी अनुसंधान कार्य तेजी से हो रहे है जिससे इसकी स्वीकार्यता में भी वृद्धि हुई है तथा सरकारी नीतियों ने भी इसके प्रचार–प्रसार, मूल्य नियन्त्रण तथा गुणवता को बढाने में अपना योगदान दिया है जिससे ग्रामीण समाज को इस पद्धति से सुलभता से जोड़ा जा रहा है।

आयुर्वेद : ग्रामीण चिकित्सा की वर्तमान जरूरत के रूप में :–

भारत की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विविधता हमें जीवन के हर पहलू में सहज ही देखने को मिलती है जिसका प्रभाव हम चिकित्सकीय सुविधाओ के वितरण में भी देखते है तथा शहरी एवं ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओ में अन्तर इसका एक प्रमुख आयाम हैं। आय की असमानता, शिक्षा का अभाव, सरकारी तंत्र की असंवेदनशीलता इत्यादि कारणों ने आयुर्वेद की जरूरत को वर्तमान ग्रामीण चिकित्सा व्यवस्था में शामिल करने को प्रोत्साहित किया हैं जिसके उदहारण हमें कई जगहों पे देखने को मिल रहे हैं। बहुत सारी ऐसी बीमारियाँ है जिनका इलाज समकालिक पश्चिमी पद्धति के पास नहीं है लेकिन देशज पद्धतियाँ जैसे आयुर्वेद में उनका इलाज संभव है साथ ही साथ वह काफी मितव्ययी भी है जिससे आसानी से सभी वर्गों को उपलब्ध हो सकती है, इसके अतिरिक्त आधुनिक चिकित्सा में आयुर्वेद के नियमो की सहायता से पूर्ण उपचार की सम्भावना काफी हद तक बढ़ जाती हैं (राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन, 2012)।

आयुर्वेद औषधियाँ पूर्णरूपेण प्राकृतिक तत्वों से निर्मित है। अतः इस तरीके की चिकित्सा में प्रकृति के संरक्षण के भी ओर ध्यान दिया जाता है। किसी विशेष जगह विशेष तरह के पौधों के मिलने से उस स्थान के निवासियों को उसके औषधिय महत्व के लाभ प्राप्त करने के साथ–साथ आर्थिक रूप से भी लाभ मिलने की सम्भावना बनी रहती है (पयाम्पल्लिमना, 2010)।

चुनौतियाँ : आयुर्वेद एवं ग्रामीण परिवेश :–

एक बात जिसको लेकर हमेशा आयुर्वेदिक पद्धति पर प्रशन–चिन्ह लगता रहा है। वह यह है कि आयुर्वेद में वैज्ञानिक प्रमाण–आधारित शोध की कमी रही है या यदि हुआ भी है तो काफी अल्प विषयों पर जिससे कि आयुर्वेद को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने में दिक्कत आती है। सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप ग्रामीण स्तर पर आयुर्वेद को प्रसारित करने का प्रयास किया जा रहा है जिसके अंतर्गत आयुर्वेदिक फिजिशियन को प्राथमिक तथा सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों पे नियुक्त किया जा रहा है (राव, 2015)।

इन सब सरकारी प्रयासों के बाद भी लोगो तक आयुर्वेद का संस्थागत स्तर के माध्यम से न पहुँच पाने के निम्न कारण हैं जैसे पारंपरिक प्रचलित तरीके में कार्यबल की चिंतनीय कमी जिससे आयुर्वेद में प्रशिक्षित डॉक्टर या अन्य सहायक उनके सहयोगी के रूप में कार्य करते है। जिससे वे अपने आयुर्वेदिक तरीके का उपयोग मरीजो के लिए नहीं कर पाते है। इसके साथ ही साथ आयुर्वेदिक दवाओ का सही समय और निश्चित मात्रा में यथास्थान न पहुँच पाना भी आयुर्वेदिक प्रसार में एक बाधा के रूप में सामने आया है (राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन, 2012)।

इन सब उपरोक्त चुनौतियों के मूल में नौकरशाही की कार्य में लापरवाही बरतने की आदत जिससे आधारभूत संरचना की कमी, साफ–सफाई में कमी, अनियमित वेतन तथा सही मात्रा में स्टाफ की कमी आदि

अन्य चुनौतियाँ है जो आयुर्वेद पद्धति को लागू करने में आती हैं।

आयुर्वेद सम्बन्धी प्रमुख नीतियां एवं कार्यान्वयन :-

2014 में स्थापित आयुष मंत्रालय जो कि पहले एक विभाग के रूप में कार्यरत था आयुर्वेद तथा अन्य देशज पद्धतियों के लिए केन्द्रीयकृत एजेंसी की तरह कार्य करता है। देश में कही भी सेमिनार, कार्यशाला, आरोग्य मेला इत्यादि कार्यक्रमों का आयोजन मुख्य रूप से इसी मंत्रालय के निर्देशन में होता है तथा यही मंत्रालय वितपोषण इत्यादि भी करता है। इसके साथ आयुष मंत्रालय सेन्टर ऑफ एक्सीलेंस संस्थानों को भी चिन्हित करने का कार्य कर रहा है। यह संस्थान आयुर्वेद से सम्बंधित शोध, पाठ्यक्रम में उत्कृष्ट कार्य कर रहे है तथा मरीजो को उत्कृष्ट स्तर की सुविधा भी प्रदान कर रहे है। कुछ अन्य सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थान किफायती तरीके से ड्रग–निर्माण भी कर रहे है जिससे समाज के गरीब व पिछड़े ग्रामीण वर्ग को इससे लाभ प्राप्त हो सके। ट्रेडिशनल नॉलेज डिजिटल लाइब्रेरी को निर्मित करने का उद्देश्य वर्तमान में प्राप्त आयुर्वेदिक एवं देशज पद्धतियों तथा उससे सम्बन्धित ज्ञान को एक डेटाबेस में एकत्र करके रखना जिससे कोई भी व्यक्ति, संस्थान उसका उपयोग कर सके, साथ ही साथ इन आयुर्वेदिक ज्ञान के पेटेंट्स अधिकार को भी सुरक्षित करके रखना इस लाइब्रेरी का एक प्रमुख उद्देश्य है जिससे कोई भी इन पद्धति तथा औषधियो का बिना अधिकार के इस्तेमाल ना कर सके इस प्रकार हमारी प्राचीन धरोहर एवं विरासत की रक्षा भी की जा सके। प्राइवेट कंपनियों तथा विदेशी पूंजीवादी कंपनियों के हाथ में ये प्राचीन ज्ञान आने से वे इनका उपयोग कर उच्च मूल्यों पे ये औषधियाँ बाजार में उपलब्ध करायेंगे जिससे गरीब जनता तक इन उच्च कीमतों वाली दवाइयों उपलब्ध नहीं हो पाने की भी सम्भावना है (कटोच, शर्मा एवं अन्य, 2017)।

2014 में स्थापित राष्ट्रीय आयुष मिशन के माध्यम से आयुर्वेदिक पद्धति को प्रसार करने का सफल प्रयास किया जा रहा हैं इसमें ड्रग्स का व्यवसायीकरण, आयुर्वेदिक शिक्षा का प्रचार–प्रसार, आयुर्वेद से सम्बन्धित शोध को प्रोत्साहित करना तथा उसको फंडिंग भी करने का कार्य इस मिशन द्वारा किया जाता है। इस मिशन के माध्यम से शिक्षण संस्थानों में भी स्वास्थ्य मेला का आयोजन किया जा रहा है जिससे इस पद्धति से लोगो को जोड़ने में मदद मिल रही है साथ ही साथ ग्रामीण स्तर पर भी अलग–अलग कैंपेन चलाकर लोगो को जागरूक करने का कार्य किया जा रहा है जिससे लोग इन पद्धतियों की ओर आकर्षित हो रहे है तथा अपनी दिनचर्या में भी इस देशज पद्धति को शामिल कर रहे है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पे भी आयुष मंत्रालय विदेशों में आयुष पीठ स्थापित कर रहा है जिससे आयुर्वेद तथा अन्य देशज पद्धति को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो रही है। इसके साथ–साथ भिन्न–भिन्न देशों से समझौता ज्ञापन स्थापित कर रहा है जिससे आयुर्वेद तथा अन्य देशज पद्धतियों में शोध को काफी प्रोत्साहन मिल रहा है, इन्ही सब प्रयासों के फलस्वरूप तथा इस प्रयासों को एक मुहीम से जोड़ने के लिए सरकार ने 2015 से 21 जून को योग दिवस के रूप में मनाने का निश्चय किया है (कटोच, शर्मा एवं अन्य, 2017)।

आगे की राह : देशज तथा पश्चिमी चिकित्सा का एकीकृत प्रयास :-

वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक ग्रामीण परिवेश को देखते हुए सिर्फ किसी एक पद्धति (पश्चिमी या देशज) पर निर्भर रहना उपयुक्त नहीं रहेगा तथा देशज एवं पश्चिमी चिकित्सा के समामेलन से ही एक आत्मनिर्भर स्वास्थ्य ढ़ाचे का निर्माण संभव हो पायेगा क्योंकि काफी लम्बे समय से सिर्फ पश्चिमी चिकित्सा को अत्यधिक

बढ़ावा दिया गया है तथा देशज चिकित्सा को नाम मात्र का सहयोग प्रदान किया गया है जिस कारण देशज पद्धति अवसंरचना के स्तर पर, शोध के स्तर पर, शैक्षणिक स्तर पर इत्यादि सभी स्तरों पर लगभग पिछड़ा हुआ है। इसलिए पश्चिमी चिकित्सा के साथ सहयोगात्मक भावना के साथ ही आयुर्वेद एवं अन्य देशज पद्धतियो का विकास सम्भव हो पायेगा तथा तभी एक वृहद् स्तर पर समाज के सभी वर्गो तक उचित व किफायती स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त हो सकेगी। हालांकि इस समामेलन की प्रक्रिया में आयुर्वेद के मूल रूप को बना कर रखना है उसको सिर्फ पश्चिमी चिकित्सा के असिस्टेंट के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि पश्चिमी चिकित्सा के अवसंरचना इत्यादि का प्रयोग करते हुए मूल रूप से आयुर्वेद के सतही शोध पर ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे हमारी प्राचीन समृद्ध पद्धति को लोगो तक पहुंचाया जा सके (राव, 2015)।

आज के समय में भी क्रोनिक बीमारियों के इलाज में पश्चिमी चिकित्सा से ज्यादा आयुर्वेदिक पद्धति कारगर सिद्ध हो रही है जो कि कम पैसे में अच्छा इलाज उपलब्ध करा रही है जिससे कि लोगों का रुझान इस पद्धति के तरफ बढ़ रहा है। यहाँ तक की बहुत सारे पश्चिमी चिकित्सक भी इन क्रोनिक बिमारियों के लिए आयुर्वेद पद्धति का ही उपयोग करने की सलाह देते है। इसके अलावा और भी कई क्षेत्र है जहाँ दोनों पद्धतियों के चिकित्सक एक–दूसरे के तरीको का इस्तेमाल करते है या उसको अपनाने की सलाह देते है। ग्रामीण समाज के जीवन शैली में हमें आसानी से आयुर्वेद तथा देशज पद्धति के अवयव देखने को मिल जाते है जिससे ये मौसमी तथा क्रोनिक बिमारियो में इस आयुर्वेदिक तरीके से ही अपना उपचार करते है। किन्तु आज के वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार तथा लोगो में जागरूकता ने आयुर्वेद में साक्ष्य आधारित दवाइयों के तरफ ध्यान देने लगे है। जहां पर आयुर्वेद पद्धति पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है किन्तु वर्तमान सरकारी प्रयासों के माध्यम से इसमें भी शोध इत्यादि को बढ़ावा दिया जा रहा है। जिससे लोगो में इसके प्रति विश्वसनीयता बढ़ रही है और इस विश्वसनीयता को बढ़ाने में पश्चिमी पद्धति अति महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी क्योंकि पश्चिमी पद्धति के पास आयुर्वेद की अपेक्षा काफी संसाधन है। जिससे इन संसाधनों की मदद से ही आयुर्वेद में उपयोगी शोध तथा अनुसंधान संभव हो पायेंगे जिससे एक समामेलित पद्धति का विकास होगा और ग्रामीण समाज को आने वाले समय में एक बेहतर समामेलित पद्धति से चिकित्सकीय लाभ प्राप्त होगा (परिवर्तनकारी वृद्धि का एक दशक, 2014–2024)।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार आयुर्वेदिक पद्धति वर्तमान समय में ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था में एक प्रमुख विकल्प के रूप में सामने आया है, आय की असमानता, शिक्षा का अभाव इत्यादि कारणों ने पश्चिमी चिकित्सा को ग्रामीण पहुँच से दूर करने का कार्य किया है। इस अंतर को भरने में आयुर्वेद एक प्रमुख पद्धति के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जिससे ग्रामीण समाज में भी चिकित्सा की सुचारू व्यवस्था उपलब्ध करायी जा सकती है। इस अवसर के साथ–साथ कई चुनौतियाँ भी है जैसे आयुर्वेद में बजट कम आबंटित होना, शोध एवं अनुसंधान काफी सतही स्तर पर होना, औषधियों के मानकीकरण की समस्या इत्यादि कारणों से इस क्षेत्र में चुनौतियाँ परिलक्षित होती हैं। अतः आज के ग्रामीण समाज के स्वास्थ्य संरचना की यह मांग है कि पश्चिमी चिकित्सा के साथ स्वस्थ प्रतिस्पर्धा करते हुए आयुर्वेद अपने को और विकसित करे जिससे लोगों के पास आने वाले समय में स्वास्थ्य संरचना के सभी स्तरों पर विकल्प उपलब्ध हो एवं आयुर्वेद चिकित्सा के किसी भी क्षेत्र में पश्चिमी चिकित्सा जितना ही कारगर

एवं उपयोगी सिद्ध हो।

सन्दर्भ सूची :-

1. A Decade of Transformative Growth in Ayush 2014-2024, Ministry of AYUSH, Government of INDIA.
2. Eapen, Mridul, and Bhumika Jhamb Sinha. "National Rural Health Mission." (2012).
3. Fendall, N. R. E. "Ayurvedic medicine and primary health care." Tropical Doctor 11.2 (1981): 81-85.
4. Imran, Mohammed. "The prevalence and patterns of usage of Ayurveda, Unani and home remedies in younger adults of rural North India." International Journal of Green Pharmacy (IJGP) 11.02 (2017).
5. Katoch D, Sharma JS, Banerjee S, Biswas R, Das B, Goswami D, Harwansh RK, Katiyar CK, Mukherjee PK. Government policies and initiatives for development of Ayurveda. J Ethnopharmacol. 2017 Feb 2;197:25-31. doi: 10.1016/j.jep.2016.08.018. Epub 2016 Aug 16. PMID: 27543425.
6. Mallick, Sharmistha. "Challenges of mainstreaming: Ayurvedic practice in Delhi Government health institutions." Journal of Ayurveda and integrative medicine 7.1 (2016): 57-61.
7. Patwardhan, Bhushan, Gururaj Mutalik, and Girish Tillu. Integrative approaches for health: Biomedical research, Ayurveda and Yoga. Academic Press, 2015.
8. Payyappallimana, Unnikrishnan. "Role of traditional medicine in primary health care: an overview of perspectives and challenging." Yokohama journal of social sciences 14.6 (2010): 57-77.
9. Rao, Gundu HR. "Integrative approach to health: Challenges and opportunities." Journal of Ayurveda and integrative medicine 6.3 (2015): 215.
10. Shankar, Darshan. "Health sector reforms for 21st century healthcare." Journal of Ayurveda and integrative medicine 6.1 (2015): 4.
11. Sharma, Kartik, Aswini Ramachandran, and Aashish Patel. "Scope of Integrative Approach in Present Era." Journal of Ayurveda and Integrated Medical Sciences 9.9 (2024): 56-67.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 63-69

भारतीय शिक्षा प्रणाली की विकास यात्रा का एक नवीन युग : NEP 2020

डॉ. रमेश राम
सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता), राजनीति विज्ञान विभाग
चंपावत परिसर, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड।

सार :-

शिक्षा पूर्व मानव क्षमता को प्राप्त करने का एक न्याय संगत और एक न्यायपरक समाज के विकास तथा संपूर्ण राष्ट्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण एवं मूलभूत आवश्यकता है। वर्तमान युग वैश्विक शिक्षा एवं वैश्विक समाज का एक महत्वपूर्ण अवसर का युग है। शिक्षा किसी भी राश्ट्र के उत्थान एवं नए निर्माण व विकास की नई दिशा व दशा को तय करती है। शिक्षा के द्वारा ही किसी भी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव होता है। शिक्षा हमें नैतिकता, संस्कार, तर्क–वितर्क, विवेक, आत्मज्ञान, विश्वास एवं नवाचार का पाठ पढ़ाती है। शिक्षा मनुष्य, समाज व राष्ट्रीय विकास के संवर्धन में आवश्यक है। गुणात्मकपूर्ण शिक्षा, सार्वभौमिक पहुंच प्रदान करने के लिए वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय, समानता, वैज्ञानिक उन्नति, सांस्कृतिक उन्नति, सतत् विकास एवं आर्थिक विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण अभिकरण है।

नई शिक्षा नीति प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाने हेतु बनाई गई है। वस्तुतः वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मौजूदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी। 2020 व्यवधानों और पुननिर्माण का वर्ष था। महामारी के कारण हम जिस तरह से नीति को देखते हैं, उसकी अभूतपूर्व समीक्षा हुई है।

नई शिक्षा नीति 2020 भारत की वह शिक्षा नीति है, जिसे भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को घोषित किया गया। सन् 1986 में जारी हुई नई शिक्षा नीति के बाद भारत की शिक्षा नीति में यह पहला नया परिवर्तन है। अतः भारत में 34 साल बाद एक नयी शिक्षा नीति आई जिसे न्यू एजुकेशन पॉलिसी (नयी शिक्षा नीति 2020) का नाम दिया गया है।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली वैश्विकरण और प्रौद्योगिकी प्रगति की तेज गति से निपटने में पिछड़ रही है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण के साथ नई शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी गई। ताकि नई शिक्षा नीति को भारत के वैश्विक स्तर पर ज्ञान, महाशक्ति बनाने के लिए वैज्ञानिक नवाचार और गुणवत्तापूर्ण बुद्धि की दिशा में मार्ग प्रशस्त करती है।

29 जुलाई 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल के तत्वाधान में शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तनकारी सुधार लाने के लिए 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई।

नई शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा नीति है, जिसे भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को घोषित किया गया। सन् 1986 में जारी हुई नई शिक्षा नीति के बाद भारत की शिक्षा नीति में यह पहला नया परिवर्तन है। यह नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है। भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में कहा गया है कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए। 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन हुआ था, तभी से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण होना भी शुरू हुआ था।

कोठारी आयोग (1964–1966) की सिफारिशों पे आधारित 1968 में पहली बार महत्वपूर्ण बदलाव वाला प्रस्ताव इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री काल में पारित हुआ था। 1986 में भारत सरकार ने 'नई शिक्षा नीति 1986' का प्रारूप तैयार किया। इस नीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें सारे देश के लिए एक समान शैक्षिक ढांचे को स्वीकार किया और अधिकांश राज्यों ने 10+2+3 की संरचना को अपनाया। इसे राजीव गांधी के प्रधानमंत्रीत्व में जारी किया गया था। इस नीति में 1992 में संशोधन किया गया था। नई शिक्षा नीति 2020 में मानव संसाधन मंत्रालय का नाम पुनः ''शिक्षा मंत्रालय'' करने का फैसला लिया गया है। इसमें समस्त उच्च शिक्षा (कानूनी एवं चिकित्सीय शिक्षा को छोड़कर) के लिए एक एकल निकाय के रूप में भारत उच्च शिक्षा आयोग का गठन करने का प्रावधान है। संगीत, खेल, योग आदि को सहायक पाठ्यक्रम या अतिरिक्त पाठ्यक्रम की बजाय मुख्य पाठ्यक्रम में ही जोड़ा जाएगा। शिक्षा तंत्र पर सकल घरेलू उत्पाद का कुल 6 प्रतिशत खर्च करने का लक्ष्य है, जो इस समय लगभग 3 प्रतिशत है। एम. फिल. को समाप्त किया जाएगा। शिक्षा अब अनुसंधान में जाने के लिए तीन साल के स्नातक डिग्री के बाद दो साल स्नातकोत्तर करके पीएचडी में प्रवेश लिया जा सकता है। नीति में शिक्षकों के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया है। व्यापक सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण और सभी शिक्षा कार्यक्रमों को विश्वविद्यालयों या कॉलेजों के स्तर पर शामिल करने की सिफारिश की गई है।

प्राइवेट स्कूलों में मनमाने ढंग से फीस रखने और बढ़ाने को भी रोकने का प्रयास किया जाएगा। पहले 'समूह' के अनुसार विषय चुने जाते थे, किंतु अब उसमें भी बदलाव किया गया है, जो छात्र इंजीनियरिंग कर रहे हैं, वह संगीत को भी अपने विषय के साथ पढ़ सकते हैं। नेशनल साइंस फाउंडेशन के तर्ज पर नेशनल रिसर्च फाउंडेशन लाई जाएगी जिससे पाठ्यक्रम में विज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञान को भी शामिल किया जाएगा। नीति में पहले और दूसरे कक्षा में गणित और भाषा एवं चौथे और पांचवें कक्षा के बालकों के लेखन पर जोर देने की बात कही गई है। स्कूलों में 10+2 फार्मेट के स्थान पर 5+3+3+4 फार्मेट को शामिल किया जाएगा। इसके तहत पहले पांच साल में प्री–प्राइमरी स्कूल के तीन साल और कक्षा दो सहित फाउंडेशन स्टेज शामिल होंगे। पहले जहां सरकारी स्कूल कक्षा एक से शुरू होती थी अब तीन साल के प्री–प्राइमरी के बाद कक्षा एक शुरू होगी। इसके बाद कक्षा 3–5 के तीन साल शामिल हैं। इसके बाद 3 साल का मिडिल स्टेज आएगा यानी कक्षा 6 से 8 तक की कक्षा। चौथा स्टेज कक्षा 9 से 12वीं तक का 4 साल का होगा। पहले जहां 11वीं कक्षा से विषय चुनने की आजादी थी, वही अब पहली कक्षा से रहेगी। शिक्षण के माध्यम के रूप में पहली से पांचवीं तक मातृभाषा का इस्तेमाल किया जाएगा। इसमें रट्टा विद्या को खत्म करने की भी कोशिश की गई है,

जिसको मौजूदा व्यवस्था की बड़ी खामी माना जाता है। किसी कारणवश विद्यार्थी उच्च शिक्षा के बीच में ही कोर्स छोड़ के चले जाते हैं।

ऐसा करने पर उन्हें कुछ नहीं मिलता एवं उन्हें डिग्री के लिए दोबारा से नई शुरूआत करनी पड़ती है। नई नीति में पहले वर्ष में कोर्स को छोड़ने पर प्रमाण–पत्र, दूसरे वर्ष पे छोड़ने पे डिप्लोमा एवं अंतिम वर्ष पे छोड़ने पे डिग्री देने का प्रावधान है। यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति सरकार द्वारा शिक्षा प्रणाली में एक बड़े बदलाव का संकेत देती है, लेकिन इसमें कई चुनौतियां भी हैं। भारत में लगभग एक–तिहाई बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले स्कूल छोड़ देते हैं। यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश बच्चे, जो स्कूल जाने में असमर्थ हैं, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, धार्मिक अल्पसंख्यकों और दिव्यांग समूहों से संबंधित हैं।

एक महत्वपूर्ण चुनौती बुनियादी ढांचे की कमी से संबंधित है। यह आमतौर पर देखा गया है कि स्कूलों और विश्वविद्यालयों में बिजली, पानी, शौचालय, चारदीवारी, पुस्तकालय, कंप्यूटर आदि की कमी है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली प्रभावित होती है। नई शिक्षा प्रणाली के सामने एक चुनौती शिक्षकों की कमी को दूर करना भी है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक सी.ए.जी. की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार, एकल शिक्षक के भरोसे बड़ी संख्या में स्कूल चल रहे हैं, जो शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इस नीति के तहत, शिक्षा अभियान को सफल बनाने के लिए सरकार, नागरिकों, सामाजिक संस्थाओं, विशेषज्ञों, अभिभावकों, समुदाय के सदस्यों को अपने स्तर पर काम करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 :–

शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया होने के कारण निरंतर विकसित व विभिन्नीकृत होती रही है तथा उसका प्रसार क्षेत्र लगातार बढ़ता रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान को स्पष्ट करने व कायम रखने, समकालीन चुनौतियों का सामना करने व राष्ट्रीय जीवन के संवर्धन के लिए अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1964 के राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक महत्वपूर्ण कदम का प्रतीक था। इस पर अमल भी होना शुरू हो गया था तथा कई प्रांतों ने अपने–अपने ढंग से 10+2+3 की शिक्षा संस्थान लागू कर दी थी। त्रिभाषा सूत्र, प्रांतों में कृषि, व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा, विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक शोधों के लिए विशेष प्रावधान किए जाने लगे थे तथा शिक्षा में सुधार हेतु अन्य कार्य भी शुरू कर दिए गए थे।[1]

परंतु 1977 में केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनने पर 10+2+3 शिक्षा संरचना के स्थान पर 8+4+3 शिक्षा संरचना का विचार आया। जिसके परिणामस्वरूप कुछ शिक्षाविदों व सांसदों से तत्कालीन केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री प्रताप चंद्र ने एक नई शिक्षा नीति 1979 की घोषणा कर दी। इसे अभी लागू भी नहीं किया गया था कि 1980 में केंद्र में पुनः कांग्रेस सत्ता में आ गई व पुनः एन.ई.पी. 1968 के अनुपालन पर जोर दिया।

परंतु इसी बीच इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने पर हर क्षेत्र में आंदोलनकारी कदम उठाने के प्रयास में शिक्षा के पुनर्निरीक्षण व पुनर्गठन प्रक्रिया में तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराकर इसे–शिक्षा के चुनौती नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य नामक दस्तावेज 1985 अगस्त में प्रकाशित कराया गया। जिसमें भारतीय शिक्षा की 1951 से 1985 तक की प्रगति यात्रा का सांख्यिकीय विवरण उसकी उपलब्धियों एवं असफलताओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उसके गुण–दोशों का सम्यक विवेचन किया गया है। इस दस्तावेज

पर विश्वव्यापी बहस शुरू हुई और सभी प्रांतों के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से सुझाव प्राप्त हुए। केंद्रीय सरकार ने इन सुझावों के आधार पर एक नई शिक्षा नीति तैयार की और इसे संसद के बजट अधिवेशन 1986 में पास कराया गया।[2] यह भारत की पहली ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति है, जिसमें नीति के साथ उसके कार्यान्वयन की पूरी योजना प्रस्तुत की गई है और साथ ही इसके लिए पर्याप्त संसाधन जुटाए गए हैं।

नई शिक्षा नीति–1986 द्वारा उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण कदम :–

नई शिक्षा नीति–1986 का गठन शिक्षा की चुनौतियों के रूप में किया गया था। अतः इसका भारत की शिक्षा व्यवस्था पर पर्याप्त स्थायी एवं व्यापक प्रभाव पड़ा है, जिसका कारण संभवतः उसके द्वारा उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण शैक्षिक कदम हैं। शिक्षा में योगदान देने वाले ये महत्वपूर्ण कदम इस प्रकार है :–

1. 10+2+3 शिक्षा संरचना
2. नवोदय विद्यालय
3. विद्यालय स्कूल।
4. सर्व शिक्षा अभियान
5. शैक्षिक अवसरों की समानता।
6. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड।
7. दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त विश्वविद्यालय।
8. उपाधि को सेवा से अलग करना।
9. शिक्षक प्रशिक्षण।
10. शिक्षक की जवाबदेही।

नई शिक्षा नीति 2020 के प्रारूप और प्रक्रिया से ज्ञानात्मक चर्चा का दौर प्रारंभ हो गया है। शिक्षा का व्यापक दृष्टिकोण रखने वाले प्रबुद्धजनों ने नई शिक्षा नीति 2020 को लेके अपने अनुभव के आधार पर इसका विश्लेषण करना भी प्रारंभ कर दिया है। शिक्षा के व्यापक वास्तविक मर्म को शब्दों से समझने के प्रयास से देखे तो सीखने की क्रिया जो किसी भी समाज में अविरत चलने वाली प्रक्रिया जो अतिविशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति को लक्ष्य मान कर समाज में विद्यमान सभी मानव जीवों की आंतरिक शक्तियों को श्रेष्ठ बनाकर मानव समाज के व्यवहार को उत्कृष्ठ करना है। शिक्षा के माध्यम से ही और शिक्षा प्राप्ति से ही ज्ञान और कौशल में वृद्धि करके समाज में विद्यमान मनुष्य को श्रेष्ठ योग्य नागरिक बनाया जाता है। विश्व के प्रत्येक देश शिक्षा के इस मूल मंत्र को केंद्रीकृत रखते हुए समय–समय पर परिस्थिति एवं परिवर्तन के दौर से गुजरते हुए शिक्षा नीति में आवश्यक परिवर्तन करते हैं। भारत देश विश्व में हमेशा से ज्ञान के क्षेत्र में विश्व को दिशा देते हुए गुरु की भूमिका में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में रहा है। भारतीय संस्कृति एवं विचार के ज्ञान के हस्तांतरण में आधुनिक तकनीक के समिश्रण की वर्तमान आवश्यकता एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे डीजिटल युग में शिक्षा में भी परिवर्तन एवं नीति निर्माण की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी की सरकार के द्वारा की गई। स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा यानि 'मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति'।

विवेकानंद जी के शिक्षा के ज्ञान को समझने से प्रतीत होता है कि पूर्व में शिक्षा नीति का निर्माण जिस

उद्देश्यों के साथ किया गया और जो भी प्रयास किए गए उनके द्वारा प्राप्त परिणामों से विदित होता है कि कहीं कुछ त्रुटि या आवश्यकता की जरूरत प्रतीत होती रही थी। नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों में स्वामी विवेकानंद जी और महात्मा गांधी जी के शिक्षा एवं ज्ञान के स्वप्न का समिश्रण है। नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा के साथ ही देश ने मंत्रालय का नाम स्पष्ट किया है। मानव संसाधन मंत्रालय का नाम परिवर्तन करके ''शिक्षा मंत्रालय'' कर दिया गया है।[3]

नई शिक्षा नीति 2020 को भारतीय जनमानस की आवश्यकताओं एवं भारतीय शैक्षणिक पर्यावरण के अनुरूप रखने का यत्न किया गया है। शिक्षा व्यवस्था को उपाधि उन्मुख न रखकर ज्ञानपरक एवं रोजगारपरक बनाने का प्रयास किया गया है। पूर्व प्रचलित रटंत विद्या के स्थान पर शिक्षार्थी में तर्क शक्ति विकसित करने का यत्न नई शिक्षा नीति 2020 की विलक्षणता है। शिक्षार्थी में कार्य कुशलता विकसित करने हेतु प्राथतिक स्तर से ही रोजगारपरक शिक्षा का समावेश किया गया है। किसी कार्य विशेष में निपुणता व दक्षता प्राप्त करने के साथ ही विज्ञान कला वाणिज्य इत्यादि विशयों के समेकित अध्ययन को बल दिए जाने के कारण शिक्षार्थी का बहुआयामी विकास संभव हो सकेगा। यदि सरकार द्वारा ईमानदारीपूर्वक यत्न किए गए तो, इस नीति के सकारात्मक परिणाम 2030 तक दृष्टिगत होने लगेंगे।[4]

इस नीति में भारत की बहु भाषा–भाषी समृद्ध परंपरा को भी स्थान दिया गया है और भाषा के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर और आगे त्रिभाषा अध्ययन की व्यवस्था भारतीय समाज की प्रकृति की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त है। भाषा न केवल किसी भी क्षेत्र में ज्ञान के लिए अनिवार्य आधार का काम करती है, बल्कि अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। यह खेद का विषय है कि भाषा के अध्ययन–अध्यापन के प्रति बड़ा लचर रवैया अपनाया जाता रहा है। इसके फलस्वरूप भाषिक योग्यता में लगातार गिरावट होती रही है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में इस वर्ष हाई स्कूल की परीक्षा में आठ लाख विद्यार्थी फेल हो गए हैं। नई शिक्षा नीति और भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ परिचय को महत्व देकर सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करने और देश की एकता के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।[5]

इस नीति में आरंभिक स्तर पर मातृभाषा को महत्व दिया गया है। यह सबको विदित है कि प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षण और अध्यापन बच्चों के मानसिक व स्वाभाविक रूप से विकास के लिए लाभकारी होता है। ध्यान रहे कि अंग्रेजी विषय के रूप में पढ़ना ठीक है, पर अंग्रेजी माध्यम में पढ़ना निश्चित रूप से गैर अंग्रेजी क्षेत्र के बच्चों के लिए घातक है। अंग्रेजी को विश्वभाषा मान लेने से अनुकरण की भावना और पराधीनता की प्रवृत्ति को ही उकसावा मिलता है। पूर्वाग्रह और भेदभाव के कारण हम लोगों पर अंग्रेजी का भूत हावी होता रहा। अंग्रेजी जानने वाले उच्च वर्ग के होते हैं और उनका अखंड वर्चस्व हर कहीं देखा जा सकता है। अंग्रेजी की कोई अतिरिक्त आंतरिक दैवीय शक्ति तो नहीं है, परंतु सम्मान की शीशा होने के कारण उसका उपयोग भारतीय विचार, व्यवहार और संस्कृति के विरूद्ध जरूर चला जाता है। भाषा की प्रतिष्ठा उसकी स्मृति को भी प्रभावित करती है।[6]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांत –

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार है :–[7]

1. हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना।
2. बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना।
3. शिक्षा में लचीलापन लाना ताकि शिक्षार्थियों में उनके सीखने के अनुसार पाठ्यक्रम चुनने की आजादी हों।
4. कला एवं विज्ञान, पाठ्यक्रम और पाठयेत्तर गतिविधियों में, व्यावसायिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों में विरोध एवं अलगाव की भावना नहीं हो।
5. एक बहु विषयक और समग्र शिक्षा का विकास करना।
6. अवधारणात्मक सोच का विकास करना न कि रटंत एवं परीक्षा की पढ़ाई पर जोर।
7. रचनात्मक एवं तार्किक सोच का विकास करना ताकि नवाचारों को प्रोत्साहन मिले।
8. नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का विकास करना।
9. बहुभाषा शिक्षा प्रणाली अपनाना ताकि अध्ययन–अध्यापन कार्य में भाषा की शक्ति को पहचान मिल सके।
10. जीवन कौशल अर्थात् आपसी संवाद, सहयोग, सामूहिक कार्यों को बढ़ावा देना।
11. सीखने के लिए सतत् मूल्यांकन पर जोर देना न कि परीक्षा को महत्व देना ताकि कोचिंग संस्कृति का विनाश हो सकें।
12. शिक्षा को सरल एवं सुलभ बनाने के लिए तकनीक पर जोर देना।
13. विविधता और स्थानीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए शिक्षा देना।
14. सभी शैक्षणिक निर्णयों में पूर्ण क्षमता और समावेशन को ध्यान में रखना।
15. विद्यालय से महाविद्यालय शिक्षा तक सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में तालमेल एवं सामंजस्य बिठाना।
16. शिक्षकों एवं संकाय को सीखने का केंद्र मानते हुए इनकी भर्ती आदि हेतु उन्नत सुविधाओं का विकास करना।
17. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर के शोध का विकास करना।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख लक्ष्य :-

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख लक्ष्य निम्नवत हैं :-[8]

1. 2030 तक सकल नामांकन अनुपात 100 प्रतिशत करना है।
2. प्राथमिक शिक्षा अर्थात् 5वीं तक शिक्षा मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा में प्रदान करना।
3. मातृभाषा को उच्च प्राथमिक कक्षा 8वीं और उससे आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।
4. इस शिक्षा नीति के अंतर्गत 3 से 18 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के तहत रखा गया है।
5. इस नीति का प्रमुख उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है।
6. 2025 तक पूर्व माध्यमिक शिक्षा 3 से 6 वर्ष की आयु सीमा को सार्वभौमिक बनाना है।
7. शिक्षा क्षेत्र पर भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत हिस्से को सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है।
8. भारत के सभी उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए भारतीय उच्च शिक्षा परिषद् नामक एक एकल नियामक की

उपकल्पना की गई।

नई शिक्षा नीति की प्रमुख सात विशेषताएं (महापात्र 2021) –

नई शिक्षा नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं :–[9]

1. आत्मनिर्भर भारत।
2. सतत् विकास लक्ष्य आर्थिक वृद्धि के रूप में शिक्षा।
3. आर्थिक वृद्धि के रूप में शिक्षा।
4. उच्च शिक्षा का अंतर्राष्ट्रीयकरण।
5. डिजिटलीकृत शिक्षा और कक्षाएं।
6. नियामक संस्था।
7. एक स्तरीय मान्यता प्रणाली।

निष्कर्ष :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एन.ई.पी. 2020 का मुख्य निष्कर्ष यह है, कि यह शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी, लचीला और छात्र–केंद्रित बनाने का प्रयास करती है, जो 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना करने के लिए छात्रों को तैयार करती है। यह शिक्षा को रटने की प्रणाली से दूर, आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और समस्या–समाधान कौशल पर ध्यान केंद्रित करने की ओर ले जाती है। इस प्रकार नई शिक्षा नीति 2020 नए भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज्ञान के क्षेत्र में उठाया गया मजबूत कदम है। ज्ञान, तकनीक, प्रतियोगिता, कौशल्य, स्वतंत्रता, संस्कृति का हस्तांतरण, संशोधन के नवाचार, भाषा के महत्व एवं बुनियादी शिक्षण के साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समिश्रण से तैयार नई शिक्षा नीति 2020 भारत के युवा–धन को सही मार्ग इंगित करते हुए श्रेष्ठ क्षमताओं के सौजन्य से उज्जवल भविष्य की ओर ले जाने में मील का पत्थर साबित होगी। ज्ञान के क्षेत्र में या आत्मनिर्भर भारत बनने के प्रयास में नई शिक्षा नीति 2020 का योगदान इसके कार्यान्वयन पर निर्भर करेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी क्राफ्ट आधारित शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा पर बल देता है तथा स्थानीय सहित अन्य क्राफ्ट आधारित शिक्षा एवं प्रशिक्षण को पाठ्यक्रम का अंग बनाया है। जिससे विद्यार्थियों को सैद्धांतिक की अपेक्षा प्रयोगात्मक शिक्षा से सीखने का अवसर प्राप्त होगा।

संदर्भ :–

1. डॉ. अमित कुमार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, पृ. 01–02
2. वही, पृ. वही।
3. डॉ. नरेन्द्र कुमार पाल, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में, पृ. 01–02–06
4. डॉ. राजेश कुमार पाण्डेय, नई शिक्षा नीति चुनौतियां एवं संभावनाएं रिसर्च जनरल, पृ. 50
5. गिरीश्वर मिश्रा, नई शिक्षा नीति, रिसर्च जनरल, कंचनजंघा रिसर्च जनरल, पृ. 61–62
6. वही, पृ. 62
7. प्रेमपरिहार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, रिसर्च जनरल, पृ. 110
8. पांचजन्य, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मुक्ति की मार्गदर्शक, भारत प्रकाशन अंक 11 नई दिल्ली, 08 अगस्त 2021
9. आउटलुक स्पॉटलाईट परिशिष्ट 13 दिसंबर 2021, शिक्षा में गुणवत्ता अंक 61 आउटलुक प्रकाशक नई दिल्ली।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 70-73

मीरा के काव्य में विरहानुभूति व स्त्री स्वाधीनता

जगदीश
सहायक आचार्य, आराधना डिग्री कॉलेज, आहोर।

सारांश :-

राजस्थान की भक्ति परम्परा में पुरुषों के साथ महिलाओं का योगदान भी अप्रतिम रहा है। इसमें समाज की हर वर्ग की महिलाओं ने अपना योगदान दिया है। कुड़की में जन्म लेने वाली मीरा मेवाड़ राजघराने की बहू होकर भी गिरधर गोपाल की विरह वेदना में संन्यासी जीवन को अपनाया। मीरा के इस कार्य ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। वहीं राजघराने में महिलाओं की दयनीय स्थिति से बाहर निकाला। मीरा की पदावलियों में कृष्ण के प्रति प्रेम, विरह वेदना के साथ स्त्रियों के अधिकारों का वर्णन मिलता है।

मीरा का जीवन परिचय :-

मीराबाई का जन्म मारवाड़ रियासत के कुड़की गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम रतनसिंह था। बचपन में इनकी मां का देहांत हो गया। मीरा की शादी मेवाड़ के महाराणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज के साथ हुई थी। लेकिन विधि को कुछ और ही मंजूर था। कुछ साल बाद ही मीरा के पति का भी देहांत हो गया। मीरा भगवान श्री कृष्ण की भक्ति में लीन रही। उनके देवर विक्रमादित्य द्वारा मेवाड़ में कई यातनाएं देने पर मीरा अपने पीहर आई। लेकिन मीरा के पीहर में भी राजा महाराजाओं के आपसी विवाद के चलते मीरा वृंदावन चली गई। वहां से मीरा द्वारिका में रणछोड़ की मूर्ति में समा गई। कहा जाता है कि घर के बाहर से बारात गुजर रही थी। उसी दौरान बालपन में मीरा ने अपनी दादी से पूछा मेरा दूल्हा कौन है तब दादी ने बोला श्री कृष्ण। तभी से मीरा भगवान श्री कृष्ण को अपना पति मानती थी। मेरा भगवान श्री कृष्ण भक्ति में लीन रहती। वे हमेशा सांवरिया के दर्शन देने का इंतजार करती थी।

शोध पत्र का उद्देश्य :-

मीरा का कृष्ण के प्रति समर्पण भाव का प्रेम व उनके विरह भावना में व्यक्त व्यक्त वेदना को स्पष्ट करना है। इसमें मीरा के जीवन के कटू अनुभवों का उल्लेख किया गया है। मध्यकाल में मेवाड़ राजघराने की बहू मीरा अपने सामाजिक प्रथाओं का विरोध करते हुए संतो के पास बैठकर भजन कीर्तन व मंदिरों में नाचने से नारी स्वतंत्रता का स्वर सुनाई दे रहा है। मीरा के स्वच्छंद भक्ति पथ को जान सकेंगे। मीरा के जीवन की उदात्तता एवं आदर्श को बताया गया। एक भारतीय विधवा नारियों के सामने आने वाली कठिनाईयों को इंगित किया है।

मीरा का श्री कृष्ण के प्रति अनन्यतम प्रेम :-

मीरा भगवान श्री कृष्ण को अपना पति मान कहती है कि इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है, पर्वत को

धारण करने वाले, गायों का पालन करने वाले श्री कृष्ण ही मेरे है। मीरा भगवान श्री कृष्ण के प्रेम रंग में रम चुकी थी। वे जागते, सोते हर समय श्री कृष्ण को पुकारती थी। वह कहती है कि मैं तो भगवान श्री कृष्ण के रंग में रंग चुकी हूं। मुझे और किसी रंग की आवश्यकता नहीं है। मीरा ने भगवान श्री कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम किया। मीरा बाई के काव्य में भगवान श्री कृष्ण के प्रति समर्पण का भाव हैं। मीरा ने दुनिया में अपना एक मात्र सहारा श्री कृष्ण को ही माना है। मीराबाई की विरह–वेदना कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम और वियोग की गहरी भावना से उपजी थी। वे कृष्ण को अपना पति, प्रेमी और सब कुछ मानती थीं, और उनके वियोग में वे अत्यधिक दुखी थीं। यह वेदना उनके पदों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है, जहाँ वे कृष्ण से मिलने की तड़प, प्रेम की पीड़ा और उनके प्रति पूर्ण समर्पण का भाव दर्शाती हैं। कृष्ण से बिछड़ने के बाद मीरा की हालत एक मछली के समान हो जाती है जो पानी के बिना तड़पती है। वे कृष्ण के दर्शन के लिए हर पल व्याकुल रहती हैं। मेरा श्री कृष्ण को कहती है कि 'दरस बिन दुखण लागे नैन, जब से तुम बिछड़े प्रभु मोरे, कभी न पायो चैन। विरह में व्यथित मीरा ने भगवान श्री कृष्ण के प्रति समर्पण का भाव रखते हुए कहा कि................

मेरा तो गिरधर गोपाल, दूसरों ना कोई
जिसके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई
अंसुवन जल सींचि–सींचि, प्रेम बेलि बोयी
अब त बेलि फैली गयी, आनंद फल होय।
दासी मीरा गिरधर लाल, अब तारो मोही।

प्रेम में पर्दा प्रथा का नहीं किया पालन, स्त्री मुक्ति की बनी आवाज :–

मीरा के समय में राज दरबारों में पर्दा प्रथा चलती थी। इस दौरान रानी महारानियों को महलों से बाहर निकलना भी मुश्किल था। मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। किसी के पति के मर जाने के बाद उस महिला को भी साथ में जिंदा जलाने की सती प्रथा जैसी घोर कुरीति कायम थी। मीरा संतो के पास बैठकर ज्ञान प्राप्त करना ही मोक्ष का मार्ग समझती थी। इसलिए मीरा भगवान श्री कृष्ण का भजन गाते–गाते कई बार नृत्य करती थी। वे खुद कहती है कि मैंने लोगों की लज्जा को खो दिया है। अब मेरा कोई कुछ भी बिगाड़ने वाला नहीं है। भगवान श्री कृष्ण के प्रति मीराबाई ने पितृसत्तात्मक समाज की मान्यता को चुनौती देते हुए अपने भक्ति के माध्यम से स्त्री सशक्तिकरण का संदेश दिया। मीराबाई ने महिलाओं की स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता पर जोर दिया। उन्होंने अपने पद के माध्यम से जीवन के फैसले खुद लेने के लिए प्रेरित किया। कृष्ण की प्रेम भक्ति को अपनाकर सांसारिक से मुक्ति पाने की मीरा ने कोशिश की।

छाडी दयी कुल की कानि, का करि है कोई
संतन ढिग बैठि–बैठि लोक–लाज खोयी।

मीरा ने सामाजिक आलोचनाओं का किया मुकाबला :–

मीरा के पति भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा ने भक्ति का मार्ग चुना। मीरा श्री कृष्ण भगवान की दीवानी बनी रहती थी। मीरा की भक्ति और सामाजिक परम्पराओं के अलग आचरण को लेकर दरबार के लोग और बाद में देवर विक्रमादित्य भी नाराज हो गए। उन्होंने मीरा को श्री कृष्ण की भक्ति से हटाने और दरबार की प्रतिष्ठा के अनुसार चलाने का प्रयास किया। एक बार राणा विक्रमादित्य ने मीरा के भक्ति की परीक्षा लेने के लिए विष

का प्याला भेजा। राज परिवार की बहू पर्दे में रहे जबकि मीरा लोगों के बीच नृत्य करती थी। देवर विक्रमादित्य ने मीरा को जहर देकर मारने का प्रयास किया। मीरा को लोग कई बार परिवार की परंपराओं के विरुद्ध मानते थे। लेकिन मीरा भगवान श्री कृष्ण की भक्ति के प्रति अटल रही। वह कहती है कि........

लोग कहै, मीरा भईबावरीय न्यात कहै कुल-नासी

विस का प्याला राणा भेज्या, पीवत मीरा हांसी।

महादेवी वर्मा व मीरा के वेदना की तुलना :-

महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की मीरा भी कहा जाता है। कितने ही आलोचक मीरा और महादेवी वर्मा की तुलना करके अनेक समानताओ व विषमताओं का दिग्दर्शन कराते हैं। दोनों के काव्य की मूल प्रेरणा वेदना में थोड़ा सा साम्य होते हुए भी युगों की परिस्थितियों के कारण वेदना में अंतर है। मीरा रूप की आराधिका है व महादेवी अरूप की। महादेवी में मीरा की सी आकुलता, तन्मयता, बेसुधि और अनावृत प्रेमव्यंजना नही है। इन्हे तो चिर विरह वेदना ही एकमात्र अवलंबन है। यही दुखवाद सुख दुख से आगे बढ़ाकर लोक सेवा की ओर उन्मुख करता है। मीरा और महादेवी वर्मा की वेदनाभूति में केवल प्रतीकात्मक शैली का ही अंतर नहीं है बल्कि जीवन दर्शन व भावनाओं के रूप में भी अंतर है। मीरा का वेदनावाद भक्तिपरक विरहवाद है और महादेवी का सेवावाद।

प्रेम की दीवानी मीरा को श्री कृष्ण से मिलने की उत्कंठा :-

मीरा को कृष्ण से मिलने की तीव्र इच्छा थी, जिसे 'उत्कंठा' कहा गया है। यह इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह कृष्ण को अपना प्रियतम मानती थीं और उनसे मिलने के लिए यमुना तट पर लाल साड़ी पहनकर जाने को आतुर थीं। उनकी भक्ति में प्रेम का भाव बहुत गहरा था। यद्यपि मीरा को अपने प्रियतम से कभी साक्षात्कार नहीं हुआ तो भी उनकी आशा इतनी बलवती है कि इसी के सम्बल पर वे मिलन की कल्पना करते हैं। सावन के बादल में भी सुख की अनुभूति करती है। वे कहती है कि :-

सावन दे रह्या जोहा रे, घर आयोजी श्याम मोरा रे,

उमड़ घुमड चहुं दिस से आया, गर्जत है घनघोर रे

मीरा के विरह की अनुभूति :-

मीराबाई इस बात को अच्छी तरह जानती है कि जो वह पाना चाहती है वह मिलना आसान नहीं है। कबीर ने भी कहा है कि प्रेम का घर खाला का घर नहीं है। यहां तो वही घर में प्रवेश कर सकता है जो अपना सिर उतारकर पृथ्वी पर रख सके। ऐसी दुर्लभ वस्तु जब तक नहीं मिल पाती है तब तक वियोग में रहना पड़ता है। जिसमें वेदनानूभूति होना स्वाभाविक है। यह एक तरह से सच्चे प्रेमी की परीक्षा की घड़ी है। इस पीड़ा को हर कोई जान नहीं पाता है। इस पीड़ा को वही जान पाता है जो इस स्थिति से गुजरा है। मीरा कहती है कि

हे री मैं तो दर्द दीवानी, मेरे दर्द न जाणे कोय

घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाई होय

दर्द की म्हारी बन-बन डोलू, बैद मिल्या नहि कोय

मीरा के प्रभु पीर मिटे जब, बैद सांवलिया होय।

मीराबाई का हिंदी साहित्य में योगदान :-

मीराबाई हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण भक्तिकाल की कवयित्री थीं, जिन्होंने कृष्ण भक्ति पर केंद्रित

रचनाएँ कीं। उनकी भाषा सरल, सहज और प्रेम तथा भक्ति से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने पदों और भजनों के माध्यम से भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम व विरह–वेदना को व्यक्त किया। उनकी शैली भावात्मक, गीतात्मक और गेय है। उनके पदों में भक्ति रस की प्रधानता है और वे हृदय की गहराइयों से निकली हुई प्रतीत होती हैं। उन्होंने अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है, जिससे उनकी भाषा में लालित्य और प्रभावशीलता आई है। मीराबाई की रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे भक्ति और प्रेम के शाश्वत संदेश को भी प्रसारित करती हैं। मीराबाई की भाषा सरल, सहज और आम बोलचाल की भाषा है जो राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिश्रण है। पदावली कोमल, भावानुकूल व प्रवाहमयी है। मीराबाई के पद, गीत गोविंद की टीका, नरसी जी का मायरा, मीराबाई की मालिका समेत कई रचना की।

निष्कर्ष :–

मीराबाई का श्री कृष्ण के प्रति अटल प्रेम को देखकर ऐसा लगता है कि सच्चा प्रेम हृदय से होता है। प्रेम के पथ पर आगे बढ़ती मीरा ने कई कठिनाईयों का सामना किया। लेकिन मीरा सांवरिया की भक्ति में लीन होकर श्री कृष्ण को ही सर्वोपरि माना। ससुराल वालों ने उसका लौकिक प्रेम समझ व राजघराने के विरुद्ध मानते हुए मारने का प्रयास किया। यह मीरा की नहीं बल्कि सम्पूर्ण स्त्री एवं पीड़ित समाज की त्रासदी रही है कि उसके दर्द कोई नहीं जानता है। यदि लोग जानते हो तो समाज में इन वर्गों को भी वही जगह मिलती, जो प्रभुताशाली लोगो को मिलती आ रही है। यही वजह रही है कि अपनी त्रासदियों के निवारण हेतु यह सभी समाज को छोड़कर भगवान के चरण में गए। समाज के स्तर पर इनकी विषमता व अन्याय की पीड़ा को समझकर दूर करने वाला कोई नहीं है। समझ तो स्वयं विषमता का पोषक व भेदभाव की भावना से ग्रस्त है। इस सत्य को जानकार ही मीरा ने कहा है कि मेरी पीड़ा सिर्फ सांवलिया जैसा वैद्य ही मिटा सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. मीरा मुक्तावली– नरोत्तम दास स्वामी (पृ. 38, 45)
2. मीरा का जीवन–अरविंद सिंह तेजावत (पृ. 42)
3. मीराबाई और उनकी पदावली– प्रो. देशराज सिंह (पृ. 24)
4. कृष्ण भक्त मीरा और उनका काव्य–आरपी वर्मा (पृ. 88)
5. मीरा पदावली–सं. नीलोत्पल (पृ. 49)
6. स्त्री चेतना और मीरा का काव्य–पूनम कुमारी (पृ. 25, 47, 52)
7. मीरा का काव्य– डॉ विश्वनाथ तिवारी (पृ. 34, 38)

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 74–80

हिंदी राष्ट्रवादी कवियों के काव्य में साहित्यिक सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत के सन्दर्भ में

काजल पौनयाँ, हिन्दी विभाग, शोधार्थी
वर्धमान कॉलेज महात्मा ज्योतिबा फुले, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ0 प्र0)
डॉ. अंजू बंसल, असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज बिजनौर (उ0 प्र0)

सारांश :–

भारतीय हिंदी साहित्य में कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रीयता को लेकर भारतीय कवियों ने अपनी कलम से, अपनी कविताओं से साहित्य व देश में दोहरे दायित्व का निर्वहन किया है। राष्ट्र के प्रति साहित्य में कवियों का जो योगदान रहा वह सराहनीय था। कवियों का राष्ट्रवादी, साहित्यिक एवं सामाजिक विरासत ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और समाज सुधार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रवादी कवियों ने अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं स्वाधीनता संग्राम के संघर्षों का महिमा मंडन किया है। भारतीय कवियों ने अपनी कविताओं, लेखों एवं साहित्यिक प्रयासों से राष्ट्र की एकता, पहचान व जागरूकता के अत्यन्त प्रयास किए।

राष्ट्रवादी कवियों ने अपनी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत किया। उन्होंने इससे स्वदेश और धर्म की रक्षा करने का एक महत्वपूर्ण योगदान किया। कवियों के द्वारा राष्ट्रीयता, साहित्यिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सभ्यता को अपने लेखन में बचाये रखा। इतिहास गवाह रहा है कि जब–जब देश दासता और अज्ञान के अंधकार में घिरा है तब–तब साधु–सन्तों व कवियों ने अपने काव्य में उस अतीत से प्रचलित कर उस अंधकार को मिटाने तथा हटाने का कार्य किया है। भारत सदैव एक गौरवशाली देश रहा है, जिसकी सभ्यता, संस्कृति को अनेकों देशों ने आक्रमण कर मिटाने का प्रयास किया था। किन्तु कवियों के काव्य ने अपने इस साहित्य, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता को आज भी जिन्दा रखा है। भारत एक ऐसा देश रहा है, जिसमें अनेकों धर्म, जाति, वर्ग के लोग निवास करते हैं और सभी प्रकार के लोगों द्वारा सभ्यता, संस्कृति का पालन किया जाता है। भारत में भाषा–बोली घाट–घाट पर बदलती है। यहाँ की संस्कृति को विरासत के रूप में कवियों ने अपनी कविताओं में, साहित्य में जिंदा रखा है। भारत को कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य के रूप में संदर्भित करने की कोशिश की हैं जैसे कि हिमालय, हिमाद्रि, समुद्र, नदियों आदि के रूप में व्याख्यायित किया है।

प्राचीनकाल से आज तक गंगा नदी को पवित्र गंगा माँ का दर्जा दिया है। पृथ्वी को धरती माता कहा

है। वे गाय को माता का रूप समझते और उसकी पूजा भी करते हैं। छोटी कन्याओं को देवी के रूप में पूजा गया है। इन सबको माता और देवी के रूप में पूजा जाना आदि भारत की सभ्यता, संस्कृति आदि को दर्शाता है। भारतीयों का राष्ट्रीय ध्वज के प्रति आदर्श भाव का होना, राष्ट्रगान होने पर व्यक्ति का खड़े हो जाना, शहीदों की स्मृति को नमन आदि हमारी राष्ट्रीयता को प्रदर्शित करता है। राष्ट्रवादी कवियों ने जैसे– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि ने अपनी कलम से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में योगदान दिया।

बीज शब्द :– संस्कृति, सभ्यता, जयनाद, विरासत, धरोहर, राष्ट्रीय।

प्रस्तावना :–

भारतीय हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विरासत को सदियों से बचाने का व प्रचलित करने का दर्जा कवियों का रहा है। जिन्होंने अपने काव्य में देश की संस्कृति, परम्परा, सभ्यता की महानता का गुणगान किया है। इन कवियों ने भारतीय संस्कृति के उन पहलुओं का गुणगान किया है जो हमारी पहचान और गर्व का प्रतीक हैं। भारतेन्दु युग से स्वतंत्रता का एवं राष्ट्रभावना का आह्वान हुआ। इसके पश्चात् द्विवेदी युग ने नवीन आयामों को दिशा दी। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' में लिखा है :–

रोअहू सब मिलकै आवहूं भारत आई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

अंग्रेजों के शासन से, अत्याचारों से देश में भूखमरी, महामारी से लोग मरने लगे थे। उनकी ऐसी बर्बरता को नहीं देखा जा सकता। भारतेन्दु ने भारत दुर्दशा के अतीत के गौरव की चमकदार स्मृति है। यह आँसुओं से कवियों ने अपने साहित्य में कविताओं, साहित्य से गद्य क्षेत्र में जितनी क्रान्ति की है वह किसी क्षेत्र ने नहीं की। राश्ट्रीय चेतना के इस युग के प्रबल नायकों में से भारतेन्दु थे। जिन्होंने राष्ट्रीय प्रेम की भावना जाग्रत की। इस युग का नाम इनके नाम पर उत्कृष्ट करने के लिये सर्वप्रथम महत्वपूर्ण है।

भारतीय साहित्य में कवियों का राष्ट्रीयता की ओर देश और समाज को अग्रसर करने के लिये एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतेन्दु युग के साहित्य से अंग्रेजी शासक के विरूद्ध भारत को संगठित करने का पहली बार आहान हुआ। इसी युग से राष्ट्रीयता का जयनाद शुरू हुआ था। इसके फलस्वरूप ही द्विवेदी युग ने नवीन आयामों एवं दिशाओं की ओर प्रस्थान किया।

राष्ट्रवादी कवियो का भारतीय परम्पराओं से साहित्य में योगदान रहा। जैसे– रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद, दर्शन, योग आदि को कवियों ने अपने साहित्य में शामिल किया। वाल्मिकी, वेदव्यास ने भारतीय परंपरा की नींव डाली। सांस्कृतिक धरोहर, परंपराओं ओर कलाओं का संरक्षण किया। प्रचार–प्रसार किया। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत–भारती' में अपनी देश भक्ति को दर्शाया है। उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य की चर्चा करते हुए कहते हैं :–

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारे आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।"

"साकेत" में गुप्त ने स्त्री के त्याग, बलिदान, नारीत्व की प्रमुखता दी है। सुमित्रा नंद पंत जी ने मातृभूमि की वंदना करते हुए प्रकृति को प्राकृतिक सौन्दर्य का परिचय देते हुए कहा है :–

“गौरव शाल हिमालय उज्ज्वल
हृदय हार-गंगा जल
विन्ध्य श्रेणिवत् सिन्धु चरण नत्
महिमा शतमुख गाता
आम्रबौर-तालीबान, मलय, पवन, पिक कूजन,
जन-मन नित हर्शाता
अरूणोदय-प्रभु ज्योति हज नभ
ऊपर नील सुहाता।”

आगे प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन कर 'भारतगीत' रचना में मातृभूमि के वन–उपवन, पर्वत, सरिताएं आदि के सौंदर्य को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं :–

“प्रथम सभ्यता संस्कृति ज्ञाता, साम ध्वनित गुणगाथा
जय नव मानवता निर्माता सत्य अहिंसा दाता।”

इस प्रकार पंत जी ने भारत की सभ्यता, संस्कृति का एक प्राकृतिक रूप से वर्णन किया है।

''निराला'' जी ने अपने जीवन में एक अलग और निराली भक्तियुक्त कविताओं से देश भक्ति का उदाहरण दिया। निराला ने अपने समस्त कार्यों का लक्ष्य, आधार, भक्ति आदि भारत को ही माना है। ''देवी सरस्वती'' रचना में निराला ने भारत के विश्व रूप को दर्शाया है और स्वयं देवी सरस्वती के दर्शन करते हुए कहते हैं :–

“विश्व रूपणी तुम हो, तुम्हें मूर्ति में रचकर
पूजा की वसंत के दिन।”
“हरी भरी खेतों की, सरस्वती लहराती
मग्र किसानों के घर, उन्मद बाजी बधाई।”

आगे निराला जी पर्वत, हिम आदि का वर्णन करते हुए 'भारति जय विजय करे'' में कहते हैं कि :–

“गंगा ज्योर्तिजल-कण, धव-धार हार गले।
मुंकुट शुभ्र हिम-तुषार, प्राण प्रणव ओंकर।
ध्वनित दिशाएँ उदार, शतमुख-शन्तख-मुखरे।”

पंत जी अपनी रचना ''ज्योति भारत'' में संसार को सर्वप्रथम सभ्यता, संस्कृति का पाठ पढ़ाने वाला भारत के बारे में कहते हैं कि ऐसा शायद ही कोई देश हो जिसकी संस्कृति में ज्ञान, भक्ति तथा धर्म, कर्म का समान रूप से वर्णन हुआ हो। आज संसार में अनेकों संस्कृतियों को खण्डहर बना दिया गया है। परन्तु भारत की संस्कृति निरन्तर परिवर्तित हुई है। और आज भी उपस्थित है। भारत के लोगों को पंत जी संस्कृति के रूप में अभिवादन करते कहते हैं कि :–

आज समापन युग का वृन्त पुरातन,
भू पर संस्कृति चरण घर रही नूतन
रंग-रंग की आभा पंखड़ियाँ

बरसाता झुक अम्बर
खोलो उर के रूद्ध द्वार, जन
हँसता स्वर्ण युगान्तर।''

मुक्तिबोध विचार और कविता में डॉ0 देवेन्द्र कुमार जैन, व राजेन्द्र मिश्र कहते है कि ''काव्य में क्षेत्र में मुख्य प्रश्न जीवन चेतना का है'' अभिव्यक्त सम्पदा के अन्वेषण का नहीं। काव्य सौन्दर्य के लिए सौन्दर्य की थियरी आवश्यक है। रचनाकार के मन में सौन्दर्य का कोई नमूना कोई डिजाइन कोई पैटर्न होता है। कवि रचना करते समय सचेत नहीं रहता। बिन्दु अभिव्यक्ति के प्रयास में सतत् अन्वेषण आवश्यक है। मुक्तिबोध के अनुसार अनावश्यक रूप से तर्क में उलझना रचनाकार के लिए उचित नहीं है। काव्य में कलानुभूति की जीवन के साथ समानान्तरता का सिद्धान्त भी उचित नहीं है। क्योंकि कला और जीवन का कोई विरोध नहीं। सौन्दर्यनुभूति और जीवनानुभूति की दो विभिन्न कक्षाओं पर समानान्तर गति नहीं होती। वस्तुतः सौन्दर्यनुभव के तत्व जीवन के माध्यम से जीवनयापन का ही एक भाग है। कामयानी एक पुनर्विचार में मुक्तिबोध ने इसी कारण रचनाकार के मूल्यांकन में भावानुभूति के साथ ही जीवन मूल्य को भी आवश्यक माना है।''

इसी बीच एक महान शायर और देश भक्त ''फैय्याज'' ग्वालिरी सहाब 'मेरा वतन' में कहते है :–

''जहाँ को पालता है'' आज भी भूखा वतन मेरा,
बहत लुटकर भी दुनियाभर से अच्छा है चमन मेरा।
मेरे दिल से कोई पूछे कि क्या शय है वतन मेरा,
यह फूलों की जमीं मेरी, यह हीरों का गमन मेरा।
फरिश्ते जिस जमीं पर सर झुका दें, वह जमीं है यह,
जहाँ भगवान खुद अवतार लें वह है वतन मेरा।।''

उन्नीसवीं शताब्दी तक राष्ट्रीय चेतना की भारत में लहर सी उठी थी। भारतीय, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में व्यक्ति कार्यरत थे। उनके मन, हृदय में केवल एक भावना प्रबल थी वह भी राष्ट्रीय चेतना की भावना। साथ ही देश को सामाजिक स्तर पर भी ऊँचा उठाना उनका उद्देश्य था। जयशंकर प्रसाद की चन्द्रगुप्त, कामायनी, झरना, लहर आदि में राष्ट्रीयता का संकेत मिलता है। प्रसाद जी की कविता 'अब जागो जीवन के प्रभात' में देश वासियों के जगाने और जीवन की नई आशाओं का संचार करते हुए कहते हैं कि–

''अब जागो जीवन के प्रभात! वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आंसू जो झोभ भरे ऊशा बटोरती अरूण गात!
तब-नयनों की ताराएं सब- मुंद रही किरण दल में हैं।
अब, चल रहा सुखद यह मलय वात!
रजनी की लाख समेटो तो, कलरव से उठ कर भेंटों तो,
अरूणांचल में चल रही काल।''

प्रसाद जी ने अपने शब्दों से संसार की देश की उस चेतना को जगाया है जिससे व्यक्ति जीवन जीने और स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होता है। ऐसे ही विश्व मंगल की कामना करते हुए 'कामायनी' में मनु 'विराट' के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहते हैं :–

"वह विराट् था हमें घोलता, नया रंग भरने को आज,
कौन? हुआ यह प्रश्न अचानक, और कुतुहल का था राज।"

जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को दर्शाया है अपनी कविता 'झरना' में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को दर्शाते कहते हैं :–

कर गई प्लावित तन मन सारा
एक दिन तब अपाड़्ग की धारा
हृदय से झरना
वह चला, जैसे छा जल ढरना
प्रणय वन्या ने किया पसारा।

इसमे प्रकृति का चित्रण किया है और एक अनुपम व मनोरम दृश्य को दर्शाया है। जयशंकर प्रसाद का योगदान साहित्य ओर देश की संस्कृति, राष्ट्रीय चेतना को देशभक्ति के रूप में अपनी कलम से कविताओं के जरिये उकेरने की कोशिश की है। जयशंकर प्रसाद ने प्रेम की परिभाषा देते हुए ब्रजभाषा में सार्वभौमिक रूप में लाकर प्रस्तुत किया है और कहा है कि :–

"भए दुर्बल दीन तन, अरू नैन से जलधार।
वही आशा छाँह रट, पुनि हाय बारहिं बार।।

"वतन राष्ट्रीय कविता संग्रह" "फैय्याज" ग्वालियरी, "हिन्दुस्तान की औरत" में स्त्री और देश की संस्कृति को दर्शाते हुए कहते हैं :–

जमाने में न थी जब रोशनी, शरमाए वफा थी तू,
न था जब कोई रंगी नक्श, तस्वीरें हया थी तू!
बहुत मेहदूद रहकर, पैकरे नाजोअदा थी तू,
तेरी कीमत न थी कुछ भी, वह जिनसे बेबहा थी तू!
बढ़ाया है तेरी साड़ी का आँचल, तेरी इसमत ने,
कि तेरी पर्दा–दारी की है अक्सर दस्ते–कुदरत ने!"

स्त्री के परिधान और उसकी सुन्दरता का वर्णन किया है। फैय्याज जी आगे कहते हैं :–

"सती सतवन्ती सावित्री कभी तू, कभी सीता,
न तुझको मौत ने रोका न रावण ने तुझे जीता।
जस्सी वह कौन सा है दूध जो तेरा नहीं पीता,
तेरी हर बात हरि की बात है! हर गीत है 'गीता'!
भरत दुनियां में कायम धर्म का तेरी बदौलत है,
तेरे साये में रहतम है, तेरे कदमों में जन्नत है।"

स्त्री को प्रकृति का और संस्कृति का प्रतीक माना गया है। रामधारी सिंह 'दिनकर' जी ने हिंदी साहित्य में राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को धरोहर के रूप में अपनी कविताओं को सजोये रखा। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उनकी देश शान्ति से प्रेरित कविता 'रश्मिरथी', 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' (रणभेरी), 'कलम,

आज उनकी जय बोल' आदि में देश के प्रति भक्तिभाव, त्याग, राष्ट्रप्रेम आदि को प्रकट किया है। शौर्य और संघर्ष के प्रतीक एवं वीरता, अन्याय के खिलाफ यह कविता परशुराम की प्रतीक्षा की पंक्तियां इस प्रकार है :–

''शान्ति नहीं तब तक, जब तक सुख-भाग न सबका समाये
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।''

दिनकर जी आगे अपनी कविता 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' (रणभेरी) में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान क्रांति का आह्वान करते हुए कहते हैं :–

सिंहासन खाली करों कि जनता आती है।
अजय चीरते तिमिर का पक्ष उमड़ते जाते हैं
सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुँचा
33 कोटि हित सिंहासन तय करो
अभिषेक आज राजा का नहीं प्रजा का हैं
33 कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरा।

इसमें दिनकर जी ने देश में उस जनता की ताकत का एहसास कराया है जिसे राजनीति में मात्र वोट के लिये और जनसंख्या के लिये गिना जाता है। और अन्त में दिनकर जी की कविता 'कलम, आज उनकी जय बोल' उन देश के शहीदों, सेनानियों को समर्पित है जिन्होंने देश के लिए अपने प्राणों की आहूति दी है :–

''जो चढ़ गए पुण्य वेदी पर, लिए बिना गर्दन का मोल कलम, आज उनकी जय बोल।''

निष्कर्ष :–

राष्ट्रवादी कवियों ने भारतीय संस्कृति को राष्ट्रीय चेतना के माध्यम से प्रेरित किया है। मैथिलीशरण गुप्त की भारत–भारती में राष्ट्र के गौरव की गाथा का गुणगान है। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने रश्मिरथी, रेणुका, संस्कृति के चार अध्याय आदि रचनाओं में स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय मूल्यों का प्रचार किया। रवींद्रनाथ टैगोर ने गीतांजलि के माध्यम से भारतीय संस्कृति को वैश्विक मंच तक पहुंचाया। मैथिलीचरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि ने भारतीय संस्कृति, महिला, स्वतंत्रता व सशक्तिकरण के भाव को स्थान दिया है। कवियों ने अपने साहित्य में कविताओं के माध्यम से समाज में जागरूकता व चेतना फैलाने का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है।

राष्ट्रवादी कवियों ने सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत को साहित्य द्वारा भारतीय समाज की एकता व सांस्कृतिक गर्व प्रदान किया है। कवियों ने अपनी कलम से वीरों की जय–विजय करके रचनाओं में देश के स्वाधीनता संग्राम को बल दिया। भारतीय समाज की नयी चेतना का संचार कर, भारत को मजबूत और संगठित राष्ट्र बनाने की कोशिश की। साहित्यिक, सांस्कृतिक, विरासत में राष्ट्रवादी कवियों का योगदान एक स्थायी प्रेरणा का स्रोत है। ऐसे महान कवियों को मेरा कोटि–कोटि नमन। जिन्होंने देश के लिये अपनी कलम की स्वर्णिम रेखाओं से देश की विरासत को व संस्कृति को अमर कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. ''भारतीय'' (युगान्तर) पंत ग्रंथावली, भाग–2, पृष्ठ 36
2. ''भारतीय'' (युगान्तर) पंत ग्रंथावली, भाग–2, पृष्ठ 36

3. ''देवी सरस्वी'' निराला रचनावली, भाग–2, पृष्ठ 186
4. वही
5. ''भारती जय विजय करे'', निराल रचनावली, भाग–1, पृष्ठ 232
6. ''उद्‌बोधन'' पंत ग्रंथावली भाग–3, पृष्ठ 39
7. मुक्तिबोध विचार और कविता : डॉ0 देवेन्द्र कुमार जैन, डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, विचार दर्शन और सृजन प्रक्रिया के आयाम, तक्षशिला प्रकाशन 23/4761, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, पृष्ठ 33
8. 'मेरा वतन' राष्ट्रीय कविता संग्रह : ''फैय्याज'' ग्वालियरी, 'हिन्दूस्तान की और', चमन मंजिल, कर्नल साहब की ड्योढी, ग्वालियर–1, म0प्र0, प्रथम संस्करण, 26 जनवरी, 1962,, पृष्ठ 36
9. वतन, राष्ट्रीय कविता संग्रह : ''फैफ्याज'' ग्वालियरी, 'हिन्दुस्तान की और', प्रथम संस्करण, 26 जनवरी, 1962, पृष्ठ 36
10. वही, पृष्ठ 37

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 81-85
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

1857 की क्रांति के स्वरूप पर औपनिवेशिक इतिहास लेखन का समीक्षात्मक अध्ययन

कोमल सोनी
जे. आर. एफ.
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

सार :–

1857 की क्रांति भारतीय इतिहास का एक ऐसा निर्णायक मोड़ थी जिसने ब्रिटिश उपनिवेशवाद की नींव को पहली बार गम्भीर चुनौती दी। यह विद्रोह केवल सैन्य असंतोष की अभिव्यक्ति नहीं था बल्कि इसके पीछे भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या राजनीतिक संरचनाओं में हो रहे व्यापक प्रतिक्रियावादी असंतुलन व रोष की भावनाएं भी काम कर रहीं थी। ब्रिटिश शासन द्वारा लागु की गई शोषणकारी नीतियो जैसे – भारी भूराजस्वकर, रियासतों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप व सैन्य विभागो में भारतीयों के साथ भेदभाव इस विद्रोह के प्रमुख कारण रहे।

औपनिवेशिक इतिहास लेखन ने 1857 की इस व्यापक क्रांति को मात्र एक सिपाही विद्रोह व गैर योजनात्मक हिंसात्मक घटना आदि संकीर्ण विद्रोह के रूप में चित्रित किया। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इस क्रांति की राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक जड़े व जनसर्मथन को अनदेखा कर दिया। इसके विपरित इस क्रांति ने भारत में ब्रिटिश शासन की संरचना ही बदल दी व भारतीय राष्ट्रीय इतिहास की दिशा को आधारभूत गति प्रदान की।

यह शोध पत्र 1857 की क्रांति के बहुआयामी स्वरूप की आलोचनात्मक समीक्षा करता हैं एंव औपनिवेशिक इतिहास लेखन की प्रवृत्तियों का अवलोकन कर पता लगाने का प्रयास करता है कि इस लेखन ने 1857 की क्रांति के अर्थ व महत्व को किस प्रकार प्रभावित किया हैं।

शब्द संक्षेप :– 1857 की क्रांति, औपनिवेशिक इतिहास लेखन, सिपाही विद्रोह, जनभागीदारी, ब्रिटिश साम्राज्यवाद।

परिचय :–

भारतीय इतिहास में 1857 की क्रांति एक युगांतकारी घटना थी जिसने देश में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को हिलाकर रख दिया। यह क्रांति 10 मई 1857 को मेरठ रेजीमेन्ट के विद्रोह के साथ आरम्भ होती हैं। अगले दिन तक क्रांतिकारियों का प्रभाव दिल्ली पर स्थापित होता हैं जिन्हें मुगल बादशाह बहादुर भााह जफर से समर्थन प्राप्त हो जाता हैं। विद्रोह गंगा यमुना दोआब तक फैल जाता हैं, जिससे उत्तर भारत में प्रशासनिक ठांचा चरमरा गया।

हालांकि सित. 1857 में दिल्ली व 1858 के बसंत तक उतर भारत पर ब्रिटिश शासन पुनः स्थापित हो जाता हैं तत्पश्चात विद्रोह व विद्रोह की प्रकृति पर प्रारम्भिक इतिहास लेखन आरम्भ हो जाता हैं। ब्रिटिश इतिहासकारों व प्रशासकों ने इस विद्रोह को आरम्भ से ही सिपाही विद्रोह की संज्ञा देकर इसकी व्यापकता, गंभीरता व जनसहभागिता को कमतर करके प्रस्तुत किया।

जबकि यह क्रांति एक सिपाही विद्रोह व स्थानीय संघर्ष से परे एक गहरे असंतोष व आक्रोश का परिणाम थी, जो वर्षो से भारत के जनमानस में ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों (ईस्ट इंडिया कम्पनी की औपनिवेशिक हितों से प्रभावित नीतियों) के कारण पनप रहा था। साथ ही आर्थिक शोषण, धार्मिक भावनाओं का अपमान, सामाजिक संरचना में हस्तक्षेप, रियासतों के आंतरिक मामलो में हस्तक्षेप एंव उनके अवसान की पीड़ा, सभी ने मिलकर इस विद्रोह को जन्म दिया था।

लेकिन ब्रिटिश इतिहासकारों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की शोषणकारी नीतियों व दमनात्मक प्रशासन को पर्दे में रखने हेतु एवं भारत में औपनिवेशिक शासन की निरन्तरता को सुनिश्चित करने हेतु क्रांति को एक सीमित सैन्य बगावत के रूप में चित्रित किया। इस औपनिवेशिक दृष्टिकोण ने न केवल तत्कालीन ब्रिटिश नीति को वैध ठहराने का कार्य किया बल्कि आने वाली पीढियों को भी इतिहास की एक एंकागी और पक्षपाती छवि से परिचित करवाया।

हालांकि समय के साथ–साथ भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारो जैसेः– रमेशचन्द्र मजूमदार, विपिनचन्द्र, सुरेन्द्रनाथ सेन आदि ने इस औपनिवेशिक लेखन को चुनौती दी एंव क्रांति को भारत के स्वतंत्रता सग्रांम के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसके सामाजिक – राजनीतिक आयामों को उजागर किया। राष्ट्रवादी इतिहासलेखन ने इसे सैनिक विद्रोह के सीमित स्वरूप के बजाय भारतीय कृषकों, जमीदारों, अन्य वर्गो सहित समाज की व्यापक भागीदारी वाला एक जन आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया।

1857 की क्रांति का स्वरूप केवल इसके नेतृत्व, क्षेत्रीय विस्तार व वर्ग भागीदारी से ही नहीं बल्कि उस वैचारिक चेतना से भी तय होता हैं जो कि ब्रिटिश सत्ता के विरोध में भारतीय समाज में विकसित हो रही थी। क्रांति उत्तर भारत में सुनियोजित संगठन के रूप में व अन्य क्षेत्रो में स्वतः स्फूर्त असंगठित स्वरूप में भी उभरती हैं।

इस शोध का उदेश्य यह विश्लेषण करना है कि औपनिवेशिक इतिहास लेखन ने इस विद्रोह को किस प्रकार संकुचित व विभाजित स्वरूप में प्रस्तुत किया हैं एंव स्वत्रंत भारत की ऐतिहासिक चेतना व राष्ट्रीय गौरव को भी प्रभावित किया हैं। यह शोध इस अध्ययन में 1857 की क्रांति के बहुआयामी स्वरूपों की भी पहचान करता है।

इस प्रकार यह शोधपत्र 1857 की क्रांति को 2 स्तरों पर समझनें का प्रयास करेगा एक औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत की गयी व्याख्यायें एंव दूसरा, क्रांति का वास्तविक ऐतिहासिक सामाजिक स्वरूप। इस शोध में 1857 की क्रांति को केवल घटनात्मक दृष्टि से नहीं देखकर उसके विचारात्मक संदर्भो व व्याख्यात्मक विमर्शों की कसौटी पर भी समझने का प्रयास किया गया हैं।

शोध विधि :–

यह शोध मुख्यतः साहित्यिक विश्लेषण व इतिहास लेखन समीक्षा पर आधारित हैं। शोध पत्र में औपनिवेशिक साहित्य एंव प्रमुख इतिहासकारों जैसे :– रमेशचन्द्र मजूमदार, विपिनचन्द्र आदि के साहित्य का अध्ययन किया गया हैं। हालिया शोध पत्रों का भी अध्ययन कर विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना की गई।

ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन विधि का भी प्रयोग किया गया हैं।

चर्चा एंव विश्लेषण :-

1857 की क्रांति को लेकर इतिहासलेखन में जो विविध दृष्टिकोण सामने आये है, वे इस बात को स्पष्ट करते है कि ऐतिहासिक घटना की व्याख्या केवल तथ्यों के आधार पर ही नहीं अपितु सत्ता, लेखक के दृष्टिकोण, वैचारिक पूर्वाग्रहों व उदेश्य के आधार पर भी प्रभावित होती है। क्रांति के स्वरूप के संदर्भ में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता हैं क्योंकि औपनिवेशिक इतिहास लेखन ने भारतीय इतिहास को राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल करते हुए विद्रोह की व्याख्या की हैं, जिसे हम इस तरह समझ सकते हैं।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा 1857 की क्रांति को सैनिक स्वरूप में प्रस्तुत किया गया। जिससे कम्पनी के प्रशासन का बचाव हो सके व कम्पनी की शोषणकारी नीतियों को प्रकाशन में आने से रोका जा सके। ब्रिटिश इतिहासकार सर जॉन सीले ने क्रांति के संदर्भ में कहा था कि "यह एक ऐसा विद्रोह था, जो राष्ट्रभक्ति विहीन सैनिको द्वारा किया गया था एंव इसमें स्थानीय नेतृत्व का अभाव था।" जॉन लारेन्स, ट्रेवेलियन, मालेसन, जे. डब्लयु. केयी जैसे इतिहासकारों ने भी क्रांति के सैन्य स्वरूप का समर्थन किया था।

इस मत का खंडन विभिन्न विद्वानों ने किया। तत्कालीन ब्रिटिश संसद के प्रतिपक्ष के नेता बेजांमिन डिजरायली ने 27 जुलाई 1857 को हाउस ऑफ कॉमंस में कहा था कि "यह आन्दोलन एक राष्ट्रीय विद्रोह था न कि सिपाही विद्रोह।" डिजरायली के मतानुसार यह विद्रोह एक आकस्मिक प्रेरणा नही था अपितु एक सुनियोजित व सुसंगठित प्रयत्नों का परिणाम था जो अवसर की प्रतीक्षा में थे। उनके अनुसार किसी साम्राज्य का उत्थान या पतन किसी चर्बी लगे कारतुसों के मामले से नहीं हो सकता वरन ऐसे विद्रोह उचित व पर्याप्त कारणों के एकत्रित होने से होते हैं।

इसी क्रम में अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक "द ग्रेट रेबेलियन" में भी क्रांति के राष्ट्रीय स्वरूप का उल्लेख किया था। साथ ही 1857 के संग्राम के भारतीय सरकारी इतिहासकार सुरेन्द्रनाथ सेन ने भी स्पष्ट किया था कि "1857 की घटना का आरम्भ धर्म के संघर्ष के रूप में हुआ था एवं इस घटना का अंत स्वतत्रंता संग्राम के रूप में हुआ"।

क्रांति के संदर्भ में धार्मिक स्वरूप भी जोड़ने का प्रयास किया गया हैं, जिसमें औपनिवेशिक इतिहासकारों जैसे रॉबर्टस व कूपलेंड ने क्रांति को "मुस्लिम विद्रोह", जुडेक्स ने "हिन्दू विद्रोह" एंव आउट्रम ने इसे "हिन्दू शिकायतों का फायदा उठाकर किया गया मुस्लिम षडयंत्र बताया था"। क्रांति के व्यापक व बहुआयामी स्वरूप को धार्मिक स्वरूप मात्र बताकर क्रांति की मूल वैचारिक धारणा को नकारात्मक तरीके से प्रभावित करने का यह औपनिवेशिक प्रयास मात्र था, जिसे विभिन्न इतिहासकारों के मत से खंडित किया जा सकता है। जैसे मोलसन व टेलर द्वारा क्रांति को "हिन्दू मुस्लिम संयुक्त प्रयास" कहना एंव एचिसन द्वारा यह कहना कि "इस मिशाल में हम हिन्दुओं को मुसलमानों से भिड़ा नही पायें।" साथ ही सुरेन्द्रनाथ सेन ने भी अपनी पुस्तक '1857' की प्रस्तावना (जिसका लेखन मौलाना आजाद ने किया था) में क्रांति सम्बन्धी धार्मिक मत का खंडन किया हैं।

ब्रिटिश इतिहासकार एल.ई.आर.रीज ने क्रांति को "ईसाइयों के विरूद्ध धर्मान्धो का युद्ध" बताया था, जो कि ठीक प्रतीत नहीं होता है क्योंकि क्रांति में ईस्ट इंडिया कम्पनी की तरफ से विद्रोह दमन में प्रयासरत सैनिकों में ईसाई–सैनिकों की अपेक्षा गैर ईसाई सैनिक अधिक थे, जिनमें गोरखा, सिख, बम्बई, मद्रास की बटालियन

प्रमुख थी। क्रांति के पूर्व भी भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासन में यूरोपीय कर्मचारियों की तुलना में भारतीय कर्मचारी व सैनिक अपेक्षाकृत अधिक संख्या में थे।

जॉन केयी ने क्रांति को "श्वेत लोगों के प्रति अश्वेत लोगों का संघर्ष" कहा था लेकिन यह बात पूर्णतया सही प्रतीत नहीं होती हैं क्योंकि क्रांति के समय भारत में सारे श्वेत लोग आपस में एक तरफ थे परंतु सभी अश्वेत लोग एक तरफ नहीं थे। क्रांति के दमन में अश्वेत शासकों के साथ–साथ अश्वेत जनता की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। जैसे कि कैप्टन मेडले ने कहा था कि "भारतीय लोगो ने गोरे सैनिकों की हर प्रकार से मदद की थी।"

इसके अलावा टी आर होम्स जैसे विचारकों ने इसे "बर्बरता व सभ्यता के बीच युद्ध" की संज्ञा दी। ऐसे विचारों से कहीं न कहीं संकीर्ण मानसिकता से ग्रसित एवं दुस्साहस से परिपूर्ण वक्तव्य का पता चलता है क्योंकि दिल्ली, लखनऊ, कानपुर आदि स्थलों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा विद्रोह के दमन की आड़ में किये गये अमानवीय कृत्यों जैसे :– हडसन के द्वारा दिल्ली में किये गये नरसंहार; जिसकी तुलना एलफिंस्टन ने नादिरशाह के द्वारा किये गये नरसंहार से की थी, इलाहाबाद व अन्य स्थलों पर निर्दोष लोगों को सार्वजनिक रूप से फांसी पर लटकाना आदि से पता चलता हैं कि क्रांति में किसने सभ्यता व किसने बर्बरता का प्रदर्शन किया था।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते है कि होम्स के द्वारा दिये गये विचार कहीं न कहीं पूर्वाग्रह व जातीय भेदभाव से ग्रसित थे। इसी प्रकार व्हीलर ने क्रांति के बारे में कहा था कि "यह एशियाई स्वभाव का परिचायक मात्र था।" यह भी नस्लीय भेदभाव से ग्रसित कथन प्रतीत होता हैं।

1857 की क्रांति के स्वरूप के संदर्भ में उपर्युक्त औपनिवेशिक लेखन के समीक्षात्मक अध्ययन के पश्चात हम समझ सकते हैं कि साम्राज्यवादी लेखन ने विद्रोह के स्वरूप को सीमित, अराजक एवं प्रतिक्रियावादी बताकर इसके व्यापक सामाजिक, राजनितिक व राष्ट्रीय स्वरूप को दबाने का प्रयास किया है। जिस कारण से 1857 की क्रांति की ऐतिहासिक व्याख्या लम्बे समय तक ब्रिटिश दृष्टिकोण से प्रभावित भी रही है। हालांकि राष्ट्रवादी व उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टिकोणों से क्रांति का लेखन व पुनर्व्याख्या की गयी हैं एंव साम्राज्यवादी प्रभावों को समाप्त कर क्रांति को वस्तुनिष्ठ व अधिक समग्र तरीके से लिखने का प्रयास किया गया हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने यह भी स्पष्ट किया है कि विद्रोह का स्वरूप बहुआयामी था। जैसे कहीं सामंतो के विरूद्ध किसान विद्रोह रूप में एवं कहीं राजनीतिक सत्ता की पुनर्प्राप्ति के रूप में। इसमें भारतीय समाज के विभिन्न वर्गो ने भागीदारी की थी। अतः क्रांति को मात्र एक दृष्टिकोण के आधार पर समझा नहीं जा सकता हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात शोध में क्रांति के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ निश्चित अवधारणाओं का उल्लेख किया जा सकता हैं। जैसें के.सी.ए. बेली ने कहा कि "विद्रोह करने वालों की प्रेरणाओं में विविधता थी"। मेटकाफ ने भी लिखा है कि "अपनी भविष्य दृष्टि में विद्रोह के नेता निराशाजनक सीमा तक परस्पर विरोधी थे।" अतः 1857 के नेतृत्वकारियो में प्रेरणाओं की विविधता के साथ–साथ भविष्य हेतु निश्चित एवं साझा राजनैतिक दृष्टि का भी अभाव था। लेकिन यह स्पष्ट है कि क्रांति में शामिल नेतृत्वकारियों में विदेशी शासन के लिए साझा रूप में घृणा की भावना व्याप्त थी एंव घृणा के साथ–साथ इस विदेशी शासन से मुक्ति की इच्छा भी थी।

1965 में टॉमस मेटकॉफ ने लिखा था कि "इस बात पर व्यापक सहमति है कि यह सैनिक गदर से अधिक मगर एक राष्ट्रीय विद्रोह से कम कोई चीज था"। विद्रोह उत्तर भारत में जनप्रिय चरित्र के कारण निश्चित ही सैन्य विद्रोह से अधिक व्यापक था। लेकिन राष्ट्रवाद जैसी भावना के अभाव में विद्रोह हेतु प्रेरणाओं में विभेदता

एंव भविष्य हेतु साझा दृष्टि के अभाव में इसे राश्ट्रीय विद्रोह से कम कोई चीज कहा गया लेकिन सुरेन्द्रनाथ सेन के कथन "राष्ट्रीयता के अभाव में भारत का पहला स्वतत्रंता संग्राम" के आधार पर हम सन 1857 की क्रांति को भारत का स्वतत्रंता संग्राम निश्चित रूप से कह सकते है, जिसने असफलता में भी भारतीय राष्ट्रीय स्वतत्रंता संग्राम के लिये प्रेरणा स्त्रोत का काम किया हैं।

निष्कर्ष :-

1857 की क्रांति भारतीय इतिहास की एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण घटना थी, जिसे किसी एक परिप्रेक्ष्य में समेटना न केवल कठिन होगा बल्कि अनुचित भी होगा। इस विद्रोह ने न केवल ब्रिटिश उपनिवेशवाद की नींव को चुनौती दी बल्कि भारतीय समाज व भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की दिशा व गति में एक नई चेतना का संचार भी किया।

इस क्रांति के पीछे न केवल सैन्य असंतोष बल्कि कृषकों, दस्तकारों, पूर्व शासक, धार्मिक नेता, जनसामान्य आदि के असंतोष की मिलीजुली शक्ति कार्य कर रहीं थी। शोध पत्र के माध्यम से स्पष्ट है कि ब्रिटिश इतिहासकारों ने क्रांति की सीमित व पूर्वाग्रही व्याख्या की थी एवं क्रांति को सीमित व विभाजित रूप में प्रस्तुत किया ताकि ब्रिटिश सत्ता को वैध ठहराया जा सके। राष्ट्रवादी एंव उत्तर आधुनिक इतिहासकारो द्वारा क्रांति पर लेखन कार्य कर साम्राज्यवादी व्याख्या को दूर करने का प्रयास किया। समकालीन शोध इसे और अधिक समावेशी, क्षेत्रीय, स्त्रीवादी व जनवादी दृष्टिकोण से देख रहा है।

अतः 1857 की क्रांति को समझने के लिए आवश्यक है कि हम क्रांति के बहुआयामी स्वरूप को समझे एंव इतिहास लेखन की विचारधाराओं से भी परिचित रहे, जिससे अधिक वस्तुनिष्ठ व अधिक समग्र–समावेशी तरीके से इतिहास की पुनर्व्याख्या की जा सके।

संदर्भ सूची :-

1. सेन, एस. एन. – 1857 द रिवॉल्ट, प्रकाशन डिविजन, भारत सरकार, 1957
2. रीज, ई.एल.आर. (1990), ब्रिटिश पॉलिसी इन इंडिया. लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. कुमार, रचित. (2022) 1857 की क्रांति का स्वरूप एक समीक्षात्मक अध्ययन, आईजेऐआरपीएस।
4. वेल्डन, एच.एन. 1857 के विद्रोह पर दृष्टिकोण, कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. चंद्राए विपिन. (2009) आधुनिक भारत का इतिहास ऑरियन्ट ब्लेकस्वान।
6. गुहा, रणजीत. एलीटस एंड सबाल्टर्न्स इन इंडियन हिस्ट्री, सबाल्टर्न स्टडीज वॉल्युम – 1
7. मजूमदार, रमेशचन्द्र. सिपॉय म्युटिनी एंड द रिवॉल्ट ऑफ 1857, फर्म्स मुखर्जी एंड कम्पनी कलकता।
8. शर्मा, मीना. 1857 की क्रांति के इतिहास लेखन के विभिन्न आयाम, नई दिल्ली विश्वविद्यालय।
9. जॉन, मार्कस. 1857 और ब्रिटानी मिडिया, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. जॉन, सेलेबीज. ब्रिटिश पॉलिसी एंड रिवाल्ट ऑफ 1857. ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. सिंह, धर्मराज. 1857 की क्रांति : सामाजिक राजनैतिक परिपेक्ष्य।
12. गौतम, रिया. 1857 की क्रांति का स्वरूप और इतिहासलेखन।

जीमेल- ks5297020@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 86-89
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

जहाँगीर कालीन चित्रकला

लक्ष्मी कुमारी
पीएचडी रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा झारखण्ड।

सारांश :-

भारत में चित्रकला का विकास, मुगल शासन के दौरान हुआ। मुगलकाल में चित्रकला का वास्तविक विकास अकबर के काल में हुआ। अकबर कला का पारखी था, अकबर ने चित्रकला को प्रोत्साहित करने के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की, इसका नाम तस्वीरखाना था। जहांगीर भी अपने पिता जैसा ही कला प्रेमी था। जहाँगीर के काल में चित्रकला की बड़ी उन्नति हुई। वह स्वंय अपने पिता से अधिक नहीं तो उस जैसा ही कला प्रेमी में रुचि दिखलाई। जहाँगीर काल में कुछ ऐसे चित्रकार भी थे जो प्राकृतिक चित्रण के चित्र बनाने में माहिर थे।

मुख्य शब्द – जहांगीर कालीन, चित्रकला, तस्वीरखाना, कला–प्रेमी।

प्रस्तावना :-

मुगल सम्राट चित्रकला के प्रेमी थे। चित्रकला के क्षेत्र में इसलिए असाधारण विकास हुआ। अकबर के काल में, चित्रकला की उन्नति प्रारम्भ हुई और जहाँगीर के समय में यह चरमोत्कर्ष पर आ पहुंची। अकबर के समय में चित्रकला के क्षेत्र में बहुत् अधिक उन्नति हुई क्योंकि उसने अपने दरबार में हिन्दू और मुस्लिम चित्रकारो को संरक्षण दे रखा था।

जहांगीर के शासनकाल में चित्रकला चरम–शिखर के विकास पर पहुँच गई थी, इसलिए इनका शासनकाल चित्रकला का स्वर्ण युग माना जाता है। जहाँगीर को चित्रकला में सबसे अधिक रुचि थी।[1]

जहांगीर स्वंय एक अच्छा चित्रकार था। वह अपनी आत्मकथा में लिखता है – ''जहाँ तक मेरा संबंध है चित्रकला के प्रति मेरा प्रेम और उसे परखने की निपुणता इस सीमा तक पहुंच गई है जब किसी मृत एवं विद्यमान चित्रकारों का कोई भी चित्र बिना मुझे बताये, मेरे समक्ष लाया जाता है तो मैं तत्काल ही बता देता हूँ कि यह चित्र अमुक चित्रकार का है।'' जहाँगीर के काल में प्रसिद्ध चित्रकारों में, उस्ताद मंसूर और अबुल हसन थे। जहांगीर अपने कार्यकाल में सर्वश्रेष्ठ चित्रकार अबुल हसन को मानते थे। जिसने जहांगीर के राज्यारोहण का चित्रण बनाया था। जहांगीर के समय हिन्दू चित्रकारों मे विशनदास, केशव, बन्धु, तुलसी आदि प्रमुख थे। इसके समय चित्रों के प्रमुख विषय थे – आखेट, प्राकृतिक दृश्य, पेड़–पौधे, मानव–चित्र, धार्मिक कथाएँ, पक्षी, फल–फूल, दरबारी जीवन, ऐतिहासिक आदि।[2]

जहांगीर को चित्रों का संग्रह करने का शौक था। जहाँगीर के काल में चित्रों में बारीक कार्य का भारी महत्व है। जहाँगीर चित्रकला में विभिन्न संस्कृतिक पहलुओं का संयोजन भी है। उसके समय में प्राकृतिक चित्रण की विशेषता भी रही। जहांगीर स्वयं की अपनी रानी की तथा परिवार के सदस्यों के साथ अपने भाबीहे (व्यक्ति चित्र पोट्रेट) बनवाता था। वह चित्रकला का इतना बड़ा पारखी था कि चित्र बनाने वाले कलाकार का नाम चित्र देखकर बता देता था, यही नहीं यदि एक चित्र कई कलाकारों द्वारा बनवाया गया होता था तो वह यह भी बता देता था कि कौन सा चित्र किस कलाकार ने बनाया है।[3]

जहाँगीर के काल में कलाकार को कल्पना अधिक तथा स्वन्त्रता को प्राप्त किया। इस काल में चित्रकारों को सूचीबद्ध किया जाता था।[4]

जहांगीर के भाासनकाल में यूरोपियन चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा। यूरोपियन चित्रों का एक विशाल संग्रह विशनदास द्वारा सन् 1588 ई० को तैयार किया गया तथा 'कालीलामय', 'दिमनाह' नामक प्रतिलिपि तैयार की गई। यूरोपियन कला से प्रभावित 'देवी मरियम' के चित्रों की आकृतियाँ भी इस समय चित्रित की गई। जहाँगीर के शासनकाल में भी ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र चित्रित किये जाते थे, जिनमे एक चित्र तो 13 फुट लम्बा और 13 इंच चौड़ा और दो भागो में विभाजित था, उसे चित्रित किया।[5] जहांगीर उच्च शिक्षा प्राप्त और सुसंस्कृत राजकुमार था। फारसी तथा तुर्की भाषाओं पर असमान्य अधिकार था और हिन्दी, अरबी तथा कुछ अन्य भाशाओं से भी परिचित था। उसकी फारसी भाषा का ज्ञान अति विस्तृत था और उसका फारसी लेखन शैली सादा और सुन्दर था।

जहाँगीर के काल में फुटकर चित्रों की प्रथा का आरम्भ हुआ। इन चित्रों की जिल्द तैयार नहीं की जाती थी, वरन् इन्हें स्वतन्त्रता पूर्वक बनाया जाता था।[6]

डॉ बेनी प्रसाद के अनुसार – वास्तव में उसकी कीर्ति उसके पिता के यश के कारण और उसके पुत्र के चौधियाने वाले ऐश्वर्य के कारण फीकी पड़ गई हैं। जहाँगीर का शासनकाल साम्राज्य के लिए शान्तिपूर्ण और समृद्धशाली रहा। उसके राज्य में व्यापार और कला–कौशल की उन्नति हुई, चित्रकला उच्च शिखर पर पहुंची।[7] जहाँगीर ने आकृति चित्रकला की परम्परा को आरम्भ रखा, किन्तु इसी कारण दो सम्राटों के राज्यकाल में बनाये गये चित्रों में अन्तर पाना असम्भव था। उस समय की आकृति चित्रकला लोकप्रिय हुई, जिनमें सम्राट तथा उसके पारिवारिक सदस्यों के चित्र तैयार किये गये थे। महिलाओ के छवि–चित्र भी तैयार किये जाते थे, जैसे–राजकुमारियों, रानी के जैसे रानी नूरजहां, मुमताज महल इत्यादि के रूप चित्रों को चित्रकार कुशलता के साथ चित्रित करता था। लेकिन चित्रण कला उच्च घरानों तक ही, सीमित थी किन्तु चित्रकार को हरम में प्रवेश वर्जित था।[8]

मुगलकालीन आकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता ये है कि उस समय यूरोप का प्रसिद्ध चित्रकार 'रेम्ब्रा' अपनी रचनाओं के लिए भारतीय लघु चित्रों का प्रयोग कर रहा था, उसके लिए तो भारतीय चित्रकार प्रेरणा स्रोत थे।[9]

जहाँगीर ने अपने आत्मचरित में स्वयं लिखा है कि विशनदास शबीह चित्र लगाने में बेजोड़ है। सम्राट जहांगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक–ए–जहांगीरी' में लिखा है कि विसनदास ने मेरे भाई शाह अब्बास की ऐसी सच्ची शबीह बनाई कि मैंने जब उसे शाह के नौकरों को दिखाया तो वे मान गये। मैने विसनदास को एक हाथी

और बहुत कुछ पुरस्कार दिया।[10] सम्राट जहाँगीर की चित्रकला सम्बन्धी योग्यता पर प्रकाश डालते हुए सर टामस रो ने लिखा है ''बादशाह जहाँगीर के लिए कुछ चित्र दिखाये जिनमें से एक चित्र जहाँगीर को पसन्द आया। मुझे विश्वास था कि हिन्दुस्तान में उसकी नकल असम्भव है। एक दिन बादशाह ने मुझे बुलाकर पूछा उस चित्र को दुबारा बनाने वाले को क्या दोगे, मैंने कहा चित्रकार का पुरस्कार पच्चास रुपया है। सम्राट ने उत्तर दिया कि मेरा चित्रकार मनसबदार है। उसके लिए यह पुरस्कार बहुत कम है। जहाँगीर ने एक रात के लिए चित्र को ले लिया। मुझे यह पहचानना कठिन हो गया कि उनमें कौन–सी उसकी मूल तस्वीर है कठिनता से मैं अपना चित्र पहचान सका।[11]

जहाँगीर ने अपने मनोरंजन के लिए दयालुता, मित्रता, क्रोध, सहृदयता इत्यादि के चित्रण को अधिक प्रोत्साहन दिया यहाँ तक कि युद्ध दृश्यों के भी चित्रण तैयार किये जाते थे जिसमें पशु–वध, ऐतिहासिक घटनाओं, सांस्कृतिक समारोह में वाद्य–यन्त्र बजाते हुए तथा देवी सेविकाओं के सजीव चित्रों को जहाँगीर काल में बनाया जाने लगा। चित्रकला इस समय अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। इस काल मे भित्ति चित्रकला को भी आश्रय दिया गया। जहांगीर के काल में चित्रकारों की स्थिति अच्छी थी। चित्रकला इस समय मनसबदार हुआ करते थे। कार्य करने के लिए 'चित्रशालाये हुआ करती थीं, जिसमे फारसी, भारतीय हिन्दु–मुस्लिम चित्रकार थे। अकबर के समान जहाँगीर भी चित्रकारों के कार्यों का मूल्यांकन करता था। उत्तम श्रेणी का चित्र होने पर पुरस्कृत किया जाता था। जहाँगीर के शासनकाल के दरबारी चित्रण का बोलबाला अधिक हो गया था। इसलिए चित्रण, दरबारी चित्रित किये गये तथा दरवेशों से मिलते हुए एवं शाही क्रियाकलापों का चित्रण किया गया है। इस समय तक आकृति चित्रण का कार्य पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।[12]

निष्कर्ष :–

जहाँगीर के पश्चात मुगल चित्रकला का पतन हो गया। पर्सी ब्राउन ने लिखा है जहाँगीर की मृत्यु के साथ–साथ चित्रकला की आत्मा विलीन हो गई। यद्यपि सुनहले और बहुमूल्य सजावट के रूप में इसका कंकाल थोड़े दिनो अन्य मुगल सम्राटो के समय तक बना रहा, परन्तु इसकी वास्तविक आत्मा जहाँगीर के साथ समाप्त हो गई जहाँगीर ने कला को धर्म के साथ सम्मिलित करके मुगल काल में एक नये आदर्श की स्थापना की। उसने वास्तव में हिन्दु–मुस्लिम और इसाई धर्म गुरुओं, कवियों और कला से निकट सम्बन्ध स्थापित करके विभिन्न धर्मों के मूल आदर्शों का ज्ञान प्राप्त किया। कला का वास्तविक विकास जहाँगीर के शासनकाल में ही हुआ। मुगलकालीन कला को महत्वपूर्ण हिस्सा बनाने का अथक प्रयास किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. एस.एल. नागोरी, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं, वास्तुकला, सबलाइम पब्लिकेशन्स जयपुर, 2005, पृ.सं–210–11.
2. हेतसिंह बघेला, भारतीय संस्कृति का विकास, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008, पृ.सं. – 168
3. अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो बरेली, प्रथम संस्करण 1968, पृ.सं. –164
4. नन्द लाल बसु, विश्व आरती, ग्रन्थालय, कलकत्ता, 1949, पृ.सं–164

5. मनोहर लाल, कला एक अध्ययन प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं–150
6. आईन–ए–अकबरी, भाग–1, द्वितीय संस्करण, पृ.सं. – 116
7. पीयूश, चौहान, मध्यकालीन भारत, राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पीयर्सन, 2012, दिल्ली, पृ.सं–168
8. झारखण्ड चौबे, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ. स.–600
9. गौरी शंकर, हीराचन्द ओझा, राजपूताना का इतिहास, अजमेर, 1927, पृ.सं.–66
10. लईक अहमद, भारतीय संस्कृति, पृसं. 163
11. पर्सी ब्राउन, इण्डियन पेटिंग, पृ. 90
12. तुजुके ए जहाँगीरी (रोजर्स बेबरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद) भाग–1, पृ.सं. – 21

email : mananjay.yadav@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 90–96

कुमाऊँ (कपकोट) की बदियाकोट भगवती मंदिर का धार्मिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

माला
शोध छात्रा, इतिहास विभाग,
डी0 एस0 बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

शोध सार :–

उत्तराखण्ड को देवभूमि नाम से जाना जाता है जहां पर देवी–देवताओं के अनुष्ठान, पूजा–पाठ की अनेकानेक परम्पराएं क्षेत्र विशेष के आधार पर देखने को मिलती हैं। जिनमें यहां के लोक देवी–देवीताओं की उल्लेखनीय भूमिका है। जैसे–गोलू देवता, सैम देवता, हरज्यू, थानवासी देव एवं अनेकों देवी परम्पराएं विद्यमान हैं प्रमुख देवियों में नन्दा देवी का स्थान उल्लेखनीय है ऐतिहासिक तौर पर जिन्हें कुमाऊँ के चन्द राजवंश की कुलदेवी के रूप में पूजा जाता है। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में नन्दा देवी के विभिन्न स्वरूपों को क्षेत्र विशेष की मान्यतानुसार अलग–अलग स्वरूपों में देख सकते हैं, जिनका अपना अलग–अलग धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व है। इसी क्रम में कपकोट बागेश्वर में स्थित बदियाकोट की भगवती मंदिर का स्थान उल्लेखनीय है जो कुमाऊँ–गढ़वाल की विशिष्टताओं को लिए हुए है। बदियाकोट की भगवती देवी को नन्दा देवी के ही रूप में पूजा जाता है यहां होने वाली पूजा–पाठ, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यतायें, लोकजात यात्रायें यहां की लोक संस्कृति का दर्पण प्रस्तुत करती हैं। उल्लेखनीय है बदियाकोट की भगवती मंदिर में मां भगवती के साथ ही तिब्बतियों के हुण और लाटू देवता की भी पूजा की जाती है जो सांस्कृतिक व धार्मिक परम्पराओं का अनूठा संगम प्रस्तुत करता है, साथ ही इस मंदिर को विशिष्टता प्रदान करता है।

प्रस्तावना :–

उत्तराखण्ड के जनपद बागेश्वर में कपकोट तहसील में बदियाकोट में आदिबद्री भगवती देवी का मंदिर अवस्थित है यह मंदिर बागेवर मुख्यालय से लगभग 60–65 किमी की दूरी पर पड़ता है, जो परम्परागत हिमालयी शैली में बना हुआ शक्तिपीठ है। (चित्र संख्या– 1.1) देवी का यह भव्य धाम स्थानीय लोगों की आस्था, विश्वास और शक्ति का केन्द्र है। मान्यता है कि माता आदिशक्ति ने दैत्य निशुंभ का वध यही किया था, साथ ही बदियाकोट माता भगवती का मंदिर कुमाऊँ का अकेला ऐसा मंदिर है जहां मां भगवती के साथ तिब्बतियों के हूण देवता और लाटू देवता की भी पूजा होती है, इस दृष्टिकोण से यह मंदिर कुमाऊँ के धार्मिक परंपराओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सामान्यतया: पहाड़ों में देवियों की संख्या अपेक्षाकृत देवताओं की संख्या के कम देखी जाती है।

कुमाऊँ में पूजी जाने वाली प्रमुख देवियों में नंदादेवी, श्यामादेवी, बाराहीदेवी, गड़देवी, हाटकाली, कोटगाड़ी आदि–आदि देवियां प्रमुख स्थान रखती है, जिनमें से नंदादेवी का नाम उल्लेखनीय है यह न सिर्फ कुमाऊँ में बल्कि संपूर्ण उत्तराखण्ड की आराध्य देवी मानी जाती हैं। कुमाऊँ–गढ़वाल क्षेत्र में अनेकों स्थानों पर माता के मंदिर स्थित हैं जो स्थानीय लोगों की अटूट आस्था का केन्द्र हैं। उन्हीं में से बदियाकोट में भगवती देवी जो ऐतिहासिक महत्वता के साथ ही साथ धार्मिक–सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है एवं स्थानीय स्तर पर दानू जाति के लोगों द्वारा अपनी कुलदेवी के रूप में पूजी जाती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

चौदह पट्टी दानपुर में आदि काल से भाद्रपद शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को मां भगवती नन्दा की पूजा सर्वत्र की जाती है। मान्यतानुसार दानपुर क्षेत्र का सिद्धपीठ आद्रिबद्री मां भगवती नन्दा का निवास स्थान बदियाकोट में माना जाता है। आदि काल में मां नन्दा एक मृग का वेश धारण कर गढ़वाल के बंड नामक स्थान से आयी थी। देवी भागवत के अनुसार इसी शाक्त प्रधान पर्वतीय क्षेत्र में स्थित शुम्भगढ़ (कपकोट सरयूघाटी) नामक स्थान (गांव) में भगवती द्वारा दैत्यराज शुम्भ तथा पिण्डर घाटी में स्थित बदियाकोट नामक स्थान में निशुम्भ का वध किया गया था। कालान्तर में देवी बंड नामक स्थान जो जनपद चमोली में पड़ता है वहां से छली व बली दो आखेटक भाईयों को मृग रूप में छलपूर्वक बदियाकोट लाई। यहां पर उन्होनें दिव्य कन्या के रूप में दर्शन दिए, गाँव बसाया तथा अपने वाहन महापराक्रमी सिंहराज द्वारा नींव खुदवाकर मंदिर की स्थापना करवाई। मंदिर स्थापना से यहां पूजा–अर्चना एवं विशेष अवसरों पर मेला अविराम चलते आ रहे हैं। प्रतिवर्ष भाद्र मास की नन्दाअष्टमी को बड़ी पूजा (सलपाती) तथा आठवें वर्ष में आठों (आठ दिनों तक चलने वाली पूजा) एवं मेला समस्त क्षेत्रवासियों द्वारा सम्पन्न होता है। आठों की विशेषता है कि स्थानीय भक्तगण (धामी) पांच दिन की नन्दकुण्ड यात्रा पर जाते हैं, अष्टमी के तीन दिन पूर्व पंचमी को कुण्ड में पूजा–अर्चना, होम के पश्चात लौटकर पूजा में सम्मिलत होते हैं। यात्रा में उन्हें अनेक दैविक चमत्कारों की अनुभूति होती है।[1]

कालान्तर में उन दो पुरूषों के छः–छः पुत्र हुए जो मां की कृपा से बारह बदकोटी के नाम से प्रसिद्ध हुए। माता की सेवा के कारण भगवती नन्दा ने उन्हें देव शक्ति प्रदान की तब से जहां आज माता का मंदिर हो या पूजा होगी वहां उन बारह बदकोटी दानू लोगों की भी पूजा होती है तभी माता संतुष्ट होती है। कालान्तर में ये बारह भाई अलग–अलग स्थानों में जाकर रहने लगे। इनमें बली दानू, जमनी दानू, कपूर दानू, कुबाल दानू, बालचंद दानू, जयंग दानू, माल दानू, भग दानू, विरंग दानू, जीव दानू, बैनर दानू, थे, जिन्हें देवी शक्ति प्राप्त हुई थी। बली दानू को सर्वप्रमुख दानू देव के रूप में कुमाऊँ–गढ़वाल में पूजा जाता है। स्थानीय स्तर पर मां भगवती के तीन सिद्धपीठ माने जाते है बदियाकोट, पोथिंग तथा बैछम धार। बैछम में भुंवर तथा कटार प्रकट होने की सत्य कथा प्रचलित है। मां के आदेश के अनुसार के अनुसार पोथिंग, बैछम तथा बदियाकोट में एक साथ नन्दा जात या आठयों नहीं हो सकती है आज भी यही परम्परा विद्यमान है। इसके साथ ही बदियाकोट के दानपुर के सभी गांवो के लोगों का मां के नाम का चढ़ावा निर्धारित किया गया है।[2]

बदियाकोट मंदिर की विशिष्टता को देखते हुए यहां पर जो विशेषता अन्य मंदिरों से इसे अलग करती है वह यहां पर देवी के साथ लाटू व हूण देवता का दीया माता के दीए के साथ दाएं–बाएं जलाया जाता है।

लोकोतियों के अनुसार बदियाकोट से कुबाल दानू तिब्बत की ओर व्यापार करने गए और वहां उन्हें राली–पाली नामक दो बहनों से प्रेम हो गया, जो उनके पीछे–पीछे बदियाकोट की ओर आने लगी। इससे क्रोधित होकर राली–पाली के पिता–भाइयों ने इनके पीछे भोटिया कुतों को छोड़ दिया, इनसे बचते–बचते राली–पाली शम्भु पर्वत होते हुए राली–पाली पर्वत पर पहुंची, जहां थक हार कर उन्होंने पहाड़ी से कूदकर जान दे दी। इस बात से अनभिज्ञ कुबाल दानू को को रात्रि स्वपन के द्वारा इस पूरे घटनाक्रम की जानकारी हुई तब उन्होनें राली–पाली के भाव को लाकर ध्यानमग्न होते हुए उनके साथ स्वंय को भस्म कर लिया। जब इस घटनाक्रम की जानकारी अन्य दानू को पता चली तो उन्होनें कुबाल दानू को अपने वंश के निष्काषित कर दिया तब से लेकर आज तक उनकी पूजा बदियाकोट मुख्य मंदिर से 11–12 गज दूरी पर खुले आसमान के तले की जाती है, जबकि अन्य दानू की पूजा–पाठ के लिए अलग–अलग स्थानों पर उनके मंदिर बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त लाटु देवता जिन्हें भगवती देवी के धर्मभाई के रूप में पूजा जाता है।[3]

दानू वंश का इतिहास :-

स्थानीय मान्यताओं के अनुसार बदियाकोट में स्थित आदिबद्री शक्तिपीठ की स्थापना दानू लोगों के ही द्वारा की गई। गढ़वाल से बंड नामक स्थान में मृग के वेश में पीछा करते हुए जो दो पुरुष बदियाकोट तक आए थे वे दानू लोगों के पूर्वज थे। इन्हें माता ने दर्शन देकर बदियाकोट शक्तिपीठ की पूजा–अर्चना का दायित्व दिया और साथ ही देवीय शक्तियां भी प्रदान की। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार ये दोनों छलि तथा बलि दो भाई थे इनके बारह पुत्र हुए, जिन्हें बारह बदकोटी कहा गया।[4] माता की सेवा के कारण भगवती नन्दा ने उन्हें देव शक्ति प्रदान की आज जहां माता का मंदिर हो या पूजा होगी वहां उन बारह बदकोटी दानू लोगों की भी पूजा की जाती है। आज भी यदि इस क्षेत्र में किसी को भगवती पूजा करवानी हो तो यह पूजा दानू वंशजों के देव डांगरों के द्वारा ही स्वीकार्य होती है। पूजा के लिए लोग धामी (डांगरों) के पास भंवर, झांझर, बाजे–गाजे के साथ कलश यात्रा लेकर जाते हैं और नंगे पांव अपने कंधों पर उठाकर इन देव डांगरों को मंदिर तक लाया जाता है। तत्पश्चात उनके हाथों से देवी को भोग चढ़ाया जाता है। आज भी चमोली के विकास खंड दशोली में ईरानी नामक गांव में दानू देवता का मंदिर है। स्थानीय लोगों के अनुसार पहले जब गांव में कोई परेशानी आती थी तो लोग मानते थे कि दानू देवता का दोष लगा है तब वे दानू देव डांगरों को बुलाकर पूजा पाठ करवाते थे। कालान्तर में ये बारह भाई अलग–अलग स्थानों में जाकर रहने लगे। वर्तमान समय में यह दानू लोग उत्तराखण्ड में बागेश्वर, पिथौरागढ़, चमोली के अतिरिक्त जम्मू–कश्मीर तक फैले हुए हैं जो नंदाष्टमी के समय अपने कुल के साथ बदियाकोट मंदिर की पूजा में पूर्ण रीति–रिवाज के साथ शामिल होते है और अपने पूर्वजों की परम्परा को निभाते हैं।[5]

यह मंदिर दानपुर कुमाऊँ–गढ़वाल के पिण्डर घाटी के लोगों के लिए आस्था और श्रद्धा का केन्द्र है, जहां प्रत्येक बारहवें वर्ष में नंदकुण्ड (देवीकुण्ड) की उपजात एक सप्ताह (एक सप्ताह में दिन–रात का मेला) तथा प्रतिवर्ष सितम्बर माह भादों में एक दिन–रात का 'सतपाली' का मेला लगता है। दानपुर में दंतकथा प्रचलित है कि चमोली जिले में स्थित बद्रीनाथ के बद्रीनारायण के दरबार में दाहिनी ओर जो पहला सिंहासन है उसे कुबेर दानू का माना जाता है। कुबेर दानू के दो पुत्र थे छल्ली दानू व बल्ली दानू। जिनका उल्लेख पहले किया जा

चुका है। एक बार मां ने इन्हें साक्षात रूप में दर्शन दिये और कहा तुम्हारी कर्म तपस्थली बदियाकोट में देवी–स्थल में है जहां आज भी छल्ली और बल्ली दानू के देवीय शक्ति की पौराणिक गाथाएं मान्यतायें व परम्पराएं हैं। इन्हीं मान्यताओं में से घर आंठियों, सतपाली पूजा, नंदकुण्ड की उपजात यात्रा, विशेष पर्वों की पूजा–पाठ एवं मेलों के रूप में आज भी प्रचलित है।[6]

घर–आंठियों का मेला :–

घर आंठियों का मेला भादो की नंदाष्टमी के ठीक आठ दिन पूर्व लगता है जिसमें पारम्परिक रीति–रिवाजों के अनुसार मां भगवती के वाहक (डंगरिया) एक समय भोजन व दोनों समय पूजा करते हैं। नन्दा अष्टमी की पूजा में पवित्र ब्रह्म कमल सुदूर हिमालय से लाकर माता को अर्पित किया जाता है। हर वर्ष मां नन्दा की पूजा का आयोजन जगथाना तोर्ती, गढ़वाल के विभिन्न स्थानों, गोगिना, लीती, वाछम, बैछम, धार पेठी, बघर तोली, ढोक्टी गांव, सोराग, किलपारा, कुवारी, झूनी, कीमू आदि हिमालयी गांवों में आयोजित की जाती रही है। एक माह पूर्व प्रथमा तिथि को मां के प्रसाद के लिए विधि विधान के साथ गेहूं भरा जाता है, घराट में शुद्धता से पीसकर निश्चित स्थान में रखा जाता है यह भोग कालाकोटी लोगों को छोड़ संपूर्ण क्षेत्र से एकत्र किया जाता है। तदुपरांत सप्तमी के दिन बाजे ढोल, दुमाऊ, भुवर देवडांगरों द्वारा मंदिर में आदरपूर्वक ले जाते है रात्रि में देवी के जागर लगाए जाते हैं।[7]

मेले के पांचवें दिन दोपहर के समय माता का मुख्य धामी (पुजारी) व अन्य डंगरिया पूरे बाजे–गाजे के साथ मंदिर के कुछ किलोमीटर दूरी से 'सिमकनी' का पौधा लेने जाते हैं जिससे माता की (मूर्ति) डोला बनाया जाता है। इस डोले का निर्माण दानू लोगों द्वारा किया जाता है, इन लोगों द्वारा निर्मित (मूर्ति) डोला को लेने के लिए स्वंय माता के पुजारी व समस्त ग्रामवासी ढोल, नगाड़ों, भुवंर, झांझर के साथ चौबाटी जाते हैं और वहां से उसको मंदिर के अंदर दर्शनार्थ रखा जाता है। तत्पश्चात आठवें दिन डोले को माता के पुजारी (दानू) द्वारा मंदिर की देहली के पश्चात तीसरी सीढ़ी तक लाया जाता है। इस सीढ़ी के पश्चात डोले को कालाकोटी जाति के लोगों को विर्सजन के लिए झरने व नदी पर ले जाते हैं। मेले में चमोली तथा दानपुर के सुदूर गांवों के समस्त ग्रामवासियों को न्यौता दिया जाता है। दानपुर पट्टी, कर्मी, बघर, बाछम, सोराग, पेठी, खाती, समडर, किलपरा, कुंवारी, डौला आदि के लोग हजारों की संख्या में मेले में सम्मिलित होते हैं।[8]

सलपाती का मेला :–

सलपाती का मेला प्रतिवर्ष सितम्बर भादो मास की नन्दाअष्टमी को लगता है। समस्त क्षेत्रवासियों की भागीदारी के साथ दानपुर के हजारों लोग मां भगवती के दर्शनार्थ आते हैं साथ ही मन्नत, चढ़ावें के साथ पूजा अर्चना करते हैं, जिनमें भेडें सम्मलित होती है, एवं अष्टबलि दी जाती है। मंदिर की पूजा–पद्धति की विशिष्टताओं में तिब्बतियों के हूण देवता को भी भोग लगता है और इस भोग को दानू द्वारा एक रेखा खींचकर अलग रखा जाता है। जिसको काला जाति के लोगों द्वारा बांटा जाता है। वर्तमान में भी मान्यता है कि मां भगवती के मंदिर में माता की मूर्ति के दाहिने ओर लाटू देवता का दीया जलता है और बाईं ओर हूण देवता का।[9]

नंदकुण्ड की उपजात :–

बदियाकोट के कुबेर वंश के दानू लोगों द्वारा विशेष वस्त्र धारण कर नंगे पांव यह यात्रा की जाती है।

6 माह पूर्व शुक्ल पक्ष चैत्र एकादशी के दिन गेहूं भराई के बाद शास्त्रों के अनुसार विधि–विधान से गोलज्यू और भूमियाल देवता की पूजा (रिखड़ पूजा) के साथ महाआठों की पूजा की शुरूवात हो जाती है। मां भगवती के पूजारी (डंगरिया/धामी) आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में (लगभग 90 दिन पूर्व) अखण्ड ज्योति जलाकर मंदिर साधना में लीन हो जाते है। मां भगवती की उपजात यात्रा 'नंद कुण्ड' स्नान के लिए प्रत्येक 12 वर्ष में ग्राम बदियाकोट के कुबेर वंश के दानू लोगों द्वारा आयोजित की जाती है। इस यात्रा से तीन माह पूर्व मां भगवती के पुजारी (डंगरिया/धामी) लोग आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में अखण्ड ज्योति जलाकर पूजा में बैठते हैं। इस कालखण्ड के दौरान क्षेत्र में अन्य किसी प्रकार की पूजा–पाठ नहीं होती है। इस यात्रा को आरम्भ करने से पूर्व दानू देवता के प्रतिनिधि अपने अन्य दो अनुचरों के साथ दानपुर पट्टी (लगभग 1200 गांवों) का भ्रमण करते हैं।[10] पट्टी भ्रमण में देवी अवतारियों द्वारा भोजपत्री व रिंगाल की छत्री, भांख, भौंवर (भंगुर) एवं देवीय शक्ति के साथ भ्रमण किया जाता है।

इस उपजात में मां भगवती के बारह अवतारी डंगरिये व एक–एक उनके सहायक चढ़ावे की भेड़ें व विशेष चौसिंगी मेढ़ा जाता है। यात्रा आरम्भ करने से पूर्व दानू (धामियों) के द्वारा ही भोज पत्री में घंटी लगी हुई नौ छत्री प्रदान की जाती है, क्योंकि उपजात जात्रा के समय देवी के इन अवतारियों द्वारा जब भी विश्राम किया जाता है, चाहे वह रात्रि हो या दिन में इस घंटी से विशेष प्रकार की ध्वनि निकलती है जो इन्हीं लोगों को सुनाई पड़ती है, तो ये आगे की यात्रा उसी क्रम में आरंभ कर देते हैं जिस क्रम से इनको घंटी की ध्वनि सुनाई देती है। स्थानीय लोगों के अनुसार पहले बारह छत्रियां होती थी अब नौ छत्रियां बनने लगी है एक छ्त्री दानू प्रतिनिधि के लिए आषाढ़ माह में ही तैयार कर ली जाती है जिसे लेकर प्रतिनिधि संपूर्ण क्षेत्र में छत्री के साथ भम्रण करता है, बाकी आठ छत्रियां आंठों के समय तैयार की जाती है। वर्तमान समय में कुंवारी, ढोक्टी गांव व पैठी के देवलीयों के द्वारा छत्रियां नहीं बनाई जा रही हैं। परंतु मान्यतानुसार देवली लोग माता को भैटोली देने आते है माना जाता है जब माता नंदकुण्ड की ओर जा रही थी तब देवली गांव के लोगों ने उन्हें बेटी मानकर वस्त्र, आभूषण, श्रृंगार प्रदान किया तब से यह परम्परा निरन्तर चली आ रही है। उल्लेखनीय तथ्य है घर आंठयों और जात यात्रा दोनों में छत्रियां बनाई जाती हैं परंतु घर आंठयों में तीन छत्रियां बनती है वहीं जात यात्रा में नौ छत्रियां तैयार की जाती हैं।[11]

यात्रा को आंरभ करने के समय समस्त ग्रामवासी महिला–पुरूष, बुजुर्गों तथा बच्चों द्वारा पूरे ढोल–नगाडों, झांझर के द्वारा पारम्परिक रीति–रिवाज से विदाई दी जाती है नंदकुण्ड तक पहुंचने के लिए ये इन्हीं रास्तों का प्रयोग करते हैं जहां से होकर मां नंदा 'नंदकुण्ड' में स्नान के लिए गई थी। यात्रा के पहले दिन सोराग में पहुंचती है जहां इनका भव्य नगर निशान व बाजों के साथ स्वागत किया जाता है तथा रात का मेला भी लगता है। सोराग गांव के लोग मां भगवती के मायके वाले (मैती) माने जाते हैं जोकि हिमालय राज के वंशज माने जाते हैं। दूसरे दिन ग्राम बाछम से होते हुए तीसरे दिन ग्राम जातौली से ऊपर हिमालय के समीप बुड़बुडी स्थल में पहुंचते हैं चौथे दिन यहां से हिमालयी बुग्याल होते हुए आगे चलते हैं पाचंवे दिन भनार की गुफा से नंदकुण्ड के लिए ब्रह्ममुर्हत के समय सुबह नंदकुण्ड स्नान के लिए चल पड़ते हैं। जिस अवतारी की भोज पत्री में लगी घंटी जिस क्रम में बजती है, उसी क्रम से ये लोग स्नान को जाते हैं। स्नान के पश्चात पारम्परिक चली आ रही मान्यताओं

के अनुसार धार्मिक अनुष्ठान कर नंदकुण्ड की परिक्रमा भी करते हैं, जो पांच किलोमीटर की परिधि में फैला है। कुण्ड स्नान करने के लिए सभी अवतारी नंगे पांव यात्रा करते हैं, कुण्ड में स्नान और परिक्रमा करने व देवीय शक्ति के आह्‌न करने के उपरांत धार्मिक अनुष्ठान कर यात्रा की वापसी भी इन्हीं रास्तों से होकर गुजरती है उन गांवों के विश्राम स्थलों की अलग–अलग मान्यताएं प्रचलित हैं। वापसी में ये लोग बदियाकोट में भगवती के मंदिर से कुछ दूर चौबाटी में रूकते हैं और कुमाऊँ–गढ़वाल से हजारों की संख्या में भक्तजन 20–25 किमी0 की दूरी पैदल यात्रा कर भगवती के दर्शनार्थ आते हैं, इसके पश्चात् समस्त ग्रामवासी ढोल, नगाड़ों के साथ नंदा–अष्टमी के डोले के विर्सजन को जाते हैं।[12] (चित्र संख्या– 1.2)

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः बदियाकोट मंदिर को हम विभिन्न सांस्कृतिक मान्यताओं के संगम स्थली के रूप में देख सकते हैं जो कुमाऊँ–गढ़वाल से लेकर तिब्बत की सांस्कृतिक व धार्मिक मान्यताओं को लिए है, जो यहां की पूजा–पद्धति, मंदिर वास्तुकला, स्थानीय मान्यताओं में स्पष्ट तौर पर झलकती है। आधुनिकीकरण के चलते भी स्थानीय लोग आज अपनी पूर्वजों की परंपराओं को जीवंत किए हुए है। स्थानीय लोगों से बातचीत करने पर पता चलता है कि आज भी परंपरागत रूप से मंदिर की धार्मिक–सांस्कृतिक परंपराएं जैसी की तैसी बनी हुई हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी देव डांगरों द्वारा अगली पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती हैं। बदियाकोट मंदिर की विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि कुमाऊँ–गढ़वाल में आयोजित होने वाली नन्दाजात यात्रायें जहां सामूहिक रूप से आयोजित होती हैं वहीं बदियाकोट की जात यात्राएं क्षेत्र विशेष द्वारा व्यक्तिगत तौर पर आयोजित की जाती हैं। यह ऐतिहासिक मंदिर आधुनिक युग के बदलते परिवेश में परंपरा, संस्कृति व लोक मान्यताओं का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. श्री भगवती जगदम्बा (आद्य बद्री) मंदिर (बदियाकोट) का महात्म्य।
2. साक्षात्कार, धमेंद्र सिंह दानू, मंदिर संरक्षक, उम्र–26, दिंनाक– 12 मई 2025
3. साक्षात्कार, पुष्कर सिंह दानू, पूर्व मंदिर कमेटी अध्यक्ष, उम्र– 81, दिंनाक– 26 मई 2025
4. सांकृत्यायन, राहुल, कुमाऊँ, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, 2015
5. साक्षात्कार, मंगल सिंह, देव डांगर बदियाकोट, उम्र– 73, दिंनाक– 21 मई 2025
6. साक्षात्कार, हुक्म सिंह, मंदिर कमेटी संरक्षक बदियाकोट, उम्र– 73, दिंनाक– 20 मई 2025
7. साक्षात्कार, हुक्म सिंह, बदियाकोट, उम्र– 60, दिंनाक– 20 मई 2025
8. देवी, बंसती, नन्दा के जागर, बिनसर पब्लिशिंग कंपनी, 2015, पृष्ठ संख्या– 183
9. वहीं, पृष्ठ संख्या– 184
10. वहीं, पृष्ठ संख्या– 184
11. साक्षात्कार, पुष्कर सिंह दानू, पूर्व मंदिर कमेटी अध्यक्ष, उम्र–81, दिंनाक– 12 मई 2025
12. साक्षात्कार, भरत सिंह, अध्यक्ष बदियाकोट मंदिर कमेटी, उम्र–45, दिंनाक– 12 मई 2025

परिशिष्ट :-

चित्र संख्या- 1.1 (बदियाकोट मंदिर)

चित्र संख्या- 1.2 (लोकजात यात्रा)

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 97–104

भारतीय शिक्षा प्रणाली का युगांतकारी परिवर्तन : NEP 2020

डॉ. कंचन आर्या
सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता), हिंदी विभाग
डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

सार :–

शिक्षा एक ऐसा साधन है, जो व्यक्ति को विकास, ज्ञान कौशल व समझ प्रदान करता है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन में बेहतर निर्णय ले सकता है। वह समाज को एक सकारात्मक योगदान दे सकता है। साथ ही वह आत्मनिर्भर भी बन सकता है। शिक्षा ही किसी भी राष्ट्र के उत्थान एवं नव निर्माण की दशा व दिशा को तय करती है। शिक्षा के द्वारा ही हम विश्व गुरू बन सकते हैं तथा राष्ट्र को एक नई दिशा एवं क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। शिक्षा पूर्व मानव क्षमता को प्राप्त करने का एक न्याय संगत और एक न्यायपरक समाज के विकास तथा संपूर्ण राष्ट्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण एवं मूलभूत आवश्यकता है। वर्तमान युग वैश्विक शिक्षा एवं समाज का एक महत्वपूर्ण अवसर का युग है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र के उत्थान एवं निर्माण व विकास की नई दिशा व दशा को तय करती है। शिक्षा हमें नैतिकता, संस्कार, तर्क–वितर्क, विवेक, आत्मज्ञान, विश्वास एवं नवाचार का पाठ पढ़ाती है। शिक्षा मनुष्य, समाज व राष्ट्रीय विकास के संवर्धन में आवश्यक है। गुणात्मकपूर्ण शिक्षा, सार्वभौमिक पहुंच प्रदान करने के लिए वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय, समानता, वैज्ञानिक उन्नति, सांस्कृतिक उन्नति, सतत् विकास एवं आर्थिक विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। देश में 34 सालों बाद नई शिक्षा नीति आई है जो शोधपरक, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देती है। नई नीति का विजन ही ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है, जिससे भारतीय परंपराओं और मूल्यों को स्थान मिले। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा के क्षेत्र में एक नया एवं नवाचार प्रयास होगा।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की विकास यात्रा 1968 से 2020 तक :–

भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास 1968 से 2020 तक एक महत्वपूर्ण यात्रा रही है। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित किया और 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का लक्ष्य रखा। 1986 की नीति ने शैक्षिक अवसरों की समानता पर जोर दिया, विशेषकर महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए। 1992 में, इस नीति में संशोधन किया गया, जिसमें व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा में प्रवेश के लिए एक सामान्य परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान था। राष्ट्रीय

शिक्षा नीति एनईपी 2020 का उद्देश्य शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी, बहु–विषयक और कौशल आधारित बनाना है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति :-

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति एनईपी 2020 भारत सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में सुधार और विकास के लिए बनाई गई एक नीति है। इसका उद्देश्य शिक्षा को अधिक समावेशी, सुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाना है। नई राष्ट्रीय नीति के मुख्य बिंदु हैं :–[1]

1. स्कूली शिक्षा में बदलाव – 10+2 की जगह 5+3+3+4 का ढांचा लागू किया जाएगा।
2. उच्च शिक्षा में सुधार – विश्वविद्यालयों को अधिक स्वायत्ता दी जाएगी।
3. शिक्षकों के प्रशिक्षण पर जोर – शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण दिया जाएगा।
4. ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा – ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा दिया जाएगा।
5. शिक्षा में तकनीकी का उपयोग – शिक्षा में तकनीकी का उपयोग बढ़ावा दिया जाएगा।
6. व्यावसायिक शिक्षा पर जोर – व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाएगा।
7. शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा – शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाएगा।

1986 के बाद 2020 में शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता :-

1986 की शिक्षा नीति के बाद 2020 में शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि 1986 की नीति अपने समय के अनुसार थी, लेकिन 21वीं सदी की चुनौतियों और आवश्यकताओं को पूरा करने में अपर्याप्त थी। 2020 की शिक्षा नीति का उद्देश्य शिक्षा को सभी के लिए सुलभ, गुणवत्तापूर्ण और समग्र बनाना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 1986 से अलग :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक व्यापक नीति दस्तावेज है, जिसका उद्देश्य भारत में शिक्षा प्रणाली में सुधार और परिवर्तन करना है। यह शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति 1986 की जगह लेता है और तीन दशकों में भारत में शिक्षा प्रणाली का पहला बड़ा बदलाव है। एनईपी 2020 और एनपीई 1986 के बीच कुछ प्रमुख अंतर इस प्रकार है :– [2]

पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र – एनईपी 2020 एक लचीले और बहु–विषयक पाठ्यक्रम पर केंद्रित है। यह अनुभवात्मक और सहयोगी शिक्षण विधियों के उपयोग पर भी जोर देता है।

प्रारंभिक बचपन की शिक्षा – एनईपी 2020 प्रारंभिक बचपन की शिक्षा पर अधिक जोर देती है और एक सार्वभौमिक पूर्व–प्राथमिक शिक्षा प्रणाली की स्थापना की सिफारिश करती है।

उच्च शिक्षा – एनईपी 2020 का उद्देश्य 2035 तक उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात को 50 प्रतिशत तक बढ़ाना है। यह भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली की देख–रेख के लिए एक राष्ट्रीय उच्च शिक्षा परिशद् की स्थापना की भी सिफारिश करता है।

व्यावसायिक शिक्षा – एनईपी 2020 माध्यमिक स्तर से शुरू करते हुए व्यावसायिक शिक्षा को मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने की सिफारिश करता है। यह एक राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा विश्वविद्यालय की स्थापना की भी सिफारिश करता है।

भाषा – एनईपी 2020 शिक्षण और सीखने में मातृभाषा सहित कई भाषाओं के उपयोग की सिफारिश

करता है। यह भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने और उन्हें पाठ्यक्रम में शामिल करने की भी सिफारिश करता है।

समावेश और विविधता – एनईपी 2020 शिक्षा प्रणाली में समावेश और विविधता को बढ़ावा देने पर अधिक जोर देती है। यह समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना की सिफारिश करता है।

शिक्षक शिक्षा – एनईपी 2020 भारत में शिक्षक शिक्षा की देखरेख के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की स्थापना की सिफारिश करता है। यह 4 साल के एकीकृत शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को शुरू करने की भी सिफारिश करता है। हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली वैश्विकरण और प्रौद्योगिकी प्रगति की तेज गति से निपटने में पिछड़ रही है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण के साथ नई शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी गई। ताकि नई शिक्षा नीति को भारत के वैश्विक स्तर पर ज्ञान, महाशक्ति बनाने के लिए वैज्ञानिक नवाचार और गुणवत्तापूर्ण बुद्धि की दिशा में मार्ग प्रशस्त करती है। 29 जुलाई 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल के तत्वाधान में शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तनकारी सुधार लाने के लिए 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई। सन् 1986 में जारी हुई नई शिक्षा नीति के बाद भारत की शिक्षा नीति में यह पहला नया परिवर्तन है। 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन हुआ था, तभी से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण होना भी शुरू हुआ था।

कोठारी आयोग (1964–1966) की सिफारिशों पे आधारित 1968 में पहली बार महत्वपूर्ण बदलाव वाला प्रस्ताव इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री काल में पारित हुआ था। 1986 में भारत सरकार ने 'नई शिक्षा नीति 1986' का प्रारूप तैयार किया। इस नीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें सारे देश के लिए एक समान शैक्षिक ढांचे को स्वीकार किया और अधिकांश राज्यों ने 10+2+3 की संरचना को अपनाया। इसे राजीव गांधी के प्रधानमंत्रीत्व में जारी किया गया था। इस नीति में 1992 में संशोधन किया गया था। नई शिक्षा नीति 2020 में मानव संसाधन मंत्रालय का नाम पुनः ''शिक्षा मंत्रालय'' करने का फैसला लिया गया है। इसमें समस्त उच्च शिक्षा (कानूनी एवं चिकित्सीय शिक्षा को छोड़कर) के लिए एक एकल निकाय के रूप में भारत उच्च शिक्षा आयोग का गठन करने का प्रावधान है। संगीत, खेल, योग आदि को सहायक पाठ्यक्रम या अतिरिक्त पाठ्यक्रम की बजाय मुख्य पाठ्यक्रम में ही जोड़ा जाएगा। शिक्षा तंत्र पर सकल घरेलू उत्पाद का कुल 6 प्रतिशत खर्च करने का लक्ष्य है, जो इस समय लगभग 3 प्रतिशत है। एम. फिल. को समाप्त किया जाएगा। शिक्षा अब अनुसंधान में जाने के लिए तीन साल के स्नातक डिग्री के बाद दो साल स्नातकोत्तर करके पीएचडी में प्रवेश लिया जा सकता है। नीति में शिक्षकों के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया है। व्यापक सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण और सभी शिक्षा कार्यक्रमों को विश्वविद्यालयों या कॉलेजों के स्तर पर शामिल करने की सिफारिश की गई है।

नई शिक्षा नीति से पूर्व किसी कारणवश विद्यार्थी उच्च शिक्षा के बीच में ही कोर्स छोड़ के चले जाते हैं। ऐसा करने पर उन्हें कुछ नहीं मिलता एवं उन्हें डिग्री के लिए दोबारा से नई शुरूआत करनी पड़ती है, किंतु नई नीति में पहले वर्ष में कोर्स को छोड़ने पर प्रमाण–पत्र, दूसरे वर्ष पे छोड़ने पे डिप्लोमा एवं अंतिम वर्ष पे छोड़ने पे डिग्री देने का प्रावधान है। यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति सरकार द्वारा शिक्षा प्रणाली में एक बड़े बदलाव का संकेत देती है, लेकिन इसमें कई चुनौतियां भी हैं। भारत में लगभग एक–तिहाई बच्चे प्राथमिक

शिक्षा पूरी करने से पहले स्कूल छोड़ देते हैं। यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश बच्चे, जो स्कूल जाने में असमर्थ हैं, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, धार्मिक अल्पसंख्यकों और दिव्यांग समूहों से संबंधित हैं। एक महत्वपूर्ण चुनौती बुनियादी ढांचे की कमी से संबंधित है। यह आमतौर पर देखा गया है कि स्कूलों और विश्वविद्यालयों में बिजली, पानी, शौचालय, चारदीवारी, पुस्तकालय, कंप्यूटर आदि की कमी है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली प्रभावित होती है। नई शिक्षा प्रणाली के सामने एक चुनौती शिक्षकों की कमी को दूर करना भी है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक सी.ए.जी. की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार, एकल शिक्षक के भरोसे बड़ी संख्या में स्कूल चल रहे हैं, जो शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 :-

शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया होने के कारण निरंतर विकसित व विभिन्नीकृत होती रही है तथा उसका प्रसार क्षेत्र लगातार बढ़ता रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान को कायम रखने, समकालीन चुनौतियों का सामना करने व राष्ट्रीय जीवन के संवर्धन के लिए अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1964 के राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक महत्वपूर्ण कदम का प्रतीक था। इस पर अमल भी होना शुरू हो गया था तथा कई प्रांतों ने अपने–अपने ढंग से 10+2+3 की शिक्षा संस्थान लागू कर दी थी। त्रिभाषा सूत्र, प्रांतों में कृषि, व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा, विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक शोधों के लिए विशेष प्रावधान किए जाने लगे थे तथा शिक्षा में सुधार हेतु अन्य कार्य भी शुरू कर दिए गए थे।[3] परंतु 1977 में केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनने पर 10+2+3 शिक्षा संरचना के स्थान पर 8+4+3 शिक्षा संरचना का विचार आया, जिसके परिणामस्वरूप कुछ शिक्षाविदों व सांसदों से तत्कालीन केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री प्रताप चंद्र ने एक नई शिक्षा नीति 1979 की घोषणा कर दी। इसे अभी लागू भी नहीं किया गया था कि 1980 में केंद्र में पुनः कांग्रेस सत्ता में आ गई व पुनः एन. ई.पी. 1968 के अनुपालन पर जोर दिया।

किंतु इसी बीच इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने पर हर क्षेत्र में आंदोलनकारी कदम उठाने के प्रयास में शिक्षा के पुनर्निरीक्षण व पुनर्गठन प्रक्रिया में तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराकर इसे–शिक्षा के चुनौती नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य नामक दस्तावेज 1985 अगस्त में प्रकाशित कराया गया। जिसमें भारतीय शिक्षा की 1951 से 1985 तक की प्रगति यात्रा का सांख्यिकीय विवरण उसकी उपलब्धियों एवं असफलताओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उसके गुण–दोषों का सम्यक विवेचन किया गया है। इस दस्तावेज पर विश्वव्यापी बहस शुरू हुई और सभी प्रांतों के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से सुझाव प्राप्त हुए। केंद्रीय सरकार ने इन सुझावों के आधार पर एक नई शिक्षा नीति तैयार की और इसे संसद के बजट अधिवेशन 1986 में पास कराया गया।[4] यह भारत की पहली ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति है, जिसमें नीति के साथ उसके कार्यान्वयन की पूरी योजना प्रस्तुत की गई है।

नई शिक्षा नीति–1986 द्वारा उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण कदम :-

नई शिक्षा नीति 1986 का गठन शिक्षा की चुनौतियों के रूप में किया गया था। अतः इसका भारत की शिक्षा व्यवस्था पर पर्याप्त स्थायी एवं व्यापक प्रभाव पड़ा है। शिक्षा में योगदान देने वाले ये महत्वपूर्ण कदम इस प्रकार है :–

1. 10+2+3 शिक्षा संरचना।
2. नवोदय विद्यालय।
3. विद्यालय संकुल।
4. सर्व शिक्षा अभियान।
5. शैक्षिक अवसरों की समानता।
6. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड।
7. दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त विश्वविद्यालय।
8. उपाधि को सेवा से अलग करना।
9. शिक्षक प्रशिक्षण
10. शिक्षक की जवाबदेही।

नई तालीम की आवश्यकता :–

भारत में अनादिकाल से ही शिल्प कला को शिक्षा में महत्व दिया गया है। यह जीवन का अभिन्न अंग एवं आजीविका साधन भी रहा है, किंतु लंबी अवधि तक विदेशी साम्राज्य के अधीन रहने से भारतीय शिक्षा व्यवस्था खोखला हो गई। वहीं शिल्प कलाएं भी लगभग समाप्त कर दी गईं जिसके परिणामस्वरूप जो शिक्षा भारतीयों को प्राप्त होने लगी। उद्देश्यहीन होती इस शिक्षा ने सबसे बड़ी समस्या बालकों में बेरोजगारी, कुण्ठा, तनाव, निराशा आदि को बढ़ा दिया, जिससे आज बेरोजगारी की लंबी फौज खड़ी है। हर छोटी बात पर आत्महत्या कर लेना अथवा हिंसा पर उतरना आम बात हो गई है।[5] नई तालीम शैक्षिक प्रक्रिया एक है, जो छात्रों को अधिक सक्रिय रूचिपूर्वक और संप्रेषण क्षमता के साथ शिक्षित करने का प्रयास करती है। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों के संपूर्ण विकास, समग्र ज्ञान, सृजनात्मकता और नवाचार को प्रोत्साहित करना है। नई तालीम का आधार उच्चतर क्रम में शिक्षा देने, प्रयोगशीलता, नवीनता, सहयोग और संप्रेषण क्षमता को महत्व देने पर रखा गया है। इसमें छात्रों को विचारशीलता, समस्या–समाधान कौशल, सहयोग, स्वतंत्रता, समय–प्रबंधन और नैतिक मूल्यों की प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर मिलता है।[6]

नई शिक्षा नीति 2020 को भारतीय जनमानस की आवश्यकताओं एवं भारतीय शैक्षणिक पर्यावरण के अनुरूप रखने का यत्न किया गया है। शिक्षा व्यवस्था को उपाधि उन्मुख न रखकर ज्ञानपरक एवं रोजगारपरक बनाने का प्रयास किया गया है। पूर्व प्रचलित रटंत विद्या के स्थान पर शिक्षार्थी में तर्क शक्ति विकसित करने का यत्न नई शिक्षा नीति 2020 की विलक्षणता है। शिक्षार्थी में कार्य कुशलता विकसित करने हेतु प्राथतिक स्तर से ही रोजगारपरक शिक्षा का समावेश किया गया है, यदि सरकार द्वारा ईमानदारीपूर्वक यत्न किए गए तो, इस नीति के सकारात्मक परिणाम 2030 तक दृष्टिगत होने लगेंगे।[7] इस नीति में भारत की बहु भाषा–भाषी समृद्ध परंपरा को भी स्थान दिया गया है और भाषा के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर और आगे त्रिभाषा अध्ययन की व्यवस्था भारतीय समाज की प्रकृति की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त है। भाषा न केवल किसी भी क्षेत्र में ज्ञान के लिए अनिवार्य आधार का काम करती है, बल्कि अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक जीवन के लिए भी आवश्यक है।

यह खेद का विषय है कि भाषा के अध्ययन–अध्यापन के प्रति बड़ा लचर रवैया अपनाया जाता रहा है।

इसके फलस्वरूप भाषिक योग्यता में लगातार गिरावट होती रही है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में इस वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा में आठ लाख विद्यार्थी फेल हो गए हैं। नई शिक्षा नीति और भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ परिचय को महत्व देकर सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करने और देश की एकता के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।[8]

इस नीति में आरंभिक स्तर पर मातृभाषा को महत्व दिया गया है। यह सबको विदित है कि प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षण और अध्यापन बच्चों के मानसिक व स्वाभाविक रूप से विकास के लिए लाभकारी होता है। ध्यान रहे कि अंग्रेजी विषय के रूप में पढ़ना ठीक है, पर अंग्रेजी माध्यम में पढ़ना निश्चित रूप से गैर अंग्रेजी क्षेत्र के बच्चों के लिए घातक है। अंग्रेजी को विश्वभाषा मान लेने से अनुकरण की भावना और पराधीनता की प्रवृत्ति को ही उकसावा मिलता है। पूर्वाग्रह और भेदभाव के कारण हम लोगों पर अंग्रेजी का भूत हावी होता रहा। अंग्रेजी जानने वाले उच्च वर्ग के होते हैं और उनका अखंड वर्चस्व हर कहीं देखा जा सकता है। अंग्रेजी की कोई अतिरिक्त आंतरिक दैवीय शक्ति तो नहीं है, परंतु सम्मान की भाषा होने के कारण उसका उपयोग भारतीय विचार, व्यवहार और संस्कृति के विरूद्ध जरूर चला जाता है। भाषा की प्रतिष्ठा उसकी स्मृति को भी प्रभावित करती है।[9]

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख लक्ष्य :-

1. 2030 तक सकल नामांकन अनुपात 100 प्रतिशत करना है।
2. प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा में प्रदान करना।
3. मातृभाषा को उच्च प्राथमिक कक्षा 8वीं और उससे आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।
4. इस शिक्षा नीति के अंतर्गत 3 से 18 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के तहत रखा गया है।
5. इस नीति का प्रमुख उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है।
6. 2025 तक पूर्व माध्यमिक शिक्षा 3 से 6 वर्ष की आयु सीमा को सार्वभौमिक बनाना है।
7. शिक्षा क्षेत्र पर भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 6% हिस्से को सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है।
8. भारत के सभी उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए भारतीय उच्च शिक्षा परिषद् नामक एक एकल नियामक की उपकल्पना की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांत -

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार है :-[10]

1. हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना।
2. बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना।
3. शिक्षा में लचीलापन लाना।
4. कला एवं विज्ञान, पाठ्यक्रम और पाठयेत्तर गतिविधियों में, व्यावसायिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों में विरोध एवं अलगाव की भावना नहीं हो।
5. एक बहु विषयक और समग्र शिक्षा का विकास करना।

6. अवधारणात्मक सोच का विकास करना न कि रटंत एवं परीक्षा की पढ़ाई पर जोर।
7. रचनात्मक एवं तार्किक सोच का विकास करना ताकि नवाचारों को प्रोत्साहन मिले।
8. नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का विकास करना।
9. बहुभाषा शिक्षा प्रणाली अपनाना ताकि अध्ययन–अध्यापन कार्य में भाषा की शक्ति को पहचान मिल सके।
10. जीवन कौशल अर्थात् आपसी संवाद, सहयोग, सामूहिक कार्यों को बढ़ावा देना।
11. सीखने के लिए सतत् मूल्यांकन पर जोर देना न कि परीक्षा को महत्व देना।
12. शिक्षा को सरल एवं सुलभ बनाने के लिए तकनीक पर जोर देना।
13. विविधता और स्थानीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए शिक्षा देना।
14. सभी शैक्षणिक निर्णयों में पूर्ण क्षमता और समावेशन को ध्यान में रखना।
15. विद्यालय से महाविद्यालय शिक्षा तक सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में तालमेल एवं सामंजस्य बिठाना।
16. शिक्षकों एवं संकाय को सीखने का केंद्र मानते हुए इनकी भर्ती आदि हेतु उन्नत सुविधाओं का विकास करना।

नई शिक्षा नीति की प्रमुख सात विशेषताएं (महापात्र 2021) :–

नई शिक्षा नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं :–[11]

1. आत्मनिर्भर भारत।
2. सतत् विकास का लक्ष्य।
3. आर्थिक वृद्धि के रूप में शिक्षा।
4. उच्च शिक्षा का अंतर्राष्ट्रीयकरण।
5. डिजिटलीकृत शिक्षा और कक्षाएं।
6. नियामक संस्था।
7. एक स्तरीय मान्यता प्रणाली।

निष्कर्ष :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एन.ई.पी. 2020 का मुख्य निष्कर्ष यह है, कि यह शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी, लचीला और छात्र–केंद्रित बनाने का प्रयास करती है, जो 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना करने के लिए छात्रों को तैयार करती है। यह शिक्षा को रटने की प्रणाली से दूर, आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और समस्या–समाधान कौशल पर ध्यान केंद्रित करने की ओर ले जाती है। इस प्रकार नई शिक्षा नीति 2020 नए भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज्ञान के क्षेत्र में उठाया गया मजबूत कदम है। ज्ञान, तकनीक, प्रतियोगिता, कौशल्य, स्वतंत्रता, संस्कृत का हस्तांतरण, संशोधन के नवाचार, भाषा के महत्व एवं बुनियादी शिक्षण के साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समिश्रण से तैयार नई शिक्षा नीति 2020 भारत के युवा–धन को सही मार्ग इंगित करते हुए श्रेष्ठ क्षमताओं के सौजन्य से उज्जवल भविष्य की ओर ले जाने में मील का पत्थर साबित होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी क्राफ्ट आधारित शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा पर बल देता है तथा स्थानीय सहित अन्य क्राफ्ट आधारित शिक्षा एवं प्रशिक्षण को पाठ्यक्रम का अंग बनाया है। जिससे विद्यार्थियों को सैद्धांतिक की अपेक्षा प्रयोगात्मक शिक्षा से सीखने का अवसर प्राप्त होगा।

संदर्भ :-

1. सोनू सिंह हाई.क्यूरा.कॉम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986
2. वही, पृ. वही।
3. डॉ. अमित कुमार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, पृ. 01–02
4. वही, पृ. वही।
5. डॉ. आभा सिंह डॉ. दिलीप कुमार सिंह, एनईपी 2020, भारतीय शिक्षा प्रणाली का नवीन युग, पृ. 62–63
6. वही, पृ. वही।
7. डॉ. राजेश कुमार पाण्डेय, नई शिक्षा नीति चुनौतियां एवं संभावनाएं रिसर्च जनरल, पृ.50
8. गिरीश्वर मिश्रा, नई शिक्षा नीति रिसर्च जनरल, पृ. 62
9. प्रेमपरिहार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, रिसर्च जनरल, पृ. 110
10. पांचजन्य, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मुक्ति की मार्गदर्शक, भारत प्रकाशन अंक 11 नई दिल्ली, 08 अगस्त 2021
11. डॉ. एस. रूपेन्द्र राव एवं संत कुमार तिवारी, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 दूरस्त शिक्षा की भूमिका, पृ. 31

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 105–110

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : संभावनाएं एवं चुनौतियां

डॉ. रूपा आर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
राधेहरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर, ऊधमसिंहनगर।

शोधसार :–

आधुनिक भारत में नई शिक्षा नीति का विशिष्ट महत्व है। किसी भी देश की उन्नति में समय के साथ शिक्षा नीति में परिवर्तन आवश्यक है। जिससे देश की उन्नति हो सके। इसी बात को ध्यान में रखते हुए नई शिक्षा नीति को 34 वर्षो के बाद लाया गया। नई शिक्षा नीति का उदेद्श्य बालकों को केवल किताबी ज्ञान देना नहीं है बल्कि उन्हें व्यावहारिक ज्ञान देकर उनकी मानसिक तथा बौद्धिक क्षमता को और भी ज्यादा प्रबल बनाना है। जिससे व्यक्ति अपने जीवन में बेहतर निर्णय ले सकता है। वह समाज को एक सकारात्मक योगदान दे सकता है साथ ही वह आत्मनिर्भर भी बन सकता है। किसी भी देश तथा समाज के विकास के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण हथियार होता है। जिसके माध्यम से किसी देश का विकास तेजी से किया जा सकता है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र के उत्थान एवं नव निर्माण की दशा व दिशा को तय करती है। हालांकि समय के साथ–साथ हर चीजों में बदलाव आता है और उसके अनुसार शिक्षा में भी बदलाव किया जाना चाहिए क्योंकि पहले समय में टेक्नोलॉजी का इतना विकास नहीं हुआ था लेकिन अब दिन–प्रतिदिन टेक्नोलॉजी का विकास होते जा रहा है।

ऐसे में बालकों को न केवल किताबी ज्ञान बल्कि उन्हें व्यावहारिक ज्ञान और टेक्निकल ज्ञान भी दिया जाना चाहिए ताकि अपनी योग्यताओं को बढ़ा सके। शिक्षा के द्वारा ही हम नई दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। शिक्षा समाज के विकास तथा संपूर्ण राष्ट्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण एवं मूलभूत आवश्यकता है। वर्तमान युग वैश्विक शिक्षा एवं वैश्विक समाज का एक महत्वपूर्ण अवसर का युग है। शिक्षा के द्वारा ही किसी भी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव होता है। शिक्षा हमें नैतिकता, संस्कार, तर्क–वितर्क, विवेक, आत्मज्ञान, विश्वास एवं नवाचार का पाठ पढ़ाती है। शिक्षा मनुष्य, समाज व राष्ट्रीय विकास के संवर्धन में आवश्यक है।

प्रस्तावना :–

भारत प्राचीन काल से ही विश्वगुरू रहा है। अपने उच्च स्तरीय शिक्षा स्थलों जैसे–नालन्दा, तक्षशिला आदि के बल पर इसकी तूती पूरे विश्व में बोलती थी। देश विदेश के विद्यार्थी यहां शिक्षा ग्रहण करने को आते थे। शिक्षा स्थल ही तो वह केंद्र बिंदु है जहां से राष्ट्र का निर्माण और विनाश दोनों ही संभव हो सकते हैं। आजादी के बाद से ही शिक्षा को ही, हर बार परिवर्तन का माध्यम माना जाने लगा है। जितने प्रयोग इस क्षेत्र

में होते हैं उतने शायद ही किसी अन्य क्षेत्र में होते होंगे प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा पर अनेक परिवर्तन समय–समय पर किए जाते रहे हैं लेकिन फिर भी यह लगता रहा है कि हर बार कुछ न कुछ छूट रहा है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस अभाव को पूरा करने का एक प्रयास किया गया है।[1]

भारतीय शिक्षा क्षेत्र के स्वरूप में सुधार करने के लिए वर्तमान सरकार ने एक व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तैयार की। एनईपी 2020 के नवीनतम संस्करण में ऐसी शिक्षा नीति का मसौदा है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित है जिसके जरिए हमारा राष्ट्र एक ऐसा समाज बना सकता है जहां ज्ञान की अविरल धारा से उपलब्धियों का कोष समृद्ध होता रहेगा। नई शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली में एक क्रांतिकारी बदलाव है इसका उददेश्य शिक्षा को अधिक समावेशी, प्रभावी और गुणवत्तापूर्ण बनाना है। उच्च शिक्षा में मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। शिक्षकों के निरंतर विकास और डिजिटल शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। शोध और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान फाउडेशन की स्थापना। इस नीति का मुख्य उदेदश्य भारतीय शिक्षा प्रणाली को वैश्विक मानकों के अनुरूप बनाकर छात्रों को भविष्य के लिए तैयार करना है। ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक भारत केन्द्रित शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना करती है जो सभी को उच्च शिक्षा प्रदान करके हमारे राश्ट्र को स्थायी रूप से एक समतामूलक और जीवंत ज्ञान समाज में बदलने से सीधे–सीधे योगदान देती है।[2]

नई शिक्षा नीति 2020 भारत में शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव लाने के लिए सरकार द्वारा लाई गई एक महत्वपूर्ण नीति है। इस नीति को 29 जुलाई 2020 को भारत के केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा शुरू किया गया था। इस नीति को 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति से बदलने के लिए लागू किया गया है। इसका उदेद्श्य शिक्षा को सभी के लिए सुलभ गुणवत्तापूर्ण और समग्र बनाना है। हाल ही में प्रधानमंत्री नरेद्र मोदी द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई गई जिसे सभी के परामर्श से तैयार किया गया। इसे लाने के साथ ही देश में शिक्षा पर व्यापक चर्चा आरंभ हो गई है। शिक्षा के संबंध में गांधी जी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद का कहना था कि मनुष्य की अंर्तनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। 1986 की शिक्षा नीति में ऐसी क्या कमियां रह गई थी जिन्हें दूर करने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लाने की आवश्यकता पडी। साथ ही क्या यह नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति उन उदेद्श्यों को पूरा करने में सक्षम होगी जिसका स्वप्न महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानंद ने देखा था।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली वैश्विकरण और प्रौद्योगिकी प्रगति की तेज गति से निपटने में पिछड़ रही है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण के साथ नई शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी गई। ताकि नई शिक्षा नीति को भारत के वैश्विक स्तर पर ज्ञान महाशक्ति बनाने के लिए वैज्ञानिक नवाचार और गुणवत्तापूर्ण वृद्धि की दिशा में मार्ग प्रशस्त करती है। 29 जुलाई 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल के तत्वाधान में शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तनकारी सुधार लाने के लिए 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषा पर विचार :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं को लेकर भी विचार किया गया है। यह नीति दुनियाभर के भारतीय भाषाओं पर उदासीनता और भाषा के अस्तित्व पर आ रहे संकट को पूर्णतः रेखांकित करती है। भाषा

द्वारा व्यक्ति के चरित्र निर्माण में भाषा के महत्व को देखते हुए हर नीति इस बात को स्वीकार करती है कि भाषा का सवाल केवल शिक्षण माध्यम तक ही सीमित नहीं है बल्कि भाषा का महत्वपूर्ण सरोकार ही राष्ट्रीय एकता संस्कृति के पोषक, अवसरों की समानता तथा धार्मिक विकास के प्रश्न से गुंथे हैं। अतः भाषा के बारे में फैसला केवल बहुमत के आधार पर ही नहीं किया जा सकता इसमें विविधता और समावेशन का पूरा स्थान होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समग्र विकास पर अधिक ध्यान :-

नई शिक्षा नीति 2020 में समग्र विकास को मजबूत बनाने के लिए बहुविषयक विश्वविद्यालयों व कॉलेजों द्वारा पाठ्यक्रम को चुनने में छात्र की पसंद को प्राथमिकता दी गई है। पाठ्यक्रम शैक्षिक अभ्यास और मूल्यांकन शिक्षा के सभी महत्वपूर्ण घटकों को क्रॉस–डिसिप्लिनरी और अंतःविषय सोच को ध्यान में रखते हुए काफी कम रटने वाली शिक्षा के लिए नया रूप दिया गया। छात्रों को उनके व्यवहारिक विषय कौशल को बढ़ाने, बेहतर रोजगार के विकल्पों के लिए स्थानीय उद्योग, व्यवसाय आदि के साथ सरल अवसर प्रदान किए गए।

कौशल विकास 2020 :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने राष्ट्रीय कौशल विकास को महत्व दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति छात्रों को जीविकोपार्जन के लिए महत्वपूर्ण कौशल सीखो और सीखाने के प्रयास पर जोर देती है। जो उन्हें नौकरी, व्यवसाय व तकनीकी व्यावसायिक शिक्षा के साथ कौशल आधारित क्षेत्र में अनेक अवसर प्रदान करती है। एनईपी 2020 में व्यावसायिक प्रशिक्षण को भी शामिल किया गया है। इस कदम से विविध रूचियों वाले उन छात्रों की कौशल क्षमता के विकास के अवसर उपलब्ध होंगे जिनके पास यह विशेषता या क्षमता तो मौजूद तो थी, पर उनके लिए स्कूल स्तर पर कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी स्कूली पाठ्यक्रम में इसका समावेश निश्चित रूप से छात्रों की वास्तविक रूचि को जल्दी पहचानने में मदद करेगा साथ ही अनुसंधान संबधी एक निश्चित स्तर की क्षमताओं के साथ बेहतर विशेषज्ञता और अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित किया गया है। जिससे उच्च शिक्षा में सभी प्रणालियों में रिसर्च एंड एनालिसिस दृष्टिकोण विकसित करने में मदद मिलेगी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार शीर्ष पायदान के 100 विश्वविद्यालयों को भारत में सीधे तौर पर कार्य करने की अनुमति दी जाएगी और वे प्रभावी रूप से भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे। यह ज्यादा बेहतर और सुयोग्य शिक्षकों और प्रतिभाशाली छात्रों को आकर्षित करने के लिए एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धी माहौल को प्रोत्साहित करेगा।

भारतीय शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता :-

वैश्विक परिवेश में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा वैश्विक स्तर पर भारतीय शिक्षा व्यवस्था की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा नीति में परिवर्तन आवश्यक था। स्कूली शिक्षा में जैंडर का बहुत महत्व है। शिक्षा स्वास्थ्य पोषण सभी क्षेत्रों में जैंडर संतुलित नजरिए एवं सोच को लाने की आवश्यकता है। 2020 में किशोरियों की शिक्षा एवं जैंडर शिक्षा को बढ़ावा देती है। किशोरियों की शिक्षा में आने वाली बाधाओं पर ध्यान दिया गया। 2020 में इसी शिक्षा नीति में किशोरियों की शिक्षा का रोडमैम बनाने की आवश्यकता है।[3]

ज्ञान की स्वतंत्रता एवं संस्कृति का हस्तांतरण :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में देश के लोगों के समक्ष ज्ञान की स्वतंत्रता के साथ संस्कृति के हस्तांतरण के नए प्रारूप को सर्व स्वीकृत करने का प्रयास किया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 के प्रारंभिक शिक्षा

से लेकर उच्च शिक्षा में प्रस्तावित बिंदुओं के माध्यम से ज्ञान एवं शिक्षण की अवरूद्ध प्रक्रियाओं को बदलने का एवं नवसृजित विचारों को वास्तविक धरातल पर उतारने का प्रयास भी किया गया है। प्रस्तुत लेख में नई शिक्षा नीति 2020 के महत्वपूर्ण तथ्य देश में शिक्षा के क्षेत्र में भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया हैं। नई शिक्षा नीति 2020 की क्रियान्वयन से संबंधित भविष्य की चुनौतियों पर भी चर्चा करके आवश्यक संशोधनों के लिए तैयार रहने की आवश्यकता प्रदर्शित की गई है।[4]

शिक्षा के माध्यम से ही ज्ञान और कौशल में वृद्धि करके समाज में विद्यमान मनुष्य को श्रेष्ठ योग्य नागरिक बनाया जाता है। विश्व के प्रत्येक देश शिक्षा के इस मूल मंत्र को केंद्रीयकृत रखते हुए समय–समय पर परिस्थिति एवं परिवर्तन के दौर से गुजरते हुए शिक्षा नीति में आवश्यक परिवर्तन करते हैं। भारत देश विश्व में हमेशा से ज्ञान के क्षेत्र में विश्व को दिशा देते हुए गुरू की भूमिका के प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में रहा है। भारतीय संस्कृति एवं विचार के ज्ञान के हस्तांतरण में आधुनिक तकनीक के समिश्रण आवश्यकता एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता से डिजिटल युग में शिक्षा में भी परिवर्तन एवं नीति निर्माण की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा आदरणीय श्री नरेन्द्र मोदी जी की सरकार के द्वारा की गई।[5]

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के उत्थान एवं नवनिर्माण की दशा एवं दिशा तय करती है। शिक्षा हमें संस्कार, स्वावलंबन, नैतिकता, तर्क–विवेक एवं आत्मज्ञान के साथ ही आत्मविश्वास भी प्रदान करती है। स्वतंत्रता के उपरांत हमारे देश के नीति नियंताओं के समक्ष दो विकल्प में प्रथम अधिनायक तक की शिक्षा व्यवस्था को चलने दिया जाए। अंग्रेज शासकों की शिक्षा व्यवस्था उनके हितों के अनुरूप थी दूसरा विकल्प शिक्षा में आमूल–चूल परिवर्तन कर स्वाधीन भारत की जन अपेक्षाओं के अनुरुप नवीन व्यवस्था लागू की जाए। नई शिक्षा नीति प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन लाने हेतु बनाई गई। वस्तुतः वैश्विक परिदृश्य के ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यताओं की पूर्ति करने के लिए मौजूदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी।[6]

वस्तुतः वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यताओं की पूर्ति करने के लिए मौजुदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी। शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए नई शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस की गई। भारतीय शिक्षण व्यवस्था की वैश्विक स्तर पर पहुंच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिए शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी। 2020 व्यवधानों और पुनर्निर्माण का वर्ष है महामारी के कारण हम जिस तरह से नीति को देखते हैं इसकी अभूतपूर्व समीक्षा हुई है। भारत में 34 वर्षो के बाद 29 जुलाई 2020 को जारी की गयी नई शिक्षा नीति एनईपी 2020 को उत्साह जिज्ञासा और संदेह और आलोचना के स्वस्थ स्तर के साथ देखा गया है इसका विजन महत्वाकांक्षी है।

संभावनाएं एवं चुनौतियां :–

नई शिक्षा नीति 2020 को लागू करने की कई चुनौतियां है। जिनमें संसाधनों की कमी, शिक्षकों की बुनियादी ढांचे की कमी और शिक्षकों को नई शिक्षा विधियों के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता शामिल है इसके अतिरिक्त समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देना और यह सुनिश्चित करना कि सभी छात्रों को समान अवसर मिले एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जुलाई 2020 में पेश की गई नई शिक्षा नीति का उदेद्श्य शिक्षा के माध्यम से समानता और समावेश को बढ़ावा देना है। आधुनिक समय की आंकाक्षाओं के साथ पारंपरिक भारतीय ज्ञान प्रणाली के

मार्गदर्शक सिद्धांतों के इर्द–गिर्द निर्मित, एनईपी 2020 देश में शैक्षिक परिदृश्य को बदलने के लिए तैयार है, जिससे यह अधिक समग्र और नवाचार की ओर अग्रसर होगा। फर्स्टपोस्ट में प्रकाशित एक लेख में कहा गया है, ''नीति भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाने के उदेदश्य से एक आधुनिक, भविष्योन्मुखी उदेद्श्य प्रस्तुत करती है जो आवश्यक तत्वों पर चतुराई से ध्यान केन्द्रित करती है।''[7]

एनईपी 2020 निश्चित रूप से अपने दृष्टिकोण में महत्वाकांक्षी है क्योंकि इसका लक्ष्य उच्च शिक्षा संस्थानों एचईआई की गुणवत्ता में सुधार करते हुए उच्च शिक्षा में जीईआर को 26.03 प्रतिशत 2018 से दुगूना करके 2035 तक 50 प्रतिशत करना है। देशभर के कॉलेजों और विश्वविद्यालयों पर इसका पहले से ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है क्योंकि वे उच्च शिक्षा के लिए मानक बढ़ाने के लिए नई रणनीतियों को लागू करते है। लचीले पाठयक्रम से लेकर सीखने के लिए अंतःविषय, दृष्टिकोण, अनुसंधान पर जोर देने से लेकर नवाचार को बढ़ावा देने तक, ऐसे कई तरीके हैं, जिनसे ये भारत को वैश्विक शिक्षा केंद्र बना सकता है। एनईपी 2020 उच्च शिक्षा को अधिक सुलभ और न्यायसंगत बनाने पर केंद्रित है, साथ ही यह अधिक पारदर्शिता और जवाबदेही की ओर भी अग्रसर है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए पुनर्गठन, समेकन और छात्रों के लिए शैक्षिक अनुभव को अगले स्तर तक ले जाने के लिए कई नए अवसर लाए हैं।[8]

एनईपी 2020 के वादे निश्चित रूप से महत्वाकांक्षी हैं और हमारी शिक्षा प्रणाली और रोजगार की दिशा में उज्ज्वल भविष्य का आगाज कर रहे हैं। चुनौती बस एक है कि इस पर उपयुक्त रूप से अमल हो। हालांकि इस नीति को कुछ अड़चनों का भी सामना करना पड़ सकता है। अभी हमारी प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में प्रशिक्षित शिक्षकों की भारी कमी है, साथ ही उपयुक्त संसाधनों का भी अभाव है। ऐसे में हाईस्कूल स्तर पर विभिन्न व्यावसायिक विषय संबंधी अपेक्षित प्रशिक्षण उपलब्ध कराना एक मुश्किल काम होगा। इसलिए सबसे पहले विभिन्न राज्य सरकारों को पहले हमारे स्कूलों में व्यावसायिक विषयों के प्रशिक्षकों को भर्ती करने के लिए बढ़ा अभियान चलाने की जरूरत होगी।[9]

उच्च शिक्षा महाविद्यालयों और छोटे विश्वविद्यालयों के मौजूदा प्रदर्शन और उनके स्तर के आधार पर शोध के लिए सहायता राशि के वितरण के समय काफी भेदभाव अनुभव हो सकता है कि अधिकांश राशि पहले से स्थापित संस्थानों के हिस्से चली जाए और कम सुविधा वाले महाविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानो को खुद को बेहतर करने का मौका ही न मिले जिससे गुणवत्ता के मानक पर वे और भी निचली पायदान पर खिसक सकते हैं।

अमल संबंधी चुनौतियों के बावजूद यह नई नीति संतोषजनक उम्मीदों और संभावनाओं का आसमान थमा रही है। भारतीय शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए उसमें हमारे सकल घरेलू उत्पाद की 6 प्रतिशत राशि का योगदान करना होगा। कुल मिलाकर, एनईपी 2020 युवा पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य और शिक्षा प्रणाली में उल्लेखनीय बदलाव की उम्मीद लेकर आई है। अब एक संशोधित और सुनियोजित शिक्षा नीति राष्ट्र को प्रगति के मार्ग पर ले जाने के लिए तैयार है, आवश्यकता है तो बस उपयुक्त कार्यान्वयन की जिससे जमीनी स्तर पर इसका लाभ मिले। आज विभिन्न सरकारी एजेंसियों, राज्य सरकारों, नीति निर्माताओं, निजी क्षेत्रों, शिक्षाविदों और सामाजिक कार्यकताओं को आगे बढ़कर अपना बहुमूल्य योगदान देकर एनईपी 2020 की सफलता सुनिश्चित करने में भरपूर प्रयास करना चाहिए।[10]

निष्कर्ष :-

एनईपी 2020 भारत में शिक्षा के आधुनिकीकरण की दिशा में एक साहसिक कदम है। हालाकि चुनौतियां मौजूद हैं, लेकिन रणनीतिक कार्यान्वयन से इसके विजन को वास्तविकता में बदला जा सकता है। इस नीति में पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा के बीच की खाई को पाटते हुए सीखने में क्रांति लाने की क्षमता है। नई शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली में एक महत्वपूर्ण बदलाव लेकर आई है। यह नीति न केवल शिक्षा को अधिक समावेशी और प्रभावी बनाती है, बल्कि छात्रों के समग्र विकास पर भी जोर देती है। नई संरचना, उच्च शिक्षा में सुधार, व्यावसायिक शिक्षा का महत्व और शिक्षकों का विकास, सभी इस नीति की प्रमुख विशेषताएं हैं।

नई शिक्षा नीति 2020 का उदेद्श्य छात्रों को बेहतर अवसर प्रदान करना और भारतीय शिक्षा को वैश्विक मानकों के अनुरूप बनाना है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 21वीं सदी के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु जिस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को मंजूरी दी है अगर उसका क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले आएगी। इसके सफल कार्यान्वयन से भारत का भविष्य और भी उज्ज्वल होगा।

संदर्भ :-

1. प्रेम परिहार नई शिक्षा नीति 2020 संभावनाएं एवं चुनौतियां, अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्र 2020, पृ. 109
2. Plaksha.edu.in
3. इन्द्रजीत चौधरी उमंग वाणी छठा संस्करण, जुलाई 2022, पृ. 01
4. डॉ. नरेंद्र कुमार पाल, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, ज्ञान गरिमा सिंधु अंक 72, अक्टूबर–दिसंबर 2021, पृ. 01
5. वही, पृ. 02
6. डॉ. राजेश कुमार पाण्डेय अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्र जनरस नई शिक्षा नीति चुनौतियां एवं संभावनाएं, पृ. 01
7. https://www.dbuu.ac.in
8. वही।
9. https://Panchijanu.com.
10. वही।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 111-115

एकदानैमिषाराये में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन

डॉ. प्रदीप कटारा
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस,
शहीद चन्द्रशेखर आजाद शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.)

शोध सारांश :–

हिन्दी में उपन्ध्यास विधा का वर्तमान रूप में प्रादुर्भाव आधुनिक काल से ही माना जा सकता है। उपन्यास नामक गद्य–विद्या की विद्वानों नें अनेक परिभाषाएं प्रस्तुत की है। हमें प्रेमचन्द्र की परिभाषा उपयुक्त प्रतीत होती है। इन्होंने इन शब्दों से प्रकट भी है, ''मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का तत्व है।''[1]

जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है, कि ''महान उपन्यास हमेशा आदमी को सोचने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि वे जिन्दगी की ऐसी तस्वीरें हैं, जो बड़े दिमागों ने खींची हैं।''[2]

अमृतलाल नागर ने छोटी–छोटी कहानियों से प्रारम्भ कर उपन्यास तक पहुँचे हैं। इनके लेखन का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज में समन्वय करना था। उन्होंने सामाजिक समस्याओं का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण कर समाधान दिया हैं। व्यक्ति की गरिमा की अवहेलना न कर व्यक्ति और समष्टि की पारस्परिक सार्थकता को स्वीकारा है। व्यक्ति समाज की पहली इकाई है, और समाज उसका सम्पूर्ण अंश है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज से पृथक कोई अस्तित्व नहीं रख सकता है। अरस्तु ने कहा मनुष्य समाज से अलग पशु होगा या देवता। वह समाज का अभिन्न अंग है।

समाज की प्रत्येक घटना व्यक्ति को प्रभावित किये बिना असंभव है, यह सत्य है। समाज में घटित घटनाएं चाहे जिस स्वरूप में हो– प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सभी से व्यक्ति प्रभावित होता है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति, संस्कृति और समाज के विभिन्न घटकों के बीच पारस्परिक संबंध निरूपित किया है। वे अपने लेखन में किसी न किसी विशेष समस्या को उठाते है। और उसका समाधान खोजतें है। उन्होंने 'महाकाल' में अकाल की भयंकरता की विभिषिका मूर्तिमान हो उठती है। सामाजिक उपन्यास की धारा में नागरजी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्या का भारतीय संस्कृति की सच्चाई को चित्रित करने में पीछे नहीं हटे।

सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास बुँद और समुद्र' में एवं 'अमृत' और विष' में सामाजिक चेतना जागृत हुई

है। 'करवट' में मध्यवर्गीय मानस का विकास कर सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना अद्भूत हुई है। नागरजी ने 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास का सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर अंकित कर सामाजिक मापदंडो का निर्वाह किया है। उपन्यास में नागरजी ने र्भाव सोमाहुति, इज्या, नारद, भारतचंन्द्र भृगवत्स, जगतसेठ कौरोष, चन्द्रगुप्त, लवणशोभिका का पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक चित्रकर समाज के विभिन्न वर्गों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने का प्रयास किया है। समाज की कुरीतियों से खुलकर विद्रोह करने के लिये भारतीय जनमानस से नागरजी ने आव्हान किया है, यथा मद्यपान की प्रवृत्ति, वेश्यावृत्ति, विलासप्रियता, वर्णभेद आदि से दूर रहे तथा भारतीय जनमानस में सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का प्रयास किया।

वेश्यावृत्ति :-

वेश्यावृत्ति ही दास प्रथा का एक रूप है। प्राचीन काल से वेश्यावृत्ति समाज में देखी जा सकती है। नागरजी ने इस ओर ध्यान दिया है। लवणशोभिका, यास्मीन, शाहगुल आदि पात्र एकदा नैमिषारण्ये में अग्रणी रही है। लेकिन समय के साथ वे नैमिष आन्दोलन में जुड़कर भृगुवत्स को नष्ट करने में सहयोग देती है।

"प्रिय के इस आवेश से लवण शोभिका की व्यवहारिक वेश्यावृत्ति चौक उठी उसने कहा 'आप चाहने पर सब–कुछ कर सकते है, आर्यपुत्र। किन्तु भृगुवत्स साधारण व्यक्ति नहीं है। सारे प्रमुख राजकर्मचारी और उनकी महिषियॉ भृगुवत्स के चगुल में है। यदि भृगुवत्स के सामने धर्म होता तो, वह अपनी प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि के कारण चाणक्य सिद्ध होता। किन्तु धर्मशून्यता के कारण वह ऐसा विषधर बन गया है, कि जिसके काटे का मन्तर नहीं है, प्राणनाथ। कौरोष ठठाकर हँसे बोले 'बावरी मैं पहली बार मथुरा नहीं आया हूँ। भृगुवत्स मेरे लिये नितांत अपरिचित नहीं है, निश्चित रह। जिस विषधर से बचने के लिये तूने मुझे सचेत किया है, वह इस बार कौरोष के हाथों में पड़कर स्वयं अपने ही विष से मारा जायेगा।"[3]

1. वर्ग–भेद :-

समाज में उस समय वर्ग भेद फैला हुआ था, और छुआछूत की भावना समाज में व्याप्त थी। भारत की दो मुख्य सांस्कृतिक धारायें ब्राह्मण और श्रमण आपस में कहीं मिल नहीं पाती थी। ब्राह्मण सांस्कृतिक चार वर्ण, चार आश्रम, पशु–बलियज्ञादि में विश्वास करती थी। श्रवण परम्परा आत्मचिंतन, संयम, स्वभाव, सत्य, अहिंसा, तप, दान आदि में विश्वास करती थी। ब्राह्मणों में स्त्रियों और शूद्रों को वेदाधिकार नहीं देते थे। जो वेदमन्त्र को धोखे से सुन लेता था, उसकी जीभ काट लेते थे या कान में गर्म सीसा डाल देते थे।

लाल–लाल ऑखे निकालकर कूलधमण बोले "अरे तो र ऑखी, कान का फूट गए है रे। देखत नहीं कि हमार सख बज गए है। 'नाव घाट पर लाते हुये नाविक ने ठण्डे स्वर से कहा 'अरे भोजन तो करै का है न तुमा। तनिक ठहर जाओ। महातमा जी उतरि जायॅ, पाछे खूब संख बजायो।"[4]

मद्यपान की प्रवृत्ति :-

इस समय देश में मद्यपान का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है। इस देश का तपस्वी और ब्राम्हण जन इस समय अत्यधिक पतनशील हो चुका है। इससे लोकमानस भयंकर रूप से बिखर गया है। जीने के लिए बल और सम्बल पाने के हेतु सामान्य जन ईश्वर और धर्म के किसी न किसी रूप पर आस्था रखने के लिए अपने आपसे बाध्य है, और देवधर्म का उपदेश देने वाले अपने गुरूओं के मिथ्याचरणों के कारण उसकी यह आस्ध्था टूटने और विच्छिन्न होने के लिए भी बाध्य है।

"एक व्यक्ति हँसा, कहने लगा और जो हमारे साधुओं को देखना चाहो महाराज तो नगरी में पहुँच के तनी पियाले का मेला देख्या आओ। बड़े–बड़े जटाधारी तपसी तुम्हे वहॉ इत्ती बरिया चुक्कड़ पर चुक्क्ड़ चढ़ाते मिल जायेंगे।'

'यहॉ के तापस का सुरा पीते है। फौकट में मिले महाराज तो कौन नहीं पियेगा। तपसी चुक्कड़ चढ़ाते है। भिक्खू जुऑ खिलाते है, और नागे सरावगी अपनी जजमानियों को पुत्तर दान करते है। ह ह ह ।"[5]

राष्ट्रीय चेतना :–

उपन्यास में सर्वाधिक सबल तत्व है, राष्ट्रीयता का आग्रह। पहली बार पौराणिक सामंजस्य के साथ, धार्मिक आन्दोलनों में लक्ष्यीभूत यह तत्व बहुत विशाल पैमाने पर प्रस्तुत मिलता है। शैवो पर वैष्णवों की ओर इन्द्रवादियों पर हरिहरवादियों की विजय की आड़ में, वास्तव में, राष्ट्र की विघटनवादी शक्तियों पर एकतावादियों की विजय चित्रित की गयी है। राजनीतिक एकता के साथ भारत में जिस महाभाव के जागने के लिए व्यास–नारद सयत्न है, उसमें ईश्वर और राष्ट्र में नहीं के बराबर अन्तर रह जाता है। तत्कालीन स्थितियों में राष्ट्रीयता का सन्तुलन ब्राह्मण धर्म में चित्रित है। यथा :–

"यदि आप ठंडे मन से विचार करेंगे तो यह पाएंगे कि निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र के काल तक वैदिकों ने भी चिन्तन के नवीन संस्कार अर्जित कर लिये थे। उनके यहॉ भी वैचारिक संघर्ष आरंभ हो गया था। अनेक सुविचार ब्रह्मज्ञान को यज्ञादि से श्रेष्ठ मानने लगे थे। उपनिषदकार ऋषिगण, महावीर, गौतमबुद्ध आदि महानुभाव इस भरतखंड में व्याप्त एक ही वैचारिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि से विभिन्ध्न प्रकाश रूपों में उपजे थे। सभी एक दूसरे को सुसंस्कृत बना रहे थे। उनकी धर्म दृष्टियॉ अलग थी तो क्या हुआ, उनका समाज एक ही था। अतएव भारतवर्ष के आर्य समाज को इन सभी ऋषियों और आचार्यों से सुसंस्कार दिये है। सभी श्रद्धेय है, प्रणम्य है।"[6]

विलासप्रियता :–

एकदानैमिषारण्ये में विलास प्रियता को भी चित्रित किया गया है। इसमें कुछ वर्गों को विलासी जीवन व्यतीत करते बताया गया है। किस प्रकार समाज का तत्कालीन साधु–सत वर्ग मद्यपान, जुओं आदि में मस्त होने से अपने जीने के अर्थ को भूल जाते है। व्यापारी वर्ग में जगत सेठ कोरोष तथा दुरात्मां भृगुवत्स, वेश्या लवणशोभिका, यास्मीन, शाहगुल, मुख्य पुजारिन आदि कामवासनाओं में लिप्त है। उपन्यास का प्रारंभ में नारद प्रसंग से होता है। मध्य एशिया से घूमकर वापस हुए महर्षि नारद रेणुका क्षेत्र जाते हुए तुलसी–मंडप के पोखरों में नग्न स्नान करती वृन्दाएं उन्हें बंदी बना लेती है, और वे नारी–वेश में मुख्य पुजारिन की सेवा में डाल दिये जाते हैं।

पुजारिन का उस पर विशेषाधिकार रहता था। पूर्ण पितृ–सत्रात्मक समाज से अपने इलाके में घुस आने वाले नर को दण्डस्वरूप नारी के वेश में रखकर वे उसके अहम को अपने अंकुश में रखती थी। अँधेरे में यह नारी–वृन्द पुजारिन के आदेशानुसार उस बन्दी पुरूष का उपभोग तो करती थी, पर उसे नग्न देख लेना उसके लिए घोर पाप था– और उस पाप का दण्ड था मरण–स्त्री पुरूष का। यह पुरूखों और उर्वशी के काल से होता चला आया है। कोई आज की रीति तो है, नहीं।

सांस्कृतिक चेतना :–

चाहे आलोचक रूप हो या उपन्यासकार का, नागरजी भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक एवं आख्याता

रहे हैं। उनका यह संस्कृति प्रेम उनके सभी उपन्यासों में मुखरित रहा है। उन्होंने उपन्यास केवल उपन्यासों के लिये नहीं लिखे अपितु इनके पीछे काल, संस्कृति और लोकबोध आदि की अनेक पृष्ठभूमियां साकार करने का प्रयत्न है। उनके उपन्यासों की प्राणभूत सांस्कृतिक चेतना का विवेचन हम इन उपन्यासों में चित्रित सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, धार्मिक एवं दार्शनिक स्थिति, कला और साहित्य, शिक्षा व्यवस्था और लोक जीवन चित्रण आदि उपशीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं। यह विवेचन इन उपन्यासों का सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत कर सकता है। यथा–नारद बोले 'आर्य पुण्डरीकाक्ष, हरिद्वार के द्वन्द को व्यर्थ का महत्व न दें। जगन्नियन्ता के इन दोनों रूपों में भेद करना अन्याय है। भक्ति धर्म का उदय होने से हमारे देश के संस्कारों में एक अद्भूत क्रांति आई है। इससे हमारा राष्ट्र मानस व्यापक और उदान्त हुआ। आत्मतत्व प्राप्ति के लिये मात्र वेदाध्ययन, कर्मकाण्ड और दान–दक्षिणा देने से ही कुछ सिद्ध नहीं होता।

ब्रह्म ज्ञान ही व्यक्ति के लोक–परलोक का निर्माता है। ब्रह्मज्ञान यज्ञादि से कहीं ऊँचा है, और यह ज्ञान भक्तिधर्म को स्वीकृति प्रदान करके ही प्राप्त होता है। आस्था छोटे–छोटे देवतों से निकलकर विराट् और व्यापक बनती है। भक्तिमार्गी चाहे वह राजा हो या रक, केवल 'पत्रक पुष्पम् फलन्तोयम' से ही समान भाव से अपनी प्रजा के साथ एक साथ हो सकता है, जबकि यज्ञादि कर्मकाण्ड केवल श्रीमन्तो को ही मोक्ष लाभ कराने की सामर्थ्य रखते है। भक्त साधुओं की रक्षा के लिए दुष्टों का नाश करने में ही विश्वास रखता है, अतएव हे, परम शैव राजन् आप इक्ष्वाकुवंशी महाराज सागर की भॉति मनुष्य मात्र की सुशासन प्रदान करने की भावना से अपने राज्य का विस्तार करें। जो राष्ट्र यज्ञ आपके प्रातः स्मरणीय पूर्वजों ने आरंभ किया था, उसे पूर्णाहुति प्रदान करने हेतु ही अपना तन, मन, धन अर्पित करें।

निष्कर्ष :–

कोई भी औपन्यासिक कृति यथार्थ जीवन का मूर्तरूप एवं दर्शन होती है। वह तत्कालीन संस्कृति और समाज का प्रतिबिम्ब होती है। जिसमें लेखक का कल्पना– जन्य व्यक्तित्व झलकता है। यही स्थिति पाठक को समाज के निकट पहुँचाती है। एकदा नैमिषारण्ये के सृजनमूल में भारत की भावनात्मक एकता है। कथाकारा ने पुराण रचना को राष्ट्रीयता से जोड़ा है। ऐतिहासिक दृष्टि से उपन्यास का भारत एक ऐसे संधिकाल का द्योतक है, जब कुषाण वंश का अंतिम प्रदीप निर्वाण प्राय है, नागवंश का वैभव सूर्य अस्ता चलगामी है, और गुप्त वंश का चद्र उदयांचल पर उभरने के लगा है। भारतीय स्वर्ण युग के प्रस्तावक और गुप्त साम्राज्य के संस्थापक समुद्रगुप्त के उभार की भूमिका प्रस्तुत करते हुये यह उपन्यास समाप्त होता है। यह साहित्य कथा उस भावनात्मक आन्दोलन से जुड़ी है, जिसने पहली बार भारत की सभी जातियों के उत्तम विचार और संस्कार लेकर तथा ब्राह्मण और श्रमण धर्म का उचित समन्वय करके समूचे भारत को वह एकता प्रदान की जिसके सही और गलत प्रभावों से यह देश आज तक बँधा हुआ था।

सन्दर्भ सूची :–

1. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2 (उ.प्र.) पृष्ठ संख्या–649
2. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

(उ.प्र.) पृष्ठ संख्या 649
3. पं. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, प्रकाशन वर्ष 1997 लोक भारती प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 109
4. पं. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, प्रकाशन वर्ष 1997 लोक भारती प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 11
5. पं. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, प्रकाशन वर्ष 1997 लोक भारती प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 70–71
6. पं. अमृतलाल नागर : एकदा नैमिषारण्ये, प्रकाशन वर्ष 1997 लोक भारती प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 173

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 116-121

राजा भोज परमार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आशा शर्मा, शोधार्थी,
डॉ. अमित चमोली, शोध निदेशक,
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

सारांश :-

परमार वंश के शासकों में राजा भोज का व्यक्तित्व उन्हें विश्व के शासकों से अलग खडा करता है। राजा भोज ना केवल शासक और योद्धा थे बल्कि कई कलाओं में निपुण भी थे। प्रस्तुत शोध पत्र में राजा भोज के इस बहुमुखी व्यक्तित्व और उसके आयामों पर चर्चा और विश्लेषण किया गया है। भोज परमार मालवा के 'परमार' अथवा 'पवार वंश' का नौवाँ यशस्वी राजा था। उसने 1018–1060 ई. तक शासन किया। उसकी राजधानी धार थी। भोज परमार ने 'नवसाहसाक' अर्थात् 'नव विक्रमादित्य' की पदवी धारण की थी। भोज ने बहुत–से युद्ध किए और पूर्णतः अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की, जिससे सिद्ध होता है कि उसमें असाधारण योग्यता थी। यद्यपि उसके जीवन का अधिकांश समय युद्धक्षेत्र में बीता, तथापि उसने अपने राज्य की उन्नति में किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न होने दी। राजा भोज ने मालवा के नगरों व ग्रामों में बहुत–से मंदिर बनवाए, यद्यपि उनमें से अब बहुत कम का पता चलता है। भोज स्वयं एक विद्वान् था और कहा जाता है कि उसने धर्म, खगोल विद्या, कला, कोश रचना, भवन निर्माण, काव्य, औषधशास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखीं हैं। इससे यह पता चलता है कि राजा भोज अपने काल के सबसे शक्तिशाली राजा होने के साथ–साथ एक विद्वान, वैज्ञानिक, साहित्यकार और स्थापत्य कला के जानकार थे। जिन्होंने कई ग्रंथ और पुस्तकें लिखी, जिन्होनें उडने वाली मशीनों और पानी के जहाजों के विज्ञान को अपने ग्रंथों में समझाया। जिनकी स्थापत्य कला आज भी उनके बनाए गए मंदिरों में देखने को मिलती है।

मुख्य शब्द :- विद्वान, परमार, स्थापत्य, मंदिर, निर्माता विश्वविद्यालय।

प्रस्तावना :-

इतिहास महान शासकों और महान विद्वानों से भरा पड़ा है, लेकिन यह दुर्लभ है कि एक व्यक्ति में दोनों विशेषताएँ एक साथ हों। प्रस्तुत शोध पत्र में ऐसे ही एक व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है जिसका नाम है – भोज, मालवा के परमार राजा। महान व्यक्तित्व समय, स्थान और परिस्थिति की उपज होते हैं। जिस स्थिति में उन्हें धकेला जाता है, वही परिस्थितियां उनमें ऐसी योग्यताएँ पैदा करती हैं जो उन्हें दूसरों से अलग करती हैं। फिर भी ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में इतने आगे बढ़ जाते हैं कि वे विश्व की हस्तियाँ

बन जाते हैं। सैन्य क्षेत्र में अद्वितीय नेताओं के उदाहरणों में हैनिबल, सिकंदर महान, जूलियस सीजर, चंगेज खान और नेपोलियन शामिल हैं। इनमें से सीजर एक लेखक भी थे। विश्व इतिहास में कोई भी शासक भोज की बौद्धिक उपलब्धियों की बराबरी नहीं कर सकता, जिन्होंने 1010 से 1055 ई. तक अपनी राजधानी धारा से एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया। वह न केवल एक सैन्य नेता थे जिन्होंने कई राजाओं को हराया, बल्कि वह एक प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति थे, एक बहुश्रुत जिन्होंने रसायन विज्ञान, व्याकरण, वास्तुकला, खगोल विज्ञान और यहां तक कि रोबोटिक्स जैसे विषयों पर 84 पुस्तकें लिखीं।

परमार वंश की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत हैं कुछ इतिहासकार उन्हें अग्निवंशीय मानते हैं और कुछ इतिहासकार उन्हें प्राचीन क्षत्रियों की संतान मानते हैं लेकिन अहमदाबाद में मिले परमार राजाओं के अभिलेख में उन्हें राष्ट्रकूट राजाओं का सामंत बताया गया है। परमार वंश को पवार या पंवार वंश की कहा जाता है और इस वंश की स्थापना उपेन्द्र कृष्णराज के द्वारा संभवता 800 ई. के आस–पास में की गई थी।

एक सफल विजेता :–

अल्पायु में सिंहासनारोहण के समय महान राजा भोज चारों ओर से शत्रुओं से घिरे थे। उत्तर में तुर्को से, उत्तर–पश्चिम में राजपूत सामंतों से, दक्षिण में विक्रम चालुक्य, पूर्व में युवराज कलचुरी तथा पश्चिम में भीम चालुक्य से उन्हें लोहा लेना पड़ा। उन्होंने सब को हराया। तेलंगाना के तेलप और तिरहुत के गांगेयदेव को हराने से एक मशहूर कहावत बनी– 'कहां राजा भोज, कहां गंगू तेली'।

अपने सबसे बड़े विस्तार में, भोज का साम्राज्य पूर्व में विदिशा से लेकर पश्चिम में साबरमती नदी तक और उत्तर में चित्तौड़ से लेकर दक्षिण में कोंकण तक फैला हुआ था – यानी मध्य भारत का अधिकांश भाग – हालाँकि भोज के उत्तराधिकारी उदयादित्य द्वारा लिखे गए उदयपुर प्रशस्ति शिलालेख का दावा है कि उनके शासन में भारत का अधिकांश भाग शामिल था। उनकी सेनाएँ सिंध और अफगानिस्तान जैसे दूर–दराज के इलाकों में भी लड़ीं।

राजा भोज का शासन 1010 से कुछ पहले शुरू हुआ होगा। उनके बारे में सबसे पहला ज्ञात संदर्भ उत्तरी गुजरात के मोडासा में पाए गए तांबे की प्लेटों से मिलता है, जो 1010 की हैं। उनके शासन का एक समकालीन विवरण धनपाल की तिलक–मंजरी में है। मेरुतुंग की प्रबंध–चिंतामणि, जो चौदहवीं शताब्दी में पूरी हुई, बताती है कि उन्होंने 55 वर्ष, 7 महीने और 3 दिन तक शासन किया, जो दर्शाता है कि उनका शासन वर्ष 1000 के आसपास शुरू हुआ होगा। एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत बल्लाल का भोज–प्रबंध है, जो 17वीं शताब्दी में वाराणसी में रचा गया था।

भोज के सैन्य अभियान और विजय अभियान सभी दिशाओं में थे। हमारे पास 1018 में गुजरात और 1020 में कोंकणा में उनके अभियान के अभिलेखीय साक्ष्य हैं। वह महान चोल सम्राट राजेंद्र प्रथम (शासनकाल 1014–1044) के समकालीन थे, जिन्होंने श्रीलंका और दक्षिण–पूर्व एशिया के बड़े हिस्से पर विजय प्राप्त की थी। 1019 में, दोनों ने पूर्वी भारत को जीतने के लिए एक गठबंधन बनाया और इस तरह एक साथ भारत के अधिकांश हिस्से पर प्रभुत्व स्थापित किया। एक शिलालेख के अनुसार, गठबंधन में कलचुरी राजा गंगेयदेव भी

शामिल थे। सहयोगियों ने कलिंग के सोमवंशी राजा इंद्रनाथ को भी हराया। शायद उदयपुर प्रशस्ति शिलालेख में भोज के शासन के भारत के अधिकांश हिस्से को कवर करने का कथन दोनों सहयोगियों के साम्राज्यों की सीमा को इंगित करने के लिए है। राजनीतिक विभाजन के लिए प्रवण उपमहाद्वीप में प्रभुत्व का यह क्षेत्र निश्चित रूप से काफी बड़ा था। उदयपुर प्रशस्ति शिलालेख में यह भी दावा किया गया है कि भोज की सेनाओं ने तुर्कों को हराया था। कहा जाता है कि भोज ने काबुल शाही शासक नंदपाल को तुर्क गजनवी के खिलाफ लड़ाई में सेना भेजी थी। यह अभियान पौराणिक हो सकता है, लेकिन किंवदंती हो या न हो, तुर्की आक्रमणकारियों का विरोध करने वाले महान भोज की छवि भारतीयों की बाद की पीढ़ियों के लिए एक शक्तिशाली प्रतीक बन गई, जिन्होंने मुस्लिम शासन का विरोध किया।

बहुश्रुत और विद्वान :-

भोज ने 84 पुस्तकें लिखीं। इनमें निम्नलिखित ग्रंथ शामिल हैं, जिनमें से अधिकांश संस्कृत में लिखे गए थे –

- खगोल विज्ञान और ज्योतिष पर दो पुस्तकें।
- अयस्कों से धातुओं के निष्कर्षण और विभिन्न दवाओं के उत्पादन से संबंधित रसायन विज्ञान पर एक ग्रंथ।
- रामायण का एक प्रोसिमेट्रिक रीटेलिंग।
- संस्कृत और प्राकृत में रचित कई कविताएँ।
- पतंजलि के योग सूत्रों पर एक प्रमुख टिप्पणी।
- शैव दर्शन पर एक ग्रंथ जो कुछ तंत्रों का संश्लेषण भी है।
- संस्कृत व्याकरण पर एक ग्रंथ जिसमें वैदिक रूपों की चर्चा शामिल है।
- शब्दकोश पर एक ग्रंथ।
- काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र पर एक ग्रंथ।
- आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त द्वारा विकसित सौंदर्यवादी सुखवाद से असहमत होकर, भोज ने श्रृंगार, सौंदर्य और चतुराई को ब्रह्मांड और नाटक दोनों में मौलिक और प्रेरक आवेग के रूप में देखा। इस दृष्टिकोण ने कश्मीरी विद्वान मम्मट को प्रभावित किया होगा।
- चिकित्सा पर एक ग्रंथ।
- घोड़ों, घोड़ों की बीमारियों और उनके उपचारों पर एक ग्रंथ।
- व्यक्तिगत स्वास्थ्य और कल्याण पर एक ग्रंथ।
- राज्य कला, राजनीति, नगर निर्माण, रत्न–परीक्षण, पुस्तकों की विशेषताएँ और जहाज निर्माण सहित कई विषयों पर एक विश्वकोश।
- धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक वास्तुकला, प्रतिमा विज्ञान, चित्रकला और मशीनों पर 83 अध्यायों में एक ग्रंथ। चर्चा की गई मशीनों में यांत्रिक खिलौने या रोबोट शामिल हैं। एक उड़ने वाली मशीन का भी वर्णन है –

''हल्की लकड़ी का एक बड़ा पक्षी बनाएं, एक मजबूत म्यान के साथ, इसमें पारे की शक्ति और पंखों से हवा के बल के साथ अग्नि के पात्र के रूप में एक रस–यंत्र रखें, एक आदमी आकाश में दूर तक यात्रा कर सकता है, शांत मन से बादलों में, चित्र बना सकता है।''

यह संभव है कि भोज ने लकड़ी के विमान के मॉडल बनाए और हवा को पीछे धकेलकर आगे की गति प्राप्त करने के लिए आग वाले इंजन की आवश्यकता को देखा। भले ही वह केवल सिद्धांत के आधार पर विवरण के साथ आया हो और कोई मॉडल नहीं बनाया गया हो, यह एक उल्लेखनीय विवरण है। उसी अध्याय में हाइड्रोलिक्स पर एक खंड भी है :–

''पानी के प्रवाह और पानी के दबाव को गति में परिवर्तित किया जा सकता है। पानी का प्रवाह मशीन को उस प्रभाव से चलाता है जो ऊंचाई, दबाव और गति के साथ बढ़ता है। यदि पानी को संरक्षित किया जाता है, तो इसका फिर से प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। यह वह तरीका है जिससे जल प्रवाह को शक्ति में बदला जा सकता है।'' अंत में, भोज को संगीत का विशेषज्ञ बताया गया है।

एक महान निर्माता :–

मेरुतुंग ने अपने प्रबंध–चिंतामणि में कहा है कि भोज ने अकेले अपनी राजधानी धारा में 104 मंदिरों का निर्माण कराया। इनमें से, भोपाल से लगभग 30 किमी दूर भोजपुर में भोजेश्वर मंदिर ही एकमात्र ऐसा मंदिर प्रतीत होता है जो बच गया है। भोजेश्वर मंदिर कभी पूरा नहीं हुआ। शिव को समर्पित, इसका लिंगम (7 फीट ऊंचा और 17 फीट परिधि का है, जो 21 फीट की लंबाई वाले एक चौकोर मंच) पर स्थापित है। मंच सहित लिंगम की कुल ऊंचाई 40 फीट से अधिक है। मंदिर के लिए विस्तृत वास्तुशिल्प योजनाएँ आस–पास की खदानों में चट्टानों पर उकेरी गई हैं जो दर्शाती हैं कि मूल इरादा कई और मंदिरों के साथ एक विशाल मंदिर परिसर बनाने का था। अगर ये योजनाएँ क्रियान्वित की गई होतीं, तो यह भारत के सबसे बड़े मंदिर परिसरों में से एक होता।

इस महान मंदिर में कई अनोखे तत्व हैं, जिसमें आंतरिक गर्भगृह या गर्भगृह की ओर जाने वाले मंडप हॉल का अभाव और सामान्य वक्रीय शिखर के बजाय सीधी छत शामिल है। यह प्रस्तावित किया गया है कि मंदिर एक अंत्येष्टि मंदिर या स्वर्गारोहण–प्रसाद था। इसका विशाल आकार तंजावुर के बृहदीश्वर मंदिर के पैमाने से प्रेरित हो सकता है जिसे उसके सहयोगी राजेंद्र के पिता राजराज प्रथम ने 1003 और 1010 के बीच बनवाया था। बृहदीश्वर मंदिर, जो 208 फीट ऊंचा है, अपने निर्माण के समय दुनिया की सबसे ऊंची स्वतंत्र इमारत थी। भोज ने गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के साथ मिलकर 1026 और 1042 के बीच सोमनाथ में मंदिर का पुनर्निर्माण किया था, जब इसे 1024 में महमूद गजनवी ने लूट लिया था। बाद में इस मंदिर को नष्ट कर दिया गया था। एक अन्य उल्लेखनीय निर्माण भोज झील की सिविल इंजीनियरिंग की उत्कृष्ट कृति थी, जिसे बेतवा नदी पर बांध बनाकर और उसे चौनलाइज करके बनाया गया था। इसके किनारे पर भोजेश्वर मंदिर था। 18 मील लंबी और 7 मील चौड़ी भोज झील भोज ने सबसे पहले बेतवा नदी पर 98 फुट ऊंचा बांध बनवाया थाय आधार पर इसकी मोटाई 300 फुट से अधिक है, जो शीर्ष पर घटकर लगभग 164 फुट रह जाती है। मिट्टी से भरे इस बांध को औसतन 30 फुट की मोटाई वाले पत्थर के स्लैब से घेरा गया था। भोजपुर से ढाई मील उत्तर

में, मेंडुआ गांव के पास, दो पहाड़ियों के बीच एक प्राकृतिक खाई में आधा मील से अधिक लंबी दूसरी दीवार खड़ी की गई थी। तीसरी दीवार, जिसने कलियासोत नदी का मार्ग बदल दिया, भोजपुर से लगभग अठारह मील दूर थी। यह मानव निर्मित झील 15वीं शताब्दी तक अस्तित्व में थी जब होशंग शाह ने दो बांधों को तोड़कर झील को खाली कर दिया था।

उन्होंने भोजपाल जलाशय भी बनवाया और उसके पास बसा शहर भोपाल बन गया। चित्तौड़ किले में भोज को समर्पित शिव मंदिर में एक छवि है जिसका नाम भोजस्वामीदेव है। अपनी राजधानी धारा में उन्होंने सरस्वती सदन या भारतीभवन नामक एक महान संस्कृत विद्यालय की अध्यक्षता की। आज, इस स्थान को लोकप्रिय रूप से भोजशाला कहा जाता है। विरासत भोज की प्रसिद्धि भारत में कई तरह से बनी रही। उन्हें किंवदंतियों, लिखित कार्यों और हाल ही में फिल्मों में चित्रित किया गया है। भोज ने भोजपुर शहर की स्थापना की। शहर ने अंततः एक भाषा, भोजपुरी को अपना नाम दिया, जो भारत में और फिजी और कैरिबियन जैसे दूर–दराज के क्षेत्रों में व्यापक रूप से बोली जाती है। इसलिए, राजा भोज का नाम भारत में कई रूपों में जीवित है – भोजपुर और बोहोजपुरी भाषा से लेकर राजस्थान में बोहपाल, भोजशाला और भोजनगर तक। भोज को आदर्श और परिपूर्ण राजा के रूप में सम्मानित किया गया, और उनके कई अनुयायी, जैसे कि राजा अर्जुनवर्मन (लगभग 1210–15), उनके पुनर्जन्म माने गए। विजयनगर साम्राज्य के महान कृष्णदेवराय ने खुद को अभिनव–भोज (नया भोज) और सकल–कला–भोज (सभी कलाओं का भोज) कहा। जब भोज जीवित थे, तो कहा जाता था :–

अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवि स्थिते।।

आज सरस्वती की धारा, धारा में स्थिर है, राजा भोज की भूमि में सभी विद्वानों का सम्मान है।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि राजा भोज ना केवल कुशल शासक, योद्धा बल्कि एक विद्वान, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, खगोलशास्त्री, ज्योतिष्य, साहित्यकार और स्थापत्य कला के जानकार थे। राजा भोज जैसा व्यक्तित्व विश्व इतिहास में अद्वितीय है। भोज परमार मालवा के 'परमार' अथवा 'पवार वंश' का नौवाँ यशस्वी राजा था। उसने 1018–1060 ई. तक शासन किया। उसकी राजधानी धार थी। भोज परमार ने 'नवसाहसाक' अर्थात् 'नव विक्रमादित्य' की पदवी धारण की थी। भोज ने बहुत–से युद्ध किए और पूर्णतः अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की, जिससे सिद्ध होता है कि उसमें असाधारण योग्यता थी। यद्यपि उसके जीवन का अधिकांश समय युद्धक्षेत्र में बीता, तथापि उसने अपने राज्य की उन्नति में किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न होने दी। राजा भोज ने मालवा के नगरों व ग्रामों में बहुत–से मंदिर बनवाए, यद्यपि उनमें से अब बहुत कम का पता चलता है। भोज स्वयं एक विद्वान् था और कहा जाता है कि उसने धर्म, खगोल विद्या, कला, कोश रचना, भवन निर्माण, काव्य, औषधशास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखीं हैं।

संदर्भ सूची :-

1. मजूमदार, आर.सी. : द चालुक्याज ऑफ गुजरात. भारतीय विद्या भवन, 1956
2. मिश्र, विद्याधर : परमारों का इतिहास।
3. शर्मा, गोपीनाथ : राजा भोज और उनका युग।
4. भट्ट, के.के. : मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहास।
5. मिश्र, केदारनाथ. राजा भोज और उनका युग. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2005.
6. शर्मा, आर.एस. भारतीय इतिहास के महान शासक. वाणी प्रकाशन, 2010.
7. पाण्डेय, विद्याधर. परमार वंश का इतिहास. भारतीय विद्या भवन, 1998.
8. रेड, विश्वेश्वरनाथ श्रीयुत. राजा भोज. हिंदुस्तानी अकादमी. इलाहाबाद उत्तर प्रदेश, 1932.
9. गहलोत, सिंह जगदीश. राजस्थान के राजवंशों का इतिहास. राजस्थानी ग्रन्थागार, द्वितीय संस्करण 2021.
10. ओझा, गौरीशंकर. राजपूताने का प्राचीन इतिहास. राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पंचम संस्करण 2022.
11. शर्मा, गोपीनाथ. राजस्थान का इतिहास. शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, 1672.
12. शर्मा, गोपीनाथ. राजस्थान के इतिहास के स्रोत भाग–1, 2018

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 122-125

पूर्वी उत्तर प्रदेश की शुंग–कुषाण कालीन मृद्भाण्ड परम्पराएं

जकिया खान
शोधार्थिनी, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

वृहद् मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् कई क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ जैसे गंगा घाटी में शुंग–कुषाण, पश्चिमी भारत में सातवाहन। पूर्वी क्षेत्र में भी द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से 200 ईसवीं तक के मध्य का काल शुंग कुषाण काल कहलाता है। पूर्ववर्ती काल के समान इस काल में भी संस्कृति का विकास दृष्टिगोचर होता है। इस काल में शिल्प कला और धातु कला का काफी विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरुप लोगों के जीवनशैली में भी परिवर्तन हुआ। रोम से व्यापार होने पर भारत में अकूत सम्पत्ति आने लगी थीं। फलस्वरुप अरिकामेडु (पांडिचेरी), तामलुक (पश्चिम बंगाल) आदि समुद्र तटीय नगर बसे। इसके अतिरिक्त इस काल में अनेक नगरों का उदय एवं विकास हुआ जैसे–वैशाली, पाटलिपुत्र, वाराणसी, कौशाम्बी, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ, झूँसी इत्यादि। भारतीय परिदृश्य में इस समय के घटनाक्रम का लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। इस घटनाक्रम का मध्य गंगा घाटी का क्षेत्र भी अलग नहीं था। मध्य गंगा घाटी में स्थित पूर्वी उत्तर प्रदेश में हुए राजकीय बदलाव का प्रत्यक्ष प्रमाण इस क्षेत्र में पुरातात्त्विक उत्खननों से प्राप्त पुरासामाग्रियों से भी होता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के उत्खनित पुरास्थलों से उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृद्भाण्ड परम्परा के बाद के जमाव से क्रमशः शुंग–कुषाण, गुप्तकाल और पूर्व मध्य काल के जाव प्राप्त हुए हैं। जिन स्थलों से इन परवर्ती कालों के पुरातात्त्विक आवासीय जमाव मिले हैं, उनमें प्रमुख रूप से राजघाट, सरायमोहना, अकथा, रामनगर, नरहन, धुरियापार, सोहगौरा, पिपरहवा, लहुरादेवा, खैराडीह, वैना, मसोन, अगियाबीर, गुलरिहवाघाट, गोभिया, सिसवनिया, श्रावस्ती, हेतापट्टी, सेनुवार, श्रृंग्वेरपुर, कमौली, झूँसी, प्रहलादपुर, प्रमुख रूप से है।

शुंग–कुषाण कालीन मृद्भाण्ड परम्परा उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड संस्कृति के पश्चात् की संस्कृति को पुराविदों ने शुंग–कुषाण काल या परवर्ती उत्तरी कृष्ण–मार्जित मृद्भाण्ड की संज्ञा दी है।[1]

अन्य पुरावस्तुओं के साथ–साथ मृद्भाण्ड भी एक ऐसी सशक्त भौतिक पुरासामग्री है, जिसके आधार पर सांस्कृतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि परिवर्तन का ज्ञान हो जाता है। कुषाण काल में भी मृद्भाण्ड परम्परा एवं पात्र–प्रकारों में परिवर्तन के स्पष्ट साक्ष्य हैं। लाल मृद्भाण्ड एवं चमकीले लाल मृद्भाण्ड की प्राप्ति इस काल की प्रमुख विशेषता हैं। चमकीले लाल मृद्भाण्ड देखने पर पूर्ववर्ती काल से प्राप्त होने वाली उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड का स्मरण हो जाता है। इस मृद्भाण्डों में अत्यधिक चमक दिखायी पड़ती है। इसी विशेषता के

कारण एस0आर0 राव ने इस मृद्भाण्ड को 'डीलक्स मृद्भाण्ड' नाम दिया है।[2]

भारत के विभिन्न पुरास्थलों से ये मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं, जैसे गुजरात के आम्रेली, सोमनाथ, भड़ौच, तक्षशिला के मीर टीला, पंजाब के रोपड़, राजस्थान के वैराट, मध्य भारत में साँची, एरण, त्रिपुरी, दकन के टेर, येलेश्वरम्, मास्की, चन्द्रवल्ली इत्यादि।

मध्य गंगा घाटी में स्थित पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रत्येक कुशाण कालीन पुरास्थलों राजघाट, खैराडीह, नरहन, वैना, अगियाबीर, मसोन, धुरियापार, रामनगर, अकथा, सिसवनिया इत्यादि से शुंग कुषाण कालीन मृद्भाण्डों की प्राप्ति हुई है। इस काल के पात्रों को उत्कृष्ट विधि द्वारा निर्मित किया गया था। इन्हें बनाने हेतु प्रयुक्त मिट्टी को भली–भाँति गूँथकर अशुद्धियों को निकालकर उच्च ताप पर खुले आँवे में पकाया गया था। फलस्वरूप पात्रों में धात्विकी खनक निकलती है।[3] कुषाण काल में गोलाकार घड़े अन्दर की ओर मुड़े कटोरे, दावात के समान पात्र, घुण्डीदार ढक्कन, छिड़कदान, टोंटीदार पात्र, हत्थायुक्त पात्र, पतली ग्रीवा एवं टोंटीयुक्त पात्र 'कमण्डल', कड़ाही के समान पात्र, जाम पात्र प्रयुक्त होते थे, जो लगभग प्रत्येक पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त हुए है। इस काल के पात्रों पर किये गये अलंकरण भी पूर्ववर्ती काल के पात्रों पर किये गये अलंकरण से भिन्न हैं। पात्रों को वृत्त, चक्र, स्वास्तिक, श्रीवत्स, शंख, कमल, पत्ती, घट, मत्स्य, विषमकोण, चतुर्भुज, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों इत्यादि का ठप्पा लगाकर अलंकृत किया गया है। उत्खनन से कुछ ऐसे टोंटी प्राप्त हुई हैं, जिन्हें देखकर तत्कालीन कुम्हारों की दक्षता का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए टोंटी को विभिन्न आकार प्रदान किया गया था, जैसे–मकर मुख, बत्तखमुख, भवानमुख, कीर्तिमुख आदि।

प्रमुख पात्र – प्रकारों में प्राप्त होने वाला छिड़कदान विशिष्ट पात्र हैं, यह विविध आकारों के है। इनके प्रयोग के विषय में पुराविदों में एक मत नहीं है, परन्तु सभी इस मत से सहमत हैं कि इनका प्रयोग किसी निश्चित कार्य हेतु किया जाता रहा होगा। कुछ बौद्ध स्थलों पर इस प्रकार के चित्रांकित पात्रों को देखकर कुछ पुराविद् इसे बौद्धों द्वारा प्रयुक्त होने वाले पात्रों से जोड़ते हैं[4] परन्तु उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के पात्रों के चित्रण के प्रमाण हिन्दू देवस्थान भीतरी से भी प्राप्त हुए हैं इस कारण इस पात्र को किसी एक धर्म से जोड़ना सही नहीं प्रतीत होता है।[5] आवासीय क्षेत्रों से प्राप्त होने के कारण उपर्युक्त मत का समर्थन होता है। ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि इनका प्रयोग दैनिक जीवन में होता रहा होगा। इनके आकार को ध्यान में रखकर इनके प्रयोग के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। पुरास्थलों से प्राप्त पात्रों की ग्रीवा पर टोंटी बनाए गए हैं। टोंटी के निकट छोटे–छोटे छिद्र भी बनाए गए हैं। प्रतीत होता है कि टोंटी में गर्म तरल पदार्थ पात्र में डाला जाता रहा होगा। पात्र में उपस्थित ऊष्मा शीर्ष पर स्थित छोटे छिद्र से बाहर निकलती होगी। टोंटी पर निर्मित छिद्र सम्भवतः तरल पदार्थ में उपस्थित बड़ी–बड़ी अशुद्धियों को छानने हेतु बनाये गये थे। सम्भवतः इन पात्रों का प्रयोग जल शुद्धिकरण हेतु किया जाता रहा होगा[6] परन्तु अभी तक एक भी ऐसा छिड़कदान प्राप्त नहीं हुआ है कि जिसकी सतह पर कालिख के निशान हो। अतः ज्ञान की वर्तमान अवस्था में इनके प्रयोग के विषय में निश्चित तौर पर कुछ कहना अनपेक्षित है। इनके मुखवाले भाग को देखकर पुराविद् इसे छिड़कदान की संज्ञा दिये हैं।

घुण्डीदार ढक्कन इस काल के प्रमुख पात्र हैं। इसका प्रयोग तरल या ठोस पदार्थ को संग्रहणीय जार में रखकर ढकने हेतु किया जाता रहा होगा। कुछ ऐसे ढक्कन भी निर्मित होते थे, जिनके आन्तरिक भाग के

मध्य में कप की आकृति बनी होती थीं। दुकानदार बड़े संग्रहणीय जार में विक्रय हेतु अपना सामान रखता होगा, उसी वस्तु का नमूना इस ढक्कन के कप में रखता होगा, ताकि ग्राहक को बिना ढक्कन हटाये संग्रहणीय जार में रखी वस्तु का ज्ञान हो सकें। कोरदार ढक्कन भी इस काल में प्रचलन में थे। इस प्रकार के ढक्कन 200 ई0 पू0 से प्रयोग में आने प्रारम्भ हो गये एवं 700 ई0 तक प्रचलन में रहा। इन ढक्कनों के साथ–साथ तावा की भी प्रचलन इसी युग में प्रारम्भ हो गया था। इसकी उपयोगिता के विशय में आजकल के तावा को देखकर सम्भावना प्रकट की जा सकती है।

कुछ पुरातत्त्वविदों ने इसे रोम की मृद्भाण्ड 'सामियन मृद्भाण्ड' बताया है। सुब्बाराव[7] एवं संकालिया[8] भी इस मत के प्रवर्तक है, इन मृद्भाण्ड के साथ रोमन सिक्के एम्फोश की प्राप्ति को आधार मानकर अपने मत की पुष्टि करते हैं, परन्तु कुछ पुराविद् यथा देशपाण्डेय इसे स्वदेशी मृद्भाण्ड ही स्वीकार किये हैं। एस0 आर0 राव[9] ने तर्क प्रस्तुत किया है कि यहाँ से प्राप्त लाल चमकीले मृद्भाण्ड के पात्र–प्रकार सामियन पात्र–प्रकार से भिन्न है। साथ ही ये कई आकार–प्रकार के हैं। विभा त्रिपाठी[10] ने इसे देशज ही स्वीकार किया है। इनके मतानुसार इस प्रकार के मृद्भाण्ड बनाने की तकनीक उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड के कुम्भकारों द्वारा सीखी गयी होगी। तक्षशिला के भीर टीले के मौर्य कालीन जमाव से प्राप्त कुछ अपरिष्कृत लाल मृद्भाण्ड इनके मत की पुष्टि करते हैं।

इस काल में पूर्व कालीन एक भी मृद्भाण्ड परम्परा प्रचलन में नहीं थे। उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड कृष्ण–लेपित मृद्भाण्ड धूसर मृद्भाण्ड इत्यादि का लोप हो गया और केवल लाल चमकीले मृद्भाण्ड ही व्यापक रूप से प्रचलन में रहा। यद्यपि इस चरण में मृद्भाण्डों के पराभव का प्रमाण मिलता है, फिर भी दैनिक जीवन में होने वाले भौतिक वस्तुओं में वृद्धि के पर्याप्त संकेत मिलते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज समृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा था। उत्खनन से प्राप्त अर्द्ध मूल्यवान् पत्थर के मनके, सील–सीलिंग, बाट–माप, शंख की चूड़ियाँ, सिक्कों की प्रचुरता एवं मृत्तिका वलय कूप, पके मकान सुव्यवस्थित नालियों की आधिकता इत्यादि समृद्धि का सूचक हैं। फिर भी इतना तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि पात्रों की विशिष्टता का अन्त हो रहा था। सम्भवतः धातु के व्यापक प्रचलन के कारण मृद्भाण्ड कला पर तत्कालीन समाज ने विशेष रुचि नहीं दिखायी। फलस्वरूप केवल लाल मृद्भाण्ड एवं लाल पॉलिश्ड मृद्भाण्ड ही अपने अस्तित्व को बचाये रखा।

सन्दर्भ सूची :–

1. राय, टी0 एन0, 1986, ए स्ट्डी ऑफ नार्दर्न ब्लैक पॉलिश्ड वेयर कल्चर, पृ0 92
2. राव, एस0 आर0 1966, 'एक्सकेवेशंस एट आम्रेली बुलेटिन ऑफ बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी बड़ौदा, पृ0 58
3. घोष, अमलानन्द 1989, एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी, अंक–1, पृ0 259
4. देश पाण्डे, एम0 एन0 1969, 'रोमन पाटरी इन इण्डिया, बी0पी0 सिन्हा, (सम्पादक) पॉटरी इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृ0 278–9

5. सिंह, वीरेन्द्र प्रताप, 1985, लाइफ इन एंशियन्ट वाराणसी, एन एकाउण्ट बेस्ड ऑन आर्कियोलॉजिकल एविडेंस, पृ0 99
6. सिंह, बीरेन्द्र प्रताप 1985, पूर्वोक्त, पृ0 105
7. सुब्बाराव, बी0 1953, 'बड़ौदा थ्रू दी ऐजज', बड़ौदा पृ0 53–54
8. संकालिया, एच0 डी0 1958, 'एक्सकेवेशंस एट महेश्वर एण्ड नावदाटोली', पृ0 159
9. राव, एस0 आर0 1966, पूर्वोक्त, पृ0 55–56
10. त्रिपाठी, विभाग, 1997, 'फंक्शनल एवोल्युशन ऑफ शुंग–कुषाण पॉटरी', भारती, अंक–23, पृ0 8

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 126–130

नव–उदारवादी अर्थव्यवस्था का भारतीय कृषि पर प्रभाव

मृदुल मलय
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग
बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सारांश :–

विश्व अर्थव्यवस्था में नव उदारवाद का आरंभ 1970– 80 के दशक में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संकटग्रस्त विश्व अर्थव्यवस्था को उबारने के लिए विश्व भर में उदारीकरण की नीति को अपनाया जाने लगा जिसके तहत विश्व भर में मुक्त व्यापार की नीति शुरू हुई। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आरंभ में भारतीय कृषि नव उदारीकरण व्यवस्था के तहत नहीं थी। भारत में नव उदारीकरण व्यवस्था को 1990 के दशक में अपनाया गया। कृषि के क्षेत्र में नव उदारीकरण को 1994 में मार्राकेश में हुए विश्व व्यापार संगठन के 'कृषि समझौते' के तहत अपनाया गया। कृषि के क्षेत्र में उदारीकरण के कारण कृषि नीतियों में महत्वपूर्ण बदलाव हुए जिसमें कृषि उत्पादों के आयतों पर प्रशुल्क में कमी करना, निर्यात सब्सिडी को समाप्त करना, घरेलू सहायता को कम करना शामिल रहा। इस शोध पत्र में नव उदार अर्थव्यवस्था के भारतीय कृषि पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। भारतीय कृषि को उदारीकरण के कारण हुए लाभ– हानि का विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द – नव उदारवादी अर्थव्यवस्था, विश्व व्यापार संगठन, भारतीय कृषि, किसान, बाजार, तकनीक आदि।

परिचय :–

नवउदारवाद राजनीति आर्थिक प्रथाओं का एक सिद्धांत हैं, जो निजी संपत्ति के अधिकार, मुक्त बाजार, मुक्त व्यापार की विशिष्टताओं वाले एक संस्थागत ढांचे के भीतर व्यक्तिगत उद्यम–शीलता को प्रोन्नत करता है। एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के रूप में वर्तमान नवउदारवाद के तत्व 1940 के दशक में 'फ्रेड्रिक वॉन हेयक' के लेखन में और 1950 और 1960 के दशक में 'शिकागो स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' के विचारकों के लेखन में मिलते हैं। शिकागो स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स मे 'मिल्टन फ्रीडमेन' और उनके सहयोगी विद्वानों के विचार 'अहस्तक्षेप' की नीति पर केंद्रित थे। शिकागो स्कूल की सैद्धांतिक सफलता के बाद 1970 के दशक के अंत और 1980 के दशक की शुरुआत में विश्व भर में मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था का कार्यान्वयन हुआ। अमेरिका में रोनाल्ड रीगन ओर ब्रिटेन में मार्ग्रेटथेचर प्रमुख राजनीतिक नाम है जिन्होंने नवउदार अर्थव्यवस्था के कार्यान्वयन में अग्रणी

भूमिका निभाई।[1] अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष (IMF), विश्व बैंक (World Bank), विश्व व्यापार संगठन (WTO) आदि के माध्यम से मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार की अवधारणा को कार्यान्वित किया गया है।

1970 के दशक तक भारत की अर्थव्यवस्था कमोबेश बंद थी। भारत का आयात प्रशुल्क औसतन 80 प्रतिशत से अधिक था। करीब 90 प्रतिशत से अधिक उत्पादों के आयात को मात्रात्मक प्रतिबंधों के द्वारा सुरक्षित रखा गया था। विदेशी निवेश के ऊपर कड़े प्रतिबंध लगाए गए थे। वर्ष 1991 में व्यापार सुधार के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था को उदार बना दिया गया और इस प्रकार भारत में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शुरुआत हुई। वर्ष 1991 में देश में कई बड़े व्यापार सुधार किए गए जैसे थोक आयात में मात्रात्मक प्रतिबंध हटाना, आयात प्रशुल्क में भारी गिरावट, निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रबंधन के उपाय के रूप में विनिर्माण दर का उपयोग आदि।[2] आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत में कृषि इसका हिस्सा नहीं थी। विश्व बैंक द्वारा लागू किए गए 'ढांचागत समायोजन कार्यक्रम' के केंद्र में उद्योग प्रमुख थे। कृषि के क्षेत्र में असली नीतिगत बदलाव तब आए जब भारत ने अप्रैल 1994 को माराकेश में WTO के कृषि समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद कृषि व्यापार के उदारीकरण के लिए कई कदम उठाए गए।

नव उदारवादी अर्थव्यवस्था एवं भारतीय कृषि :-

संपूर्ण वैश्विक परिदृश्य में 1980 के दशक में नव उदारवादी अर्थव्यवस्था का उद्‌भव हुआ जिसका विभिन्न देशों के संरचनात्मक ढांचे, व्यापार, बाजार व्यवस्था, कृषि संरचना आदि क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप विभिन्न देशों के आर्थिक, व्यापारिक, संरचनात्मक ढांचे में परिवर्तन देखने को मिला। वैश्विक परिदृश्य में नव उदारवादी अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण जैसी नीतियों को अपनाया गया जिसका प्रभाव किसी भी देश के समग्र ढांचे पर पड़ा जिसमें कृषि क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा, वैश्विक परिदृश्य में कृषि नीतियों का संचालन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (सदस्य राष्ट्रों को अस्थायी ऋण उपलब्ध कराना), विश्व बैंक (विकासशील राज्यों को ऋण और अनुदान प्रदान करना), विश्व व्यापार संगठन (मुक्त व्यापार के लिये नीतियां जिसमें कृषि नीतियां शामिल हैं) आदि के माध्यम से किया जाता है।[3] जिसके फलस्वरूप डब्ल्यू.टी.ओ. का कृषि पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

कृषि जो कि विकसित और विकासशील दुनिया के लिए अत्यधिक चिंता का क्षेत्र है जिसके संबंध में वैश्वीकरण के बाद डब्ल्यू.टी.ओ. के माध्यम से सबसे अधिक विचार विमर्श किया गया। भारत की जीडीपी में कृषि का योगदान लगभग 17 फीसदी है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 54.6 प्रतिशत आबादी कृषि एवं इससे जुड़े कार्यों में संलग्न है, मनुष्य की अन्य गतिविधियों में भी कृषि सहायक की भूमिका अदा करती है इसलिए हम निश्चित रूप से कह पाते हैं कि मानव समाज में खेती का एक विशिष्ट स्थान है। लेकिन भारत में अभी तक खेती और किसान को अर्थनीति में जितना महत्व मिलना चाहिए था, वह नहीं मिल पाया है। हमारी कृषि आबादी में प्रत्येक वर्ष 1.8 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है।[4] औसत जोत आकार प्रत्येक वर्ष छोटा होता जा रहा है। खेती की लागत, जोखिम प्रतिफल पद्धति प्रतिकूल होती जा रही है।

कृषि भारतीय अर्थ व्यवस्था की मुख्य आधार स्तम्भ है। भारतीय कृषि क्षेत्र का अवलोकन इंगित करता

है कि उदारीकरण ने भारत में वांछित परिणाम नहीं दिए इसने गरीबी कम करने और सामाजिक असमानताओं को दूर करने में बहुत कम योगदान दिया है। जहाँ तक कृषि क्षेत्र का संबंध है, भारत में मिश्रित परिणाम दिखे हैं। कृषि में एकदम आये परिवर्तनों को अनेक लोगों, द्वारा विरोध भी किया गया हैं। दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी विचारधारा के लोग हैं जिनका विश्वास है कि वैश्वीकरण से उपजी उदारीकरण की नीति के कारण भारतीय कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों को उनसे होने वाले लाभों को लेना चाहिए। इन अर्थशास्त्रियों का कहना है कि वैश्वीकरण के कारण भारत में कृषि को सामान्य तौर पर लाभ हुआ है। यह अर्थशास्त्री लाभ को निम्न प्रकार स्पष्ट करते हैं।

1. वर्तमान में कृषि उत्पादों पर व्यापार में लगे हुये अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों जैसे प्रशुल्कों को हटाया जा रहा है जिससे भारत उन वस्तुओं के निर्यात में बढोत्तरी कर सकता है जिसमे उसे तुलनात्मक लाभ है।
2. भारत के कृषि उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की उपलब्धता के कारण यहाँ के किसानों के कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। नई तकनीक, नए बीज, नई कृषि पद्धतियों आदि ने कृषि उत्पादन में वृद्धि की।
3. कृषि उत्पादों का निर्यात करते समय उत्पादों का वर्गीकरण, उनका मानकीकरण, पैकिंग आदि आवश्यक है, इसलिए नवउदारवाद के बाद कृषि संबंध उद्योगों में पैकिंग, निर्यात, मानकीकरण, परिवहन और कोल्ड स्टोर आदि जैसे विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार सृजित किया।
4. विश्व व्यापार संगठन की शर्तों के कारण सभी देशों को समान अवसर प्राप्त होते हैं, इसलिए कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि हुई है। विश्व बैंक द्वारा प्रदान किये गए आंकड़ों के अनुसार, निर्यात (वस्तुओं और सेवाओं) में भारत की हिस्सेदारी 1990 में 0.54 प्रति ात से बढ़कर 1999 तक 0.67 प्रतिशत हो गयी। इसी अवधि के दौरान भारतीय निर्यात में 103 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[5]
5. आधुनिक तकनीक और उन्नत किस्म के बीजों को अपनाने के कारण देश में खाद्यान्न उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। गेहूं का उत्पादन 1965–66 में 8.8 मिलियन टन से बढ़ कर 1991–92 में 184 मिलियन टन हो गया। अन्य फसलों की भी उत्पादकता में वृद्धि हुई।

कुछ अर्थशात्रियों का मानना है कि भारत में कृषि क्षेत्र में वैश्वीकरण के प्रभाव हानिकारक भी रहे हैं। कृषि के क्षेत्र में असली नीतिगत बदलाव भारत द्वारा अप्रैल 1994 को माराकेश में WTO के कृषि समझौते पर हस्ताक्षर करने के साथ आए। इसके बाद कृषि व्यापार के उदारीकरण के लिए कई कदम उठाए गए जिसमें 1994 से 1996 तक कई ठोस सुधार भी शामिल थे। उदाहरण के तौर पर जनवरी 1994 में सरकार ने बासमती चावल के ऊपर से न्यूनतम निर्यात मूल्य को खत्म कर दिया, मार्च 1994 में चीनी और कपास के ऊपर से आयात नियंत्रण हटा दिया गया और फरवरी 1995 में करीब–करीब सभी खाद्य तेलों को समान लाइसेंस की श्रेणी में रख दिया गया जिसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि आयात में वृद्धि हुई और यहां के किसानों के उत्पादों की कीमतों में गिरावट हुई और उनकी लागत भी निकलना मुश्किल हो गई। कृषि समझौता और व्यापार उदारीकरण के बाद भारत में आयात की बाढ़ आ गई।

यही हाल दूसरे विकासशील देशों का भी हुआ। भारत में सस्ते उत्पादों का आयात होने लगा और जिन उत्पादों को घरेलू बाजार के लिए तैयार किया गया था उनके दाम मजबूरन घटाने पड़े। उदाहरण के लिए

इंडोनेशिया से आयात हुए सस्ते नारियल की वजह से भारत में नारियल की कीमत 80 प्रतिशत तक गिर गई। भारत में आयात प्रशुल्क कम होने की वजह से मलेशिया से सोयाबीन और ताड़ का तेल बाजार में आने लगा। वर्ष 2015 में सिर्फ अगस्त महीने में ही भारत में 13.33 लाख टन 'खाद्य तेल' आयात हुआ जो पिछले दशकों में सबसे ज्यादा था। भारत में सस्ते आयातित उत्पादों की वजह से स्थानीय किसान प्रतिस्पर्धा से बाहर होते जा रहे हैं और उनका व्यवसाय नष्ट हो रहा है।

भारत की बंद अर्थव्यवस्था अब मुक्त होने के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करने के लिए आयी। कृषि के क्षेत्र में कंपनियों ने बीज, खाद, रासायनिक कीटनाशक और तकनीकी के क्षेत्र में केवल निवेश ही नहीं किया बल्कि इन क्षेत्रों में अपना वर्चस्व भी स्थापित कर लिया। उदारीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने किसानों को उच्च उत्पादन प्राप्त करने के लिए नई किस्म के बीजों के प्रयोग करने का लालच दिया और किसानों ने संकर किस्म के बीजों को खेतों में बोया। उत्पादन में वृद्धि जरूर हुई परतुं इन बीजों की देखरेख में लगने वाली लागत ने किसानों की लागत मूल्य को बढ़ा दिया। सरकार द्वारा लाई गई सीड डेवलपमेंट पॉलिसी 1988, एवं नेशनल सीड पॉलिसी 2002, ने इन कंपनियों को बीज उद्योग के क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर दिया इस अवसर का लाभ उठाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारतीय बीज बाजार पर नियंत्रण कर लिया ऐसी स्थिति में किसानों को आर्थिक विपन्नता की ओर धकेल दिया है, क्योंकि पहले तो किसान कंपनियों से महंगी बीज खरीद कर बुवाई करते हैं उसके पश्चात इन शंकर किस्म की बीजों के फसलों से ज्यादा उत्पादन प्राप्त करने के लिए महंगी रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों को खरीदना पड़ता है। फसलों के सही उपज प्राप्त करने के लिए उर्वरक और रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता होती है।

नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट के अनुसार वर्तमान में भारत के हर किसान परिवार पर औसतन रूपये 47000 का कर्ज है लगभग 68 प्रतिशत परिवारों की आमदनी नकारात्मक है। करीब 80 फीसदी किसान ऋण ग्रस्तता के कारण आत्महत्या कर रहे हैं। जनवरी 2020 में राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2017 में 10,655 किसानों ने, 2016 में 6270 किसानों ने, 2015 में 8007 किसानों ने आत्महत्या की।[6] वर्ष 2017 में कृषि क्षेत्र में सबसे अधिक महाराष्ट्र में (34.7 प्रतिशत) हुई है, उसके बाद कर्नाटक (20.3 प्रतिशत), मध्यप्रदेश (9 प्रतिशत), तेलंगाना (8 प्रतिशत) आन्ध्रप्रदेश (7.7 प्रतिशत) में आत्महत्याएं हुई। देश के करीब 80 प्रतिशत किसान कर्ज में डूबे हुए हैं। नव उदारीकरण के दौर में कृषि के क्षेत्र में रोजगार दर में गिरावट आई है। आंकड़े बताते हैं कि 1987–88 से 1993–94 के बीच संपूर्ण रोजगार में वार्षिक वृद्धि 2.43 प्रतिशत थी, लेकिन, 1993–94 से 1999–2000 के यह वृद्धि 1 प्रतिशत से भी नीचे आ गयी। एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में बेरोजगारी दर 45 वर्षों के न्यूनतम स्तर पर जा पहुँची है। इसके साथ ही सकल घरेलू उत्पाद में भी कृषि के योगदान में कमी आई, आजादी के समय देश की सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 61 प्रतिशत था वहीं अब देश की जीडीपी में कृषि का योगदान 16–17 प्रतिशत रह गया।

निष्कर्ष :–

नव उदारीकरण के दौर में भारत द्वारा अपनाई गई मुक्त बाजार नीति ने भारतीय कृषि को व्यापक रूप

से प्रभावित किया है। भारतीय कृषि पर उदारीकरण के दोनों तरह के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव देखने को मिले हैं। यदि तुलनात्मक रूप से अगर देखे तो नकारात्मक प्रभाव ज्यादा परलक्षित होते हैं। मुक्त व्यापार नीति के तहत आयात प्रशुल्क में कमी के फलस्वरूप भारतीय बाजार में आयात की बाढ़ आ गई जिससे घरेलू किसानों के उत्पादों की अपेक्षित कीमत नहीं मिल पाने के कारण उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ता है। उदारीकरण के पश्चात कृषि में तकनीकी सुविधाएं बढ़ाने के पश्चात् कृषि कार्य में लागत भी अधिक आने लगी है। कृषि से लगने वाली भारी लागत और उचित दाम न मिलने के कारण एक ओर किसानों पर कर्ज बढ़ता है तो दूसरी ओर मजबूरी में अपने उत्पाद बेचते हैं।

सन्दर्भ :-

1. Steger M . B. & Roy. Ravi k. (2010). Neoliberalism : A Very Short Introduction . New Delhi : Oxford University Press. New Delhi.
2. त्रिपाठी, अरुण कुमार (2022). संकट में खेती आंदोलन पर किसान. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
3. पुरी, वी. के. एवं मिश्र, एस. के. (2015). भारतीय अर्थव्यवस्था'. हिमालय मुंबईः हिमालय पब्लिशिंग हाउस।
4. शर्मा, नीलमणि (2018). किसान समस्या, दशा एवं दिशा।
5. https://hindi. Business - standard.com /economy/India
6. त्रिपाठी, अरुण कुमार (2022). संकट में खेती आंदोलन पर किसान. नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 131-133

ख्याल परम्परा और अलीबख्श

राजेश कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

शोध सारांश :–

लोकनाट्य भारत की सांस्कृतिक विरासत का एक अहम हिस्सा है।

यह लोक संस्कृति की समस्त विधाओं में से एक है लोकनाट्य में गीत, नृत्य और अभिनय के जरिये लोग अपनी सांस्कृतिक धरोहर को दिखाते हैं। लोकनाट्य अत्यन्त प्राचीन है तथा इसमें भी भारतीय संस्कृति की भांति समन्वयात्मकता का गुण है। ये इतिहास लोकजीवन तथा सामाजिक जीवन के बोध को लिए हुए हैं। लोकनाट्य लोकजीवन का प्रतिबिम्ब होता है। लोकनाट्य ने संस्कृति इतिहास तत्कालीन लोकजीवन को अपने में समाहित किया है। अलीबख्शी ख्याल में अपने समय के भव्य ख्याल गायकों लेखको की तरह अपने लोक गीतों, ख्यालो की भाषा मिली जुली रखी है। भाषा वह है जो उस समय की जनता बोलती है ख्याल परम्परा में लोकारंजन के साथ ही एक शिक्षक के रूप में तथा जनमानस की अनुकरण कसने की प्रेरणा देते हुए किसी विशेष बात को प्रसारित करने के एक अच्छे माध्यम के रूप में भी रहा है।

अलीबख्श ख्याल परम्परा में भाषा उन समय के जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग कर उर्दु, फारसी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। जो भाषा लोकभाषा कहलाई जिसमे हिन्दी खडी बोली उर्दू मेवाती तथा आस पास पाए की हरियाणवी – बज्रभाषा की मिलीजुली भाषा–त्रिवेणी ख्यालों से गूँजती रही है। छन्दो में दोहा सोरठा छंद में रस अलंकार का जगह–जगह दृष्टव्य है। साहित्य में अपने समय की सभ्यता–संस्कृति का सर्वोत्तम और सर्वांगीण रूप प्रस्फुटित होता है। जिसमें सगीत का संबध अन्योन्याश्रित होता है, अलीबख्श साहित्य में संगीत लय संगीत में साहित्य की नव्य भावधारा का उन्मेष उसे न केवल विशुद्ध बनता है बल्कि उसे स्थायी मानमूल्य देता है। अलीबख्श के काब्य में इन दोनो का अद्वितीय संयोग हुआ है।

बीज शब्द :– त्रिवेणी, अफसाना, दंगल, आजायब।

अलीबख्श ख्यालों का गहरा रिश्ता भी राजस्थान की संस्कृति से रहा है।

अलवर जिले के राठ और मेवाती क्षेत्र रेवाड़ी, गुडगाँव, दिल्ली, भरतपुर जिले डीग, नगर, कांमा, क्षेत्र में संत कवि एवं ख्याल गायक अलीबख्श का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है वे हिन्दु और मुस्लमान धर्म सम्प्रदाय के लोगो के बीच सम्मान्य कवि, साहित्य सर्जक, संगीतकार, लोकनाट्यकार महान् ख्याल गायक के रूप में जाने जाते है। प्रिंस अलीबख्श ऑफ मुण्डावर कह कर सम्मान दिया जाता था। फसाना अजायब में मुण्डावर के राजा होना बताया गया है। अलीबख्श मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्त थे। वे तो

लोकनायक और स्वतंत्र मद गायक कलाकार थे नाट्यकार अलीबख्श राग–रागनियों के कुशल ज्ञाता थे। अलीबख्श की काव्यकला और संगीत ही सुदंर प्रस्तुति के लोग दिवाने थे। उस समय इनके तमाशे की अभिव्यक्ति में दर्शक पुरी तरह आत्म विभोर हो जाते थे। अलीबख्श ने लगभग एक सौ ख्याल लिखे थे लेकिन उसके कुछ एक का ही मंचन किया गया था। जिसके नौ ख्याल की जानकारी मिलती है।

श्री कृष्ण लीला, राजानल का छडाव व नल का बगदाव, पद्यमावत, फसाने अजायब, निहाल दे, गुलबकावली, अलवर का शिफ्तनामा, शिवदान सिंह का बारहमासा और चन्द्रावत में "राजस्थानी ख्यालो की परम्परा यही अकेली ऐसी शैली है जो अपने रचियता के नाम से प्रसिद्ध है। अलीबख्श के नाम पर राजस्थान में इनको अलीबख्शी ख्याल के नाम से जाना जाता है।"[1]

अलीबख्श ख्याल का सांगीतिक पक्ष :–

ख्याल फारसी भाषा का शब्द है जिसका सामान्य अर्थ होता है विचार या कल्पना करना। इसमें राग के नियमों का पालन किया जाता है। अपनी कल्पना के अनुरूप आलाप–तानो का विस्तार किया जाता है। ख्यालो को एक ताल, त्रिताल झूमरा और चौताल आदि तालों में गायन रहता है। ख्याल गायकी में लम्बी ताने भरनी पड़ती है तथा आलाप लेना आवश्यक होता है लेकिन ख्याल कलाकार क्लिासिकल, पक्के राग, शुद्धराग ध्रुपद जैसे गाभीर्य लिये हुए नहीं होता है और न इसकी भक्ति रस जैसी शुद्धता विद्यमान होती है। सामान्यतः ख्याल दो प्रकार से गाये जाने की परम्परा होती है एक विलम्वित और दुसरा द्रुत–लय में गाये जाने वाले पहली गायकी में बड़े तथा दूसरी में छोटे ख्याल गाये जाते है। अलीबख्श के ख्याल विलम्वित लय में जाये जाते है। जिनमे बड़े दम–खम की जरूरत होती है। फिर उसे ही द्रुत–राग में गाया जाता है। अलीबख्श और उनमें पहले तक ख्याल की गायकी ही पेश की जाती है जैसा कि "बादशाह मुंहमद शाह रंगीले सन् 1719 में प्रसिद्ध दरवारी गायक सदारंग और अदारंग थे जिन्होने ता उम्र ख्याल गायकी की और बाद में उन्होने अपने शिष्यों के ख्याल गायन पर प्रतिबन्द्ध लगावा दिया।"[2] अलीबख्श ख्याल गायकी की इस परम्परा को जीवन्त और वैशिष्ट्य प्रदान करना चाहते थे। उन्होने लोक मूल्यों से जुड़े विषयों तथा कृष्णलीला, राजानल, गुलबकावली, निहादे जैसे पारम्परिक मिथको और दर्शन से न केवल ख्यालों को जोड़ा बल्कि उससे आगे बढ़कर उसका लोकमंचन भी किया। ख्यालों का अलीबख्श में नाट्य रूप में बखूबी इस्तेमाल किया और उन्हे राजघरानों से निकालकर सरल भाषा में जन–जन तक पहुचाया। अलीबख्श के ख्यालो में जैसे पहले कहा है देस सोरठ, सारंग, मल्हार आदि राग रागंनियों का समावेश हुआ है और श्रोता को प्रभावित करता है।

अलीबख्श के ख्याल संगीत प्राधान्य है उनमें सांगीतिक प्राचुर्य है। इन ख्यालों में शास्त्रीय ख्याल गायकी के साथ लोकगायकी का सहयोग भी है इसलिए अलीबख्श ने अपने ख्यालों को पूर्ववर्ती ख्यालों से अलग बनाया और एक स्वतंत्र शैली का विकास किया जिनमें शब्द संयोजन अत्यधिक महत्वपूर्ण है इससे श्रोता ख्याल सुनते समय रस विभोर और भाव–प्रवण हो उठता है।

अलीबख्श ख्याल का नाट्य पक्ष :–

राजस्थान में ख्याल गायकी और इसकी नाट्य परम्परा 150 वर्षो से अधिक पुरानी नहीं है। लोक नाट्य पारसी थियेटर के बाद की उपज है। राजस्थान में दो प्रकार के प्रमुख लोकनाट्य कला विकसित हुई थी जिसमें एक कुचामणी शैली का ख्याल नाट्य रूप है तथा दूसरा चिड़ावी इनके अलावा मारवाड़ी नाट्य शैली भी अपनी

मधुरता गंभीरता और अच्छे संवादों के लिए विख्यात रही है। लेकि लोकानुरंजन की जो नाट्य शैली या नाट्य ख्याल विकसित हुए है उनमें सवार्धिक लोकमन में अलीबख्श की ख्याल गायकी तथा ख्याल की नाट्य विद्या ने ही पैठ किया है। क्योकि वे रचनाकार नाट्य कलाकार और गायक थे। ये तत्व श्रोता को बॉधकर रखते थे उनकी गायकी के सम्मुख दरवारी गायन भी हैरत में थे। अलीबख्श के ख्यालो में संवाद पक्ष बहुत प्रबल होता था और प्रस्तुती देखते बनती थी। संवाद के साथ कथा स्वतः ही प्रवहमान होती चलती थी, गीत नृत्य के बीच कलाकार अभिनय शक्ति प्रभावित करती थी। श्री कृष्ण की विरल और बहुश्रुत अद्‌भुत लिला नायक के रूप में श्रोता और दर्शक सुन व देख करूणामय् व भाव विभोर हो उठता था। नल दमयंती के कष्टो को देखकर लोग अश्रु–विगलित हो जाते थे।

अलीबख्श के ख्यालों का साहित्यिक पक्ष :-

अलीबख्श ने अपने समय के अन्य ख्याल गायकों, लेखको की तरह अपने लोकगीतो ख्यालों की भाषा मिलिजुली रखी भाषा वह है जो उस समय जनता बोलती थी भाषा वह है भावो के पंखो पर कथा–ख्याल को श्रोता व दर्शक के अन्तराल में गहरे तक उतर गहरा प्रभाव छोड़े। अलीबख्श की भाषा लोक भाषा है। हिन्दी खड़ी बोली, उर्दू मेवाती तथा आसपास की हरियाणा–बृजभाषा की मिलीजुली भाषा त्रिवेणी ख्यालों में गुँजती रही है।

अलीबख्श के ख्यालों में जगह–जगह काव्यसौष्टव भरा पड़ा है काव्य में गत्यात्मता देखते ही बनती है। जगह–जगह दोहा सोरठो और छंदों में रस अलंकार आपस में अतंर्गभित और स्वतः अनुस्यूत है जो जगह जगह दृष्ट्व्य है। साहित्य में अपने समय की सभ्यता संस्कृति का सर्वोतम ओर सर्वांगीण रूप प्रस्फुटित होता है। अलीबख्श ने भी अपने काव्य में यही किया है। साहित्य में संगीत की लय और संगीत में साहित्य के नव्य भाव धारा का उन्मेष इसे न केवल विशुंद्ध बनाता है बल्कि उसे स्थायी मानमूल्य देता है अलीबख्श के काव्य में अद्वितीय संयोग हुआ है। इस तथ्य का पाठक स्वंयं अनुभुत करेगे।[3]

संदर्भ :-

1. रेवतीरमण शर्मा : ख्याल अलीबख्श, मध्यमप्रदेश आदिवासी लौक कला परिषद, भोपाल 2001 पृ.सं.–11
2. डॉ. जीवनसिंह : अलीबख्श ख्योलों का लोकरंग, बोधि प्रकाशन, जयपुर 2018 पृ.सं.–32.
3. रेवतीरमण शर्मा : ख्याल अलीबख्श, मध्यमप्रदेश आदिवासी लौक कला परिषद, भोपाल 2001 पृ.सं. –20–21
4. डॉ श्याम परमार : मालवी लोक साहित्य हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 1969
5. डॉ महेन्द्र भानावत् : लोकरंग, भारतीय उकला मंडल, उदयपुर 1971
6. डॉ विक्रम सिह भाटी : राजस्थानी लोकनाट्य, ख्याल राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर 2022
7. डॉ. राजकुमार भारद्वाज, डॉ अनिता : लोक कवि एवं नाट्ककार अलीबख्श, मौलिक साहितय प्रंकाशन नई दिल्ली 1999 पृ.स. 122

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 134–138

उत्तर प्रदेश में बाल श्रम उन्मूलन संबंधी सरकार की नीतियां

निधि लोधी
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शोध सार :-

बच्चे जो हमारे समाज के एक बड़े हिस्से का गठन करते हैं, अखंडनीय रूप से हमारी संपदा और भविष्य है। यह राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास के स्तर का सूचकांक है। बच्चों का प्राकृतिक स्थान पाठशाला तथा खेल के मैदानों में है। हालांकि हमारे देश में बड़ी संख्या में ऐसे बच्चे हैं, जो दुर्भाग्य से अपने विकास को सुनिश्चित करने वाला विधिसम्मत स्थान प्राप्त करने के बजाय गरीबी और पारिवारिक आय की पूर्ति करने के प्रयोजन हेतु काम करने के लिए मजबूर हैं। जिसके फलस्वरूप देश में बच्चों की एक बड़ी संख्या होटल, रेस्तरां, कारखाने, घरेलू उद्योग, कृषि, गृहकार्य आदि में बाल श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं। वर्ष 2011 एक की जनगणना के अनुसार भारत में 5–14 वर्ष की आयु के 1 करोड़ 1 लाख बच्चे बाल श्रमिक के रूप में कार्यरत थे। प्रस्तुत शोध पत्र में बाल श्रम उन्मूलन और उनके पुनर्वास आदि के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा क्या उपाय किए जा रहे हैं?...का परीक्षण करना है।

मुख्य शब्द – बाल श्रम, सरकारी योजनायें, शिक्षा, स्वास्थ्य, पुनर्वास।

परिचय :-

बालश्रम एक वैश्विक घटना है, यह किसी एक देश तक ही सीमित नहीं है। "बालश्रम" को किसी भी शारीरिक कार्य में बच्चों के नियोजन के रूप में प्रकाशित किया गया है। बाल श्रम का तात्पर्य किसी भी ऐसे कार्य से बच्चों के नियोजन से है जो बच्चों को उनके बचपन से वंचित करता है, नियमित स्कूल जाने की क्षमता में बाधा डालता है, और यह बच्चों के मानसिक, शारीरिक सामाजिक या नैतिक रूप से खतरनाक और हानिकारक है। बाल श्रम मौलिक मानवाधिकारों का उल्लंघन है और यह बच्चों के विकास में बाधा उत्पन्न करता है, जिससे संभावित रूप से आजीवन शारीरिक या मनोवैज्ञानिक क्षति हो सकती है। राष्ट्र का भविष्य बच्चों पर निर्भर करता है, क्योंकि वे निस्संदेह किसी भी राष्ट्र के भविष्य को आकार देने की सीढ़ी होते हैं। प्रत्येक बच्चे के बचपन की रक्षा करना राष्ट्र का नैतिक कर्तव्य है। आंकड़े गरीबी और बालश्रम के बीच एक मजबूत संबंध की ओर इशारा करते हैं। बालश्रम गरीबों के बच्चों को स्कूल से बाहर रखकर और उपर की ओर सामाजिक गतिशीलता के लिए उनकी संभावनाओं को सीमित करके पीढ़ी दर पीढ़ी गरीबी को कायम रखता है। मानव पूंजी की इस कमी को

धीमी आर्थिक वृद्धि और सामाजिक विकास से जोड़ा गया है।

उत्तर प्रदेश में बालश्रम :–

उत्तर प्रदेश में जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों की कुल आबादी 7 करोड़ के सापेक्ष लगभग 22 लाख बच्चे कामकाजी बच्चे हैं, जो कि पूरे देश में सर्वाधिक संख्या है। 21 प्रतिशत से अधिक कामकाजी बच्चे केवल उत्तर प्रदेश से है। इसी प्रकार विश्व की कुल कामकाजी बच्चों में 2 प्रतिशत बच्चे उत्तर प्रदेश से है। प्रदेश में कुछ श्रमिकों में 14 वर्ष से कम आयु के कामकाजी बच्चों की संख्या 3 प्रतिशत है, जबकि 10 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों की कार्य में सहभागिता 6 प्रतिशत है, इसी प्रकार 5 से 9 आयुवर्ग में यह संख्या 3 प्रतिशत है। यह आंकड़े और भी खतरनाक प्रतीत होते हैं जब हम अलग अलग जिलों के आंकड़ों का अध्ययन करते हैं। उदाहरण के तौर पर इलाहाबाद जिले (शहरी) क्षेत्र में 5 से 9 आयुवर्ग के 7 प्रतिशत, 10 से 14 आयु वर्ग के बरेली व श्रावस्ती जिले में यह 8 प्रतिशत तक है। इनमें लड़कों का प्रतिशत और भी अधिक है। जैसा कि बरेली के शहरी क्षेत्रों में 11 प्रतिशत श्रावस्ती और फिरोज़ाबाद में 10 प्रतिशत है। इसी तुलना में पूरे प्रदेश के कार्यबल में 33 प्रतिशत पुरुष व 17 प्रतिशत महिलाएं सम्मिलित हैं।[1]

कामकाजी बच्चों के आंकड़े के अतिरिक्त प्रदेश में एक और चिंता का विषय है कामकाजी बच्चों की बढ़ती संख्या है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार वैश्विक रूप से बाल श्रमिकों की संख्या में वर्ष 2000 से अब तक दो तिहाई तक कमी आई है। भारतवर्ष में भी 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 की जनगणना में कामकाजी बच्चों की संख्या में लगभग 20 प्रतिशत की कमी आई है परंतु दूसरी ओर देश में उत्तर प्रदेश ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ 2001 की जनगणना की तुलना में वर्ष 2011 की जनगणना में कामकाजी बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई है। जनगणना श्रमिकों को चार मुख्य आर्थिक श्रेणियों में विभाजित करती है, ये हैं कृषक, कृषि श्रमिक, गृह आधारित उद्योग व अन्य कार्य।[2]

वर्ष 2000 की बाद वैश्विक रूप से कामकाजी बच्चों की संख्या में एक तिहाई तक कमी आई है। हमारे देश में भी ये संख्या 2001 से 20 प्रतिशत तक कम हुई है। देश में उत्तर प्रदेश ही एक ऐसा राज्य है जहाँ 2011 की जनगणना में कामकाजी बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। यह स्थिति इस बात का संकेत देती है कि प्रदेश में बाल श्रम उन्मूलन हेतु प्रभावी कार्रवाई किया जाना आवश्यक है। उत्तर प्रदेश में सदैव कामकाजी बच्चों की संख्या सर्वाधिक नहीं रही है। 1981 की जनगणना में देश के तीन राज्य (आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र) ऐसे थे जिनमें कामकाजी बच्चों की संख्या उत्तर प्रदेश से अधिक थी।

योजनायें :–

उत्तर प्रदेश में सरकार द्वारा प्रदेश से बालश्रम उन्मूलन के लिए विभिन्न कार्य किये गये हैं। प्रदेश सरकार बालश्रमिकों को चिन्हित कर शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ रही है। बाल श्रम उन्मूलन हेतु प्रदेश में संचालित विभिन्न योजनाओं से उन्हें लाभान्वित किया जा रहा है।

बाल श्रमिक विद्या योजना :–

इस योजना की शुरुआत जून 2020 में हुई। प्रदेश में संचालित इस योजना के अन्तर्गत ऐसे बाल श्रमिक जिनके माता–पिता की मृत्यु हो चुकी है अथवा वे किसी गंभीर रोग से ग्रस्त होने के कारण कार्य करने की स्थिति में नहीं हैं, ऐसे कामकाजी बच्चों के लिए आर्थिक सहायता की धनराशि प्रत्येक माह 1000 रुपए बालकों के लिए

व 1200 रुपए बालिकाओं के लिए दी जाती है। लाभार्थी कामकाजी बालक या बालिका व किशोर या किशोरी योजना के अन्तर्गत कक्षा–8, 9, एवं 10 तक शिक्षा प्राप्त करते हैं तो उन्हें कक्षा–8 उत्तीर्ण करने पर 6000 रुपए की अतिरिक्त धनराशि प्रोत्साहन के रूप में दी जाती है। इस योजना के अन्तर्गत प्रति वर्ष 8–18 आयु वर्ग के 2000 कामकाजी बच्चों व किशोर–किशोरियों को लाभान्वित किए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। वित्तीय वर्ष 2024–25 में इस योजना के अन्तर्गत 3 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं। जिन्हें पात्र बालक/बलिकाओं की शिक्षा पर व्यय किया जा रहा है।[3]

बाल श्रम सर्वेक्षण योजना :-

बाल श्रम सर्वेक्षण योजना की शुरुआत 1988 में हुई। बाल श्रम समस्या का आंकलन कराने हेतु बाल श्रम सर्वेक्षण कराया जा रहा है, जिसमें 09–14 आयु वर्ग के खतरनाक व्यवसायों या प्रक्रियाओं को चिन्हांकित कर बाल श्रमिकों के शैक्षिक पुनर्वासन हेतु राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अन्तर्गत प्रस्ताव तैयार कर भारत सरकार से स्वीकृति प्राप्त करने की योजना राज्य सेक्टर से स्वीकृत की गई है। वित्तीय वर्ष 2024–25 में इस योजना के अन्तर्गत धनराशि रू0 5 लाख आवंटित किया गया है। जिससे सर्वेक्षण कार्य कराया जा रहा है।

नया सवेरा योजना :-

इस योजना की शुरुआत जून 2017 में की गई। नया सवेरा योजना के अन्तर्गत यूनीसेफ के सहयोग से प्रदेश के बाल श्रम से सर्वाधिक प्रभावित 20 जिलों के चिन्हित 1197 ग्राम पंचायतों व शहरी वार्डों को बाल श्रम मुक्त घोषित किया जाना है। योजना में 20 जिलों के 1197 ग्राम पंचायतों व शहरी वार्डों में संचालित नया सवेरा योजना के अन्तर्गत अब तक कुल 1197 ग्राम पंचायतों व वार्डों का सर्वेक्षण पूर्ण कराकर 6–14 आयु वर्ग के 41285 कामकाजी बच्चों को चिन्हित किया गया है, जिसके सापेक्ष 33405 बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में प्रवेशित या नियमित कराया गया है। इसी प्रकार 15–18 आयु वर्ग के 14825 कामकाजी बच्चों व किशोर–किशोरियों को चिन्हित किया गया है तथा उन्हें व्यवसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम में जोड़े जाने की कार्यवाही की जा रही है। नया सवेरा योजना के अन्तर्गत चिन्हित कामकाजी बच्चों व किशोर किशोरियों के 14825 परिवारों को विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजना से भी आच्छादित कराया गया है। अब तक 623 हॉट स्पाट (ग्राम पंचायतों व शहरी वार्डों) को बाल श्रम मुक्त घोषित किया जा चुका है।[4]

बन्धुआ श्रम पुनर्वासन योजना, 2016 :-

श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 17 मई 2016 के उपरान्त पूर्व में संचालित बंधुआ श्रम पुनर्वासन योजना को संशोधित कर दिया गया हैं। इस योजना के अन्तर्गत बंधुआ श्रम प्रकरणों में समरी ट्रायल पूर्ण होने के उपरान्त पुनर्वासन हेतु क्रमशः धनराशि रू0 1 लाख, 2 लाख व 3 लाख दिये जाने की व्यवस्था की गई है, जोकि पूर्ण रूप से श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा भुगतान किया जाता है। इसके अतिरिक्त पुनरीक्षित योजना में अवमुक्त बंधुआ श्रमिक को तात्कालिक सहायता के रूप में धनराशि 30000 रुपए का भुगतान किया जाता है। इस हेतु राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक जिले में जिलाधिकारी के स्तर पर धनराशि रू0 10 लाख कार्पस निधि की व्यवस्था प्रत्येक जिले में की जा चुकी है।[5]

उ0 प्र0 मुख्यमंत्री बाल सेवा योजना (कोविड) :-

उ0 प्र0 मुख्यमंत्री बाल सेवा योजना : कोविड के अंतर्गत 0 से 18 वर्ष की उम्र तक के ऐसे सभी बच्चे

जिनके माता या पिता अथवा दोनों की मृत्यु कोविड–19 के संक्रमण से हो गयी हो, ऐसे बच्चों को 4000 रुपये प्रति माह की वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है। इस योजना के अंतर्गत 1 से 18 वर्ष तक की आयु के बच्चों की कक्षा–12 तक की निःशुल्क शिक्षा हेतु अटल आवासीय विद्यालयों तथा कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालयों में प्रवेश कराए जाने का प्रावधान भी किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत आने वाले कक्षा–9 या इससे ऊपर की कक्षा में अथवा व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त कर रहे 18 वर्ष तक के बच्चों को लैपटॉप की सुविधा उपलब्ध करायी जा रही है एवं प्रदेश सरकार उपरोक्त प्रकार की बालिकाओं को विवाह योग्य होने पर विवाह हेतु 101000 (एक लाख एक हजार) रुपए की राशि उपलब्ध करायेगी।[6]

उ0 प्र0 मुख्यमंत्री बाल सेवा योजना (सामान्य) :–

उ0 प्र0 मुख्यमंत्री बाल सेवा योजना (सामान्य) के अन्तर्गत 18 वर्ष से कम आयु के ऐसे बच्चे जिन्होंने कोविड–19 से भिन्न अन्य कारणों से अपने माता–पिता दोनों अथवा माता या पिता में से किसी एक अथवा अभिभावक को खो दिया है। अथवा 18 से 23 वर्ष के ऐसे किशोर जिन्होने कोविड या अन्य कारणों से अपने माता–पिता दोनों अथवा माता या पिता में से किसी एक अथवा अभिभावक को खो दिया है तथा वह कक्षा–12 तक शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त राजकीय महाविद्यालय, विश्वविद्यालय अथवा तकनीकी संस्थान से स्नातक डिग्री अथवा डिप्लोमा प्राप्त करने हेतु शिक्षा प्राप्त कर रहें हों या नीट, जेईई, क्लैट जैसे राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय प्रतियोगी परीक्षाएं उत्तीर्ण करने वाले अथवा जिनकी माता तलाकशुदा स्त्री या परित्यक्ता है अथवा जिनके माता–पिता या परिवार का मुख्यकर्ता जेल में है अथवा ऐसे बच्चे जिन्हें बाल श्रम बाल भिक्षावृत्ति या बाल वैश्यावृत्ति से मुक्त कराकर परिवार व पारिवारिक वातावरण में समायोजित कराया गया हो अथवा भिक्षावृत्ति या वैश्यावृत्ति में सम्मिलित परिवारों के बच्चों को 2500 रुपये प्रति माह की वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है।[7]

बाल श्रम उन्मूलन मिशन :–

उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने 2027 तक राज्य में बाल श्रम उन्मूलन के लिए एक नया मिशन शुरू किया है। इस कदम को बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें काम कराने के बजाय उचित शिक्षा प्रदान करने के सरकार के प्रयासों के हिस्से के रूप में देखा जा रहा है। इस योजना के तहत, सरकार बाल श्रम में लगे बच्चों की पहचान और उन्हें बचाने के प्रयासों को तेज़ करेगी और बाल श्रमिकों के नियोक्ताओं के खिलाफ कड़ी कानूनी कार्रवाई शुरू करेगी। प्रवर्तन के अलावा मिशन बचाए गए बच्चों के पुनर्वास, परामर्श और शिक्षा पर भी ज़ोर देगा।[8]

पूरे राज्य में विशेष अभियान और जागरूकता अभियान चलाकर नागरिकों को बाल श्रम के दुष्प्रभावों और बाल अधिकारों के उल्लंघन के कानूनी परिणामों के बारे में जागरूक किया जाएगा। प्रगति पर नज़र रखने और योजना के अनुसार क्रियान्वयन के लिए ज़िला स्तर पर टास्क फोर्स गठित की जाएँगी।यह मिशन संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) के अनुरूप है, विशेष रूप से लक्ष्य 8.7 के अनुरूप, जिसका उद्देश्य सभी रूपों में बाल श्रम का उन्मूलन करना है।

सरकार ने गैर सरकारी संगठनों, स्कूलों और आम जनता से इस मिशन में शामिल होने और 2027 तक उत्तर प्रदेश को बाल श्रम मुक्त राज्य बनाने के लिए सामूहिक रूप से प्रयास करने का आह्वान किया है।

निष्कर्ष :–

किसी राष्ट्र का भविष्य वहाँ के बच्चे से निर्धारित होता है। प्रत्येक बच्चे के बचपन की रक्षा करना राष्ट्र का नैतिक कर्तव्य होता है। बाल श्रम के आंकड़े गरीबी और बालश्रम के मध्य मजबूत संबंध की ओर इशारा करते हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों की कुल आबादी 7 करोड़ है, जिसमें लगभग 22 लाख बच्चे बाल श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं जो कि पूरे देश में बाल श्रमिकों की सर्वाधिक संख्या है। पूरे देश के बाल श्रमिकों की संख्या के करीब 21 प्रतिशत बाल श्रमिक अकेले उत्तर प्रदेश में है। प्रदेश में सरकार बाल श्रमिकों को चिह्नित कर शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ रही है। उत्तर प्रदेश में बालश्रम उन्मूलन हेतु सरकार समय समय पर विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाएं, जैसे– बाल श्रमिक विद्या धन योजना, बंधुआ श्रम पुनर्वास योजना, मुख्यमंत्री बाल सेवा योजना, नया सवेरा योजना आदि संचालित कर रही है। बालश्रम उन्मूलन हेतु प्रदेश सरकार द्वारा किये गए विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी बाल श्रम लगातार बना हुआ है। स्थायी रूप से बाल श्रम उन्मूलन हेतु अधिक ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ :–

1. उत्तर प्रदेश बाल श्रम कार्य परियोजना, 2016
2. उत्तर प्रदेश बाल श्रम कार्य परियोजना, 2016
3 https://unitedbharat.net/the-state-government-is-developing-child-labourers-by-linking-them-with-education/
4 https://unitedbharat.net/the-state-government-is-developing-child-labourers-by-linking-them-with-education/
5 https://share.google/bpcuBcd7UMQ93gIZt
6. महिला एवं बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार।
7. महिला एवं बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार।
8. https://www.indiatoday.in/information/story/uttar-pradesh-launches-mission-to-eliminate-child-labour-by-2027-2732509-2025-05-29

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 139-146

चाय बागानों में महिला श्रमबल भागीदारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

(कौसानी चाय बागान के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सावित्री
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड।

शोध सार :–

भारत में महिला श्रम बल भागीदारी का विश्लेषण केवल आर्थिक विकास के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह महिलाओं के सामाजिक और व्यक्तिगत सशक्तिकरण का भी प्रतिबिंब है। जैसा कि प्रत्येक क्षेत्र में महिला श्रमबल भागीदारी बढ़ती जा रही है और पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए गए हैं, जिससे उनके लिए नए अवसरों के द्वार खुले हैं। यदि हम चाय बागानों की बात करें तो वर्तमान में चाय के बागानों में भी पुरुषों की तुलना में महिला श्रमबल भागीदारी अधिक है, मानो चाय बागानों का अस्तित्व ही महिलाओं से है। इस व्यापक संदर्भ में, यह समाजशास्त्रीय अध्ययन उत्तराखंड के कौसानी चाय बागान के विशेष संदर्भ में महिला श्रमबल भागीदारी के परिदृश्य का गहन विश्लेषण करता है। अध्ययन का केंद्रीय उद्देश्य कौसानी के विशिष्ट संदर्भ में चाय उद्योग में महिलाओं के योगदान, उनकी कार्य स्थिति, और अनुभवों का मूल्यांकन करना है।

कूट शब्द :– महिला श्रमबल भागीदारी, चाय बागान, सशक्तता, स्थानीय रोजगार, आदि।

प्रस्तावना :–

महिला श्रम बल भागीदारी का अर्थ है, कामकाजी उम्र की महिलाओं का कुल श्रम बल में सक्रिय रूप से शामिल होना। श्रम बल में वे महिलाएं गिनी जाती हैं जो या तो किसी आर्थिक गतिविधि में संलग्न हैं (यानी वेतन या आय अर्जित कर रही हैं) या रोजगार की तलाश में हैं। यह माप बताता है कि समाज में महिलाओं का कामकाजी योगदान कितना है और यह किसी देश की अर्थव्यवस्था और सामाजिक प्रगति का भी सूचक है। महिला श्रम बल भागीदारी में जो परिवर्तन आए हैं, वे मुख्य रूप से समाज, अर्थव्यवस्था और महिलाओं की भूमिका में बदलाव के कारण हुए हैं। कई देशों में, महिला श्रम बल भागीदारी में एक विशेष पैटर्न देखा गया है, जिसे यू–आकार का कर्व (U-shaped curve) कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि महिला श्रम बल भागीदारी पहले गिरती है, फिर स्थिर रहती है, और बाद में फिर से बढ़ने लगती है। यह यू–आकार का कर्व समाज और आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों में महिलाओं की भागीदारी के पैटर्न को दर्शाता है।

ग्रामीण महिलाओं की श्रम बल भागीदारी हमेशा से अधिक रही है। ग्रामीण महिलाओं के लिए श्रम बल भागीदारी दर (LFPR) 2005 के बाद से तेजी से गिरी, लेकिन पिछले पाँच वर्षों में इसमें सुधार हुआ है। शहरी महिलाओं की श्रम बल भागीदारी दर तुलनात्मक रूप से मामूली रूप से बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में, अधिकांश पुरुष और महिलाएँ कृषि में कार्यरत हैं। 2000 के दशक की शुरुआत से महिला श्रमबल में भागीदारी में गिरावट मुख्य रूप से बड़ी संख्या में ग्रामीण महिलाओं के कृषि से बाहर निकलने के कारण हुई। हाल के वर्षों में, 5 करोड़ ग्रामीण महिलाएँ कृषि में लौट आई हैं, जिससे कृषि में महिला रोजगार का स्तर 2000 के दशक से पहले के स्तर पर वापस आ गया है। एंडेस एट अल (2017) के अनुसार भारत में महिलाओं के काम करने (श्रम बल में शामिल होने) की संख्या में कमी आई है, खासकर 2004–05 से 2011–12 के दौरान, जब लगभग 1 करोड़ 96 लाख महिलाएँ काम से बाहर हो गईं। यह गिरावट मांग और आपूर्ति दोनों पक्षों के कारकों के कारण है। मांग पक्ष से कृषि में श्रम की मांग कम हो रही है (जहां ऐतिहासिक रूप से महिलाएं कार्यरत रही हैं) बढ़ते मशीनीकरण और बढ़ती आय के कारण और आपूर्ति पक्ष से प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में युवा लड़कियों के नामांकन में वृद्धि, जो भारत में महिला एलएफपीआर में तीव्र गिरावट के लिए जिम्मेदार हैं। इनके अलावा अन्य जैसे जीवन स्तर में सुधार, कृषि में मशीनीकरण आदि भी महिला एलएफपीआर में गिरावट का कारण रहे हैं। राफेल हीथ (2024) के अनुसार महिला श्रमबल भागीदारी के मार्ग में महत्वपूर्ण बाधाएँ अभी भी मौजूद हैं, विशेष रूप से विकासशील देशों में। इनमें भेदभाव, सार्वजनिक स्थानों पर सुरक्षा की कमी और उत्पीड़न का मौजूद होना शामिल है। इसके अतिरिक्त, महिलाओं पर अक्सर अवैतनिक देखभाल कार्य का अधिक बोझ होता है, उन्हें प्रतिबंधात्मक सामाजिक मानदंडों का सामना करना पड़ता है, और उन्हें अक्सर औपचारिक वित्तीय सेवाओं और डिजिटल प्रौद्योगिकियों तक पहुंच की कमी होती है। ये कारक श्रमबल में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी को बाधित करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में इनके अलावा अन्य कारण भी दृष्टिगोचर होते हैं विकृषिकरण होने का एक कारण जंगली जानवरों के द्वारा खेती को नुक्सान पहुंचाना है। ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश लोगों के पलायन कर जाने के कारण इनकी भूमि बंजर पड़ जाती है यदि जो लोग गांव में रहकर कृषि कार्य करते भी हैं तो इनकी भूमि बंजर खेतों के बीच में होने के कारण अनेक जंगली जानवर नष्ट कर देते हैं जिसके कारण इनका कृषि से मोहभंग होने लगता है। परिणामस्वरूप ये अपनी प्रतिभा एवं कौशल के आधार पर नये रोजगार की तलाश में संलग्न हो जाती हैं। कौसानी चाय बागान इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ महिलाएँ चाय उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में अपनी प्रतिभा और मेहनत से योगदान दे रही हैं। उनके श्रम के बिना चाय उत्पादन संभव नहीं है। चाय की पत्तियों की तोड़ाई से लेकर उनके प्रसंस्करण तक, हर कदम पर महिलाएँ सक्रिय रूप से शामिल होती हैं। यह कार्य न केवल उनके परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार ला रहा है, बल्कि देश की कृषि और निर्यात आधारित अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ कर रहा है। उनके योगदान को औपचारिक रूप से पहचानने और सम्मानित करने के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए जा सकते हैं। महिला श्रम भागीदारी में सुधार के कई सकारात्मक पहलू सामने आए हैं।

पहला, ग्रामीण महिलाओं के लिए शिक्षा और कौशल विकास के कई नए अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं। इससे महिलाएँ पारंपरिक कार्यक्षेत्रों से आगे बढ़कर तकनीकी और व्यावसायिक क्षेत्र में भी अपनी जगह बना रही हैं। कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाएँ न केवल नई तकनीकों को सीख रही हैं, बल्कि

आत्मनिर्भर भी बन रही हैं। दूसरा, सरकार और विभिन्न संगठनों ने महिलाओं के लिए समान वेतन, सुरक्षित कार्यस्थलों और सामाजिक सुरक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण नीतियाँ बनाई हैं। श्रम कानूनों को सख्ती से लागू करने से यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि महिलाएँ पुरुषों के समान वेतन प्राप्त करें और कार्य की सुरक्षा का लाभ उठाएँ। इन प्रयासों का परिणाम यह है कि महिलाओं की भागीदारी को औपचारिक रूप से मान्यता मिल रही है और उन्हें अधिक से अधिक रोजगार के अवसर मिल रहे हैं। नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, भारत में कुल महिला श्रमबल भागीदारी दर (LFPR) में 2017–18 के 23.3% से बढ़कर 2023–24 में 41.7% तक की उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में यह 24.6% से बढ़कर 47.6% हो गई है।

चाय बागान में काम करने वाली महिलाएँ अब न केवल अपने घर–परिवार के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर रही हैं, बल्कि देश की आर्थिक समृद्धि में भी सक्रिय योगदान दे रही हैं। उनके इस योगदान को और अधिक सशक्त और संरक्षित करने के लिए उन्हें सामाजिक और आर्थिक समर्थन मिल रहा है। आगे बढ़ते हुए, यह आवश्यक है कि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिला श्रम बल की भागीदारी को और भी बढ़ाया जाए। शिक्षा, कौशल विकास, समान मजदूरी और सुरक्षित कार्यस्थलों की उपलब्धता महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाएगी। कौसानी चाय बागान जैसे क्षेत्रों में महिलाओं का श्रमशक्ति में योगदान, भारत की आर्थिक और सामाजिक प्रगति का एक प्रेरणादायक उदाहरण है, जिसे और सशक्त बनाने के प्रयास किए जाने चाहिए। स्पष्ट है कि महिला श्रम बल भागीदारी में वृद्धि न केवल आर्थिक विकास को गति देगी, बल्कि एक सशक्त और स्वतंत्र समाज की भी आधारशिला रखेगी। आने वाले वर्षों में, इस दिशा में किए जा रहे प्रयासों से ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की महिलाओं के लिए रोजगार के नए और बेहतर अवसर पैदा होंगे।

शोध प्रारूप :–

प्रस्तुत अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं विवेचनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन समग्र या संगणना पद्धति पर आधारित किया गया है। उत्तराखण्ड चाय विकास बोर्ड से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड में बोर्ड योजना के अन्तर्गत कुल चाय बागानों की संख्या 33 है जो कौसानी (बागेश्वर), जौरासी (अल्मोड़ा), घोड़ाखाल (नैनीताल), चम्पावत, नौटी (चमोली), जखोली (रूद्रप्रयाग), पौड़ी क्षेत्रों में स्थित है। कौसानी इसका वृहद क्षेत्र होने के कारण इसको अध्ययन हेतु चयनित किया गया है जहाँ इन बागानों की संख्या 10 है। यहाँ तुलनात्मक रूप से महिला श्रमिकों की संख्या पुरुष श्रमिकों से तीन गुना अधिक है। अर्थात् यहाँ 306 महिला श्रमिक एवं 97 पुरुष श्रमिक कार्यरत् हैं। इस प्रकार इन चाय बागानों में कुल 403 श्रमिक कार्यरत् हैं। शोध की पारदर्शिता को ध्यान में रख कर प्रस्तुत शोध में संगणना पद्धति का प्रयोग करते हुए संपूर्ण 306 महिला श्रमिकों को अध्ययन का आधार बनाया गया है। तथ्यों का संकलन प्राथमिक व द्वितीयक आँकड़ों द्वारा किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों को साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्रित किया गया है।

अध्ययन का आँकड़ा–विश्लेषण एवं सारणीयन :–

भारत विश्व में चाय का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। कौसानी चाय बागान की भी वैश्विक स्तर पर अपनी एक अलग पहचान है। कौसानी एक ग्रामीण परंपरागत समाज होने के साथ–साथ पर्यटन स्थल भी है। कौसानी चाय बागान लगभग 60 से 65 छोटे–छोटे प्लॉट में विभक्त हैं। जिसमें उत्पन्न होने वाली चाय अपने देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी लोकप्रिय है। इन चाय बागानों को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए

अधिक संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अतः कार्यस्थल में महिला–पुरुष भागीदारी को निम्न सारणी द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या–0.1

कार्यस्थल पर श्रम शक्ति बल भागीदारी संबंधित विवरण

क्र.सं.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृति	प्रतिशत
1	महिला	306	75.93
2	पुरुष	97	24.07
3	योग	403	100.

अतः उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि कौसानी चाय बागानों में 75.93% महिलाएँ एवं 24.07% पुरुष, श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं। यहाँ पर महिला श्रम बल के अधिक होने का प्रमुख कारण इन चाय बागानों का स्थानीय क्षेत्र में रोजगार के विकल्प के रूप में उपल्बध होना है। महिलाओं के लिए घर के समीप रह कर इन चाय बागानों में कार्य कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए सर्वाधिक सुलभ रोजगार माना जा सकता है। इन चाय बागानों ने पर्वतीय क्षेत्र में पलायन की बढ़ती समस्या को भी रोका है।

बागानों से जुड़ने की अवधि :–

जैसा कि अरस्तु (1992) ने कहा है "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है" अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति जीवन पर्यंत किसी न किसी रोजगार से जुड़ा रहता है। बात अगर श्रमिक वर्ग की करें तो वर्ष भर एक स्थान पर रोजगार न मिलने की दशा में श्रमिक वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान पर काम की तलाश में भटकता फिरता है जिसका प्रभाव इनके पूरे परिवार पर भी पड़ता है। लेकिन कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ श्रमिक कई वर्षों से काम कर अपनी रोजी रोटी कमा रहे हैं। अतः महिला श्रमिकों से बागानों से जुड़ने की अवधि को जानने का प्रयास निम्न सारणी द्वारा प्रदर्शित किया गया है :–

सारणी संख्या–0.2

बागानों से जुड़ने की अवधि के संदर्भ में उत्तरदाताओं का विवरण

क्र.स.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृति	प्रतिशत
1	1 से 5	34	11.1
2	5 से 10	97	31.7
3	10 से 15	84	27.5
4	15 से 20	42	13.7
5	20 से 25	44	14.4
6	25 से अधिक	5	1.6
7	योग	306	100.0

उपरोक्त सारणी से परिलक्षित होता है कि सर्वाधिक 31.7% महिला श्रमिक इन चाय बागानों में औसतन 5 से 10 वर्षों की अवधि से कार्यरत् हैं। 11.1% महिला श्रमिक 1 से 5 वर्षों से कार्यरत् हैं। 27.5% महिला श्रमिकों को कार्य करते हुए 10 से 15 वर्ष हो गए हैं। 13.7% महिला श्रमिक बागानों में 15 से 20 वर्षों से जुड़ी हैं।

14.4% महिला श्रमिक 20 से 25 वर्षों से इन बागानों में कार्य कर रही हैं। जबकि 1.6% महिला श्रमिकों को कार्य करते हुए 25 वर्षों से अधिक का समय हो गया है। पूर्व के अनेक अध्ययनों जैसे रमित जोशी ने 'चाय उद्योग भविष्य का आधार', रॉबट फारचून ने 'टी प्लांटेशन', जे.एस. बेंटन ने 'टी कल्टीवेशन इन कुमाऊँ एवं गढ़वाल' एवं डॉ0 आर0 एस0 टोलिया ने 'पटवारी, घराट और चाय' अपने अध्ययन में पाया कि उत्तराखण्ड की जलवायु चाय की कृषि के लिए उपयुक्त है। यहॉ पुराने चाय बागानों के पुनर्संरक्षित करने, साथ ही चाय के बागानों को गति व दिशा देने एवं भविष्य में हिमालयी क्षेत्रों में चाय बागानों से रोजगार के अवसरों की संभावना की बात की है।

कार्य करने का कारण :-

प्रीती मिश्रा (2001) ने अपने अध्ययन में पाया कि "महिलाएँ सिर्फ आर्थिक उपार्जन के लिए ही नौकरी या व्यवसाय नहीं करती बल्कि अपनी प्रतिभा का समुचित उपयोग करने एवं अपनी सामाजिक स्थिति को मजबूत बनाने हेतु कार्य करती हैं।" महिला श्रमिकों से जानने का प्रयास किया गया कि चाय बागानों में कार्य करने का कारण क्या है? प्राप्त प्रत्युत्तर निम्न सारणी द्वारा प्रदशित किया गया है :-

सारणी संख्या-0.3

चाय बागान में कार्य करने का कारण संबंधी विवरण

क्र.स.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सशक्तता	202	66.0
2	आवश्यकता	37	12.1
3	मजबूरी	65	21.2
4	शौक	2	0.7
5	योग	306	100.0

उपरोक्त सारणी से परिलक्षित होता है कि 66.0% महिला श्रमिक चाय बागानों में आर्थिक सशक्तता हेतु कार्य करती हैं। 12.1% महिला श्रमिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाय बागानों में कार्य करना उचित समझती हैं। 21.2% उत्तरदाता मजबूरीवश कार्य करते हैं एवं 0.7% उत्तरदाताओं का इन चाय बागानों में कार्य करना अपना शौक मानती हैं। अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक महिलाएँ अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए चाय बागानों में कार्य कर रही हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि कुछ महिला श्रमिकों के परिवार में इनके अतिरिक्त कमाने वाला कोई नहीं है। कोरोना महामारी के कारण परिवार में कई सदस्यों का रोजगार छूटा है। 17.3% महिलाएँ विधवा, 0.7% तलाकशुदा एवं 2.6% परित्यक्ता होने के कारण ये महिलाएँ अपने परिवार की मुख्य कमाने वाली हो जाती हैं।

परिश्रम की स्थिति :-

कार्यस्थल में महिलाओं को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनमें से एक समस्या पुरुषों की तुलना में महिलाओं से अधिक परिश्रम कराना भी है। इस संबंध में अध्ययन क्षेत्र के उत्तरदाताओं के प्रत्युत्तर निम्न सारणी द्वारा प्रदर्शित किए गए है -

सारणी संख्या–0.4

पुरूषों की तुलना में महिलाओं से अधिक परिश्रम कराने से संबंधी विवरण

क्र.स.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सहमत	12	3.93
2	असहमत	19	6.21
3	आंशिक रूप से सहमत	14	4.57
4	पूर्णतः असहमत	261	85.29
5	योग	306	100.0

उपरोक्त सारणी से परिलक्षित होता है कि 3.93% उत्तरदाताओं ने पुरुषों की तुलना में महिलाओं से अधिक परिश्रम कराने को स्वीकार करती हैं। 6.21% उत्तरदाता असहमत हैं। 4.57% उत्तरदाता आंशिक रूप से सहमत है। 85.29% उत्तरदाता महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक परिश्रम कराया जाता है। इस तथ्य से पूर्णतः असहमति जताती हैं। जिसका प्रतिशत सर्वाधिक है। जो सुखद परिणाम की तरफ ईशारा करता है। सविता नागर ने भारतीय समाज में कार्यशील महिलाओं के सन्दर्भ में यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया है कि "कार्यभार की दृष्टि से महिलाएँ पुरुषों से अधिक कार्यभार का अनुभव करती हैं और महिलाएँ स्त्री पुरुष के भेद को महसूस करती हैं।

वेतन–विसंगति :–

महिला एवं पुरुष के बीच वेतन–विसंगति एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है। यह मुद्दा उन सामाजिक संरचनाओं के कारण उत्पन्न होता है जो महिलाओं को पुरुषों से कम वेतन के लिए नियुक्त करते हैं। अक्सर कार्यस्थल पर यह देखा जाता है कि महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है जो उनकी उपस्थिति एवं योगदान के आधार पर उचित नहीं होता है। सामाजिक स्थिति, शिक्षा, कौशल, एवं अनुभव के आधार पर महिलाओं को कमजोर समझा जाता है जिस कारण महिला एवं पुरुष के समान कार्य करने के बाद भी कई कार्यक्षेत्रों में वेतन विसंगति जैसी स्थिति पाई जाती है। शिक्षा एवं जागरूकता के अभाव में ये महिलाएँ समान कार्य के बदले समान वेतन के लिए आवाज नहीं उठा पाती हैं। अतः अध्ययन क्षेत्र की चयनित महिला श्रमिकों से भी जानने की कोशिश की गई कि क्या महिला–पुरुषों में वेतन–विसंगति पाई जाती है? प्राप्त प्रत्युत्तर निम्न सारणी द्वारा प्रदर्शित हैं :–

सारणी संख्या–0.5

महिला–पुरूष में वेतन–विसंगति संबंधी विवरण

क्र.स.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	0	0
2	नहीं	306	100
3	थोड़ा बहुत	0	0
4	योग	306	100.0

उपरोक्त सारणी से परिलक्षित होता है कि 100% महिला श्रमिकों ने इन चाय बागानों में महिला एवं पुरुष

के बीच वेतन–विसंगति नहीं होने की पुष्टि की। जो एक सुखद परिणाम दृष्टिगत होता है। हालाँकि महिला एवं पुरुष श्रमिकों के मध्य वेतन विसंगति एक गम्भीर समस्या रही है। कार्यस्थल पर दोनों के समान कार्य करने के पश्चात् भी महिला को सदैव पुरुषों की तुलना में आय कम ही प्राप्त होती है। विनीता मोंगिया ने अपने अध्ययन में पाया कि शहरी असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों को पुरुषों की अपेक्षा कम मजदूरी प्राप्त होती है। प्रस्तुत अध्ययन में वेतन–विसंगति जैसी कोई समस्या नहीं है। अध्ययनकर्ता को अध्ययन से ज्ञात हुआ कि महिलाओं का इन चाय बागानों में कार्य करने का एक कारण वेतन–विसंगति का न होना भी है। हालांकि दृष्टव्य है कि उनका वेतन दहाई के आँकड़े के करीब भी नहीं पहुँचता।

निष्कर्ष :–

कौसानी चाय बागानों का यह अध्ययन महिला श्रमबल भागीदारी के एक विशिष्ट और सकारात्मक प्रतिरूप को उजागर करता है। इन बागानों के कुल कार्यबल में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अत्यधिक प्रभावशाली है, जो पुरुषों की भागीदारी से कहीं अधिक है। यह दर्शाता है कि स्थानीय परिस्थितियाँ और विशिष्ट औद्योगिक संरचनाएँ महिला रोजगार के लिए महत्वपूर्ण अवसर पैदा कर सकती हैं। इस असाधारण उच्च महिला भागीदारी के मूल में कई प्रमुख कारक हैं। इन चाय बागानों का स्थानीय क्षेत्र में सर्वाधिक सुलभ रोजगार विकल्प के रूप में उपलब्ध होना महिलाओं के लिए एक प्राथमिक प्रोत्साहन है। घर के समीप रहकर कार्य करने की सुविधा उन्हें अपनी घरेलू और सामाजिक जिम्मेदारियों के साथ–साथ आर्थिक गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से संलग्न रहने में सक्षम बनाती है। विशेष रूप से महिलाओं को लगभग 25 वर्षों से स्थायी रोजगार मिला हुआ है, जो इस क्षेत्र में महिला श्रमबल की दीर्घकालिक संलग्नता और स्थिरता को प्रमाणित करता है। चाय बागानों का यह विस्तार ऐसे समय में हुआ जब स्थानीय कृषि कार्य में कमी आ रही थी और क्षेत्र की अनुकूल जलवायु परिस्थितियों ने चाय उत्पादन के लिए आदर्श आधार प्रदान किया।

इस औद्योगिक बदलाव ने स्थानीय महिलाओं के लिए एक नए और महत्वपूर्ण रोजगार स्रोत का सृजन किया, जिससे आर्थिक अभाव की स्थिति में भी उन्हें आजीविका का सशक्त साधन प्राप्त हुआ। इस श्रमबल में कुछ विधवाओं, तलाकशुदा और परित्यक्ता महिलाओं जैसे संवेदनशील सामाजिक वर्गों की उल्लेखनीय उपस्थिति इस रोजगार के समावेशी स्वरूप को दर्शाती है। इन बागानों में प्राप्त रोजगार इन महिलाओं के लिए केवल आर्थिक सहायता ही नहीं, बल्कि सामाजिक सुरक्षा और व्यक्तिगत गरिमा का भी स्रोत बनता है। सबसे महत्वपूर्ण रूप से, कौसानी चाय बागानों में वेतन विसंगति जैसी कोई समस्या दृष्टिगत नहीं होती है, जहाँ महिला और पुरुष श्रमिकों को समान वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, कार्य आवंटन में भी पूर्ण लैंगिक समानता है, जिससे किसी भी लिंग को प्राथमिकता या अतिरिक्त बोझ नहीं दिया जाता। ये समानतावादी कार्य प्रथाएँ महिलाओं को बिना भेदभाव के पूर्ण क्षमता से योगदान करने और श्रमबल में उनकी निरंतर भागीदारी को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

संदर्भ :–

1. Jnnce. (2024). Trends and Status of Female Participation in Indian Labour Force - jjem. https://jjem.jnnce.ac.in/journals/SP-3/JJEMSP0306.pdf

2. वाघमारे, अभिषेक, (2025) 'भारत में महिला श्रम बल भागीदारी क्यों बदल गई है?' डेटा फॉर इंडिया : https://www.dataforindia.com/female.Ifpr.change
3. वाघमारे, अभिषेक, (2025) 'भारत में महिला श्रम बल भागीदारी क्यों बदल गई है?', डेटा फॉर इंडिया : https://www.dataforindia.com/female-Ifpr-change
4. Andres, L. A., Dasgupta, B., Joseph, G., Abraham, V., & Correia, M. (2017). Precarious Drop: Reassessing Patterns of Female Labor Force Participation in India. World Bank Group, South Asia Region, Social Development Unit. http://econ.worldbank.org
5. Heath, R., Bernhardt, A., Borker, G., Fitzpatrick, A., Keats, A., McKelway, M., Menzel, A., Molina, T., & Sharma, G. (2024). Female Labour Force Participation. VoxDevLit, 11(1).
6. Press Information Bureau (PIB). (2024). India's Workforce Transformation: A Rising Tide of Female Participation. https://www.pib.gov.in/FeaturesDeatils.aspx?NoteId=153426&ModuleId=2
7. Economic Advisory Council to the Prime Minister (EAC-PM). (2024). Female Labour Force Participation Rate. https://eacpm.gov.in/wp-content/uploads/2024/12/EACPM-WP-Female-LFPR-India.pdf
8. श्रीवास्तव, हेमलता, (1992) 'समाजशास्त्र एक परिचय' प्रकाशन साहित्य भंडार चाहचंद, इलाहाबाद, पृ0–80.
9. मिश्रा, प्रीती, (2001) 'हिंदू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व, प्रकाशक आदित्य पब्लिशर्स बीना (म0प्र0), पृ0–65.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 147-151

सुमित्रानन्दन पंत जी के काव्य में श्रमिक–मजदूर वर्गो का संघर्ष

राजकुमार
शोधार्थी, प्रो0 राजेन्द्र सिंह रज्जू भैया विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

कविवर सुमित्रानन्दन पत्र समूचे हिन्दी साहित्य में इकलौते ऐसे कवि हैं जिन्हें प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में प्रकृति का सुकुमार कवि, प्रकृति का चिंतेरा जैसे उपनामों से जाना जाता है। किन्तु प्रकृति चित्रण के साथ ही साथ वे मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी विचार धारा से प्रेरित होकर युगांत, युगवाणी और ग्राम्या जैमी रचनाओं में श्रमिकों गजदूरों किसानों और मेहनतकस वर्गों के संघर्ष, शोषण और उनकी दयनीय दशा का भी गजब का अनोखा चित्रण प्रस्तुत किया है।

हमेशा से ही सर्वहारा लोग जो केवल श्रम या मेहनत की पूंजी लेकर जीते हैं उनकी दशा दयनीय है। समाज एक ही वर्ग है पूंजीपतियो का जिनके पास भौतिक सुख भोग के सभी साधन उपलब्ध हैं वे अच्छे निवास में जीते हैं। धनपतियों का यह वर्ग निरन्तर गरीबों का शोषण करता रहा है। एक तरफ मिल कारखाने वाले ठेकेदार उद्योगपति मजदूरों का शोषण करते हैं तो दूसरी तरक ठाकुर, रायसाहब, जमींदार बड़े किसान श्रमिकों और मजदूरों का शोषण करते चले आ रहे है। श्रमिक, मजदूर के पास मेहनत के सिवा कुछ भी नही हैं काम करे तो खाये अन्यथा भूखे मरे श्रमिक व मजदूर वर्ग हमेशा ही, संघर्ष करता चला आ रहा है। आज भी संघर्षरत है, कारण इनका असंगठित होना इनमें संगठन नहीं, ये आपस में ही बिखरे हुए हैं और आज भी अधनंगे, भूखे, गन्दी गलियों में बसते हैं, रोग तथा बिमारी के शिकार होते हैं। उनकी किसी को क्या चिंता हैं। अज्ञानता के कारण यह वर्ग अपने दुख का कारण भी नही समझ पाता है।

''मजदूरों की बेवशी ने उन्हें वर्ग संघर्ष के लिए प्रेरित किया। कार्ल मार्क्स के विचारों का प्रचार हो गया।''[1]

श्रमिकों मजदूरों के साथ किसानों में भी जागृति फैल गई, ग्रामीण उद्योग नष्ट करने की अंग्रेजों की साजिश के सामने कारीगरों ने विद्रोह कर दिया।

''बिहार में 1927 ई० में किसान सभा की स्थापना हो चुकी थी उसने सन् 1934 तक व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया था, सन् 1935 में यू०पी० में प्रान्तीय किसान सभा स्थापित हो चुकी थी। 1930 ई0 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन के जन्म के साथ आठ वर्ष बाद ही मजदूरों में अपनी तरक्की का हौसला जग गया। वह एक मजबूत जमात की न सिर्फ तादात थी पर संघर्ष से उनकी तरक्की हुयीं उसके विचार भी ज्यादा लड़ाकू और गरम हो गये थे। अक्सर हड़तालें होती थी और मजदूरों में वर्ग संघर्ष की चेतना जोर पकड़ रही थी।''[2]

प्रगतिवाद हमारे देश में आया उससे पूर्व संक्रान्ति काव्य प्रारम्भ हो चुका था हमारे राजनीति, साहित्य और विचारों का सन्निवेश हुया। उसी समय हमारे यहाँ आतंकवाद का युग समाप्त हों चुका था, क्रांतिकारियों से लम्बी–लम्बी सजाएं सुनायी जा चुकी थी। वे जेल में रहकर लिखने पढ़ने और सोचने का नजरिया बदल चुके थे। इन क्रांतिकारियों की स्थिति लगभग मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'भाड़े के टट्टू' के नायक रमेश की तरह हो गई थी, जो कोठरी में बंद कठिन परिश्रम करने के बाद गरीबों के उपकार और सुधार की बात सोचा करता था। सन् 1930–32 के आन्दोलन में श्रमिक व मजदूर जनता ने इसमें भारी हिस्सा लिया। विश्वव्यापी मंदी से श्रमजीवी मजदूर किसान वर्ग की कमर टूट चुकी थी। इसी क्रम में सामाजिक क्रांति का नारा लगा और श्रमिकों तथा किसानों का बड़े पैमाने पर संगठन व संघर्ष शुरु हुआ। कांग्रेस ने भी अपने मंच से समाजवाद का नारा शुरू किया। यह विचार साहित्य में भी व्यक्त होने लगा, इंग्लैण्ड में जिन उत्साही कार्यकर्ताओ ने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की थी उनमे श्री सज्जाद जहीर प्रथम थे वे बम्बई आतें ही अपना कार्यक्रम प्रारम्भ किया।

उन्होंने जो विचार फैलाये उनमें वे कहते है कि– "प्रगतिशील साहित्य का रुख देश की जनता और मजदूरों, किसानों और मध्यम वर्ग की ओर होना चाहिए। उनको लूटने वालों और उन पर अत्याचार करने वालों का विरोध करना अपनी साहित्यिक रचनाओं से जनता में चेतना गति, क्रियाशीलता और एकता उत्पन्न करना व तमाम अवरोधों और प्रवृत्तियों का विरोध करना जो जड़ता, प्रतिक्रिया और निरुत्साह उत्पन्न करती हैं यहीं हमारा मुख्य कर्तव्य ठहरा।"[3]

गरीबों का जीवन या आयुष्य कलिष्ट कर्मी से भरा हुआ है श्रम ही उनके जीवन का अभिन्न अंग है। जीवन के कठिन सत्य को यह हथौड़ा मानो घोषित करता है। केवल विचार करता व्यर्थ है, महत्व तो श्रम का है। श्रम से ही जीवन के तमाम साधनों का निर्माण होता है। हमारी मांस पेशिया रक्त माँस सबकुछ श्रम का ही परिणाम है। इस सम्बन्ध में पंत जी 'युगवाणी' में लिखते हैं :–

"जागो श्रमिक बनो सचेतन,
भू के अधिकारी हैं श्रमजन।
मांस पेशियाँ हष्ट पुष्ट धन,
बड़ी शिराएँ, बलिष्ठ श्रम तन,
चिर लावण्यपूर्ण रम के कण।"[4]

यहाँ पर साम्यवादी विचार कवि पन्त जी ने प्रकट किया है अब श्रमिकों का समय आया है। वे जागृत हो चुके हैं अब पृथ्वी पर शासन वे ही करेंगे, उनकी मेहनत तथा श्रम सें विश्व सुवासित होगा, भव्य लावण्यमय बनेगा।

आगे कवि अपनी कृति 'श्रमजीवी' काव्य में भी श्रमिक की गाथा गाते हैं। वे कहते है कि श्रभिष्क या मजदूर कोई दबा हुआ आश्रित या लाचार नहीं है वह जगत को पालने वाला जगत निर्माता है, पन्त जी लिखते है :–

"वह पवित्र है वह जग के कदम से पोषित,
वह निर्माता श्रेणि वर्ग धन, बाल से शोषित।
मूढ़ अशिक्षित, सभ्य शिक्षितों से वह शिक्षित,

विश्व अपेक्षित, शिष्ट सुसंस्कृतों से मनुजोचित।।"[5]

इस प्रकार श्रमिक व मजदूर वर्ग सदा संघर्ष करता रहता है वह कभी अधिकार या सम्पति का मोह नहीं रखता है वह केवल अपनी मेहनत पर विश्वास रखता है। श्रमिकों मेहनतकशों के जीवन में जाने कितने दुःख आते हैं वे लड़ते हैं संघर्ष करते हैं भूख, प्यास, ठंण्डी, गर्मी सभी परिस्थित में वह संयमित है। अभय चित्त धीर, वीर गम्भीर मानव की वह साक्षात् कृति है। यही मजदूर, श्रमिक या कृषक एक दिन लोक क्रोन्ति का अग्रदूत बनेगा, नवीन समानता वाली सम्यक व्यवस्था लायेगा और जनता में समादर पायेगा, जो लम्बे काव्य से भय अन्याय तथा घृणा के संकट जाल में फँसा है, वह अपनी मेहनत से उन सबकों दूर करेगा अब वह नवजीवन रूपी शिल्पी बनेगा पन्त जी 'युगवाणी' में कहते हैं :–

"लोक क्रांति का अग्रदूत वह वीर जनाद्रित,
भव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक शासित।
चिर पवित्र वह, भय, अन्याय, घृणा से पालित,
जीवन की शिल्पी–पावन श्रम से प्रक्षलित।।"[6]

कवि सुमित्रानन्दन पलं जी श्रमिक व मजदूर वर्ग संघर्ष के बाद अपनी काव्य कृति 'कृषक' में भारत देश के अन्नदाता छोटे गरीब किसान का चित्र खींचते हैं। सामन्तवादी व जमींदार प्रथा का लक्षण था कि वह महल में बैठने वाला, लगान वसूल करने वाला, मनस्वी शोषण करके गरीब किसानों को चाबुक या हन्टर के कोड़े से मारने वाला जमींदार जमीन मालिक कहलाता था। वह अंग्रेजी शासकों का गुणगान गाने वाला उनका पिठ्ठु था, और आज स्वयं अंग्रेजी हुकुमत का मालिक बनकर गरीब किसानों मजदूरों पर अत्याचार करने वाला बन गया है। जबकि वास्तव में जो रात–दिन जमीन में मेहनत करता था, शरीर का खून पसीना बहाता था बहाकर अनाज उपजाता था इकट्ठा करने के बाद खलिहान से उसका अनाज ऋण के कारण साहूकार तथा जमींदार लोग उठाकर लेकर चले जाते थे। मेहनत करने वाले के घर चक्कीं नही चलती थी वह अपने परिवार के साथ अधनंगा, अधभूखा अपने जीवन को अपने भाग्य का दोष मानकर कोल्हू के बैल की तरह अपना जीवन बिताता रहता था। कवि पन्त जी ऐसे कृषकों के बारे में कहते हैं :–

"युग युग का वह भारवाह अकाटि नत मस्तक,
निखिल सभ्य संसार पीठ़ का उसके स्फोटक।
बज्र, मूढ़, जड़ भूत, हड्डी वृषबांधव कर्षक,
ध्रुव ममत्व की मूर्ति रूढियों का चिर रक्षक।"[7]

पूँजीपतियों के प्रति श्रमिक मजदूर का आक्रोश :–

हमारे देश में धन की असमानता तथा अस्वाभाविक विभाजन इतना चौकाने वाला है कि दुनिया इसी विचार धारा पर दो भाग में बंट गई है। एक तरफ धनवालों के सुन्दर खुले वातावरण में स्वच्छ बड़े–बड़े बंगले खड़े हैं, तो दूसरी तरफ तंग गलियों में दुर्गंध से पूर्ण टूटे घरोंदे हैं जिन्हें पशुओं का नाँद कहना अधिक उपयुक्त होगा। एक तरफ सुवासित पकड़े दिन में चार बार बदले जा रहे हैं तो दूसरी तरफ लज्जा ढकने के लिए वस्त्र नहीं है।

"किसी भी देश में ऐसी बिषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर यदि पता चले कि मोटे आदमियों की चर्बी अधिकतर

गरीबों का रक्त चूसकर बढ़ी है तो क्या रक्त खौल उठने का कारण नहीं होगा। गरीबों के मन की हताशा क्या भूकम्प नही उत्पन्न करेगी? ऐसी परिस्थिति में संवेदनशील कवि अपने काव्य में इन्हे जरूर व्यक्त करेगा। कवि पंत जी ने भी अपना सजीव धर्म निभाया है क्योकि पूंजीपति धंन के मद में गरीब आदमी को आदमी नहीं समझते इसलिए पूँजीपति प्रथा भारत से नहीं बल्कि विश्व से भी मिट जानी चाहिए।''[8]

कवि पंत की 'धनपति' काव्य में इसी स्वर को आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं कि– धनपति, पूँजीपति शोषणखोर लोग कैसे हैं, वें नृशंस हैं वे गरीबों का खून चूस–चूसकर ज्यादा ज्यादा धनवान होते जा रहे हैं–

> **"वे नृसंश है, वे जन के श्रमबल से पोषित,**
> **दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे हो शोषित।"**[9]

प्रगतिवाद ईश्वर और श्रमिक मजदूर :–

हमारे देश में गुगों तक गरीब श्रमिक और मजदूर वर्ग का निर्मम शोषण हुआ होता आ रहा है। जिसका मुख्य कारण सामाजिक असमानता रहा, वर्ण व्यवस्था के नाम पर समाज में छुआछुत, ऊँच–नीच, खान–पान का खान–पान का भेद–भाव बना रहा समाज तितर बितर होकर बंट गया था। धर्म–कर्म के आधार पर समाज में ऊँच–नीच की गहरी खाई बन गयी थी। ईश्वर के दखल में भी ऊंचे लोगों का ही कब्जा था वहीं पुण्य और धर्म का कार्य कर सकते थे, बाकी श्रमिक, मजदूर गरीब दलित व पीड़ित जनता धर्म–कर्म रीति रिवाज के नाम यह ऊंचे लोगों और धर्म के ठेकेदारों द्वारा शोषण किया जाता था।

जिसके फलस्वरूप ईश्वर के दरबार में जाने व धर्म कार्य करने के लिए भी श्रमिकों मजदूरों व दलितों को वर्ग संघर्ष करना पड़ा।

''ऊँच नीच की व्याप्त दुर्भावनाओं एवं वर्ग संघर्ष की भावना ने समाज को अस्त व्यस्त कर दिया था। छुआछूत के क्षय रोग ने समाज में अतड़ी चाल चालकर रख दिया। निराशा के इस व्यापक असन्तोष के बावजूद भी कोई सम्मत हल नहीं निकल सका था। स्थिति यह हो चुकी थी कि लोग अपने ही घर में सड़ी रूढ़ियों की दुर्गंध के कारण पराये हो चुके थे।''[10]

सदियों से सताये गये ऐसे गरीब श्रमिक मजदूर लोगों के लिए क्या धर्म क्या ईश्वर और क्या मोक्ष। उन्हें तो धर्म के नाम पर बंधन ही मिले थे। अगर धर्म का नाम मिटाकर कोई उन्हें मुक्त कराए तो के स्वाभाविक है कि वे हंसते हुए अपनायेंगे मार्क्सवाद ईश्वर में विश्वास नहीं करता, वैज्ञानिकों ने अपने भौतिकवाद में चेतना को इस रूप में स्वीकार नहीं किना जिस रूप में आध्यात्मवादियों ने किया है। इस सम्बन्ध में कवि पन्त जी लिखतें है कि :–

> **"ईश्वर पर चिरं विश्वास मुझे,**
> **चाहिए विश्व को नव जीवन।**
> **मैं आकुल रे उन्मन उत्मन।"**[11]

कवि पन्त की श्रामिकों, मजदूरों व दीन–हीन लोगों की दशा का चित्रण करते हुए जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों को तथा काल्पनिक पुण्य की बात करने वालों की धम्नियां भी उड़ाते हैं। वे भव्य व्यक्तिगत आत्मा की चर्चा के बदले आत्मावान व स्नेहक व्यक्ति को चाहते हैं, वे मानवी विभूतियों की चर्चा न करके यह सोचते हैं कि प्रत्येक मानव स्वर्गीय हो हमारा चिंतन हमारे कर्मों में परिवर्तित हो जाए, सबसे बड़ी बात यह है कि व्यक्ति के रूप में सोचना

छोड़ समष्टिं के रूप में सोचें इस लिए जनता के दुख से एकाकार होने की बात कहते हैं :–

"सर्व मुक्त हो मुक्ति तत्व अब,

सामूहिकता ही निजत्व अब।"[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि सुमित्रानन्दन पन्त जी प्रारम्भ में प्रकृति प्रेमी, प्रकृति के सुकुमार एवं सचेतन के रूप को चित्रित करते रहें बाद में रोमानी तथा छायावादी व अन्ततः वे यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाते हैं जिसका चित्रण 'युगान्त' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' जैसी उनकी रचनाओं में दिखालाई पड़ता है। कवि गाँधीवाद से प्रभावित थे ही पर बाद में मार्क्सवाद से भी प्रभावित हुए और यथार्थ दृष्टिकोण को अपनाकर ग्रामीण जीवन का अनोखा चित्रण कियां जिससे गरीबी, दुख, सुख, शोषण, बेरोजगारी, भुखमरी, वृद्ध नर–नारी, लंगड़ा, अंधा, रोगी सब पर अपनी कलम चलाते हैं। ग्राम जीवन की अच्छाई, बुराई, रूढ़ियों व अंधविश्वास को यथार्थ दृष्टि से देखते हैं। उसी प्रकार शहराती किन्दगी मजदूर, श्रमिक वर्ग, शोषण मालिक असमानता, आर्थिक व्यवस्था झुग्गी झोपड़ी की गन्दी बस्ती इस सब पर अपनी लेखनी के द्वारा कवि छायावादी प्रकृति प्रेमी के साथ ही साथ एक प्रगतिवादी, अन्तश्चेतनावादी और नवमानवतावादी कवि के रूप में सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास – श्री अजीत सिंह, पृ0–71
2. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास – श्री अजीत सिंह, पृ0–71
3. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास – श्री अजीत सिंह, पृ0–75
4. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–53
5. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–52
6. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–52
7. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–51
8. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–60
9. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–59
10. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास – श्री अजीत सिंह, पृ0–48
11. सुमित्रानन्दन पंत – श्री विश्वंभर मानव, पृ0–120
12. युगवाणी – श्री सुमित्रा नन्दन पंत, पृ0–54

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 152-158

चन्द्रावती (सिरोही) : मध्यकालीन भारत का एक सांस्कृतिक तीर्थ

सोहन लाल

शोधार्थी, इतिहास विभाग, जय नारायण व्यास यूनिवर्सिटी, जोधपुर।

सारांश :-

चन्द्रावती, राजस्थान के सिरोही जिले में सिवारणी नदी के तट पर बसा एक प्राचीन नगर, मध्यकालीन भारत (सातवीं से पंद्रहवीं शताब्दी) के सांस्कृतिक, धार्मिक और व्यापारिक वैभव का प्रतीक है। मेवाड़ क्षेत्र में स्थित यह नगर परमार, चौहान और चालुक्य वंशों के अधीन एक प्रमुख केंद्र रहा। अपनी उत्कृष्ट स्थापत्य कला, जैन और हिंदू मंदिरों, और व्यापारिक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध, चन्द्रावती मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि का एक जीवंत उदाहरण है। यह शोध पत्र चन्द्रावती के ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्व, इसके मंदिरों और शिल्पकला, व्यापारिक भूमिका, और आधुनिक संरक्षण की चुनौतियों का विश्लेषण करता है। साथ ही, यह जेम्स टॉड के योगदान, विशेष रूप से उनकी पुस्तक Travels in Western India (1839) में चन्द्रावती के वर्णन, और इसके सामाजिक–आर्थिक प्रभाव पर प्रकाश डालता है।

1. परिचय :-

चन्द्रावती, मेवाड़ के ऐतिहासिक परिदृश्य में एक ऐसा नगर है, जो मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और व्यापारिक समृद्धि का प्रतीक है। सिवारणी नदी के तट पर स्थित यह नगर, सातवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक परमार, चौहान और चालुक्य वंशों के अधीन मेवाड़ और पड़ोसी क्षेत्रों का एक प्रमुख केंद्र रहा। परमार वंश द्वारा स्थापित, चन्द्रावती ने व्यापार मार्गों पर अपनी रणनीतिक स्थिति के कारण समृद्धि प्राप्त की और जैन व हिंदू धर्म के तीर्थस्थल के रूप में प्रसिद्धि पाई। जेम्स टॉड ने अपनी पुस्तक Travels in Western India (1839) में चन्द्रावती को पश्चिमी भारत के एक महान नगर के रूप में वर्णित किया, जिसके मंदिरों की भव्यता और स्थापत्य कला ने विदेशी यात्रियों को आकर्षित किया। यह शोध पत्र चन्द्रावती के मध्यकालीन वैभव, इसके पुरातात्विक अवशेषों, और आधुनिक संरक्षण के प्रयासों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें हाल के पुरातात्विक उत्खनन और ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

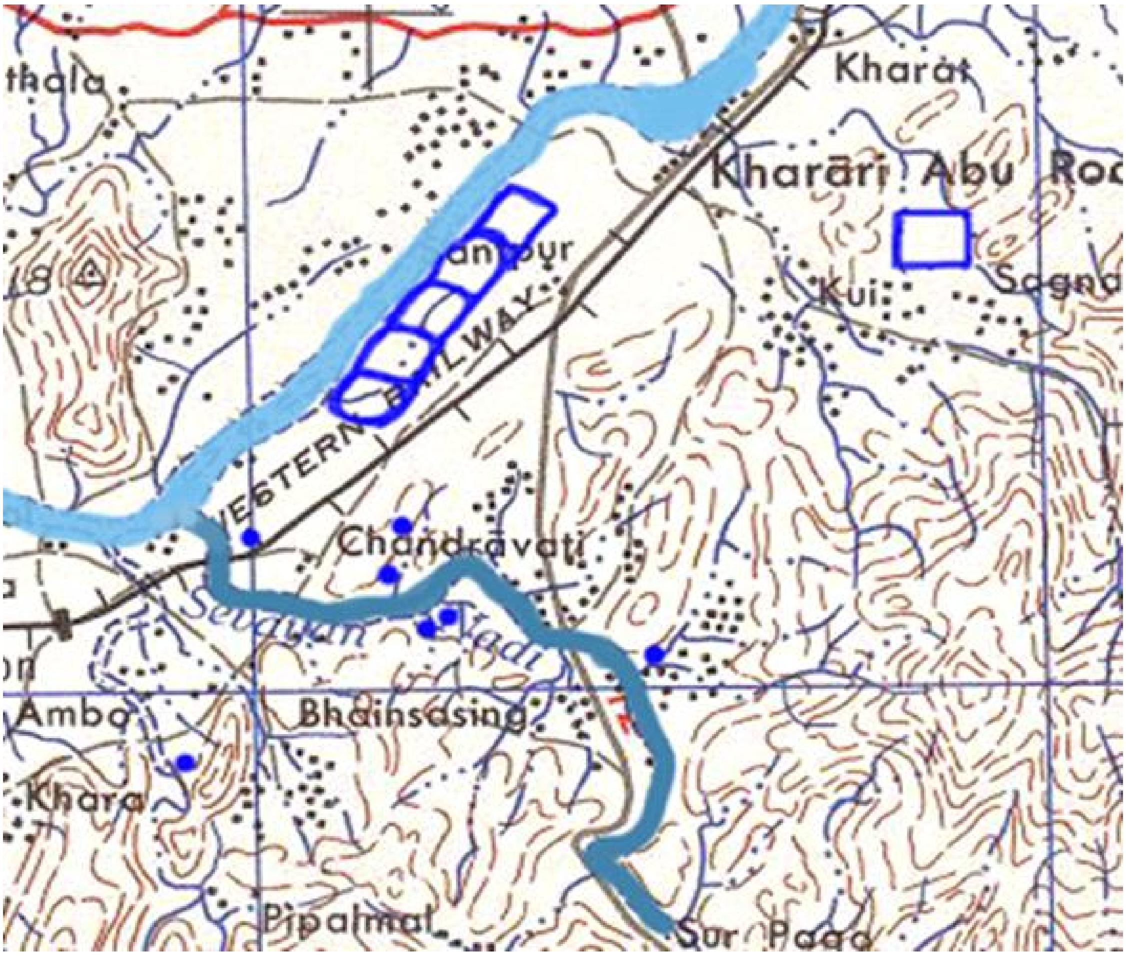

2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

चन्द्रावती का इतिहास मध्यकालीन भारत के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिवेश से गहराई से जुड़ा है। सातवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक यह नगर परमार, चौहान और चालुक्य वंशों के प्रभाव में रहा। इसकी समृद्धि का आधार इसकी भौगोलिक स्थिति थी, जो उत्तर और दक्षिण भारत को जोड़ने वाले व्यापार मार्गों पर थी।

2.1. परमार वंश और चन्द्रावती की स्थापना :-

चन्द्रावती को परमार वंश के शासकों, विशेष रूप से सिंधुराज (दसवीं शताब्दी) और राजा भोज (1010–1050 ई.) द्वारा स्थापित किया गया माना जाता है। जेम्स टॉड ने Travels in Western India (1839) में उल्लेख किया कि चन्द्रावती परमारों की प्रारंभिक राजधानी थी और इसे धार से भी पुराना माना जाता है। टॉड ने इसे पश्चिमी भारत का एक महानगर बताया, जो नौ रेगिस्तानी किलों का केंद्र था, जो परमारों के अधीनस्थ सामंतों द्वारा शासित थे (Tod, 1839; Ojha, 1928)। परमारों ने इसे एक धार्मिक और व्यापारिक केंद्र के रूप में विकसित किया, जो बाद में चौहान और चालुक्य वंशों द्वारा और समृद्ध हुआ।

2.2. मध्यकाल में चन्द्रावती का वैभव :-

चन्द्रावती सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक व्यापार और धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा। इसकी समृद्धि का शिखर ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में देखा गया, जब यह परमार और बाद में चौहान वंश के अधीन था। 1024 ई. में महमूद गजनवी ने चन्द्रावती पर हमला किया और इसे लूटा, लेकिन यह नगर अपनी समृद्धि को

पुनः प्राप्त करने में सफल रहा (Bhandarkar, 1910)। 1192 ई. में पृथ्वीराज तृतीय की हार के बाद, कुतुबुद्दीन ऐबक ने चन्द्रावती पर हमला किया, जिससे इसकी समृद्धि को आघात पहुँचा। 1304 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के गुजरात विजय के बाद चन्द्रावती ने अपनी स्वतंत्रता लगभग खो दी। 1405 ई. में देवड़ा चौहानों द्वारा राजधानी को सिरोही स्थानांतरित करने के बाद, चन्द्रावती धीरे–धीरे उपेक्षित हो गया (Sharma, 1987)।

3. पुरातात्विक वैभव :–

चन्द्रावती की पुरातात्विक खोजें इस नगर के मध्यकालीन सांस्कृतिक तीर्थ के रूप में महत्व को रेखांकित करती हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) और हाल के उत्खननों ने यहाँ के मंदिरों, मूर्तियों और अन्य संरचनाओं के अवशेषों को उजागर किया है।

3.1. मंदिर और स्थापत्य कला :–

चन्द्रावती के जैन और हिंदू मंदिर दसवीं–बारहवीं शताब्दी की परमार स्थापत्य शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जेम्स टॉड ने 'Travels in Western India' (1839) में इन मंदिरों की भव्यता का वर्णन करते हुए कहा कि संगमरमर के स्तंभों पर जटिल नक्काशी और अप्सराओं की मूर्तियाँ मध्यकालीन कला की समृद्धि को दर्शाती हैं। 1824 में सर चार्ल्स कोलविल ने यहाँ 20 संगमरमर के मंदिर देखे, जिनमें ब्रह्मा, शिव और महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ थीं (Cunningham, 1871)। जेम्स फर्ग्यूसन ने उल्लेख किया कि यहाँ के प्रत्येक मंदिर के स्तंभ की सजावट अद्वितीय थी (ngham, 1876)। दुर्भाग्यवश, अधिकांश मंदिर अब खंडहर हैं, और कई अवशेष रेलवे निर्माण और औद्योगिक विस्तार के दौरान नष्ट हो गए (Hussain, 2016)।

3.2. पुरातात्विक खोजें :–

हाल के उत्खननों, विशेष रूप से जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर और पुरातत्व विभाग के संयुक्त प्रयासों (2015–2016) से, चन्द्रावती में 50 हेक्टेयर में फैली एक प्राचीन बस्ती का खुलासा हुआ। तीन किलेबंद परिसर, दर्जनों मंदिर और बावड़ियाँ मिली हैं। उत्खनन में मिट्टी के बर्तन, ताम्र और लौह वस्तुएँ, मूर्तियाँ, और जले हुए अनाज के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो सातवीं शताब्दी से बस्ती के अस्तित्व की पुष्टि करते हैं (Kharakwal, 2015)। बिरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पेलियोबॉटनी (BSIP) द्वारा रेडियोकार्बन डेटिंग से सातवीं से सोलहवीं शताब्दी तक की तारीखें प्राप्त हुई हैं (Kumar, 2015)।

4. व्यापारिक और सामाजिक संरचना :–

चन्द्रावती की रणनीतिक स्थिति ने इसे मध्यकाल में एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र बनाया। यह उत्तर और दक्षिण भारत को जोड़ने वाले मार्गों पर स्थित था, जिसके कारण यहाँ स्थानीय और विदेशी व्यापारियों का आगमन होता था।

4.1. व्यापारिक महत्व :–

पुरातात्विक अवशेषों में सिक्के, मिट्टी के बर्तन और कांच के टुकड़े मिले हैं, जो चन्द्रावती के व्यापारिक नेटवर्क को दर्शाते हैं। जेम्स टॉड ने 'Travels in Western India' (1839) में चन्द्रावती को एक समृद्ध व्यापारिक केंद्र के रूप में वर्णित किया, जो अणहिलवाड़ पाटन और अन्य गुजराती नगरों के साथ व्यापारिक संबंध रखता था। यह नगर गुजरात और मालवा के बीच व्यापार का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। ग्यारहवीं शताब्दी में चालुक्य वंश के अधीन, चन्द्रावती अणहिलवाड़ पाटन का एक सामंत था (Chakravarti, 2002)।

4.2. सामाजिक संरचना :-

चन्द्रावती में एक संगठित सामाजिक संरचना थी, जिसमें मंदिर, आवासीय क्षेत्र और बाजार शामिल थे। उत्खनन में एक जनाना महल और अन्य आवासीय परिसर मिले हैं, जो यह दर्शाते हैं कि नगर में एक सुव्यवस्थित शहरी ढांचा था। जले हुए अनाज और गट्टी (पीसने का उपकरण) जैसे अवशेष दैनिक जीवन और कृषि गतिविधियों की जानकारी देते हैं (Hussain, 2016)।

5. चन्द्रावती का सांस्कृतिक तीर्थ के रूप में महत्व :-

चन्द्रावती का सांस्कृतिक तीर्थ के रूप में महत्व इसके धार्मिक और सांस्कृतिक योगदान से स्पष्ट होता है।

5.1. धार्मिक विविधता :-

चन्द्रावती में जैन और हिंदू मंदिरों की उपस्थिति ने इसे विभिन्न धार्मिक समुदायों के लिए एक तीर्थस्थल बनाया। जैन मंदिरों में परमार शासक भोज के समय के शिलालेख मिले हैं, जो जैन धर्म के प्रभाव को दर्शाते हैं (Jain, 1972)। हिंदू मंदिरों में ब्रह्मा, शिव और महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ इसकी धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाती हैं। टॉड ने Travels in Western India (1839) में इन मंदिरों को तीर्थयात्रियों के लिए एक प्रमुख आकर्षण बताया।

5.2. कला और शिल्प :-

चन्द्रावती की मूर्तिकला और नक्काशी में राजस्थानी शैली की झलक मिलती है। मंदिरों के स्तंभों और तोरणों में जटिल डिजाइन और अप्सराओं की मूर्तियाँ मध्यकालीन कला की समृद्धि को दर्शाती हैं (Rao, 1999)। जेम्स टॉड ने इन मंदिरों की सुंदरता को 'पश्चिमी भारत की सबसे उल्लेखनीय स्थापत्य कृतियों' में से एक बताया (Tod, 1839)।

6. जेम्स टॉड का योगदान :-

जेम्स टॉड के लेखन ने चन्द्रावती के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व को विश्व पटल पर लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके योगदान निम्नलिखित हैं :

ऐतिहासिक दस्तावेजीकरण :-

टॉड ने Travels in Western India (1839) में चन्द्रावती को परमार वंश की प्रारंभिक राजधानी के रूप में वर्णित किया और इसे पश्चिमी भारत का एक महानगर बताया। उनका यह विवरण चन्द्रावती के मध्यकालीन वैभव को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

मंदिरों का वर्णन :-

टॉड ने चन्द्रावती के मंदिरों की स्थापत्य कला और सौंदर्य का विस्तृत वर्णन किया, जिसमें संगमरमर के स्तंभों, अप्सराओं और संगीतमय दृश्यों की नक्काशी शामिल थी। यह वर्णन पुरातात्विक अध्ययन के लिए आधारभूत रहा (Tod, 1839)।

सांस्कृतिक तीर्थ की पहचान :-

टॉड ने चन्द्रावती को जैन और हिंदू तीर्थयात्रियों के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया, जिसने इसकी धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता को उजागर किया। उनके लेखन ने चन्द्रावती को एक सांस्कृतिक तीर्थ के रूप में स्थापित करने में मदद की।

स्थानीय स्रोतों का उपयोग :-

टॉड ने स्थानीय चारणों, भाटों और मौखिक परंपराओं से जानकारी एकत्र की, जिसने चन्द्रावती के इतिहास को प्रामाणिकता प्रदान की। यह दृष्टिकोण उस समय के लिए अभिनव था (Mathur, 2007)।

7. आधुनिक संरक्षण और चुनौतियाँ :-

चन्द्रावती की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं, लेकिन इसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

7.1. संरक्षण के प्रयास :-

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) ने चन्द्रावती के मंदिरों और अवशेषों को संरक्षित करने के लिए कई परियोजनाएँ शुरू की हैं (ASI, 1980)। 2018 में स्थापित "ऐतिहासिक चन्द्रावती सिटी म्यूजियम" में उत्खनन से प्राप्त मूर्तियाँ, मिट्टी के बर्तन और अन्य वस्तुएँ प्रदर्शित की गई हैं। राजस्थान सरकार ने 2021 में इस स्थल के विकास के लिए 50 लाख रुपये का बजट आवंटित किया (Rajasthan Tourism, 2020)। जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के उत्खनन कार्य (2015–2016) ने चन्द्रावती की प्राचीन बस्ती को उजागर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है (Kharakwal, 2015)।

7.2. चुनौतियाँ :-

- **प्राकृतिक क्षरण :-** बेड़च नदी के कटाव और पर्यावरणीय परिवर्तनों ने चन्द्रावती के अवशेषों को नुकसान पहुँचाया है (Kumar, 2015)।
- **मानवजनित विनाश :-** रेलवे और राजमार्ग निर्माण, विशेष रूप से आबू रोड–पालनपुर राजमार्ग, ने चन्द्रावती के कई अवशेषों को नष्ट किया (Singh, 2018)।
- **अवैध गतिविधियाँ :-** अवैध खुदाई और चोरी ने पुरातात्विक अवशेषों को खतरे में डाला है (Hussain, 2016)।
- **पर्यटन का दबाव :-** बढ़ते पर्यटन के कारण मंदिरों और अवशेषों पर अतिरिक्त दबाव पड़ रहा है (Rajasthan Tourism, 2020)।

8. सामाजिक-आर्थिक प्रभाव :-

चन्द्रावती का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व आज भी स्थानीय समुदाय के लिए सामाजिक–आर्थिक अवसर प्रदान करता है।

8.1. पर्यटन और अर्थव्यवस्था :-

चन्द्रावती में पर्यटकों की बढ़ती संख्या ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया है। आबू रोड रेलवे स्टेशन से केवल 5 किमी की दूरी पर स्थित होने के कारण यह पर्यटकों के लिए सुलभ है। चन्द्रावती को चित्तौड़गढ़ और उदयपुर जैसे पर्यटन स्थलों के साथ एक एकीकृत पर्यटन सर्किट में शामिल करने की योजनाएँ इसे और आकर्षक बनाएँगी (Rajasthan Tourism, 2020)।

8.2. सांस्कृतिक पुनर्जनन :-

चन्द्रावती की सांस्कृतिक विरासत स्थानीय समुदाय की पहचान को मजबूत करती है। उत्सवों और मेलों में इसकी ऐतिहासिक कहानियाँ और कला को प्रदर्शित किया जाता है, जो नई पीढ़ी को अपनी विरासत से जोड़ता है (Mathur, 2007)

निष्कर्ष :-

चन्द्रावती मध्यकालीन भारत का एक सांस्कृतिक तीर्थ है, जो अपनी धार्मिक, पुरातात्विक और व्यापारिक विरासत के लिए जाना जाता है। इसके मंदिर, स्थापत्य कला और व्यापारिक समृद्धि इसे मेवाड़ के इतिहास में एक विशेष स्थान प्रदान करती हैं। जेम्स टॉड ने Travels in Western India (1839) में इसकी भव्यता को बखूबी चित्रित किया, जिसने चन्द्रावती को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई। हाल के उत्खननों ने इसकी प्राचीन बस्ती और समृद्ध अतीत को उजागर किया है, लेकिन इसकी विरासत को संरक्षित करने के लिए प्राकृतिक और मानवजनित चुनौतियों का समाधान आवश्यक है। भविष्य में, चन्द्रावती को एक प्रमुख पर्यटन और शोध केंद्र के रूप में विकसित करने की संभावनाएँ हैं, जो राजस्थान और भारत की सांस्कृतिक पहचान को समृद्ध करेगा।

संदर्भ :-

1. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (एएसआई). (1980). रिपोर्ट्स ऑन चंद्रावती एक्स्कवेशन्स, 1970–1980. न्यू दिल्ली : एएसआई पब्लिकेशन्स।
2. भंडारकर, डी. आर. (1910). इंसक्रिप्शन्स ऑफ द परमारास. बॉम्बे : आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इंडिया।
3. चक्रवर्ती, आर. (2002). ट्रेड एंड ट्रेडर्स इन अर्ली इंडिया. न्यू दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कनिंघम, ए. (1871). आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट. कलकत्ता : गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।
5. फर्ग्युसन, जे. (1876). हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर. लंदन : जॉन मरे।
6. हुसैन, एम. (2016). आर्कियोलॉजिकल फाइंडिंग्स एट चंद्रावती. जयपुर : डिपार्टमेंट ऑफ आर्कियोलॉजी एंड म्यूजियम्स, राजस्थान।
7. जैन, के. सी. (1972). जैनिज्म इन राजस्थान. जोधपुर : जैन ब्रदर्स।
8. खरकवाल, जे. एस. (2015). एक्स्कवेशन रिपोर्ट : चंद्रावती सेटलमेंट. उदयपुर : जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ।
9. कुमार, एस. (2015). एनवायरनमेंटल इम्पैक्ट ऑन हेरिटेज साइट्स इन राजस्थान. जयपुर : राजस्थान यूनिवर्सिटी प्रेस।

10. माथुर, आर. के. (2007). फोक ट्रडिशन्स ऑफ राजस्थान. उदयपुर : लोक कला मंडल।
11. ओझा, जी. एच. (1928). हिस्ट्री ऑफ मेवाड़. अजमेर : वैदिक यंत्रालय।
12. राजस्थान टूरिज़्म. (2020). एनुअल रिपोर्ट ऑन हेरिटेज टूरिज़्म डेवलपमेंट. जयपुर : गवर्नमेंट ऑफ राजस्थान।
13. राव, टी. ए. जी. (1999). एलेमेंट्स ऑफ हिंदू आइकनोग्राफी. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
14. शर्मा, जी. एस. (1987). मेवाड़ का इतिहास. उदयपुर : अगम कला प्रकाशन।
15. सिंह, आर. पी. (2018). हेरिटेज कंजरवेशन एंड चैलेंजेस इन राजस्थान. न्यू दिल्ली : आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया।
16. सोमानी, आर. वी. (1985). हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ : फ्रॉम अर्लिएस्ट टाइम्स टू 1751 ए.डी. जयपुर : जैन पुस्ताक मंदिर।
17. टॉड, जे. (1829–1832). एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान. लंदन : स्मिथ, एल्डर एंड को।
18. टॉड, जे. (1839). ट्रैवेल्स इन वेस्टर्न इंडिया, एम्ब्रेसिंग अ विजिट टू द सेक्रेड माउंट्स ऑफ द जैन्स एंड द मोस्ट सेलिब्रेटेड श्राइन्स ऑफ हिंदू फेथ. लंदन : डब्ल्यू.एच. एलन।
19. त्रिवेदी, एच. वी. (1991). इंसक्रिप्शन्स ऑफ द परमारास, चंदेलाज, कच्छपघाताज एंड टू माइनर डाइनैस्टीज. न्यू दिल्ली : आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया।
20. एक्स प्लेटफॉर्म. (2023). पोस्ट बाय/Engr_Who डिस्कसिंग चंद्रावतीज हिस्टोरिकल सिग्निफिकेंस. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://x.com.
21. डिस्कालकर, डी. बी. (1938). इंसक्रिप्शन्स ऑफ द परमारास ऑफ मालवा. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बॉम्बे।
22. मजूमदार, आर. सी. (1955). द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 159-163

पश्चिमी राजस्थान में स्वदेशी व्यापारियों की संरचना एवं भूमिका

विनोद कुमार शर्मा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

शोध सारांश :–

किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति में अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। और इस अर्थव्यवस्था को सुद्रढता प्रदान करने का कार्य वहां की व्यापारिक गतिविधियों द्वारा किया जाता है। 17वीं सदी से लेकर 19वीं सदी के मध्य पश्चिमी राजस्थान की अर्थव्यवस्था को सुदृढता प्रदान करने में वहां के स्वदेशी व्यापारियों की अहम भूमिका रही है। इन स्वदेशी व्यापारियों में मुख्यतः महाजन, ब्राह्मण, बंजारा, चारण, कोठीवाल, पट्टीवाल, गोसाई, सर्राफा और भाट वर्ग के व्यावसायिक लोग आते थे।

इन सभी व्यापारियों ने अपनी व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों की सहायता से यहां की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान की और मारवाड़ क्षेत्र का चहुंमुखी विकास किया।

पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में 17वीं सदी से लेकर 19वीं सदी तक व्यापार एवं वाणिज्यक गतिविधियों को उन्नत स्तर पर पहुँचाने में स्वदेशी व्यवसायियों की अहम भूमिका रही है। इन देसी व्यवसायियों में मारवाड़ क्षेत्र में रहने वाले व्यवसायी आते।

इन देशज व्यापारियों में मुख्य रूप से महाजन, बंजारा, सर्राफा, ब्राह्मण, कोठीवाल, पट्टीवाल, चारण एवं भाट तथा फेरीवाल वर्ग के व्यावसायिक लोग आते थे।

उपरोक्त सभी व्यापारिक समुदाय के लोग मारवाड़ क्षेत्र में अपनी व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों को कुशलतापूर्वक जारी रखते थे। आगे चलकर 18वीं सदी से लेकर 19वीं सदी तक इन व्यवसायियों की वजह से मारवाड़ क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को सुद्रढता मिली और मारवाड़ क्षेत्र का चहुंमुखी विकास हुआ।

अब हम इन उपरोक्त सभी का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

स्वदेशी व्यापारी :–

1. महाजन पश्चिमी राजस्थान में महाजन समुदाय एक बड़े व्यापारी वर्ग का हिस्सा था। महाजन वर्ग के सभी व्यवसायिक लोग बनिया वर्ग से संबंधित थे। इस वर्ग में हिंदू अग्रवाल और जैन ओसवाल प्रसिद्ध व्यापारी थे। मारवाड़ क्षेत्र में ओसवालों के डागा, गोलछा, माहेश्वरी, कोठारी इत्यादि गोत्र के व्यापारी निवास करते थे। यह सभी व्यवसायी व्यापार एवं बैंकिंग व्यवस्था में अहम भूमिका निभाते थे। मारवाड़ क्षेत्र से औरंगाबाद, बुरहानपुर,

आगरा इत्यादि स्थानों पर 17वीं सदीं में सैनिकों के लिए हुंडिया भेजी गई थी। जिसमें साहूकार रणछोड़ दास, उदय सिंह, सारंगधर डागा, मलूक दास इत्यादि बैंकरों का उल्लेख मिलता है।[1] जकात बही नंबर 81 में उल्लेख मिलता है कि चेनाराम गोलछा, उदय चंद्र गोलछा एवं देवचंद गोलछा प्रमुख ओसवाल व्यापारी थे।[2] चूरू के प्रसिद्ध सेठ मिर्जामल पोद्दार अग्रवाल जाति के बहुत बड़े व्यवसायी थे, जो व्यापार एवं बैंकिंग व्यवस्था से जुड़े हुए थे।[3] इस पोद्दार परिवार की व्यापार एवं वाणिज्यिक गतिविधियां समस्त उत्तरी भारत में फैली हुई थी। सनद परवाना बही नंबर 7 के अनुसार जोधपुर के मेड़तिया महाजन धान की गाड़ियां बिक्री के लिए नागौर ले जाते थे।[4] हाथ बही नंबर चार से यह उल्लेख मिलता है, कि शाह नवल किशोर, बाघमल नागौर क्षेत्र में ऊन के प्रसिद्ध व्यापारी थे। जिनकी जोधपुर, अजमेर और मारवाड़ क्षेत्र के अन्य स्थान पर भी दुकाने थी।[5] 18वीं शताब्दी में महाजन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीड की हड्डी माना जाता था। यह वर्ग ग्रामीण परिवेश की कृषिगत व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था तथा महाजन समुदाय के लोग भू–राजस्व की अदायगी के लिए कृषकों को ऋण भी उपलब्ध करवाते थे। तथा कृषक इन ऋण के पैसों के बदले अपना अनाज महाजन व्यापारियों को अदा करते थे। जिसके परिणाम स्वरूप महाजन वर्ग के लोग एक बड़े अनाज व्यापारिक वर्ग के रूप में उभर कर समाज के सामने आये।[6] महाजन वर्ग की इस स्थिति को देखते हुए ही उन्हें भू–राजस्व के पदाधिकारियों के पद पर भी नियुक्त किया जाता था।[7] 18वीं शताब्दी में ग्राम मुखिया का ऋण दाता के रूप में भी कार्य करने का उल्लेख मिलता है। कागदो–री–बही नंबर 10 से यह उल्लेखित होता है कि बीकानेर राज्य के जसरासर गांव के चौधरी काने ताजौकी ने 100 का ऋण दिया था।[8] महाजन वर्ग के लोग अनाज व्यापारी के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वह गांव से अनाज की गाड़ियां भरकर शहरों में ले जाते थे। बीकानेर का एक व्यापारी मोनू मुदडो नाम का सेठ जैतपुर से गेहूं एवं चावल बीकानेर नगर में ले गया था।[9]

2. **बंजारा :–** बंजारा समुदाय के लोग मुख्यतः माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने का कार्य करते थे। लेकिन समकालीन साक्ष्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि यह वस्तुओं को एक जगह से दूसरी जगह पर ढोने के साथ–साथ व्यापार भी करते थे। इस वर्ग के लोग मुख्यतः नमक, अनाज और किराने का सामान गांव में बेचने का कार्य करते थे। सनद परवाना बही नंबर 9 में यह उल्लेख है कि मोती नायक नाम का बंजारा जोधपुर से आकर नावा दरीबे से नमक की गाड़ियां भरकर ले गया।[10] सनद परवाना बही नंबर 21 से यह उल्लेखित होता है कि लिखमाराम नायक और जवाहरमल पचपदरा से जोधपुर में नमक ले गए थे।[11] सनद परवाना बही नंबर 21 में यह उल्लेख होता है कि बंजारा समुदाय के लोग सांभर से नमक भरकर ले जाते थे।[12]

3. **ब्राह्मण :–** ब्राह्मण समुदाय के लोग भी व्यापार एवं वाणिज्यिक गतिविधियों में संलग्न थे। इस वर्ग के व्यापारी आंतरिक और बाह्य दोनों स्तर के व्यापार में सक्रिय थे। ब्राह्मण समुदाय की कई उप–जातियां व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ी हुई थी इन उप–जातियां में पालीवाल,पुरोहित, व्यास, गुंसाई, जोशी, पुष्करणा, भट्ट और आचारज प्रमुख थे। सनद परवाना बही नंबर 21 से यह जानकारी मिलती है कि पालीवाल नैतसी जैसलमेर का प्रसिद्ध व्यापारी था जो पाली से अफीम, किराने का सामान, कपड़ा एवं अन्य घरेलू उपयोगी वस्तुएं खरीद कर जैसलमेर ले जाता था।[13] परगना पाली री जमा खर्च री हाकम रे दफ्तर री बही नंबर 1529 में यह उल्लेख मिलता है कि जैतराम व्यास पचपदरा के नमक के प्रसिद्ध व्यापारी थे।[14] इसी प्रकार गोवर्धन जोशी पाली में किराना की वस्तुओं के और सूरतराम व्यास कपड़े के थोक व्यापारी थे।[15] किशन दास भट्ट, अचल दास पुरोहित, जसकरण

भट्ट मेघराज व्यास, परसराम, चतुर्भुज जोशी, आशा भट्ट इत्यादि व्यक्ति बीकानेर के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित ब्राह्मण व्यापारी थे। परसराम आचारज नामक व्यापारी जैसलमेर से बीकानेर किशमिश, पिस्ता और सुरमा लेकर आया था।[16] कागदो री बही नंबर 33/2 के अनुसार बीकानेर राज्य में कल्याणगिर गुंसाई, सुल्तान प्रोहत, चतुर्भुज जोशी हिंदूमाल चोटिया इत्यादि ब्राह्मण व्यापारी छोटे–छोटे ऋण देने वाले बैंकर के रूप में उभरे।[17]

4. **चारण एवं भाट :–** समकालीन साक्ष्यों से यह उल्लेखित होता है कि पश्चिमी राजस्थान में चारण एवं भाट्ट समुदाय की भी व्यावसायिक गतिविधियों में अहम भूमिका रही हैं। हालांकि इस समुदाय के व्यापारियों की संख्या अधिक नहीं थी। सनद परवाना बही नंबर 21 से यह जानकारी मिलती है कि देवीचंद और सागरमल चारण जोधपुर में कपड़े का व्यापार करते थे और वह देश के विभिन्न हिस्सों से कपड़ा खरीद कर जोधपुर मंगवाते थे।[18] हीरा भाट्ट नामक व्यक्ति मारवाड़ का प्रसिद्ध नमक का व्यापारी था। जो विक्रम संवत 1871 (1814 ई.) में 500 बैल नमक से लदे हुए पचपदरा से छिपाबड़ोद (कोटा) में बिक्री के लिए ले गया था।[19] महेश दास और दलपत राय चारण जोधपुर में अनाज का व्यापार करते थे। तथा यहां से गेहूं व अन्य धान्य सामग्री बेचने के लिए नागौर में भेजा करते थे।[20] जैसलमेर का प्रमुख व्यापारी दामोदर भाट जोधपुर में नमक का व्यापार करता था।[21] बीकानेर राज्य में चारण एवं भाट समुदाय के लोग यहां के निजी व्यापार में भी संलग्न थे इनको राज्य की तरफ से अपने ऊँटों पर माल बेचने या लाने पर जकात में छूट मिलती थी।[22] जोधपुर का प्रसिद्ध व्यापारी चेनाराम भाट था। जो जोधपुर एवं सिंध प्रांत के बीच व्यापार करता था।[23] इस प्रकार चारण एंव् भाट समुदाय के व्यापारियों ने भी अपनी व्यावसायिक गतिविधियों के कारण मारवाड़ क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5. **कोठीवाल :–** मारवाड़ क्षेत्र में या उसके बाहर व्यवसाय करने वाले व्यापारियों में कोठीवाल श्रेणी के व्यापारी सर्वाधिक धनाढ्य और समृद्ध होते थे। इनकी राज्य से बाहर भी देश के विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में व्यावसायिक कोठियाँ स्थापित थी। जहां पर इनके द्वारा नियुक्त मुनीम–गुमास्ते व्यापारिक गतिविधियों का संचालन करते थे।[24] कोठीवाल व्यापारी बड़े बैंकर के रूप में राज्यों को ऋण भी देते थे, साथ ही हुंडी व्यवसाय में भी विशेष पारंगत थे। बीकानेर के प्रसिद्ध व्यापारी विनय चंद संतोष चंद की जालौर और जोधपुर में व्यापारिक कोठियाँ थी। चुरू के प्रसिद्ध सेठ मिर्जामल पोद्दार भी एक प्रसिद्ध कोठीवाल व्यापारी थे जिनकी भारत के विभिन्न हिस्सों जैसे जयपुर, जोधपुर, अजमेर, पाली, नागौर, बीकानेर, जम्मू–कश्मीर, अंबाला, पटियाला, शिमला में व्यापारिक कोठियाँ स्थापित थी।[25] इन कोठीवाल व्यापारियों के संपूर्ण भारत के व्यावसायिक केन्द्रों से व्यापारिक संबंध थे यह व्यापारी इन केन्द्रों से तम्बाकू, कपड़ा, हरमच, हरी मिर्च, हींग, चावल, गुड़, घोड़े, फिटकरी एवं सूखे मेवे और किराने का सामान खरीद कर लाते थे। ब्याव–री–बही नंबर 158 विक्रम संवत 1827 (1770 ई.) से यह उल्लेखित होता है कि बीकानेर का सेठ मानक चंद जयपुर में वृहद्ध स्तर पर कपड़े लेकर आया था।[26] जकात बही नंबर 81 से यह ज्ञात होता है कि खेतशी शाह नामक व्यापारी जैसलमेर से 8 मन मिर्च, 4 मन 8 सेर खारकी, कपड़ा एवं हींग इत्यादि वस्तुएं लेकर बीकानेर आया था।[27] तेजपाल गोलछा नामक व्यापारी सिंध से तंबाकू लेकर आया था।[28] बीकानेर राज्य से मुल्तान को लोहा, चीढ़, सलावट व गुड यहाँ के व्यापारियों द्वारा भेजा जाता था।[29]

6. **फेरीवाल :–** फेरीवाल वर्ग में व्यावसायिक लोग आते थे। जो अपनी वस्तुएं गांव में घूम–घूम कर या फिर – फिर कर बेचते थे। यह व्यापारी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं को उपलब्ध करवाने का काम करते थे। फेरीवाल समुदाय के व्यापारी गाँवों और शहरों के बीच एक कड़ी का काम करते थे। यह शहरों और कस्बों से

वस्तुओं को गांव–गांव तक पहुंचाने का कार्य करते थे। यह ऊंट या घोड़े पर तथा कभी–कभी अपनी पीठ पर भी वस्तुओं को लादकर बेचा करते थे। यह गांव में अनाज, नमक घी, खाद्य तेल और किराने की वस्तुओं को बेचा करते थे। इनसे वस्तुएं खरीदने वाले खरीददार या तो इनको नगद के रूप में भुगतान करते थे या फिर वस्तु के बदले में अनाज देकर करते थे। बीकानेर राज्य की गाँवा–री–जकात बही नंबर 84 से यह उल्लेखित होता है कि शिवदान बागड़ी सूरतगढ़ कस्बे का एक प्रसिद्ध फेरीवाल व्यापारी था। जो 34 ऊँटो पर गुड़ लाकर सूरतगढ़ से लगे आसपास के गाँवों में बेचने गया था।[30] रतनगढ़ कस्बे के एक फेरीवाल व्यापारी हीरजी अग्रवाल भी किराने की वस्तुएं ऊँटों पर लादकर आसपास के गाँवों में बेचने जाया करते थे।[31]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. हुंडियां री विगत बही नंबर 246, विक्रम संवत 1726 (1669 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
2. जकात बही नंबर 81 विक्रम संवत 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
3. गोविंद अग्रवाल : पोतेदार संग्रह के अप्रकाशित कागजात, चूरू, पृष्ठ 63, 64।
4. सनद परवाना बही नंबर 7 पृष्ठ 52, विक्रम संवत 1824 (1767 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
5. हाथ बही नंबर चार, पृष्ठ 245, विक्रम संवत 1895 (1838 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
6. लोकवाणी संग्रह बही, भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर।
7. गुप्ता प्रो.एस.पी : द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ इस्टर्न राजस्थान (1650–1750 ई.) दिल्ली, 1986, पृष्ठ 206–09।
8. कागदो रे बही नंबर 10, विक्रम संवत 1854 (1797 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
9. जकात बही नंबर 8, विक्रम संवत 1807 (1750 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
10. सनद परवाना बही नंबर 9, पृष्ठ 209 विक्रम संवत 1826 (1769 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
11. सनद परवाना बही नंबर 21, पृष्ठ 240, विक्रम संवत 1835 (1738 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
12. हाथ बही नंबर 2, पृष्ठ 73, विक्रम संवत 1838 (1781 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
13. सनद परवाना बही नंबर 2, पृष्ठ 235 विक्रम संवत 1835 (1778 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार , बीकानेर।

14. परगना पाली जमा–खर्च–री–बही, हाकम–रे–दफ्तर–री–बही नंबर 1529, विक्रम संवत 1835 (1778 ई) जोधपुर रिकॉर्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
15. परगना पाली जमा – खर्च – री– बही, हाकम – रे –दफ्तर– री –बही नंबर 1532 , विक्रम संवत 1875 (1818 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
16. जकात बही नंबर 81 विक्रम संवत 1807 (1750 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
17. कागदों – री – बही– नंबर 33/2 विक्रम संवत 1884 (1827 ई.) बीकानेर रिकॉर्डस, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
18. सनद परवाना बही नंबर 21 पृष्ठ, 239 विक्रम संवत 1835 (1778 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
19. भंडार नंबर 4 बस्ता नंबर 13, जकात बही विक्रम संवत 1871 (1814 ई.) कोटा रिकॉर्डस, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
20. सनद परवाना बही नंबर 25, पृष्ठ 79, विक्रम संवत 1838 (1781 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
21. खास रुका परवाना बही नंबर 1, पृष्ठ 219 विक्रम संवत 1822 (1765 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
22. मरु श्री, जुलाई–दिसंबर, 1982 पृष्ठ 24।
23. सनद परवाना बही नंबर 21, पृष्ठ 279 विक्रम संवत 1835 (1778 ई.) जोधपुर रिकॉँर्डस, राजस्थान राज्य अभीलेखाकार, बीकानेर।
24. अग्रवाल गोविंद रूवाणिज्य व्यापार में मुनीम गमास्तो की भूमिका, चुरु 1985, पृष्ठ 6–7
25. अग्रवाल गोविंद रूपोतेदार संग्रह के प्रकाशित कागजात, चूरू, पृष्ठ 63–64
26. ब्याव–री–नंबर 158, विक्रम संवत 1827 (1727 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
27. जकात बही नंबर 81, विक्रम 1807 (1750 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर।
28. सावा–मंडी–सदर–बही नंबर 3, विक्रम संवत 1805 (1748 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभीलेखाकार, बीकानेर।
29. जकात बही नंबर 81, विक्रम संवत 1807 (1750 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर।
30. गांव–री–जकात–बही नंबर 84, विक्रम संवत 1865 (1808 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
31. वही।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 164–170

ऐतिहासिक हस्तिनापुर, पर्यटन एवं पर्यटक : एक अध्ययन

प्रो. देवेंद्र कुमार गुप्ता

दीपक कुमार, शोध छात्र

प्रा. भा. इ. सं. पुरातत्व विभाग,

गुरुकुल काँगड़ी सम विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

सार :–

पर्यटन एवं पर्यटक भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। उद्योग जैसी अन्य गतिविधियों की तुलना में पर्यटन आम तौर पर सुगम और कम हानिकारक है। यहीं कारण है कि व्यक्ति ऐसे स्थानों पर जाना पसंद करते है जहाँ उनकी आध्यात्मिक चेतना और जिज्ञासु मन शांति प्राप्त हो सके। इसके लिए मनुष्य अपने निकटतम स्थान की ओर प्रस्थान करता है। जहाँ उसे यह सुखद अनुभव प्राप्त हो सके। ऐसे ही स्थलों में से एक स्थल उत्तर प्रदेश राज्य में गंगा नदी के निकट स्थित हस्तिनापुर है जो न केवल धार्मिक दृष्टि से अपितु ऐतिहासिक, संस्कृति, पुरातत्विक, पर्यावरण एवं प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है। बड़ी संख्या में पर्यटक हस्तिनापुर भ्रमण के लिए आते है जिनका मुख्य उद्देश्य प्राचीन इतिहास की जानकारी के साथ–साथ हस्तिनापुर पुरास्थल, जैन तीर्थ तथा वन्य जीव विहार का भ्रमण करने से है। इन पर्यटक गतिविधियों में हस्तिनापुर के सन्दर्भ में आगुन्तकों की क्या राय होती है, उनकी क्या–क्या अपेक्षा इस स्थान को लेकर है, पर्यटन गतिविधियों का हस्तिनापुर पर क्या प्रभाव है, भविष्य की योजना एवं पर्यटक प्रबंधन की समीक्षा आदि का अध्ययन इस शोधपत्र में किया गया है। अंतरराष्ट्रीय एवं घरेलू आगंतुक अनुभव के संबंध में हस्तिनापुर को लेकर अध्ययन किया गया हैं। इसलिए एक वैज्ञानिक अध्ययन हस्तिनापुर के सन्दर्भ में पर्यटक प्रवाह के प्रभाव का आकलन करने की दृष्टि से किया गया है।

कुंजी शब्द – हस्तिनापुर, जैन तीर्थ, प्रतिष्ठित पुरास्थल, पर्यटक प्रवाह, आगंतुक कठिनाइयाँ, आगंतुक संतुष्टि।

सर्वेक्षण पद्धति :–

हस्तिनापुर के सन्दर्भ में यह सर्वेक्षण तथा विश्लेषण जनवरी 2022 से लेकर अप्रैल माह 2022 तक किया गया। जिसमें लगभग 300 व्यक्तियों का साक्षात्कार किया गया था। यह एक प्रश्नावली आधारित सर्वेक्षण था जो विशेष रूप से हस्तिनापुर के विषय में पर्यटकों के अनुभवों को ज्ञात करने के लिए किया गया था। इस प्रश्नावली में प्रमुख रूप हस्तिनापुर में स्थित विभिन्न धर्म स्थल तथा पुरातात्विक महत्व को लेकर व्यक्तियों की क्या अनुभव रहा तथा इसके लिए और क्या प्रयास किये जाने चाहिए ताकि यह स्थान और अधिक विकसित हो तथा इसका लाभ सभी तक पहुंचे।

परिचय :-

हस्तिनापुर : (29°09'30", N & 78°00'24-57", E), के ऐतिहासिक विवरण हस्तिनापुर को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते है। यह प्राचीन नगर सोलह जनपदों में से एक कुरु जनपद की राजधानी था जो उत्तर भारत के प्रमुख राजनैतिक केंद्र के रूप में विख्यात था। इसके साथ ही हस्तिनापुर पुरातात्त्विक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण स्थल है तथा वर्तमान में यह भारत के पांच प्रतिष्ठित पुरास्थलों में से एक है। इसके प्राचीन सांस्कृतिक जमाव तथा इनसे जुड़े महत्वपूर्ण कथानक हमेशा से ही विद्वानों और पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते रहे है। हस्तिनापुर पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एकमात्र पर्यटन स्थल है जहाँ पर सर्वाधिक पर्यटक भ्रमण के लिए आते है।

इसका मुख्य कारण इस स्थल का ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक, धार्मिक महत्व के साथ–साथ प्राकृतिक सौंदर्य युक्त वातावरण है। हस्तिनापुर को जानने के लिए उपलब्ध साहित्यिक स्रोतों में सबसे महत्वपूर्ण महाभारत है। महाभारत में वर्णित मुख्य घटनाक्रम एवं विवरण इसकी स्थिति को स्पष्ट करते हैं। वैदिक साहित्य में वेद से लेकर पुराणों तथा जैन धर्म के आगम साहित्य, बौद्ध धर्म की जातक कथाएं तथा अन्य ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है। हस्तिनापुर के सटीक विवरण का सर्वप्रथम उल्लेख यहां से प्राप्त एक अभिलेख से होता जो बड़े जैन मंदिर में स्थापित जैन तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ की मूर्ति पर उत्कीर्ण हैं। यह श्वेत पाषाण पर एक लंबी पद्मासन प्रतिमा है । इस मूर्ति को जीवराम जी पापड़िनवाल लाल द्वारा सन 1548 वैशाख सुदी तीज को भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित कराई गयी थी। जिसमें हस्तिनापुर को जैन तीर्थक्षेत्र के रूप में उल्लेखित किया गया है। दूसरा उल्लेख विक्रम संवत 1233 (सन 1167 ई0) वैशाख शुक्ला द्वादशी को देवपाल सोनी नामक व्यक्ति द्वारा स्थापित हल्के हरे रंग के पाषाण से बनी खड्गासन मूर्ति पर उत्कीर्ण अभिलेख भी हस्तिनापुर का उल्लेख जैन तीर्थ के रूप में करता है।

हस्तिनापुर के उत्खनन से प्राप्त ध्यानमुद्रा में बैठे भगवान ऋषभदेव जी की प्रतिमा जो अशोक वृक्ष के नीचे तपस्यारत है कि मूर्ति जो बलुआ पाषाण से निर्मित है भी प्राप्त हुई है। जिसका कालखण्ड उत्खनित स्तर पंचम से प्राप्त हुई है। यह प्राप्ति भी इस स्थान को प्राचीन जैन तीर्थ के रूप में स्थापित करती है। एक उदहारण जो प्रमाणित करता है कि प्राचीन काल में भगवान ऋषभदेव जी आहार–विहार के लिए हस्तिनापुर नगर आये थे तथा उन्होंने आहार के रूप में ईंख (गन्ने का रस) का सेवन किया था यह तथ्य ओर भी प्रमाणित हो जाता क्योंकि हस्तिनापुर उत्खनन (1950–52) में भारत के सबसे प्राचीन गन्ने के अवशेष हस्तिनापुर से ही प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त यहां से प्राप्त यक्ष प्रतिमा तथा अन्य बोधिसत्व की प्रतिमा के साथ–साथ अन्य प्रतिमाओं का प्राप्त होना इसके धार्मिक लक्षणों को स्पष्ट करता है। सबसे अंतिम उदाहरण पाण्डुकेश्वर मदिंर है। इस मंदिर का जीर्णोद्धार बहसूमा किला परीक्षितगढ़ के राजा नैन सिंह ने 1798 ईस्वी में कराया था। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर के उत्खनन से प्राप्त सिक्के, मोहरे, कलाकृतियां, मिट्टी के बर्तन आदि के द्वारा भी इसके ऐतिहासिक महत्व को समझा जा सकता है। हाल ही में प्राप्त मोहरों से यह स्पष्ट हुआ है कि प्राचीन काल में यह स्थान उत्तरापथ के एक बहुत बड़े व्यापार का केंद्र था।

हस्तिनापुर का पुरातात्विक महत्व :-

हस्तिनापुर भारतीय पुरातत्व में भी बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह पुरास्थल भारत के उन विशालतम

पुरास्थलों में से एक है जिसका उद्धभव हड़प्पा सभ्यता के उत्तर काल के उपरांत गंगा–यमुना के दोआब के मध्य विकसित हुआ था। यह पुरास्थल मुख्य सात सांस्कृतिक जमाव तथा विभिन्न राजवंशों के समय से संबंधित पुरातत्व सामग्री को समेटे हुए हैं। जिसका उल्लेख यहाँ से प्राप्त मृदभांड, सिक्कों तथा मोहरों से होता है। इस स्थान के पहले मानवीय बसावट के प्रमाण गेरुए मृदभांड परंपरा से आरंभ माने जाते हैं जो मुगल काल तक की गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करते है। मुगल काल के अन्तिंम चरण में यह स्थान जैन से धर्म संबंधित मंदिर भव एवं पूजा स्थलों के रूप में विकसित और विख्यात हुआ है। इस स्थान के पुरातात्विक चरणों का लघु विवरण निम्न प्रकार से है।

प्रथम चरण 1500 ईसा पूर्व से 1200 ईसा पूर्व तक माना जाता है। इस चरण से प्राप्त गेरुए रंग के मृदभांड तथा ताम्र निर्मित औजारों के कारण इस सांस्कृतिक काल को गेरुए मृदभांड एवं ताम्र निधि संस्कृति से संबंधित माना जाता है। हस्तिनापुर से इस कालखंड के बहुत ही सीमित मात्रा में अवशेष प्राप्त हुए हैं। द्वितीय चरण में जिसकी (लाल, 1950–52 : 12) अवधि 1200 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व है। इस कालखंड में जो पात्र परंपरा विकसित हुई उसे चित्रित धूसर मृदभांड परंपरा के नाम से जाना जाता है। इस कालखंड तथा इससे संबंधित पुरातात्विक सामग्री उत्तर भारत में सर्वाधिक मात्रा में प्राप्त होती है। गंगा, यमुना, सतलज तथा उसकी सहायक नदियों के किनारे इस परंपरा के या इस संस्कृति के सर्वाधिक सांस्कृतिक जमाव प्राप्त होते हैं। इस संस्कृति से जुड़ें पुरावस्तुएं एवं मृदभांड सामान्य रूप से प्राप्त होते रहते हैं। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महाभारत में वर्णित अधिकतर स्थानों से इस जैसी ही संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं। इन प्रमुख स्थलों में लाक्षागृह बरनावा, बागपत, तिलपत, इंद्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र आदि स्थान चिन्हित है। तृतीय कालखंड में उत्तर कृष्ण मार्जित पात्र परंपरा से संबंधित है। इस कालखंड को महाजनपद काल के नाम से भी जाना जाता हैं जिनमें से हस्तिनापुर जो कुरु जनपद की राजधानी थी, सबसे प्रमुख नगर के रूप में विख्यात थी। चतुर्थ कालखंड मौर्य, शुंग, कुषाण काल से संबंधित है जो तत्कालिक पुरावस्तुओं को प्रस्तुत करते हैं। पंचम कालखंड गुप्त काल का प्रतिनिधित्व करता है। इस चरण से काफी संख्या में व्यापारिक मोहरें प्राप्त हुई है (गणनायक, 2022 : 105–106)। षष्ठ कालखंड राजपूत काल से संबंधित है तथा सातवाँ कालखंड सल्तनत काल से लेकर मुगल काल तक माना जाता है। इसका निर्धारण पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर किया गया है। विभिन्न कालखंड के बिखरे हुए इन तात्कालिक अवशेष एवं संरचनाओं के कारण ही प्राचीन हस्तिनापुर के दिग्दर्शन होते हैं जिसके कारण आने वाले पर्यटकों में लगातार जिज्ञासा बनी रहती है।

पर्यटकों के लिए हस्तिनापुर में मुख्य आकर्षण :–

ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक मान्यताओं से परिपूर्ण हस्तिनापुर नगर पर्यटकों के लिए एक महत्वपूर्ण आकर्षक भ्रमण स्थल है, जहाँ पर व्यक्ति की सभी मान्यताओं एवं जिज्ञासाओं के आधार पर आत्म संतुष्टि दायक स्थल देखने को मिलते हैं। पर्यटन की दृष्टि से यह स्थल पांच श्रेणियों में विभाजित करके देखा जा सकता है जहाँ पर पर्यटक भ्रमण के लिए आते हैं। पर्यटकों के आगमन आधार पर इस श्रेणी में प्रथम स्थान पर जैन मंदिर समूह आते हैं। जिसके अंतर्गत जम्बूद्वीप संरचना, बड़ा एवं छोटा जैन मंदिर, अष्टपद मन्दिर, जैन निशियाँ, तथा विभिन्न छोटे बड़े जैन मंदिर इस श्रेणी में आते हैं। द्वितीय श्रेणी में हिंदू मंदिर समूह है जिसके अंतर्गत पांडेश्वर महादेव मंदिर, जयंती माता मंदिर, करण मंदिर, द्रोपदी मंदिर, अमृत कूप आदि आते हैं। तृतीय

श्रेणी में प्राचीन हस्तिनापुर के अवशेष स्थल के रूप में विख्यात उल्टा खेड़ा, रघुनाथ का टीला, बाराखंबा, विदुर टीला इत्यादि आते हैं। चतुर्थ श्रेणी में हस्तिनापुर में स्थित वन्य जीव विहार एवं गंगा के प्रवाह क्षेत्र आते हैं। पंचम श्रेणी में वह स्थल आते हैं जहाँ पर पर्यटकों का आगमन बहुत ही सीमित एवं कम संख्या में हैं इसके अंतर्गत बौद्ध विहार, भाई धर्मदास गुरुद्वारा एवं मुस्लिम दरगाह आदि आते हैं।

हस्तिनापुर में पर्यटकों का प्रवाह तथा आगमन :–

हस्तिनापुर हर वर्ष भारी संख्या में पर्यटकों को आकर्षित करता है। वर्ष 2022 में यहां आने वाले पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है जिसका मुख्य कारण हाल ही में हुए पुरातात्विक उत्खनन के द्वारा हस्तिनापुर के पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत करने वाले एक उत्खनन क्षेत्र का खुल जाना था। वस्तुतः यह एक आश्चर्यजनक तथा उत्साहित करने वाला पक्ष है जिसके कारण हस्तिनापुर में पर्यटकों का आगमन हस्तिनापुर के पुरातात्विक महत्व को जानने के लिए हुआ है। यदि वर्तमान समय की बात की जाए कि किस समय पर्यटकों की संख्या बढ़ती तथा घटती है तब इसका निर्धारण निम्न आधार पर किया जा सकता है। पहला हस्तिनापुर में आयोजित होने वाले उत्सव एवं कार्यक्रम तथा दूसरा विद्यालयों के अवकाश के समय होने वाले विभिन्न प्रकार के भ्रमण कार्यक्रम इस संदर्भ में पर्यटक आगमन की स्पष्ट स्थिति को प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि इस समय पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि हो जाती है।

चित्र संख्या 1 :– पर्यटक भ्रमण के विषयगत अनुमानित आंकड़े प्रतिशत में

हस्तिनापुर में आने वाले पर्यटकों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे पर्यटक आते है जिनका मूल उद्देश्य हस्तिनापुर के जैन मंदिर दर्शन करना होता है। द्वितीय वर्ग वे पर्यटक आते है जिनका उद्देश्य पुरातात्विक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक सौंदर्य युक्त वन्यजीव अभयारण्य, आदि स्थलों का भ्रमण करते हैं। तृतीय वर्ग में हस्तिनापुर में आयोजित होने वाले विभिन्न प्रकार के उत्सव जिसमें जैन धर्म के उत्सव, द्रोपदी महोत्सव तथा वार्षिक धर्म सिंह गुरुद्वारा में आयोजित वार्षिक महोत्सव हेतु आने वाले। चतुर्थ वर्ग में वे पर्यटक आते है जिनका उदेश्य गंगा दर्शन एवं स्नान होता है यह आगमन विशेष दिवस में होता है जब कोई स्नान पर्व का समय होता है जैसे कार्तिक पूर्णिमा, गंगा दशहरा आदि। हस्तिनापुर में आने वाले पर्यटकों की संख्या औसतन प्रतिदिन 3000 से लेकर 4000 के मध्य तक रहती है। यह संख्या समय–समय पर घटती और बढ़ती रहती है। यद्यपि हस्तिनापुर में जानकारी प्रदान करने वाले स्रोतों की कमी होने के कारण पर्यटकों की प्रतिक्रिया संतोषजनक नहीं रहती परंतु पुरावशेष के माध्यम से थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त करके जाते हैं। पर्यूषण पर्व तथा द्रोपदी घाट पर होने वाले मेले के दौरान यहाँ पर पर्यटकों की संख्या लाखों तक पहुंच जाती है। स्थानीय एवं दूरस्थ स्थानों से आए लोग अपने आपको प्राचीन हस्तिनापुर का भ्रमण करके धन्य मानते हैं।

पर्यटक प्रतिक्रिया :–

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भ्रमण करने वाले अधिकतर पर्यटक हर प्रकार की नागरिक सुविधाओं सहित एक सुविधाजनक पर्यटन करने की अपेक्षा करते हैं। हस्तिनापुर में प्रतिदिन आने वाले पर्यटकों में से प्रतिदिन 10 से 15 व्यक्तियों का व्यक्तिगत साक्षात्कार लिया गया जिसके परिणामस्वरूप यह प्रतिक्रिया सामने आती है। हस्तिनापुर में अधिकतर आने वाले पर्यटकों का मानना है कि इस स्थान का विकास करना अभी भी शेष तथा इस पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यहां से अपने इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति, कला, धर्म इत्यादि का अच्छे से ज्ञान प्राप्त हो सके। इसके साथ–साथ सभी पर्यटकों को वे सभी नागरिक सुविधाएं भी मिलनी चाहिए जिसमें पेयजल, शौचालय, विश्राम गृह बहुद्देशीय प्रेक्षा गृह तथा आसानी से प्राप्त होने वाले मार्गदर्शक का भी उपलब्ध होना आवश्यक है। हस्तिनापुर में नागरिक सुविधाओं की सामान्य उपलब्धता है जो आने वाले पर्यटकों की तुलना में काफी कम है। हस्तिनापुर पर अभी इस क्षेत्र में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता पर आने वाले पर्यटकों का विशेष आग्रह रहा है। महाभारत तथा जैन ग्रंथो पर आधारित धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक घटनाक्रमों को उल्लेख करने वाले विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करना चाहिए। जिसके अंतर्गत हस्तिनापुर से संबंधित घटनाक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए सूचना पट्ट, दिशा निर्देशक तथा सामान्य जानकारी प्रदान करने वाली सूचना होनी चाहिए।

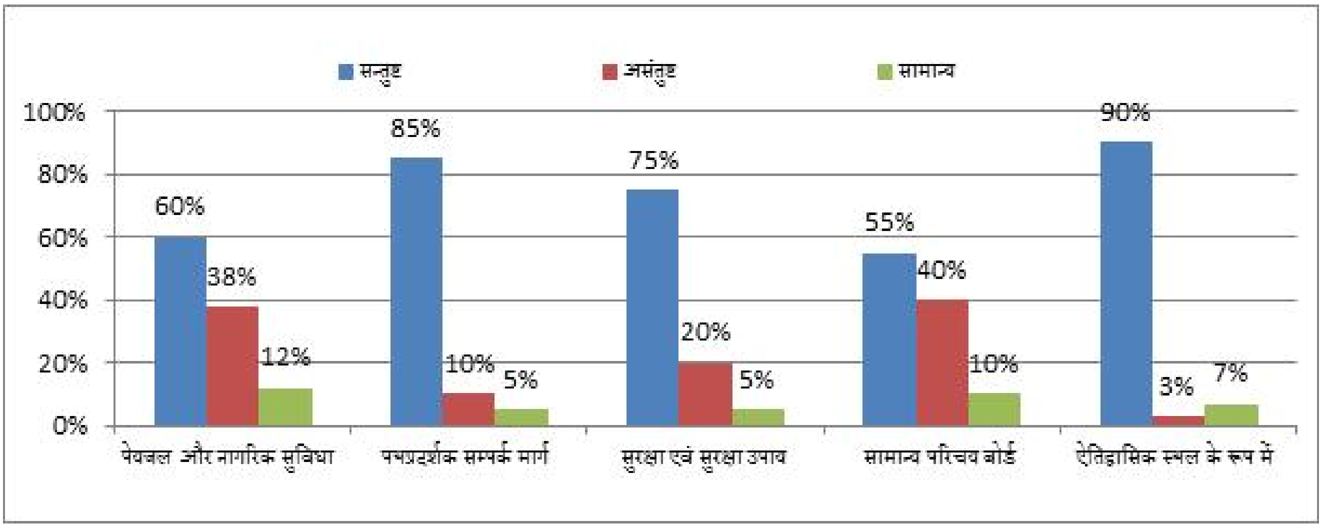

पर्यटक संतुष्टि ग्राफ : चित्र संख्या 2

हस्तिनापुर पर्यटक वहन क्षमता :–

भ्रमण के विषय में हस्तिनापुर बहुत ही बड़ा क्षेत्र है तथा यहाँ के मंदिर, पुरास्थल, वन्य जीव अभ्यारण बहुत ही व्यापक क्षेत्र में फैले हुए हैं। हस्तिनापुर में विशेष रूप से जम्बूद्वीप संरचना ने पर्यटक वहन एवं क्षमता को बढ़ावा दिया है जिससे आने वाले पर्यटकों एक विशाल परिसर मिलता है जहाँ पर ज्ञान के साथ धर्म इतिहास का अर्जन होता है। अतः यहाँ पर पर्यटकों की संख्या बढ़ने से कोई विशेष दबाव उत्पन्न नहीं होता परंतु कुछ क्षेत्र में पर्यटकों की संख्या बढ़ने पर कुछ हानि होने की संभावना रहती है। मुख्यतय टीले पर सामान्य से अधिक पर्यटकों के आने पर इस क्षेत्रों में पुरावस्तुएं नष्ट होने की संभावना बनी रहती है। स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले सांस्कृतिक जमाव व्यक्तियों के संपर्क में आने के कारण नष्ट होने का खतरा बना रहता है। कुछ स्थान

पर वलय कूप तथा प्राचीन संरचनाओं के क्षतिग्रस्त होने की संभावना बनी रहती है। सामान्य दिशा निर्देशन के अभाव के कारण आम पर्यटक इस ओर ध्यान नहीं देते।

वर्तमान स्थिति :-

वर्तमान समय में हस्तिनापुर पर्यटन की संभावनाओं से भरा हुआ है जहाँ पर पुरातत्व, ऐतिहासिकता धार्मिक स्वरूप तथा आर्थिक स्वालंबन के कई उद्देश्य को पूर्ति करता हुआ प्रस्तुत हो रहा है। यहाँ पर और अधिक संभावनाओं की तलाश की जा सकती है। स्थानीय हस्तकला, साहित्य परंपरा, तथा लाभदायक आर्थिक पक्ष को तलाशा जा सकता है जिसके लिए और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। हस्तिनापुर का प्रतिष्ठित पुरास्थलों में शामिल होना एक बड़ी उपलब्धि है तथा इसी को आधार बना कर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उसके प्रचार–प्रसार की आवश्यकता पर बल देना होगा।

भविष्य की चुनौतियाँ एवं पर्यटन विकास की परिकल्पना :-

हस्तिनापुर के संदर्भ में पर्यटन विकास की बहुत सी संभावनाएं हैं। इन संभावनाओं के साथ इस स्थल को सुरक्षित बचाए रखने के लिए बहुत सारी समस्याएं हैं जो मुख्य रूप से देखरेख के अभाव में उत्पन्न हो सकती है। अवैध विनिर्माण एवं कब्जों के कारण हस्तिनापुर का पर्यटन प्रभावित हो सकता है। इसके प्रबंधन एवं रखरखाव को हमेशा विश्लेषण करके सुरक्षित बनाने का प्रयास करना चाहिए। इसके साथ–साथ इस स्थल को जोकि भारत के प्रतिष्ठित पुरास्थलों में से एक है। पर्यटन विकास के दृष्टिकोण से और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है। इसका एक उदाहरण महाभारत कालीन स्थल कुरुक्षेत्र में राज्य सरकार द्वारा विकसित किया गया एक ऐसा क्षेत्र जहाँ पर महाभारत कालीन घटनाक्रम एवं गीता के उपदेश तथा आसपास के जितने भी सांस्कृतिक धरोहर वाले स्थान हैं उनका विकास किया गया है। जिससे वहां पर आने वाले पर्यटकों की संख्या बढ़ी है। उसी प्रकार हस्तिनापुर को भी भविष्य में विकसित करने की आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढ़ी महाभारतकालीन घटनाक्रमों को प्रस्तुत करने वाले इस विशाल एवं सांस्कृतिक धरोहर के स्थान को देख सके।

2005 में महाभारत सर्किट योजना के अंतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा महाभारत कालीन या महाभारत में उल्लेखित स्थानों को पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया था जो कुछ हद तक सफल भी रहा। लेकिन तात्कालिक परिस्थितियों के कारण यह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका अतः इस पर उन्हें पुनः विचार करना आवश्यक है। साथ–साथ राज्य एवं केंद्र सरकार दोनों मिलकर इस स्थान को एक पूर्ण रूप से ज्ञानप्रद पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करने के लिए कार्य करना चाहिए। इसके लिए सुगम संपर्क मार्ग पुरास्थल पर संपूर्ण जानकारी युक्त सूचना पट्ट तथा आसपास के जितने भी सांस्कृतिक धरोहर वाले स्थान हैं उनके इतिहास, धार्मिक मान्यताएं एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से विकसित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :-

पर्यटक का व्यवहार और अनुभव किसी भी पर्यटक स्थल के भविष्य को तय करता है। उसके द्वारा प्राप्त अनुभव समाज में भ्रमण किये गए स्थान के विषय में अमिट छाप छोड़ते है। जहाँ तक हस्तिनापुर का विषय है तब यहीं अनुभव एवं व्यहवार सामान्यतय देखने को मिला है कि अभी बहुत से कार्य हस्तिनापुर को लेकर करने शेष है जो इस स्थान को और अधिक सुगम और ज्ञानपरक बनाने के लिए आवश्यक हैं। इसके लिए इस स्थान

के विकास और प्रबंधन की आवश्यकता पर बल देना होगा। इसके लिए निम्न बिन्दुओं पर कार्य करने की आवश्यकता है :–

1. पर्यटक क्षेत्र में सुगम मार्ग व्यवस्था का निर्माण करना।
2. हस्तिनापुर के वैभवशाली इतिहास एवं पुरातत्त्व से जुड़े अवशेषों को प्रदर्शित करने हेतु संग्रहालय को विकसित करना।
3. हस्तिनापुर पुरास्थल के सांस्कृतिक अनुक्रम दर्शाने हेतु चिन्हित उत्खनन क्षेत्र को परिरक्षण कर प्रदर्शित हेतु तैयार करना।
4. मानचित्र द्वारा हस्तिनापुर के महत्वपूर्ण स्थलों के विषय में जानकारी प्रदान करना।
5. नागरिक सुविधाओं युक्त वातावरण विकसित करना।
6. पर्यटन विकास हेतु कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना।
7. चूँकि यह स्थान जैन तीर्थ के रूप में विश्वविख्यात है इसलिए सत्विकता, शुद्धता तथा स्वच्छ वातावरण को अनिवार्य रूप से स्थापित करना होगा।

इस प्रकार के प्रयासों से हस्तिनापुर अपने गौरवशाली इतिहास, पुरातत्त्व तथा धार्मिक मान्यता आमजन के मध्य तक पहुँच बनाएगी, जिससे सभी को धार्मिक, आर्थिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक लाभ प्राप्त होंगे।

सन्दर्भ सूची :–

1. गाणिनी आर्यिका ज्ञानमती, ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर मेरठ।
2. जैन, दिनेश कुमार, पावन जैन तीर्थ हस्तिनापुर की गौरवगाथा, श्री दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी हस्तिनापुर, मेरठ–2009
3. जैन, ज्योतिप्रसाद, हस्तिनापुर, 1956
4. देवी, पूनम, युग युगीन हस्तिनापुर, (अप्रकाशित शोध ग्रंथ) चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश 2016
5. माथुर, विजेयन्द्र कुमार, ऐतिहासिक स्थानावली, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, भा. सरकार दिल्ली 1968
6. शर्मा, कृष्ण कान्त (2014), मेरठ जनपद के पर्यटन स्थल, मेरठ 2014।
7. Lal, B.B.(1954-1955) Excavation at Hastinapura and other Exploration in the Upper Ganga and Sutlij Basins -1950 to 1952 , Ancient India. Bulletin of the ASI. Vol.10-11 pp.5-152.
8. Garnayak, D.B.(2022), Excavation at Ulta-Kheda, Hastinapur: 2021, Puratattva.Vol. 52 pp100-111

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 171-175
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

चंदेल कालीन स्थापत्य कला एवं संस्कृति का विशेष अंकन

कु. आदिती जायसवाल
शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शोध सारांश :–

प्राचीन भारतीय इतिहास में चंदेल वंश का काल 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक का काल बहुत महत्वपूर्ण रहा हैं। इस वंश का क्षेत्र आधुनिक बुंदेलखंड (उत्तर प्रदेश) एवं मध्यप्रदेश में शासन किया तथा अपनी मूर्तिकला स्थापत्य कला, मंदिर निर्माण कला एवं अपनी सांस्कृतिक उन्नति के कारण अपने काल की सबसे उन्नत अवस्था में पहुच चुका था। भारतीय समाज की स्थापित कला की इस विशेषता के कारण भारत में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। जिनमे प्रमुख रूप से खजुराओं के मंदिर चंदेल कालीन स्थापत्य कला के सर्वोतम उदाहरण हैं। जिनमे मंदिरों को तीन समूहों मे बांटा गया हैं। जिनमे सबसे प्रमुख मंदिरों में खजूराओं के कन्दरिया महादेव, लक्ष्मण मंदिर, जैन मंदिर, विश्वनाथ मंदिर इसके अलावा घटाई मंदिर और योगिनी मंदिर जो देवियों को समर्पित हैं।

यहाँ के मंदिरों में गर्भग्रह जिनमे मंडम एवं महामंडप तथा अर्ध मंडप होता हैं। मंदिरों की ऊचाई पिरामिड शैली में बने हुए है। इनमें शिकार पुरुष रंग अमला कलश अत्यंत सुसज्जित होते हैं। यहाँ के मंदिरों की दीवारों पर देवी देवताओं की मिथुन मूर्तियाँ, नृत्य एवं पौराणिक कथाओं को उकेरा गया हैं।

चित्र नंबर 1.1 काशीविश्वनाथ मंदिर

चित्र नंबर 1.2 कंदरिया महादेव मंदिर

चित्र नंबर 1.3 लक्ष्मण मंदिर

चंदेलों की ऐतिहासिक भूमिका :–

चंदेल वंश की स्थापना नवमी शताब्दी में हुई तथा इसका विकास दशवी शताब्दी में हुआ था। इस वंश की नीव स्वयं चंदेलों ने रखी थी। इनका क्षेत्र आधुनिक (उत्तर प्रदेश) के बुंदेलखंड के दक्षिण भाग में इस वंश की राजधानी खजुराओं थी। उस समय यह राजधानी खजूर वाहक थी। इस वंश में अनेक शक्तिशाली शासक हुए।

जिनमे यशोवर्मन (925 से 950) ढंगशासक (950 से 999) तथा परमार्दीदेव (1165 से 1203) आदि शासक शामिल थे। इन सारे शासकों ने स्थापत्य एवं कला को बढ़ावा दिया, एवं खजुराओं, महोबा, कालिंजर में इन्होंने विभिन्न मंदिरों का निर्माण कराया।

चंदेल कालीन स्थापत्य कला का विवरण :-

चंदेलों की स्थापत्य कला भारतीय मंदिर वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण रहा हैं। इस युग में मंदिर निर्माण की विशेष शैली विकसित हुई जिसे उस समय के नगर शैली में रखा जाता हैं। चंदेल वंश शुरुआत से ही स्थापत्य कला पर विशेष ध्यान देते थे। जिस कारण से उनके अधिकारी एवं जनता भी उनके आदर्शों का पालन करती थीं। इनका निर्माण केवल मंदिरों तक सीमित नहीं था। अर्थात इनका स्थापत्य कला में भी विशेष रुचि थी। ये लोग मुख्य रूप से ब्राह्मण धर्म के अनुआयी थे। लेकिन अन्य धर्म के भी प्रति श्रद्धा भाव रखते थे। यही कारण हैं कि बुंदेलखंड में सभी धर्मों के मंदिर दिखाई देते हैं। धार्मिक स्थापत्य कला, बौद्ध स्थापित कला, ब्राह्मण, स्थापत्य कला प्रमुख रूप से चंदेल शासकों द्वारा निर्मित किए गए मंदिरों एवं स्थापत्य कला में देखने को मिलता हैं। जैन स्थापत्य कला भी वहाँ की प्रमुख विशेषता रही थी। इस काल में तो ब्राह्मण स्थापत्य कला के अंतर्गत अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों का भी प्रादुर्भाव हो चुका था। और इसी को आधार बनाकर शिव, वैष्णव, तथा दुर्गा माहेश्वरी आदि देवी-देवताओं के मंदिरों का निर्माण हुआ और आगे चलकर चंदेलों की धार्मिक राजधानी खजूराओं में हिन्दू तथा जैन मंदिरों के उत्कृष्ट आधार बने। यहाँ के मंदिर चार दीवार के अंदर न बनकर खुले में और चबूतरे पर निर्मित हुआ। यहाँ के मंदिर मुख्यतः तीन भागों में बने हैं।

- गर्भ गृह।
- मंडप।
- अर्ध मंडप।

यहाँ के कुछ मंदिरों में एवं मंडपों की परिक्रमा का भी विधान हैं। इस प्रकार चंदेल वंश के खजूराओं के मंदिरों में ब्राह्मण धर्म के कला एवं स्थापत्य के उदाहरण मिलते हैं।

खजूराओं के मंदिरों में सबसे प्रसिद्ध मंदिर भगवान शिव का हैं। जो यहाँ की सबसे विशाल मंदिर हैं। जो 109 फीट लंबा तथा 7 फीट चौड़ा हैं। यहाँ की भूमि से इसकी ऊंचाई 116 फीट हैं। इसमे महामंडप, अर्धमंडप तथा अंतराल भी हैं। इनके विशाल शिकर भी हैं। और गर्भ गृह के चारों ओर प्रदक्षिणा हैं। जो वहाँ के द्वीपों से प्रकाशित होता हैं। यहाँ की छते बहुत सुंदर हैं। और इन पर अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की आकृतियां भी अंकित हैं। इस मंदिर का निर्माण 11वीं-12वीं शताब्दी में बना था। यही का विश्वनाथ मंदिर जो हिन्दू देवता शिव को समर्पित हैं। इस मंदिर का शिवलिंग संगमरमर का हैं। यह मंदिर पश्चिम के मंदिरों के अंतर्गत आता हैं। जिसके कोनों पर चार मंदिर तथा बीच में मुख्य मंदिर को घेरे हैं जो पंचायतन शैली में बना हैं। जो लगभग (1002 से 1003) ईस्वी में बना था। इसकी लंबाई 89 फीट और चौड़ाई 45 फीट हैं। जिसके कोने को चार मंदिर घेरे हैं। जिसके केंद्र में नंदी की प्रतिमा हैं। मंदिर में तीन सिर वाले ब्रह्मा की मूर्ति भी हैं। वर्तमान में कुछ भाग खंडित भी हो चुका हैं। इसके अलावा यहाँ पर 620 अन्य प्रतिमाए हैं। इन प्रतिमाओं का आकार 6 फीट ऊचां हैं।

मृत्युजय महादेव का मंदिर :-

यह मंदिर चतुर्भुज मंदिर के पास स्थित हैं। जो अंदर से 24 फिट लंबा और बाहर से 35 वर्ग फीट चौड़ा

हैं। इसकी छत पिरामिड के आकार की हैं जो बाद में कम चौड़ी होती गयी हैं। बार–बार पुताई के कारण दीवारों एवं छतों की मूर्तियों की कला नष्ट हो चुकी हैं। चंदेलों के मंदिरों में भगवान विष्णु एवं उनके अवतारों के भी मंदिर पाये गए हैं।

देवी जगदंबी मंदिर :–

यह एक विष्णु मंदिर हैं। क्युंकि इसके गर्भगृह के मुख्य भाग पर भगवान विष्णु की प्रतिमा बनी हुई हैं तथा दाहिनी ओर से तथा बाये और ब्रह्मा की मूर्ति हैं। गर्भगृह के अंदर भगवती लक्ष्मी की प्रतिमा बनी हुई हैं। जो 5 फीट 8 इंच ऊँची विशाल मूर्ति हैं। इसी कारण यह देवी जगदंबी का मंदिर कहलाता हैं। इसका निर्माण 11वीं–12वीं शताब्दी में हुआ था।

खजूराओं का चतुर्भुज मंदिर :–

यह भगवान राम और लक्ष्मण का मंदिर हैं। लेकिन चतुर्भुज मंदिर इसलिए कहा जाता हैं कि इसमे भगवान विष्णु की चार भुजाओं वाली प्रतिमा स्थापित हैं। इसके 5 भाग व 5 मंदिर हैं। चार मंदिर चारों कोनों पर व पांचवा मंदिर मुख्य द्वार के सामने स्थित हैं। यह मंदिर अनेक मूर्तियों से अलंकृत हैं।

खजूराओं का वराह मंदिर :–

यह चतुर्भुज मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित हैं। जो इनके अवतारों की विशाल मूर्तिया यहाँ हैं। जिसकी लंबाई 20 फीट तथा चौड़ाई 26 फीट हैं। इसके कोने में तीन स्तम्भ व पश्चिम में दो स्तम्भ हैं। जिसके में एक बारामदा तथा एक रास्ता बना हैं। इसकी ऊपर की छत एक के बाद एक दूसरे वर्गाकार पत्थर पर रखकर बनाई गई हैं। वराह मूर्ति जो 6 फुट 7 इंच लंबी तथा 4 फीट 6 इंच ऊची हैं। जहाँ पर खड़े हुए वराह की मूर्ति हैं। जिसके पीठ पर ब्रह्मा की मूर्ति व नीचे कुंडलीं बांधे सांप की मूर्ति हैं। जिसकी पूछ पर वराह की पूछ रखी हुई हैं।

ब्रह्मा मंदिर :–

इस काल में ब्रह्मा की पूजा का अधिक प्रचार नहीं था। जिसके कारण इनकी पूजा बहुत कम देखने को मिलती हैं। यहाँ का ब्रह्मा मंदिर एक झील के किनारे स्थित है। जो आकार मे वर्गाकार व लाल पत्थर की चट्टान से निर्मित हैं। वर्तमान में यह मंदिर काफी हद तक नष्ट हो चुका हैं। यहाँ का सबसे महत्वपूर्ण पशु चित्रण नदी का हैं। जो शिव का बैल जिसे एक ही पत्थर पर तरस कर बनाया गया हैं। जो चंदेल राजा ढंग ने बनवाया था। यहाँ के विश्वनाथ मंदिर के सामने नंदी मंडप में स्थापित किया गया हैं। यही कारण हैं कि चंदेलों में वराह को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हैं।

चंदेल कालीन शारूक्य मंदिरों का विवरण :–

चंदेल वंश में त्रिदेव की पूजा के अलावा उनकी शक्तियों की भी उपासना होती थी। अतः उनके भी मंदिरों का निर्माण हुआ हैं। इसके अलावा और देवियाँ हैं। जिनकी उपासना चंदेल काल में हुई थी। और उनके मंदिर भी स्थापित हुए थे।

खजूराओं का पार्वती मंदिर :–

यह विश्वनाथ मंदिर के दक्षिण ओर स्थित हैं। एक छोटा सा मंदिर हैं। यहाँ 5 फीट ऊँची चतुर्भुज देवी की मूर्ति हैं जो माता पार्वती की मूर्ति है। लेकिन करनी महोदय का अनुमान हैं कि यह मूर्ति माता लक्ष्मी की हैं।

क्युकि इस मूर्ति के ऊपर एक छोटी सी भगवान विष्णु की मूर्ति हैं।

64 योगिनी मंदिर :–

यह खजुराओं का बहुत प्राचीन मंदिर हैं। जो शिवसागर के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। यह मंदिर कड़ी चट्टानों के पत्थर से बना हैं। इसकी चार दीवारों में मूर्तियो को रखने के लिए 64 छोटी–छोटी कोठियाँ बनी हुई हैं। इसका शयन आयतकार हैं और इसकी लंबाई 702 फीट तथा इसकी चौड़ाई 59 फीट है। इसमें 64 कोठियां चारों दीवारों पर बनी हैं।

चंदेल कालीन जैन मंदिर की स्थापत्य कला :–

इस कला में हिन्दू धर्म के बाद जैन धर्म का प्रबल प्रचार हुआ हैं। इस युग मैं अनेक जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। जो यहाँ के पूरे बुंदेलखंड में पाये गए थे। लेकी न खजूराहों का जैन मंदिर बहुत ज्यादा उल्लेखनीय हैं। यहाँ के अनेक मंदिर प्राकृतिक आपदाओं द्वारा नष्ट हो गए और कुछ मुस्लिम विजेताओं ने मस्जिद में बदल दिया। पूर्ण ग्राम जैन अपनी बनावट में ब्राह्मण मंदिर से भिन्न रहा हैं। जैन मंदिरों में गर्भ गृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ होता था। मंडप, अंतराल सब एक ही नाम से बनाये जाते थे। यहाँ के साधरण बनावट में जैन मंदिर की प्रतीक अष्टकोण स्तंभों में तीन दीवारें होती थीं। इस प्रकार से सभी तीर्थंकरों की मूर्ति रखने के लिए 24 दीवारों का विधान जैन मंदिर में होता था।

खजूराओं का पार्श्वनाथ मंदिर :–

आज वर्तमान समय में यह मंदिर अपने जर्जर अवस्था में हैं। और मूल मंदिर का गर्भ गृह मात्र शेष हैं। गर्भ ग्रह के पास एक नग्न पुरुष की प्रतिमा तथा दाहिनी ओर एक नग्न नारी की प्रतिमा मध्य में तीन बैठी हुई नई की मूर्तियाँ हैं। इसके अंदर पार्श्वनाथ की छोटी प्रतिमा हैं। मंदिर का बाहरी भाग छोटी तीन मूर्तियों को सजाये हुए है। यह मंदिर लगभग 10वीं या 11वीं शताब्दी में बनी होगी।

खजूराओं का घटाई मंदिर :–

अब यह मंदिर खुदी हुई स्तंभों का मंदिर हैं। जो 42 फीट साड़ी 10 इंच लंबा तथा 21 फीट 6.30 इंच चौड़ा हैं। किन्तु मंदिर के चारों ओर दीवारों के चिन्ह पाए जाते हैं। मुख्य द्वार के मध्य में एक चतुर्भुज देवी की मूर्ति हैं। और उनके दोनों और एक नग्न पुरुष की प्रतिमा हैं। मंदिर के अंदर की बनावट तथा वहां की मूर्ति कला के अध्ययन से यह स्पष्ट हैं कि यह जैन मंदिर हैं। जिनकी ऊचाई 14 फीट 6 इंच हैं। और उनकी सजावट भी बहुत सुंदर हैं।

खजूराओं का सेतु मंदिर भी अति प्राचीन जैन मंदिर हैं जो अभी वर्तमान समय में सुधार हुआ हैं। जिसमे आदिनाथ की प्रतिमा हैं। इस मूर्ति की पीठ में विक्रम संवत तथा सन् 1028 का उल्लेख हैं।

निष्कर्ष :–

चंदेल वंश की स्थापत्य कला भारतीय इतिहास का अनमोल धरोहर है। उनके द्वारा बनवाए गए मंदिर, स्थापत्य, किले, और जलाशय उनकी उत्कर्ष कला के प्रमाण हैं। खजूराहों के मंदिरों की भव्यता आज भी दूर–दूर के लोगों को प्राभवित करती हैं। चंदेलों वंश की स्थापत्य कला की रुचि ने इनको एक नई ऊंचाई पर पहुंचा दिया था। इन्होंने किलों, मंदिरों, जलाशयों आदि का निर्माण कर एक नया आयाम दिया। खजूराहों के मंदिर, कालिंजर किला और महोबा के तालाब चंदेल कालीन कला के अद्‌भुत धरोहर हैं। जो आज भी अपनी भव्यता

और कलात्मक कार्यों के लिए विख्यात हैं।

संदर्भ सूची :-

1. कुमार जैन संजीव, प्राचीन भारत का इतिहास (2002) पृ. 191
2. बुंदेलखंड रिसर्च पोर्टल, चंदेल युगीन ललित कलाए, पृ. क्रमांक 4
3. सिंह रवींद्र, प्राचीन भारत का इतिहास (प्रारभ से 1200 ई.) तक प्रथम संस्करण (2002) पृ. क्रमांक 298
4. शास्त्री नीलकंठ, भारतीय कला एवं संस्कृति, पृ. क्रमांक 18
5. शर्मा रामशरण, प्राचीन भारतीय इतिहास, पृ. क्रमांक 27
6. हंसा व्यास, भारत का इतिहास, (प्रारम्भ से 1200 ई.) तक मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल (2002) पृ. 293
7. विजय शंकर प्रजापति, चंदेल कालीन बुंदेलखंड में सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 6
8. भार्गव गोपाल, मध्य प्रदेश की संस्कृति एवं कला (2018) पृ. 26
9. पांडे धनपत, प्राचीन भारत का राजनीतिक और संस्कृति की इतिहास (1998) पृ. क्रमांक 230
10. मिश्रा मुक्ता, चंदेल कालीन बुंदेलखंड में सामाजिक एवं सांस्कृतिक, अध्ययन (2023) पृ. 138

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 176–184

सामुदायिक विकास और समाज कल्याण कार्यों में टाटा स्टील का योगदान

डॉ. रीना कुमारी
इतिहास विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

सारांश :-

सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया से संबंधित है, जिसमें स्थानीय समुदायों में रहने वाले लोग अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थितियों को बेहतर बनाने में मदद करने में शामिल हो जाते हैं। ये सामुदायिक विकास कार्यक्रम सक्रिय भागीदारी के साथ और यदि संभव हो, तो समुदाय की पहल पर (यूएन. रिपोर्ट, 1956) पूरे समुदाय के लिए बेहतर जीवन को बढ़ावा दे सकते हैं। मूलतः सामुदायिक विकास दो प्रमुख विचारों का प्रतीक है। सबसे पहले, यह आर्थिक, तकनीकि और सामाजिक विकास के सचेत त्वरण से संबंधित है। दूसरे, किसी गाँव या कस्बे में योजनाबद्ध, सामाजिक परिवर्तन करना, उत्तरार्द्ध में ऐसी परियोजनाएं शामिल है जिनका स्पष्ट स्थानीय महत्व है और जिन्हें स्थानीय लोगो द्वारा शुरु और चलाया जा सकता है। कंपनी द्वारा कर्मचारियों का कल्याण टाटा स्टील के सामाजिक उत्थान के उत्साह का केवल एक पक्ष है, दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण अग्रणी उपक्रमों में से एक, जमशेदपुर में शहरी सामुदायिक विकास योजना का सफल कार्यान्वयन रहा है, जो देश में अपनी तरह की पहली योजना है जिसमें कर्मचारियो और गैर-कर्मचारियों को समान रूप से शामिल किया गया है। अपने शुरुआती दिनों से कंपनी अपनी सक्रिय भागीदारी और समुदाय की पहल पर पूर्ण निर्भरता के साथ पूरे समुदाय के लिए सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रगति के लिए योजनाएँ बना रही है।

की वर्ड :- सामुदायिक विकास, समाज कल्याण, टाटा स्टील, सामाजिक दायित्व, विकास।

प्रस्तावना :-

टाटा स्टील ने पिछले एक सदी से झारखण्ड क्षेत्र के उत्थान में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, यह सामुदायिक जीवन के सुधार और विकास पर

काम करता है, टाटा परिवार द्वारा की गई कमाई अग्रणी के रूप में पिछली आदी सदी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को भी समृद्ध किया है, संपूर्ण सम्पत्ति लोगों के लाभ के लिए भी है। यह एक चक्र में काम कर रहा है जो कुछ भी उनके पास वापस जा रहा है जैसा कि टाइम्स ऑफ इंडिया ने 1912 में टाटा के बारे में कहा था कि आने वाली पीढ़ियों का मानना है कि राष्ट्र निर्माण में योगदान दिए बिना व्यापार में आगे बढ़ना संभव नहीं है। 1938 से 1991 तक टाटा समूह के अध्यक्ष रहे जे. आर. डी. टाटा का मानना था कि, **"अच्छी कार्य परिस्थितियां बनाना, अपने कर्मचारियों को सर्वोत्तम वेतन देना और प्रदान करना"** अपने कर्मचारियों को सभ्य आवास उद्योग के लिए पर्याप्त नहीं है एक उद्योग का उद्देश्य समुदाय और बड़े पैमाने पर समाज के प्रति अपनी समग्र सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाहन करना होना चाहिए, जहां उद्योग स्थापित है। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर, टाटा स्टील ने सूत्रों से समाज में वापस लौटने पर विचार किया, क्योंकि कर्मचारी भी उन कार्यों और परियोजनाओं मे शामिल होते हैं। यह दुनिया में पहला था, जिसने श्रमिक कल्याण नीतियां स्थापित की, यह पहला इस्पात संयंत्र शुरू हुआ, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के सुदूर इलाकों तक गरीब और सीमान्त लोग इसकी सेवाओं से लाभ उठा सकें, इसके साथ ही टाटा स्टील ने ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास, सशक्तिकरण और सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से स्वास्थ्य देखभाल, खाद्य सुरक्षा, शिक्षा और आय सृजन की उनकी बुनियादी जरूरतों को भी पूरा किया। भारत में सी.एस.आर. न केवल सी.एस.आर. गतिविश्तियों में शुद्ध लाभ के 2 प्रतिशत अनिवार्य आवंटन के कारण गति पकड़ रहा है, बल्कि सामाजिक अशांति की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण भी बढ़ रहा है।

<u>टाटा स्टील : सामाजिक विकास का शुभारम्भ</u> :-

टाटा स्टील के सामाजिक दायित्वों, सामाजिक सारोकार पर विस्तार पूर्वक अध्ययन किया जाए तो हम यह पाते हैं कि गुलाम भारत में ही इसकी शुरुआत टाटा उद्योग समूह के संस्थापक जमशेद जी टाटा ने 1892 में कर दी थी, जब उन्होंने व्यवसाय से प्राप्त हुए लाभ का एक हिस्सा समर्पित किया, जमशेद जी टाटा का यह मानना था **"देश की प्रगति के लिए सर्वोत्तम और सर्वाधिक**

प्रतिभाओं को प्रकाश में लाना चाहिए, ताकि देश की बड़ी सेवा करने के लायक उन्हें बनाया जा सके।" इस भावना से प्रेरित होकर उन्होंने जे. एन. टाटा एण्डाउमेट स्कॉलरशिप की शुरुआत की। उनके द्वारा सार्वजनिक तौर पर शुरू की गयी यह प्रथम जन कल्याण कारी योजना थी। 1924 में किए गए इस स्कालरशिप के शुरू होने के अनुसार हर पाँचवे आई.सी.एस. अधिकारी (सिविल सर्विसेज) जे.एन.टाटा एण्डाउमेंट छात्रवृत्ति प्राप्त थी, इस छात्रवृत्ति का परिणाम बनकर अनगिनत प्रतिभाएं गौरवान्वित करती रही हैं। जन-कल्याणकारी भावना का ही परिणाम है, कि टाटा उद्योग समूह का कुल 85 प्रतिशत लाभांश उसके द्वारा स्थापित सार्वजनिक ट्रस्टों को जाता है, टाटा के हर कार्य पीछे किसी न किसी रूप में राष्ट्र को समृद्ध बनाने की पुण्य धारणा विद्यमान रहती थी, अपने जीवन की अंतिम सांस तक उन्होंने भारत को बुलंदियों के शिखर पर पहुंचाने का संघर्ष जारी रखा, उनकी सोच और दूरदर्शिता की जड़े राष्ट्रवाद से अंकुरित हुई थी। टाटा स्टील का लक्ष्य अपने सी.एस.आर. के माध्यम से आमलोगों के जीवन को बेहतर बनाना है। इसका मानना है कि विकास का क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सुधार करती है और हितधारकों के जीवन पर भी सकारात्मक प्रभाव डालती है। चाहे वह टाटा स्टील का कार्यात्मक क्षेत्र हो या गैर-कार्यात्मक, इसका उद्देश्य लोगों का पूर्ण विकास करना है। इसमें आय सृजन, स्वस्थ पर्यावरण, शिक्षा और जीवन की अन्य बुनियादी जरूरतें शामिल है, कॉरपोरेट नीति का लक्ष्ये एक ही समय में सभी हितधारको का विकास करना है। **कॉरपोरेट नीति में निम्नलिखित मामले शामिल है-**

- जैव विविधता पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार।
- पर्यावरणीय नियमों और विनियमों का पालन करें।
- स्थायी आजीविका पर काम करना और अच्छी शिक्षा स्वास्थ्य सेवाएं। भोजन आदि प्रदान करना।
- ऐसे तरीकों का पता लगाना जो मानव सामाजिक और पर्यावरण के मामले में अधिक हो और प्राकृतिक व्यावसायिक पूँजी और समाज के बीच संतुलन बनाए।

<u>सामुदायिक पहल में संगठनात्मक संरचना</u> :-

टाटा स्टील ने कई सामाजिक विभाग और सोसाईटियां भी स्थापित की, जो इसके अन्तर्गत काम करती है। उनके सामुदायिक विकास कार्यक्रम में कार्पोरेट पहल के लिये संरचना बनाये गए है। अभी तक उन्होंने सात विभाग और सोसाइटी विकसित की हैं। विभिन्न वर्षों में विभिन्न विभागों एवं समितियों निम्नलिखित प्रदर्शन दर्शाती है -

क्रम	विभाग/समाज	गठन का वर्ष
1.	परिवार कल्याण	1951
2.	सामुदायिक विकास और समाज कल्याण	1958
3.	आदिवासी और हरिजन वेल्टारे सेल	1974
4.	टाटा स्टील ग्रामीण विकास सोसाइटी	1979
5.	पर्यावरण प्रबंधन जनजातीय	1986
6.	सांस्कृतिक सोसाइटी	1990
7.	टाटा स्टील फॅमिली इनिशिएटिव फाउंडेशन	1998

टाटा स्टील द्वारा सामुदायिक सहायता गतिविधियाँ

प्रकार	**प्रभावित समुदाय**	**संगठन का समर्थन**	**हस्तक्षेप के उद्देश्य/उपलब्धियाँ**
स्वस्थ्य देखभाल	जमशेदपुर और आसपास के क्षेत्र के नागरिक	740 विस्तरों वाला अस्पताल 9 डिस्पेंशन, एमआरआई के साथ कैंसर अस्पताल 1 ब्लड बैंक, 5 होम्योपैथिक, क्लिनिक, सार्वजनिक	नागरिकों के स्वास्थ्य में सुधार, जमशेदपुर में बेहतर स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ उपलब्ध करवाना, गुणवत्ता में सुधार, पीने के पानी, एड्स

		स्वास्थ्य सेवाएँ, गुणवत्तापूर्ण पेयजल	जागरूकता प्रशिक्षण, बीमारियों के प्रसार को रोकना ओर समुदायों की क्षमताओं का निर्माण करने के लिए उनके स्वास्थ्य में सुधार करना।
शैक्षिणिक सहायता	जमशेदपुर में स्कूली बच्चे झारखण्ड और उड़ीसा के 60 गावों में प्री-स्कूल के बच्चे, एस सी/एस टी छात्र	मेधावी छात्रों के लिए मिलेनियत छात्रवृत्ति वीजी गोपाल छात्रवृत्ति मेधावी वित्तीय एससी/एसटी छात्रों को वित्तीय सहायता प्रशासनिक/तकनीकि / सेवाओं/ कम्पयूटर शिक्षा में प्रवेश के लिए कोचिंग बुनियादी ढाँचे का निर्माण और प्रबंधन 200 से अधिक पुस्तकालय एमबीए/इंजीनियरिंग / शिक्षा मानदंडों पर आधारित डॉ. जेजे ईरानी शिक्षा उत्कृष्टता पुरस्कार	अंतर्निहित क्षमताओं को बनाने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार किया गया है। जमशेदपुर स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार - इससे दीर्घवधि में हमारे औरउनके आपूर्ति कर्ताओं के लिए अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर्मचारियों का आधार तैयार करने में मदद मिलेगी, ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित 8 हाई स्कूल, 7 प्राईमेरी स्कूल, 1 इंटरमीडिएट

			कॉलेज सहायता प्राप्त 312 ग्रामीण स्कूल / 171 बालबाड़ी का प्रबंधन करें
लाभकारी रोजगार के लिए प्रशिक्षण	जमशेदपुर की शहरी और पूर्व - शहरी जनसंख्या समुदाय	विशिष्ट ट्रेडों पर ग्रामीण महिला आबादी का प्रशिक्षण, कम्प्यूटर शिक्षा, ग्रामीण लड़कियों के लिए पारंपरिक जन्म परिचर प्रशिक्षण, सरकार के साथ नेटवर्किंग और गैर सरकारी प्रशिक्षण संस्थान।	युवाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाएँ और जीवन स्तर ऊँचा उठाए, प्रधानमंत्री की ट्रॉफी की पुरस्कार राशि का उपयोग, जमशेदपुर में पॉलिटेक्निक स्थापित करने में किया जाएगाः नेटवर्किंग भागीदार राष्ट्रीय कारीगर पंचायत /इंडो डेनिश टूल रूम, राम कृष्ण मिशन
आर्थिक विकास को बढ़ावा देना	व्यवसाय समुदाय : ग्रामीण जनसँख्या	बुनियादी ढाँचे का विकास जमशेदपुर / आदित्यपुर में स्थानीय विक्रेताओं का विकास, समर्थन-सामाजिक संगठनों से खरीद कृषि विस्तार / कौशल	आस - पास की आर्थिक स्थिति में सुधारः स्थानीय आपूर्ति कर्ता से खरीद, सामाजिक संगठनों से खरीदः ग्राम श्रेस मेला और अन्य प्रदर्शनियों का

		उन्न्यन क्रमोन्नतिः माईक्रो फाइनेंसिंग महिला केन्द्रित बाजार संपर्क प्रदान करना	आयोजन
खेल और रोमांच	जमशेदपुर के नागरिक में राष्ट्रीय प्रतिभा	खेल-कूद की स्थापना बुनियादी, ढांचा, 3 राज्य, कला स्टेडियम, जमशेदपुर में 8 प्रशिक्षण केन्द्र और अकादमिक फ्लाइंग क्लब/ घुड़सवारी स्कूल / रॉक फ्लाइं बिग/ श्विर राफ्टिंग / पैरासेलिंग का कॉर्पोरेट प्रायोज	खेल को बढ़ावा देना और जमशेदपुर के नागरिकों में रोमांच की भावना पैदा करना। 2002 - 03 में राष्ट्रीय स्पर्धाओं में 14 स्वर्ण / 8 रजत / 9 कांस्य पदक जीतें, मानसिक रूप से विकलांग आदि के लिए जमशेदपुर तीरंदाजी / फुटबॉल /क्रिकेट / शतरंज / बैडमिंटन/हैंडबॉल / एथलेटिक्स/ओलंपिक कार्यक्रमों का प्रायोजन होता है।
नागरिक सुविधाएँ	जमशेदपुर के नागरिक ओर आउट लोकेशन इकाईयों के कर्मचारी	नागरिक सुविधाओं का विकास और रख-रखाव, 524 किलोमीटर सड़कों का रख-रखाव, प्रतिदिन 35.5	एक शहर का निर्माण करना और जीवन की गुणवत्ता में सुधार प्रदान करना, बच्चों का मनोरंजन पार्कः

		मिलियन गैलन पानी की आपूर्ति 17 बड़े और छोटे पार्को का रख रखाव आपातकाल अग्निशमन सेवाएँ	प्राणी उधान, सभी आवासीय परिसरों में क्लब हाउसख अंतरराज्यीय बस टर्मिनल बाजारों का रख रखाव
कला और संस्कृति को बढ़ावा देना	स्थानीय समुदाय	जनजातीय संस्कृति केन्द्र, जमशेदपुर स्कूल ऑफ आर्ट्स की स्थापना, पारंपरिक और समकालीन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए कॉर्पोरेट प्रायोजन	स्थानीय जनजातीय को संरक्षित करना, सांस्कृतिक विरासत और कला एवं संस्कृति को बढ़ावा देना, चौ मोहउत्सव झुनूर, फिल्म महोत्सव, उधोग में कला
व्यावसायिक सोसायटी सदस्यता	एसपीपीई सेंट पीटर्सबर्ग सेंट जॉन्स - एम्बुलेंस बिग्रेड, बीआईएस, जेएमए, एआई, डब्ल्यूसी, आईआईएम, एक्सएलआरआई, सी.आई.आई, फिक्की, एसोचेम आई.सी.सी.	टाटा स्टील की नेतृत्व टीम सीआईआई, आईआईएम, एक्सएलआरआई, आदि कॉर्पोरेट प्रायोजन और एसोसिएशन में नेतृत्व की भूमिका निभाकर राष्ट्र निर्माण में योगदान देती है।	समुदायों को मजबूत करना संघों के निर्माण द्वारा
टाटा राहत समिति	आपदाओं से प्रभावित समुदाय	जरूरी व्यापारिक लेन-देन सुविधा की	प्राकृतिक आपदाओं के कारण बड़े पैमाने

		जरूरत है। 1998 एमपी भूकंप के लिए 156 घरों, सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना 2001- उड़ीसा चक्रवात पीडितों के लिए घरों और स्कूलों का निर्माण, दवाओं का वितरण आदि।	पर लोगों की पीड़ा का जवाब देना और उन्हें कम करना।

निष्कर्ष :-

जमशेदजी टाटा ने अपनी स्थापना के बाद से ही टाटा स्टील को सामाजिक सेवाओं के पथ पर अग्रसर किया था, लेकिन वह जे आर डी टाटा ही थे जिन्होंने, सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति कंपनी के कार्यक्रमों में नई जान फूंकी, यह उनके तत्वाधान में था कि सामाजिक जिम्मेदारियों के निर्वहन के लिए विभिन्न में एजेसियां पूर्ण विभागों में विकसित हुई, यह देश में अद्वितीय उपलब्धि थी, जे आर डी टारा, चार दशको (1938-87) के दौरान टाटा स्टील में मामलों के शीर्ष पर रहने के दौरान, उन्होंने सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति कंपनी के दृष्टिकोण पर एक अमिट छाप छोड़ी है।

सन्दर्भ सूची :-

1. एम०एस० सिंह मानस - मील का पत्थर 2005 टाटा वर्कर्स यूनियन, जमशेदपुर
2. आए०एम० लाला - समृद्धि की ओर, 1981, टाटा स्टील अकाईस, जमशेदपुर
3. पीटर केसी - टाटा की कहानी 1868 से 2021 तक
4. बी०सी० सकलतवाला - आधुनिक भारत के निर्माता जमशेदजी टाटा 2015
5. आर० एम० लाला - कर्मवीर 2001, यूनियन टाटा वर्कस

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 185–193

डिजिटल युग में ऑटिज्म प्रभावित बच्चों में योग अभ्यास की सामाजिक भूमिका

संदीप सैनी
जूनियर रिसर्च स्कॉलर, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सारांश :–

यह शोध पत्र, ऑटिज्म से प्रभावित बच्चों के सामाजिक, मानसिक, और शारीरिक विकास में योग अभ्यास की भूमिका का विश्लेषण करता है। आज के डिजिटल युग में, जहाँ तकनीकी उपकरणों और इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स ने शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं, योग जैसी पारंपरिक प्रथाओं का महत्व भी अपरिहार्य है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि कैसे योग के विभिन्न आसन, ध्यान, और श्वास–प्रश्वास की तकनीकें ऑटिज्म प्रभावित बच्चों में आत्म–सम्मान, सामाजिक समावेशन, और मानसिक संतुलन को बढ़ावा देती हैं। शोध में यह पाया गया कि योग अभ्यास के माध्यम से बच्चों जीवनशैली में तनाव में कमी, एकाग्रता में सुधार, और भावनात्मक नियंत्रण की क्षमता विकसित होती है। डिजिटल तकनीक के सहयोग से तैयार किए गए इंटरैक्टिव शिक्षण मॉड्यूल और ऐप्स ने इन योग अभ्यासों को और अधिक सुलभ और आकर्षक बना दिया है। इस संयोजन ने बच्चों को न केवल शारीरिक रूप से सक्रिय किया है, बल्कि उनके संज्ञानात्मक कौशल और सामाजिक संवाद में भी सुधार लाया है।

अध्ययन में विभिन्न योग सत्रों के परिणामस्वरूप ऑटिज्म प्रभावित बच्चों में आत्म–अनुशासन, आत्म–विश्वास, और सामाजिक कौशल में वृद्धि का साक्ष्य प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त, डिजिटल शिक्षण उपकरणों ने शिक्षकों और माता–पिता को बच्चों की प्रगति पर निगरानी रखने एवं उनकी आवश्यकताओं के अनुसार हस्तक्षेप करने में सहायक भूमिका निभाई है। इस प्रकार, यह शोध यह सिद्ध करता है कि पारंपरिक योग अभ्यास और आधुनिक डिजिटल तकनीक का संयोजन ऑटिज्म प्रभावित बच्चों के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। यह अध्ययन भविष्य में ऐसे समन्वित कार्यक्रमों के विकास के लिए एक आधार प्रदान करता है, जिससे दिव्यांगता के क्षेत्र में स्वास्थ्य और शिक्षा के नवाचारों को बढ़ावा मिल सके।

मुख्य शब्द :– डिजिटल युग, ऑटिज्म, योग, मानसिक संतुलन, शिक्षण मॉड्यूल।

प्रस्तावना :–

आज के आधुनिक समाज में तकनीकी प्रगति जैसे– विज्ञान, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि के साथ ही मानव जीवनशैली के विविध आयामों को प्रभावित किया है। तकनीकी संसाधनों की वजह से ही सम्पूर्ण वैश्विक देशों

में नित नवीन आविष्कार देखने को मिलते है। इन्ही आविष्कारों कि वजह से सम्पूर्ण विश्व व भारतीय समाज में तीव्र परिवर्तन हुआ है संचार क्रांति जिसके माध्यम से मानव एक स्थान से दूसरे स्थान, पर निवास करने वाले परिजनों, मित्रों से असानी से सम्पर्क कर सकता है, और किसी भी क्षेत्र में रहते हुए अपना कार्य कुशलतापूर्वक कर सकता है। तकनीकी संसाधनों में इलेक्ट्रानिक गैजेट्स जैसे– मोबाइल, कम्प्यूटर/लैपटॉप, टेलीविजन, इत्यादि ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। इन गैजेट्स से जहाँ बच्चों, किशोर, युवा, व्यस्क स्त्री/पुरुश के जीवनचर्या में अत्यधिक निर्भरता बढ़ने के साथ ही वो अपने दैनिक जीवन के अन्य कार्यो को भी सरलतापूर्वक करने एवं मंनोरंजन के रूप में भी उपयोग करते है। इन गैजेट्स का अत्यधिक प्रभाव बच्चो एवं किशोरों में शिक्षण अभिक्षमता, सामाजिक विकास, सांस्कृतिक विकास में अधिक देखने को मिलता है। जितनी तेजी से विज्ञान तरक्की कर हमें सुविधा उपलब्ध कराई है उतनी ही तेजी से तरह–तरह के बीमारियों ने शरीर में घर बनाया है। आज के आधुनिक युग में हमारा जीवन शैली बिल्कुल बदल गया है। आज की तेज से दौड़ने वाली दुनिया में समय की कमी होने के कारण समाज अस्वस्थ जीवन शैली अपनाने को मजबूर है।

इक्कीसवीं सदी में मनुष्य ने भौतिक उन्नति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया है। सूचना तकनीक, संचार क्रांति का मानवीय जीवन में सुख सुविधाओं का भरपूर प्रयोग हो रहा है, लेकिन आधुनिक युग का व्यक्ति तेज रफ्तार जिन्दगी के चलते इतना व्यस्त हो गया है कि स्वयं एवं अपने बच्चों के स्वास्थ्य व जीवन शैली की तरफ ध्यान देने के लिए उसके पास समय ही नहीं है। अत्यंत संघर्षपूर्ण एवं प्रतिस्पर्धापूर्ण जीवन होने के कारण मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक संतुलन बिगड़ता जा रहा है। इन सब परिस्थितियों के जिम्मेदार है परिवार का बदलता स्वरूप, और डिजिटल दुनिया के सुख–सुविधापरक इलेक्ट्रानिक गैजेट्स जैसे– टी.वी., स्मार्टफोन, कंप्यूटर इत्यादि। इन सब के अधिक उपयोग से वयस्क मनुष्यों के अलावा बच्चों के जीवन में अधिक प्रभाव डाल रहे है। इस बदलते हुए जीवन शैली में चिंता, तनाव और अवसाद, और न्यूरोडेवलपमेंट डिसआर्डर के रूप में ऑटिज्म जैसी मानसिक स्वास्थ्य समस्या एक बड़ी समस्या के रूप में उभर रही है। इन परिस्थितियों के अनुरूप अंतः प्रवृत्तियों का न होना ही बच्चों के मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है। आज के इस भौतिक जगत का निर्माता स्वयं मनुष्य ही है लेकिन वह अपने मूल आधार या फिर स्वरूप को ही भूला बैठा है। जिसके परिणाम स्वरूप व्याधियाँ, तनाव, दबाव, अकेलापन, सामाजिक–समस्या, अलगाववाद भय, दुःख आक्रामकता, अस्त व्यस्त जीवन, स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्या, भावनात्मक दबाव, घृणा, आदि समस्याओं को जन्म दे रही है।

अनेक शोध सर्वेक्षणों मे पाया गया कि सम्पूर्ण विश्व एवं भारत देश में 93 प्रतिशत लोग इलेक्ट्रानिक गैजेट्स व इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में से 73 प्रतिशत बच्चें इलेक्ट्रानिक गैजेट्स का उपयोग करते है। मानव को अपना जीवन बिना इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के अकाल्पनिक लगता है, अर्थात ऐसा लगता है कि यदि ये इलेक्ट्रानिक गैजेट्स हमारे जीवन से हटा लिए जाए तो हमारे जीवन में कुछ भी शेष बचता नहीं है।

ऑटिज्म एक मस्तिष्क के विकास संबंधी बीमारी है। जिसको मैडिकल की भाषा में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसआर्डर (ASD) के नाम से जाना जाता है। भारत में ऑटिज्म 1960 के दशक से चर्चा में आया जिसमें ऑटिज्म का पहला केस सन् 1962 में देखने को मिला था। जिसकों भारतीय पत्रिका (बासा) 1962 में प्रकाशित किया गया था। ET Health World की रिर्पोट के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में लगभग 18 मिलियन लोग ऑटिज्म से पीड़ित है जिसमें 2–9 वर्ष के बच्चे लगभग 1 से 1.5 प्रतिशत ऑटिज्म से प्रभावित है।

ऑटिज्म के लक्षण बच्चों में अनुवांशिक या जन्म के 2 वर्ष पश्चात् बाल्यावस्था में सामने आने लगते है। भारत के कुछ शोध अध्ययनों में पाया गया कि बच्चों में ऑटिज्म नामक बीमारी पर्यावरणीय कारको जैसे– पारा, सीसा, एवं अन्य हानिकारक धातुओं के साथ–साथ इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के अत्यधिक उपयोग के कारण निकलने वाली रेडियोधर्मी तरंगो एवं टाइम स्क्रीन के उपयोग से होने का मुख्य कारण माना जा रहा है। अमेरिका के मिशिगन विश्वविद्यालय के सर्वेक्षण में पाया गया कि स्क्रीन टाइम का अधिक उपयोग बढ़ने से बच्चों के व्यवहार पर कितना गहरा असर हुआ इसका खुलासा किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार सोशल मीडिया एवं विडियो गेम के एडिक्शन ने बच्चों के जीवनशैली एवं मानसिक स्थिति को बिगाड़ रही है। इलेक्ट्रानिक गैजेट एवं सोशल मीडिया, इंटरनेट इत्यादि के उपयोग से समय बिताने के मामलों में अमेरिकी बच्चों से भारतीय बच्चे कही अधिक आगे है। सन् 2022 में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 9 वर्ष से 13 वर्ष तक की उम्र के बच्चे प्रतिदिन 3 घंटे से भी ज्यादा समय सोशल मीडिया, वीडियो व वीडियो गेंम में व्यतीत करते है। इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के अत्यधिक उपयोग से बच्चों के जीवनशैली को प्रभावित कर रही है, जोकि बच्चों के अन्य क्रियाकलापों को प्रभावित करते है जैसे– शिक्षा, खेलकूद, भौतिक समीपता आदि।

मलेशिया में किए गए शोधकार्य में पाया गया कि इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के उपयोग से बच्चों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, तो वहीं बच्चों के माता–पिता, स्कूल अध्यापकों, के अलावा बच्चों की देखभाल करने वाले केयर टेकर आदि, से साक्षात्कार के माध्यम से पता चला कि बच्चों में संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) के साथ ही सामाजिक विकास में भी इलेक्ट्रानिक गैजेट्स सहायक है, लेकिन बच्चों को बिना उचित दिशा–निर्देशों के अभाव के कारण बच्चे पूरा दिन इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के उपयोग से उनमें स्वास्थ्य समस्याएं भी अधिक देखने को मिली है (नुरूल हदीराह : 2022)। भारत में इंटरनेट और इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के उपयोगकर्ताओं में यह पाया गया कि लगभग 70 प्रतिशत पुरूष उपयोगकर्ता थे, जबकि 30 प्रतिशत महिला उपयोगकर्ता थी। जो आज बढ़कर सन् 2022 तक प्राप्त आकड़ों में लगभग 60 प्रतिशत पुरूष उपयोगकर्ता एवं 40 प्रतिशत महिला उपयोगकर्ता की दर में बढ़ोतरी हुई है (तनुश्री बसुरॉय : 2022)। भारत में सन् 2022 के शोध सर्वेक्षण में पाया गया कि शहरी क्षेत्रों में निवास करने वाले परिवारों में माता–पिता ने बताया कि उनके बच्चे जिनकी आयु 9–13 वर्ष की है, वो लगभग 28 प्रतिशत बच्चे व्यक्तिगत रूप से स्कूलों के अलावा घर में पूरे दिन इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के माध्यम से सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर व्यस्त रहते है।

भारतीयों में 12–34 वर्ष के लोग 2013 से 2019 तक 65 प्रतिशत इंटरनेट एवं इलेक्ट्रानिक गैजेट्स पर निर्भरता थी जोकि आने वाले समय सन् 2025 तक लगभग 90 प्रतिशत से अधिक उपयोगकर्ता होने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है (स्त्रोत : स्टेटिस्टा, 2023)। योग निद्रा का कुछ कॉलेज के विद्यार्थियों में तनाव एवं चिन्ता का प्रभाव पर अध्ययन किया। इस अध्ययन के लिये 80 ऐसे पुरुष और महिला विद्यार्थियों का चयन किया जो तनाव एवं चिन्ता ग्रस्त थे। जिनके दो समूह बनाये गए और इनको अलग–अलग समूह के आधार पर उपचार दिया गया। उपचार के लिये एक कार्यक्रम का निर्माण किया गया, जिसमें योग–निद्रा से जुड़े मानकों को लिया गया और अभ्यास के लिये 180 दिन और समय प्रतिदिन 30 मिनट रखा गया। प्रायोगिक समूह को प्रत्येक दिन 30 मिनट तक योग निद्रा से जुड़े अभ्यास को करना था, यह प्रक्रिया पूरे 6 माह तक चली। 6 माह के उपरान्त प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की जांच की गयी। परिणाम में प्रायोगिक समूह में सार्थक परिवर्तन देखा

गया जिसमें योगनिद्रा से महिला एवं पुरुष विद्यार्थियों के तनाव एवं चिन्ता स्तर में कमी देखने को मिली (कुमार कामाख्या : 2011)। वही कुछ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में तनाव की व्यापकता और प्राणायाम द्वारा इसके समाधान पर एक शोधकार्य किया गया जिससे इस अध्ययन में माध्यमिक विद्यालय के 60 विद्यार्थियों को लिया जो कि उच्च शैक्षणिक तनाव से ग्रसित थे। इन छात्राओं को दो समूह (नियन्त्रित और प्रयोगात्मक) बनाकर इन पर प्री–टेस्ट और पोस्ट टेस्ट किया और प्रयोगात्मक समूह को उपचार में शतक्रिया के द्वारा प्रशिक्षण दिया गया एवं दूसरे समूह को प्राणायाम का प्रशिक्षण दिया गया। जिसके फलस्वरूप यह परिणाम में पाया कि शतक्रिया और प्राणायाम दोनों के द्वारा विद्यार्थियों के शैक्षणिक तनाव में कमी पायी गयी, केवल शैक्षणिक चिन्तन शतक्रिया की अपेक्षा प्राणायाम के द्वारा अधिक प्रभाव से कम हुयी (कुमारी सन्तोष एवं अन्य : 2006)।

इन सभी साहित्य अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि आज के इस भागदौड़ जीवन शैली में अगर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं वयस्क के साथ बच्चें भी अधिक प्रभावित हो रहे है। और अगर इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए हमें वैदिक परम्पराओं एवं योग क्रिया को दैनिक जीवन में आत्मसात करना होगा। योग एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा मनुष्य अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक भावनात्मक व आध्यात्मिक सभी स्तरो का विकास करता है और आधुनिकता की गति से उत्पन्न हुई सभी समस्याओं के समाधान को प्राप्त कर सकता है। आज योग साधना मात्र ना होकर जीवन जीने कि कला या जीवन का एक जरूरी हिस्सा बनता जा रहा है। जहाँ पर मनुष्य आज अपनी भागदौड़ भरी जिंदगी से समय निकालकर मन को शांत, केन्द्रित एवं तनाव मुक्त कर जीवन जीने का प्रयास कर रहा है। योग के क्षेत्र में आज नये नये अनुसंधानों ने मनुष्य को जीवन जीने का एक नया स्वरूप दिया है, या फिर कहे कि प्राकृतिक जीवन जीने की एक नई दिशा दी है। जिससे वह अपनी विभिन्न प्रकार की बिमारियों का इलाज योंग द्वारा कर सकता है।

उद्देश्य :–

डिजिटल युग में इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स के प्रभाव से ऑटिज्म ग्रसित बच्चों के संज्ञानात्मक कौशल, न्यूरोडेवलपमेंट और मानसिक स्वास्थ्य में योग की भूमिका का अध्ययन।

अनुसंधान विधि :–

इस शोध पत्र में वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प और गुणात्मक विधि का उपयोग किया गया है, जिसमें केस स्टडी तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से डेटा संकलित किया गया। अध्ययन के तहत ऑटिज्म सेंटर में डॉक्टरों और 10 ऑटिज्म प्रभावित बच्चों के माता–पिता से साक्षात्कार किया गया। इससे यह समझने का प्रयास किया गया कि नैदानिक उपचार कैसे प्रदान किया जाता है और बच्चों में पहले की अपेक्षा वर्तमान में कितना सुधार हुआ है। यह शोध बच्चों की प्रगति और योग अभ्यास के प्रभाव का विश्लेषण करता है।

परिणाम एवं चर्चा :–

मंत्र विद्या और ध्वनि विज्ञान के माध्यम से मंत्र विद्या भारतीय संस्कृति की एक प्राचीन और सर्वोत्तम विद्या है, जिस पर भारतवर्ष को हमेशा से गर्व रहा है। मंत्र विद्या का विस्तार असीम है। मंत्र का सामान्य अर्थ ध्वनिक कंपन से लिया जाता है, और यह विज्ञान ध्वनि के विद्युत रूपांतरण की अनोखी साधन विधि को इंगित करता है। मंत्र विद्या ध्वनि तरंगों पर आधारित है और इसका प्रभाव रेडियो, टेलीविजन, तथा रडार जैसे आधुनिक उपकरणों के सिद्धांतों से मेल खाता है।

मंत्र ध्वनि विज्ञान का एक सूक्ष्म पहलू है, जिसके अनुसार जो कार्य आधुनिक यंत्रों के माध्यम से संभव हैं, वे मंत्र प्रयोग द्वारा भी किए जा सकते हैं। मंत्र ध्वनि विशिष्ट तालक्रम एवं गति के साथ उच्चारित होने पर एक विशिष्ट ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में कहा गया है: ''मननात त्रायते इति मंत्रः'', अर्थात् जिसके मनन, चिंतन, एवं ध्यान द्वारा संसार के सभी दुखों से रक्षा, मुक्ति एवं परम आनंद प्राप्त होता है, वही मंत्र है। मंत्र जाप से शरीर में ऊर्जा का संचार होता है और नकारात्मक ऊर्जा दूर होती है।

डॉक्टर सें साक्षात्कार :–

डॉक्टर सें साक्षात्कार से साक्षात्कार के माध्यम से यह पता चला कि अधिकतर बच्चों में ऑटिस्टिक के लक्षण इलेक्ट्रानिक गैजेट्स के उपयोग एवं पर्यावरणीय कारकों जैसे लाइफस्टाइल, खान–पान, इत्यादि के कारण परिलक्षित होते है, जिसमें कुछ कारण आनुवांशिक या जीन उत्परिवर्तन के कारण होता है। मनोवैज्ञानिक डॉक्टरों का मानना है कि जब माताएं गर्भाधारण ग्रहण करती है तो उसमें से अधिकतर माताएं गैजेट्स का उपयोग करती है जिससे रेडियोएक्टिव तरंगे निकलती है जो नवजात शिशुओं के मानसिक, शारीरिक विकास में बाधक बनने का कार्य करती, साथ ही जब माताएं गर्भावस्था के 7वें महिने में प्रवेश करती है तो उनका शारीरिक मूवमेंट कम होने का भी कारण माना है। डॉक्टरों से साक्षात्कार से यह भी पता चला कि ऑटिस्टिक बच्चें समाज के किसी प्राणी से कनेक्ट नही हो पाते, अकेले रहना, घर के कल्चर के आधार पर बच्चो में सांस्कृतिक व सामाजिक व्यवहार भी देखने को मिलते है।

मनोवैज्ञानिक डॉक्टर 1–2 वर्ष के बच्चों में ऑटिस्टिक के लक्षण जानने के लिए M-Chat test, जिसमें बच्चे को निश्चित टॉर्डलस टूल के माध्यम से अवलोकन करते है, वही 3–4 वर्ष के बच्चों का परीक्षण इंडियन स्केल फॉर असेंसमेंट ऑफ ऑटिज्म (ISSA) में डोमेंन–1 में सामाजिक संबंध और पारस्पारिकता, डोमेंन–2 में भावनात्मक प्रतिक्रिया, डोमेंन–3 में भाषा और संचार डोमेंन–4 में व्यवहार प्रतिमान डोमेन–5 में संवेदी पहलूओं के माध्यम से परिक्षण वही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 5 वर्ष आयु के बच्चों का (IQ) लेवल पर परिक्षण किया जाता है। इसके अलावा डॉक्टरों से बात करने पर यह भी पता चला कि ऑटिस्टिक बच्चों में जितने कम या गंभीर लक्षण होते उसी के प्रतिरूप पूर्ण रूप से स्वस्थ्य होने की संभावना रहती है बशर्ते माता–पिता के प्रयास एवं बच्चों मे जितनी जल्दी लक्षण का पता चलने पर उन्हे किसी भी मनोवैज्ञानिक डॉक्टरों से परामर्श व निदान करवाया जाए। डॉक्टरों ने ऑटिस्टिक बच्चों में सबसे अधिक भाषा अवरोध, वस्तुओं को न पहचान पाना, किसी खास प्रतिबिम्ब या प्रतीक की तरफ अधिकतर देखना, लोगो से नजरे चुराना, एवं संज्ञानात्मक विकास में बाधा मानाते।

न्यूरोडेवलपमेंटल डिसऑर्डर (ऑटिज्म) और माता-पिता के अनुभव :–

इस शोध में न्यूरोडेवलपमेंटल डिसऑर्डर (ऑटिज्म) से ग्रसित 10 बच्चों के माता–पिता से साक्षात्कार किया गया। यह पाया गया कि जन्म के समय इन बच्चों में कोई मानसिक समस्या नहीं देखी गई, लेकिन दो व ि की आयु के बाद माता–पिता को उनके मानसिक विकास में अवरोध दिखाई देने लगा। जब इन बच्चों को चिकित्सकों को दिखाया गया, तो पता चला कि वे ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर से ग्रसित हैं। चिकित्सकों ने यह बताया कि गर्भावस्था के दौरान माताओं द्वारा इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स (स्मार्टफोन, टीवी, लैपटॉप) का अधिक उपयोग करने से निकलने वाली रेडियोधर्मी तरंगों के कारण बच्चों के मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त, जब नवजात बच्चों को छह माह की आयु में स्मार्टफोन या टेलीविजन पर वीडियो और कार्टून दिखाए

गए, तो उनके मानसिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। 2 वर्ष की आयु तक इन बच्चों में निम्नलिखित समस्याएँ देखी गईं :–

- **भाषा विकास में कठिनाई :–** बच्चे सही से बोल नहीं पाते थे।
- **प्रतिक्रिया की कमी :–** वे किसी वस्तु को देखकर उचित प्रतिक्रिया नहीं देते थे।
- **सामाजिक जुड़ाव की समस्या :–** परिवार के अन्य सदस्यों के साथ घुलना–मिलना नहीं होता था।
- **रंग आधारित भोजन चयन :–** विशेष रंग के भोजन को ही ग्रहण करना।
- **गैजेट्स पर निर्भरता :–** मोबाइल, टीवी आदि देखने के लिए अत्यधिक रुचि, और जब इन्हें हटा दिया जाता तो रोना, चिल्लाना एवं आक्रामक व्यवहार करना।

जब इन बच्चों की आयु चार से छह वर्ष की हुई, तब माता–पिता ने उन्हें विशेष ऑटिज्म सेंटर में डायग्नोसिस के लिए ले जाना शुरू किया। वहाँ फिजियोथेरेपी, स्किल थेरेपी, संज्ञानात्मक थेरेपी, मेडिसिन, और योग क्रियाओं का सहारा लिया गया।

योग और ऑटिज्म :–

ऑटिज्म से पीड़ित बच्चों के लिए विभिन्न योगासनों को उपचारात्मक रूप से सम्मिलित किया गया। अनुसंधान में पाया गया कि योगासनों के नियमित अभ्यास से बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास में सुधार हुआ। कुछ प्रमुख योगासन निम्नलिखित हैं :–

- **माउंटेन पोज (ताड़ासन) :–** पैरों को एक साथ रखकर सीधे खड़े होना, कंधों को पीछे रखना और समान रूप से वजन संतुलित करना। यह संतुलन और मानसिक एकाग्रता को बढ़ाता है।
- **तितली आसन :–** पैरों को एक साथ रखकर बैठना और घुटनों को तितली के पंखों की तरह हिलाना। यह बच्चों के ध्यान और स्नायविक संतुलन को सुधारने में सहायक है।
- **डाउनवर्ड फेसिंग डॉग :–** हाथों और घुटनों के बल से वी–आकार बनाना। यह शरीर को लचीला बनाता है और आत्म–नियंत्रण को बढ़ावा देता है।
- **चाइल्ड पोज :–** घुटनों के बल बैठकर शरीर को आगे झुकाना। यह तनाव को कम करने और आराम देने में मदद करता है।
- **बिल्ली-गाय मुद्रा :–** पीठ को ऊपर–नीचे करते हुए साँस लेना। यह रीढ़ की हड्डी को लचीला बनाता है और बच्चों में संवेदी जागरूकता बढ़ाता है।
- **वृक्ष मुद्रा :–** एक पैर पर संतुलन बनाकर खड़े रहना और हाथों को ऊपर उठाना। यह ध्यान और संतुलन सुधारता है।
- **कोबरा मुद्रा :–** पेट के बल लेटकर छाती को ऊपर उठाना। यह आत्मविश्वास और शारीरिक सुदृढ़ता को बढ़ाने में सहायक है।
- **डॉल्फिन पोज :–** अग्रभुजाओं को जमीन पर रखते हुए कूल्हों को ऊपर उठाना। यह मस्तिष्क को शांत करने और एकाग्रता में सुधार लाने में मदद करता है।

निष्कर्ष :–

इस शोध अध्ययन के निष्कर्ष में हमने यह पाया कि डिजिटल युग में इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स के बढ़ते प्रभाव

के कारण ऑटिज्म ग्रसित बच्चों में संज्ञानात्मक कौशल, न्यूरोडेवलपमेंट और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि आज के दौर में स्मार्टफोन, कंप्यूटर, वीडियो गेम और सोशल मीडिया जैसे इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स के अति प्रयोग से बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। विशेष रूप से, 2–9 वर्ष की आयु के बच्चों में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (ASD) तेजी से उभर रहा है, जिसका मुख्य कारण माता–पिता द्वारा डिजिटल डिवाइस का अत्यधिक उपयोग और बच्चों को छोटी उम्र से ही स्क्रीन–आधारित गतिविधियों में व्यस्त रखना है।

शोध के दौरान यह पाया गया कि माता–पिता के गैजेट्स के अत्यधिक उपयोग और गर्भावस्था के दौरान रेडियोधर्मी तरंगों के संपर्क में आने से शिशु के मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न हो सकती है। इसके अलावा, जन्म के बाद 6 माह से 2 वर्ष की आयु तक यदि बच्चों को अत्यधिक स्क्रीन–टाइम दिया जाता है, तो उनकी भाषा कौशल, सामाजिक सहभागिता, और भावनात्मक अभिव्यक्ति प्रभावित होती है। कई माता–पिता ने यह अनुभव किया कि उनके बच्चे न तो सही तरीके से बोल पा रहे हैं, न ही सामाजिक रूप से घुल–मिल पा रहे हैं।

इस अध्ययन में ऑटिज्म प्रभावित बच्चों के लिए योग और प्राचीन भारतीय जीवनशैली को समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया। योग और ध्यान का बच्चों के मानसिक विकास और सामाजिक व्यवहार पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिला। शोध में शामिल बच्चों को विभिन्न योगासन जैसे कि तितली आसन, वृक्षासन, माउंटेन पोज, चाइल्ड पोज, कोबरा पोज आदि अभ्यास कराए गए, साथ ही यह भी पाया गया कि नियमित रूप से 6 माह तक इन योगाभ्यासों का पालन करने वाले बच्चों में ध्यान केंद्रित करने की क्षमता, संज्ञानात्मक विकास और सामाजिक सहभागिता में सुधार हुआ। इसके अतिरिक्त, मंत्र चिकित्सा और ध्वनि चिकित्सा (साउंड थेरेपी) को भी उपचार के रूप में शामिल किया गया। मंत्रोच्चार के माध्यम से बच्चों में मानसिक शांति और एकाग्रता बढ़ाने में मदद मिली। कुछ शोधों में यह भी सामने आया कि नियमित रूप से योग और ध्यान करने से तनावग्रस्त बच्चों और वयस्कों में मानसिक संतुलन विकसित हुआ, जिससे उनके व्यवहार में सुधार देखने को मिला।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल युग में अत्यधिक स्क्रीन–टाइम बच्चों की मानसिक और संज्ञानात्मक क्षमताओं को बाधित कर रहा है। ऐसे में, आधुनिक तकनीक के साथ–साथ पारंपरिक योग और ध्यान को दैनिक जीवन में अपनाकर ऑटिज्म जैसी न्यूरोडेवलपमेंटल समस्याओं को नियंत्रित किया जा सकता है। योग, प्राणायाम और ध्यान न केवल ऑटिज्म ग्रसित बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार ला सकते हैं, बल्कि उनके समग्र विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए, माता–पिता, शिक्षकों और चिकित्सकों को चाहिए कि वे बच्चों की डिजिटल निर्भरता को सीमित करें और उनके विकास के लिए योग जैसी प्राकृतिक विधियों को प्राथमिकता दें।

सुझाव :–

न्यूरोडेवलपमेंटल डिसआर्डर ऑटिज्म स्पेक्ट्रम की समस्याओं से ग्रसित बच्चों के मानसिक, भाषा कौशल, सांस्कृतिक विकास एवं संज्ञानात्मक विकास के लिए भारतीय योग विद्या उपागमों के माध्यम से ऑटिस्टिक सेंटर में इन बच्चों का निदान करने एवं इनसे संबंधित अन्य सहायक उपागमों की दिशा में लिए कई प्रयास किए जा सकते हैं। सामुदायिक केंद्रों, स्कूलों और NGO के सहयोग से ऐसे समावेशी योग सत्र आयोजित किए जाएँ

जिनमें ऑटिज्म से प्रभावित और सामान्य बच्चे योग क्रिया में मिलकर भाग लें। इससे बच्चों में समानता की भावना बढ़ेगी और सामाजिक दूरी भी कम होगी। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर चित्रों, सरल निर्देशों और धीमी गति वाले योग वीडियो बनाए जाएँ ताकि बच्चे घर पर भी अभ्यास कर सकें। ऐसे योग शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए जो इन बच्चों की विशेष ज़रूरतों को समझते हों। इसके साथ ही माता–पिता के लिए योग आधारित सहयोग समूह बनाए जाएँ, जहाँ वे अपने अनुभव साझा कर सकें और मानसिक रूप से मजबूत बन सके। प्री–प्राइमरी स्कूल से उच्च माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में भी योग को शामिल किया जाए ताकि बच्चों का आत्म–नियंत्रण और सामाजिक सहभागिता बढ़ने में मदद हो सके। अंत में, सोशल मीडिया, वेबिनार और डॉक्यूमेंट्री जैसे माध्यमों से योग के लाभों एवं ऑटिज्म जैसी मानसिक समस्याओं को सामाजिक स्तर पर जागरूकता फैलाई जा सके जिससे जनमानस सचेत हो सके। और इस समस्या के बारे में सामुदायिक स्तर पर विमर्श कर इससे भविष्य में सचेत होकर इलेक्ट्रानिक गैजेट्स से होने वाली ऑटिस्टिक की समस्या से बच्चों को बचाया जा सके।

संदर्भ सूची :-

1. Nurul Hadirah, M. (2022). "The Role of Electronic Gadgets in Cognitive Development of Children: A Malaysian Perspective", *Asian Journal of Child Psychology*, Vol. 9, No. 3, Pp. 221-239.
2. Basu, T. (2022). "Impact of Electronic Gadgets on Child Development: A Study of Indian Households", *Journal of Social Sciences,* Vol. 14, No. 2, Pp.112-126.
3. Statista. (2023). "Internet and Electronic Gadget Usage Trends in India 2013-2025", *Retrieved from: www.statista.com*
4. Kamakhya, K. (2004). "Effect of Yoga Nidra on Stress and Anxiety Among College Students: An Experimental Study", *International Journal of Yoga Therapy*, Vol. 7, No. 1, 45-56.
5. Santosh, K. & Others. (2005). "Effect of Shatkarma and Pranayama on Academic Stress among School Students", *Indian Journal of Health Psychology,* Vol. 10, No. 1, Pp. 55-67.
6. Ministry of Health and Family Welfare, India. (2022). Report on Autism Spectrum Disorder (ASD) in India. *Government of India*.
7. National Institute of Mental Health and Neurosciences (NIMHANS). (2021). *Autism and Neurodevelopmental Disorders: An Indian Perspective*. Bangalore.
8. Singh, R. (2018). *Yoga for Autism: A Therapeutic Approach*. Orient BlackSwan. New Delhi. Pp. 3-16.
9. Desai, M. (2021). "Mindfulness and Autism: The Role of Yoga in Neurodevelopmental Disorders", *Sage Publications*. World Health Organization (WHO). *Autism Spectrum Disorder: Global Research and Trends*. Geneva.
10. Autism Research Institute. (2019). *Neurodevelopmental Disorders and Yoga Therapy:*

Evidence-based Interventions.
11. Noor, S. Fariha, H. Lutful, A.T. and Madia, N. (2020). "Assessment of Electronic Gadgets Use And its' Effect on Daily Life and Health of Primary School Children", *Jopson https://doi.org/10.3329*. Vol. 39, No. 1, Pp. 78-87.
12. Zain, Z. M. and F.N.N Jasmani, N.H Haris, S.M. Suzeri, (2022). "Gadgets and their Impact on Child Development", *Proceedings*. Vol. 82, No.6, Pp. 1-7.
13. Shivakumar, S. and S, Varadharajan. (2022). "Early Gadgets Exposure among young Children and its Association with Cognitive and Socio-Emotional Development", *Journal of Indian Academy of Applied Psychlogy*. Vol. 48, No. 2, Pp. 177-187.
14. Kumar, Kamakhya. (2011). *Yoga Mahavigyaan*. Standard Publication. Delhi.
15. Nirjanand, S. and Santosh, Kumari. 2006. *Dhyaan ka Prabhav mana par yoga Vidhya*. Yoga Research and Foundation Munger. Bihar.
16. Abdullah, H. Ratmawati, M.A. Myra, A.M.A. Nursyuhada, Ab.W. and Dini, F.B. (2022). "The Challenges in Raising Autistic Children: The Voices Mothers", *International Journal of Evaluation and Research in Education*. Vol. 11, No. 1, Pp. 78-87.
17. Cuellar, A. (2015). "Preventing and Treating Child Mental Health Problems", *The Future of Children Spring.* Vol. 25, No. 1, Pp.111- 134.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 194–198

प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था का विकास

रविकांत वर्मा
शोधार्थी, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर।

सार :–

यह शोध पत्र प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था के विकास का विश्लेषण करता है, जो वैदिक काल से गुप्तकाल तक फैला हुआ है। वैदिक साहित्य, धर्मशास्त्रों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, और अशोक के शिलालेखों जैसे प्राथमिक स्रोतों के आधार पर, यह पत्र अपराधों के वर्गीकरण, दंड के प्रकार (प्रायश्चित, शारीरिक, आर्थिक), और न्याय प्रक्रिया के विकास की पड़ताल करता है। शोध में वैदिक काल की प्रायश्चित–केंद्रित व्यवस्था, मौर्यकाल में केंद्रीकृत प्रशासन, और गुप्तकाल में मानवीय दृष्टिकोण पर ध्यान दिया गया है। बौद्ध और जैन धर्म के अहिंसक और सुधारात्मक दंड के प्रभाव को भी शामिल किया गया है। यह शोध दंड व्यवस्था के सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक संदर्भ को उजागर करता है, साथ ही इसके आधुनिक कानूनी ढांचे से संबंध को रेखांकित करता है। शोध का उद्देश्य प्राचीन भारतीय विधि की विशिष्टता और इसके सामाजिक नियमन में योगदान को समझना है।

की वर्ड्स :– दंड व्यवस्था, प्राचीन भारत, धर्मशास्त्र, न्याय प्रणाली, मौर्यकाल।

प्रस्तावना :–

प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता, और धर्म के साथ गहराई से जुड़ी थी। यह न केवल अपराधों को नियंत्रित करने का साधन थी, बल्कि सामाजिक और धार्मिक मूल्यों को बनाए रखने का भी महत्वपूर्ण उपकरण थी[1]। वैदिक काल से गुप्तकाल तक, दंड व्यवस्था में क्रमिक विकास देखा गया, जो सामाजिक संरचना, शासन प्रणाली, और धार्मिक विचारधाराओं के परिवर्तनों को दर्शाता है[2]। उदाहरण के लिए, वैदिक काल में प्रायश्चित और सामाजिक बहिष्कार जैसे दंड प्रचलित थे, जबकि मौर्यकाल में केंद्रीकृत प्रशासन और धर्म–आधारित सुधार देखे गए[3]। यह शोध पत्र प्राचीन भारत में दंड व्यवस्था के स्वरूप, इसके विकास, और सामाजिक–धार्मिक संदर्भ में इसकी भूमिका का विश्लेषण करता है।

शोध का दायरा वैदिक काल (1500–600 ईसा पूर्व) से गुप्तकाल (320–550 ईस्वी) तक सीमित है। प्राथमिक स्रोतों जैसे वेद, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, और अशोक के शिलालेखों का उपयोग किया गया है[4]। ये स्रोत अपराधों के वर्गीकरण, दंड के प्रकार (प्रायश्चित, शारीरिक, आर्थिक), और न्याय प्रक्रिया के विकास को समझने में सहायक हैं।

शोध के प्रमुख प्रश्न हैं :-

- प्राचीन भारत में दंड व्यवस्था कैसे विकसित हुई?
- विभिन्न कालखंडों में दंड के स्वरूप और न्याय प्रक्रिया में क्या परिवर्तन आए?
- सामाजिक और धार्मिक कारकों का दंड व्यवस्था पर क्या प्रभाव रहा?

यह शोध प्राचीन भारतीय दंड व्यवस्था की विशिष्टता, जैसे धर्म और नैतिकता पर आधारित दंड, अहिंसा का प्रभाव, और सुधारात्मक दृष्टिकोण, को उजागर करता है। यह आधुनिक कानूनी ढांचे के साथ तुलना करके प्राचीन व्यवस्था की प्रासंगिकता को भी जांचता है, विशेष रूप से सुधारात्मक दंड के संदर्भ में। शोध पत्र की संरचना में साहित्य समीक्षा, शोध पद्धति, कालखंडों के आधार पर विश्लेषण, और निष्कर्ष शामिल हैं। यह अध्ययन प्राचीन भारतीय विधि के ऐतिहासिक महत्व और सामाजिक नियमन में इसके योगदान को समझने का प्रयास करता है।

साहित्य समीक्षा :-

प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था के विकास पर विद्वानों ने व्यापक अध्ययन किया है, जो ऐतिहासिक, सामाजिक, और धार्मिक संदर्भों को उजागर करता है। पी. वी. काणे की History of Dharmashastra में धर्मशास्त्रों, विशेष रूप से मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति, में वर्णित दंड व्यवस्था का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। काणे के अनुसार, वैदिक काल में दंड प्रायश्चित–केंद्रित थे, जो धार्मिक और नैतिक सुधार पर जोर देते थे, जबकि उत्तर–वैदिक काल में आर्थिक और शारीरिक दंड प्रचलित हुए। रोमिला थापर की Early India में दंड व्यवस्था को सामाजिक संरचना और वर्ण व्यवस्था के साथ जोड़ा गया है। थापर तर्क देती हैं कि मौर्यकाल में केंद्रीकृत शासन ने दंड को अधिक व्यवस्थित और राजकीय नियंत्रण के अधीन किया।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, जिसका अनुवाद एल. एन. रंगराजन ने किया है, मौर्यकालीन दंड व्यवस्था का एक प्राथमिक स्रोत है। यह ग्रंथ अपराधों के दस्तावेजीकरण, जासूसी तंत्र, और विभिन्न अपराधों (चोरी, हिंसा, संविदा उल्लंघन) के लिए आर्थिक दंड का वर्णन करता है[3]। अशोक के शिलालेखों पर आधारित आर. एस. शर्मा की India's Ancient Past में दंड सुधारों पर चर्चा की गई है, जिसमें अहिंसा और नैतिकता पर आधारित नीतियों को लागू करने का उल्लेख है। बौद्ध और जैन प्रभावों पर ए. एल. बाशम की The Wonder That Was India में विनय पिटक और जैन ग्रंथों में वर्णित सुधारात्मक दंड और अहिंसक दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है।[5]

हालांकि, विद्वानों के कार्यों में कुछ अंतराल हैं। काणे का कार्य धर्मशास्त्र–केंद्रित है, जो सामाजिक वर्गों (जैसे, शूद्र, स्त्रियां) पर दंड के प्रभाव को कम उजागर करता है। थापर और शर्मा मौर्यकाल पर अधिक ध्यान देते हैं, लेकिन गुप्तकालीन दंड व्यवस्था पर अपेक्षाकृत कम विश्लेषण है। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय दंड प्रथाओं या गैर–ब्राह्मणवादी स्रोतों पर शोध सीमित है। यह शोध पत्र इन अंतरालों को संबोधित करने का प्रयास करता है, जिसमें कालानुक्रमिक दृष्टिकोण से दंड व्यवस्था का विकास, सामाजिक–धार्मिक संदर्भ, और बौद्ध–जैन प्रभावों का तुलनात्मक विश्लेषण शामिल है। यह अध्ययन प्राचीन भारतीय दंड व्यवस्था की जटिलता और इसके सामाजिक नियमन में योगदान को समझने में सहायक होगा।

मुख्य विश्लेषण :-

प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था का विकास सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक परिवर्तनों का

प्रतिबिंब है। यह खंड वैदिक काल से गुप्तकाल तक दंड व्यवस्था के क्रमिक विकास का कालानुक्रमिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें अपराधों के वर्गीकरण, दंड के प्रकार, और न्याय प्रक्रिया पर ध्यान दिया गया है। साथ ही, बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव को भी शामिल किया गया है। विश्लेषण प्राथमिक स्रोतों जैसे वेद, मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अशोक के शिलालेख, और विनय पिटक पर आधारित है।

- **वैदिक काल में दंड व्यवस्था** – वैदिक काल (1500–600 ईसा पूर्व) में दंड व्यवस्था धार्मिक और नैतिकता पर आधारित थी, जो सामाजिक संरचना और यज्ञ–केंद्रित जीवन से जुड़ी थी। ऋग्वेद और अथर्ववेद जैसे स्रोतों में अपराधों का उल्लेख है, जैसे चोरी, हिंसा, और धार्मिक नियमों (जैसे, यज्ञ में व्यवधान) का उल्लंघन[6]। अपराध सामान्यतः सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के लिए खतरा माने जाते थे। दंड का उद्देश्य अपराधी का सुधार और सामाजिक समरसता की पुर्नस्थापना था। प्रमुख दंडों में प्रायश्चित (धार्मिक अनुष्ठान द्वारा पाप का प्रक्षालन) और सामाजिक बहिष्कार शामिल थे। उदाहरण के लिए, अथर्ववेद में चोरी के लिए प्रायश्चित के रूप में गाय दान करने का उल्लेख है। गंभीर अपराधों, जैसे ब्रह्महत्या, के लिए शारीरिक दंड या मृत्युदंड भी संभव था, हालांकि यह दुर्लभ था। न्याय प्रक्रिया अनौपचारिक थी, जिसमें ग्राम सभाएं या पुरोहित निर्णायक की भूमिका निभाते थे। दंड का स्वरूप सामाजिक स्थिति पर निर्भर था, उच्च वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय) को अक्सर हल्का दंड मिलता था। वैदिक दंड व्यवस्था की विशेषता इसकी धार्मिक प्रकृति थी, जहां अपराध को पाप (पातक) माना जाता था। यह व्यवस्था सामाजिक नियमन में प्रभावी थी, लेकिन लिखित कानूनों की अनुपस्थिति और वर्ण–आधारित भेदभाव इसकी सीमाएं थीं[7]।
- **उत्तर–वैदिक काल और धर्मशास्त्र :–** उत्तर–वैदिक काल (600–300 ईसा पूर्व) में सामाजिक संरचना जटिल हुई और धर्मशास्त्रों का उदय हुआ। मनुस्मृति और गौतम धर्मसूत्र जैसे ग्रंथों ने दंड व्यवस्था को अधिक व्यवस्थित किया। अपराधों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गयारू व्यक्तिगत (चोरी, हिंसा), सामाजिक (वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन), और धार्मिक (वेदों की अवमानना)। दंड के प्रकार विविध थे, जिनमें आर्थिक दंड (जैसे, जुर्माना), शारीरिक दंड (कोड़े मारना), कारावास, और मृत्युदंड शामिल थे। मनुस्मृति में चोरी के लिए सात गुना जुर्माना और गंभीर मामलों में अंग–च्छेदन का प्रावधान है[8]। धार्मिक अपराधों के लिए प्रायश्चित अनिवार्य था, जैसे ब्रह्महत्या के लिए बारह वर्ष का तप। न्याय प्रक्रिया में ग्राम पंचायतें और राजकीय सभाएं महत्वपूर्ण थीं। मनुस्मृति में राजा को धर्म का संरक्षक माना गया, जो न्याय सुनिश्चित करता था। इस काल में दंड व्यवस्था वर्ण और जेंडर आधारित थी। उदाहरण के लिए, शूद्रों को समान अपराध के लिए कठोर दंड मिलता था, जबकि स्त्रियों पर पारिवारिक नियम अधिक प्रभावी थे। धर्मशास्त्रों ने दंड को सामाजिक अनुशासन और धार्मिक नैतिकता से जोड़ा, लेकिन वर्ण–आधारित भेदभाव और कठोर शारीरिक दंड इसकी आलोचना का कारण बने। यह व्यवस्था सामाजिक नियमन में प्रभावी थी, लेकिन लिखित कानूनों की जटिलता ने इसे कुछ हद तक अभिजात्य–केंद्रित बनाया।
- **मौर्यकाल में दंड और प्रशासन** – मौर्यकाल (321–185 ईसा पूर्व) में दंड व्यवस्था केंद्रीकृत और राजकीय नियंत्रण के अधीन थी, जैसा कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अशोक के शिलालेखों से स्पष्ट है। कौटिल्य ने अपराधों को विस्तृत रूप से वर्गीकृत किया, जैसे चोरी, हिंसा, संविदा उल्लंघन, और राजद्रोह। दंड में जुर्माना, कारावास, शारीरिक दंड, और मृत्युदंड शामिल थे। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र में राजकीय संपत्ति की चोरी के

लिए अंग–च्छेदन का प्रावधान है[9]। न्याय प्रक्रिया व्यवस्थित थी, जिसमें राजकीय अधिकारी (धर्ममहामात्र) और जासूसी तंत्र शामिल थे। कौटिल्य ने अपराधों के दस्तावेजीकरण और साक्ष्यों के महत्व पर जोर दिया। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रभाव में दंड सुधार लागू किए, जिसमें अहिंसा और सुधारात्मक दृष्टिकोण पर बल दिया गया। उनके शिलालेखों में मृत्युदंड को सीमित करने और अपराधियों को पुनर्वास का अवसर देने का उल्लेख हैं। मौर्यकाल की दंड व्यवस्था की विशेषता इसका प्रशासनिक ढांचा और सामाजिक नियमन में प्रभावशीलता थी। अशोक के सुधारों ने मानवीय दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया, लेकिन कौटिल्य की नीतियां कठोर थीं। यह व्यवस्था सामाजिक और आर्थिक अपराधों को नियंत्रित करने में सफल रही, लेकिन क्षेत्रीय विविधताओं पर इसका प्रभाव सीमित था।

- **गुप्तकाल में दंड व्यवस्था :–** गुप्तकाल (320–550 ईस्वी) में दंड व्यवस्था में मानवीय और सामाजिक समरसता पर जोर था, जैसा कि नारद स्मृति और समकालीन अभिलेखों से पता चलता है। अपराधों में व्यक्तिगत (चोरी, व्यभिचार), सामाजिक (वर्ण नियमों का उल्लंघन), और व्यापारिक (संविदा उल्लंघन) शामिल थे। दंड में जुर्माना और कारावास प्रमुख थे, जबकि शारीरिक दंड कम प्रचलित थे। नारद स्मृति में व्यापारिक विवादों के लिए आर्थिक दंड का वर्णन है। न्याय प्रक्रिया में राजकीय और स्थानीय संस्थाएं, जैसे नगर सभाएं, सक्रिय थीं। गुप्त शासकों ने धर्मशास्त्रों का पालन किया, लेकिन सामाजिक परिवर्तनों के अनुकूल दंड लागू किए। वर्ण और जाति आधारित दंड में भेदभाव कम हुआ, हालांकि उच्च वर्णों को रियायतें प्राप्त थीं। गुप्तकाल की दंड व्यवस्था की विशेषता इसकी लचीलापन और सामाजिक समरसता पर जोर था। यह व्यवस्था व्यापार और शहरीकरण के विकास के साथ संगत थी, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रभाव सीमित रहा[10]।
- **बौद्ध और जैन प्रभाव :–** बौद्ध और जैन धर्म ने दंड व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला, विशेष रूप से अहिंसा और सुधारात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से। बौद्ध विनय पिटक में संघ के सदस्यों के लिए आंतरिक दंड व्यवस्था का वर्णन है, जैसे निष्कासन या अस्थायी बहिष्कार, जो सुधार पर केंद्रित थे। गंभीर अपराधों, जैसे हिंसा, के लिए स्थायी निष्कासन का प्रावधान था।जैन आचारांग सूत्र में अहिंसा को सर्वोपरि माना गया, और दंड का उद्देश्य अपराधी का नैतिक सुधार था। जैन समुदायों में सामुदायिक दंड, जैसे सामाजिक बहिष्कार, प्रचलित थे[11]। बौद्ध और जैन प्रभाव मौर्यकाल में अशोक के सुधारों में स्पष्ट दिखाई देते हैं, जहां मृत्युदंड को कम करने और अपराधियों के पुनर्वास पर जोर दिया गया।

इन धर्मों ने दंड व्यवस्था को मानवीय बनाया और हिंसा–मुक्त दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया। हालांकि, उनकी व्यवस्था मुख्य रूप से धार्मिक समुदायों तक सीमित थी, और धर्मशास्त्र–आधारित दंड व्यवस्था पर इसका प्रभाव आंशिक था। फिर भी, इनके सुधारात्मक दृष्टिकोण ने प्राचीन भारतीय दंड व्यवस्था की विशिष्टता को समृद्ध किया।

निष्कर्ष :–

प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था का विकास सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक परिवर्तनों का एक जटिल प्रतिबिंब है। वैदिक काल से गुप्तकाल तक, दंड व्यवस्था ने धार्मिक नैतिकता से लेकर केंद्रीकृत प्रशासन और मानवीय दृष्टिकोण तक एक लंबा सफर तय किया। वैदिक काल में प्रायश्चित और सामाजिक बहिष्कार जैसे दंड धार्मिक सुधार पर केंद्रित थे, जो अपराध को पाप के रूप में देखते थे। उत्तर–वैदिक काल में धर्मशास्त्रों, जैसे

मनुस्मृति, ने दंड को व्यवस्थित किया, जिसमें आर्थिक, शारीरिक, और वर्ण–आधारित दंड शामिल थे। मौर्यकाल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अशोक के शिलालेखों ने केंद्रीकृत और अहिंसा–प्रधान दंड प्रणाली को दर्शाया, जो सामाजिक नियमन और नैतिक सुधार को संतुलित करता था। गुप्तकाल में दंड व्यवस्था अधिक लचीली और सामाजिक समरसता पर केंद्रित थी, जिसमें व्यापारिक और सामाजिक अपराधों पर जोर दिया गया। बौद्ध और जैन धर्म ने अहिंसा और सुधारात्मक दंड को बढ़ावा देकर दंड व्यवस्था को मानवीय बनाया, विशेष रूप से अशोक के सुधारों और संघ–आधारित नियमों में।

प्राचीन भारतीय दंड व्यवस्था की विशिष्टता इसके धर्म और नैतिकता से गहरा संबंध, सामाजिक संरचना के साथ तालमेल, और सुधारात्मक दृष्टिकोण में निहित है। यह व्यवस्था सामाजिक अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखने में प्रभावी थी, लेकिन वर्ण–आधारित भेदभाव और क्षेत्रीय विविधताओं की अनदेखी इसकी प्रमुख सीमाएं थीं। आधुनिक संदर्भ में, प्राचीन भारत का सुधारात्मक दंड और अहिंसा पर जोर आज की न्याय प्रणालियों, विशेष रूप से पुनर्वास और मानवीय दृष्टिकोण, के लिए प्रेरणादायक है।

भविष्य के शोध के लिए, क्षेत्रीय दंड प्रथाओं, गैर–ब्राह्मणवादी स्रोतों, और विशिष्ट सामाजिक वर्गों (जैसे, स्त्रियां, शूद्र) पर दंड के प्रभाव पर अध्ययन उपयोगी हो सकता है। यह शोध पत्र प्राचीन भारतीय दंड व्यवस्था की जटिलता और इसके सामाजिक नियमन में योगदान को रेखांकित करता है, जो ऐतिहासिक और आधुनिक दोनों दृष्टिकोणों से प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Kane, P. V. (1941). History of Dharmashastra (Vol. III). Pune: Bhandarkar Oriental Research Institute.
2. Thapar, R. (2002). Early India: From the Origins to AD 1300. New Delhi: Penguin Books.
3. Kautilya. (1992). The Arthashastra (Trans. L. N. Rangarajan). New Delhi: Penguin Books.
4. Sharma, R. S. (2005). India's Ancient Past. New Delhi: Oxford University Press.
5. Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India. London: Sidgwick & Jackson.
6. Sharma, R. S. (2005). India's Ancient Past. New Delhi: Oxford University Press.
7. Kane, P. V. (1941). History of Dharmashastra (Vol. III). Pune: Bhandarkar Oriental Research Institute.
8. Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India. London: Sidgwick & Jackson.
9. Kautilya. (1992). The Arthashastra (Trans. L. N. Rangarajan). New Delhi: Penguin Books.
10. Sharma, R. S. (2005). India's Ancient Past. New Delhi: Oxford University Press.
11. Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India. London: Sidgwick & Jackson.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 199–203

भारतीय विचार के दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक आयाम : एक समीक्षा

यदुनंदन
शोधार्थी, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय।

सार :–

यह समीक्षा पत्र भारतीय विचार के दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक आयामों का अन्वेषण करता है। यह उपनिषदों की आत्मन्–ब्रह्मन् अवधारणाओं, शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत, भक्ति आंदोलनों के सामाजिक प्रभावों, रामायण–महाभारत के नैतिक ढाँचों और योग सूत्र–भगवद गीता की मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण करता है, जो समकालीन चुनौतियों के लिए भारतीय विचार की प्रासंगिकता दर्शाता है।

संकेत शब्द :– आत्मन्, ब्रह्मन्, अद्वैत वेदांत, नैतिक आध्यात्मिकता।

परिचय :–

भारतीय विचार वास्तविकता को समझने के लिए अपने समग्र और एकीकृत दृष्टिकोण से प्रतिष्ठित है, जहाँ दर्शन, आध्यात्मिकता और नैतिकता को अलग–अलग नहीं, बल्कि सत्य और मुक्ति की एक ही खोज के गहरे अंतर्निहित पहलुओं के रूप में माना जाता है। पश्चिमी परंपराओं के विपरीत, भारतीय बौद्धिक परंपराएँ इन क्षेत्रों के गहन अंतर्संबंध को प्रदर्शित करती हैं, जिसका उद्देश्य अस्तित्व की व्यापक समझ है जो केवल बौद्धिक पूछताछ से परे होकर अनुभव और नैतिक आचरण को समाहित करती है। यह समीक्षा पत्र इन बहुआयामी आयामों का अन्वेषण करेगा, जिसकी शुरुआत परम वास्तविकता और व्यक्तिगत स्व को परिभाषित करने वाली मूलभूत आध्यात्मिक अवधारणाओं से होगी। इसके बाद यह भक्ति जैसे गतिशील आध्यात्मिक आंदोलनों में गहराई से उतरेगा, जिसने धार्मिक अभ्यास और सामाजिक संरचनाओं में क्रांति ला दी। अंत में, यह शास्त्रीय भारतीय साहित्य और योगिक परंपराओं में निहित नैतिक सिद्धांतों और मनोवैज्ञानिक अवलोकनों की जाँच करेगा। यह व्यापक अन्वेषण व्यक्तिगत चेतना और सामाजिक मूल्यों को आकार देने में भारतीय विचार की गहन गहराई और स्थायी प्रासंगिकता को उजागर करना चाहता है। भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक परंपराएँ सहस्राब्दियों से मानवीय अनुभव को आकार देती रही हैं, जो परम वास्तविकता, स्वयं की प्रकृति और मुक्ति के मार्ग पर गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं।

1. आध्यात्मिक आधार और प्रमुख दार्शनिक मत :–

1.1 उपनिषदिक दृष्टि : एक महत्त्वपूर्ण मोड़ :

उपनिषद भारतीय दर्शन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ हैं, जो वेदों के कर्मकांडी फोकस से हटकर वास्तविकता और चेतना की गहन पड़ताल करते हैं। ये ग्रंथ आत्मन् (व्यक्तिगत आत्मा) और ब्रह्मन् (परम, सर्वव्यापी वास्तविकता) की केंद्रीय अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए उनकी मूलभूत एकता पर जोर देते हैं। प्रसिद्ध सूत्र 'तत् त्वम् असि' (वह तुम हो) इस एकता को व्यक्त करता है। इस एकता की प्राप्ति अनुभवात्मक है, जो ज्ञान और आंतरिक प्राप्ति को आध्यात्मिक उपलब्धि का प्राथमिक साधन बनाती है, जिससे मुक्ति तक पहुँच का लोकतंत्रीकरण हुआ। उपनिषदों ने पश्चिमी दर्शन को भी प्रभावित किया, जिन्होंने इरविन श्रोडिंगर और एल्डस हक्सले जैसे विचारकों को प्रभावित किया। आत्मन् और ब्रह्मन् की अविभाज्यता की मुख्य उपनिषदिक शिक्षा सीधे अहिंसा (अहिंसा) और करुणा (करुणा) जैसे नैतिक सिद्धांतों की ओर ले जाती है। यदि सभी प्राणी मूल रूप से परम वास्तविकता के साथ एक हैं, तो दूसरों को नुकसान पहुँचाना स्वयं को नुकसान पहुँचाना है, और दूसरों के प्रति करुणा आत्म–प्रेम का एक स्वाभाविक विस्तार बन जाती है। उपनिषद माया (भ्रम) और सत्य के लेंस के माध्यम से वास्तविकता से पूछताछ करते हैं, विश्वास या अनुष्ठान के बजाय ज्ञान के माध्यम से प्राप्त मुक्ति का मार्ग प्रदान करते हैं।

1.2 शंकराचार्य का अद्वैतवाद :–

आदि शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत भारतीय दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, जो अद्वैतवाद (गैर–द्वैत) पर केंद्रित है। इसका मूल विचार यह है कि ब्रह्मन् ही एकमात्र सत्य है, और आत्मन् ब्रह्मन् से अभिन्न है। दुनिया की विविधता को माया (भ्रम) के कारण माना जाता है, जो वास्तविकता को छिपाती और विकृत करती है। मोक्ष (मुक्ति) आत्म–ज्ञान (आत्म–ज्ञान) के माध्यम से इस भ्रम को दूर करने और आत्मन् तथा ब्रह्मन् की एकता को महसूस करने से प्राप्त होती है। शंकराचार्य वास्तविकता को तीन स्तरों में विभाजित करते हैं : व्यावहारिक (अनुभवजन्य), प्रातिभासिक (भ्रामक), और पारमार्थिक (निरपेक्ष)। उनका दर्शन दुनिया के त्याग की वकालत नहीं करता, बल्कि इसकी क्षणभंगुर प्रकृति को जानते हुए भी इसमें संलग्न रहने को प्रोत्साहित करता है। यह आध्यात्मिक प्राप्ति को दुनिया में प्रभावी ढंग से और नैतिक रूप से कार्य करने की क्षमता से जोड़ता है। अद्वैत वेदांत आज भी अत्यधिक प्रासंगिक है, जो करुणा और सामाजिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देता है।

1.3 भक्ति आंदोलन : भक्ति, बहुलवाद और सामाजिक सुधार :–

भक्ति आंदोलन भारतीय आध्यात्मिकता में एक परिवर्तनकारी दौर था, जो व्यक्तिगत देवता के प्रति गहन भक्ति और महत्वपूर्ण सामाजिक निहितार्थों से चिह्नित था। यह आंदोलन, शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत से भिन्न, प्रेम और समर्पण पर केंद्रित था, जिसने धार्मिक और दार्शनिक परिदृश्य को नया आकार दिया। इसमें महिलाओं ने पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती देने के लिए अपनी आवाज का उपयोग किया, अपनी कविताओं और गीतों के माध्यम से अपने संघर्षों और आध्यात्मिक अनुभवों को व्यक्त किया, जिससे महिला अभिव्यक्ति का एक अनूठा स्थान बना। उदाहरण के लिएरू मीराबाई ने सामाजिक अपेक्षाओं को धता बताते हुए अपना जीवन कृष्ण को समर्पित कर दिया। अक्का महादेवी ने विवाह त्याग कर नग्न घूमने का कट्टरपंथी मार्ग अपनाया, जो ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का प्रतीक था। कश्मीर की रहस्यवादी कवयित्री लाल देद ने कठोर ब्राह्मणवादी संहिताओं की आलोचना की। संत सोयराबाई ने घरेलू जीवन संभालते हुए विठोबा के प्रति अपनी भक्ति व्यक्त की, जिसने जाति

और लिंग के अंतर्संबंध को उजागर किया। उनकी रचनाओं में स्थानीय भाषाओं के उपयोग ने उन्हें व्यापक दर्शकों तक पहुँचने की अनुमति दी, जिससे आध्यात्मिकता संबंधित और सुलभ हो गई। भक्ति आंदोलन को भारत में नारीवादी विचार का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है, क्योंकि महिला संतों ने आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के अपने अधिकार पर जोर देकर पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती दी। उनकी व्यक्तिगत स्वायत्तता की खोज समकालीन नारीवादी आदर्शों से मेल खाती है। इस आंदोलन का एक महत्वपूर्ण योगदान स्थानीय भाषाओं जैसे हिंदी, मराठी और तमिल को बढ़ावा देना था। तुलसीदास, कबीर और तुकाराम जैसे संतों ने संस्कृत के प्रभुत्व को चुनौती देते हुए पवित्र प्रवचन को जन–जन तक पहुँचाया। इस भाषाई क्रांति ने भक्तिपूर्ण भागीदारी का लोकतंत्रीकरण किया और क्षेत्रीय भाषाओं को समृद्ध किया, जिससे यह आंदोलन महिलाओं और निम्न जातियों सहित समाज के एक विस्तृत वर्ग के लिए समावेशी बन गया।

- **प्रमुख भक्ति परंपराएँ :–**

भक्ति आंदोलन ने भारतीय विचार में शैव और वैष्णव जैसी विशिष्ट परंपराओं को गहराई से विकसित किया। शैव धर्म भगवान शिव को सर्वोच्च मानता है, जिसका लक्ष्य शिवत्व प्राप्त करना है। यह पति, पशु, पाश के सिद्धांतों और स्पंद की अवधारणा पर आधारित है, जिसमें लिंगम पूजा, ध्यान और शिव–शक्ति का अंतर्संबंध प्रमुख हैं। वैष्णव धर्म भगवान विष्णु और उनके अवतारों (राम, कृष्ण) के प्रति अटूट भक्ति पर केंद्रित है। भक्ति इसकी आधारशिला है, जो मोक्ष के लिए प्रेम और समर्पण पर जोर देती है। रामानुज (विशिष्टाद्वैत), मध्वाचार्य (द्वैत) और निम्बारक (अचिंत्य भेदाभेद) जैसे दार्शनिकों ने ईश्वर–आत्मा संबंध की भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। दोनों परंपराएँ मंदिरों, त्योहारों और आधुनिक आंदोलनों के माध्यम से जीवंत हैं।

1.4 मध्वाचार्य की परंपरा :–

द्वैत वेदांत, जिसे मध्वाचार्य परंपरा भी कहते हैं, १३वीं शताब्दी में श्री मध्वाचार्य द्वारा स्थापित एक महत्वपूर्ण हिंदू दर्शन है। यह अद्वैत के विपरीत, ईश्वर (विष्णु), व्यक्तिगत आत्मा (जीव) और भौतिक दुनिया (प्रकृति) के बीच स्पष्ट और शाश्वत अंतर पर जोर देता है। 'द्वैत' का अर्थ 'द्वैतवाद' है, जो मानता है कि ये तीनों मौलिक रूप से भिन्न हैं। ईश्वर स्वतंत्र है, जबकि आत्माएं उस पर निर्भर हैं। द्वैत भौतिक दुनिया को वास्तविक मानता है, भ्रम नहीं। भक्ति को आध्यात्मिक विकास और संसार से मुक्ति के लिए केंद्रीय माना गया है, जो दिव्य कृपा पर जोर देती है। यह दर्शन पंचभेद और तत्ववाद पर केंद्रित है, जहाँ सत्य शास्त्र, धारणा और तर्क से जानने योग्य है।

1.5 साहित्य, नैतिकता और मनोविज्ञान :–

भारतीय महाकाव्य, रामायण और महाभारत, सिर्फ कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि ये नैतिकता (धर्म) और कर्मों के परिणामों का गहरा अन्वेषण हैं। महाभारत में धर्म संदर्भ पर निर्भर करता है, जबकि रामायण धर्म के आदर्श पालन को दर्शाती है। ये ग्रंथ पात्रों के माध्यम से जटिल नैतिक दुविधाओं को प्रस्तुत करते हैं, जिसे 'कथात्मक नैतिकता' कहा जाता है। इसके साथ ही, पतंजलि के योग सूत्र और भगवद गीता में मानवीय इच्छाओं और वैराग्य के मनोविज्ञान पर भी गहन विचार मिलता है। पतंजलि इच्छाओं को स्वस्थ और अस्वस्थ में वर्गीकृत करते हैं, जबकि गीता परिणामों की परवाह किए बिना कर्तव्य पालन (निष्काम कर्म) का सिद्धांत सिखाती है। ये ग्रंथ हमें आंतरिक शांति और मनोवैज्ञानिक संतुलन बनाए रखने के लिए वैराग्य और कर्म के बीच संतुलन स्थापित

करना सिखाते हैं।

कला और सौंदर्य के सिद्धांत प्राचीन भारतीय ग्रंथों में संगीत और सौंदर्य के सिद्धांत भी विस्तार से बताए गए हैं। शारंगदेव के संगीत रत्नाकर और भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ध्वनि और संगीत का गहरा विश्लेषण मिलता है। ध्वनि (नाद) को इन ग्रंथों में एक महत्वपूर्ण शक्ति माना गया है जो भावनाओं और चेतना को प्रभावित करती है। संगीत रत्नाकर में रागों के माध्यम से विभिन्न भावनाओं को जगाने की बात की गई है, जबकि नाट्यशास्त्र संगीत और नृत्य के अंतर्संबंध पर जोर देता है।

रस और भाव का सिद्धांतनाट्यशास्त्र का केंद्रीय सिद्धांत रस है, जो कला और दर्शक के बीच एक भावनात्मक सेतु का काम करता है। भरत मुनि ने आठ प्राथमिक रसों (श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, और अद्भुत) की पहचान की, जिसमें बाद में शांत रस को भी जोड़ा गया। रस सिद्धांत का उद्देश्य दर्शकों को एक 'आनंद' या परमानंद की स्थिति तक पहुँचाना है, जो स्पष्ट अभिव्यक्ति के बजाय सूक्ष्म सुझाव (ध्वनि) से उत्पन्न होता है। यह सिद्धांत नाटक से लेकर संगीत और नृत्य तक सभी कलाओं में लागू होता है। इस प्रकार, रस केवल एक कलात्मक लक्ष्य नहीं है, बल्कि एक गहन भावनात्मक प्रक्रिया है जो कलाकार, कला और दर्शक को एक साझा चेतना में जोड़ती है। यह भारतीय कला का सार है, जो मनोरंजन से कहीं अधिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक परिष्कार का मार्ग प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष :–

भारतीय विचार के दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक आयाम एक समग्र ढाँचा बनाते हैं जो अस्तित्व को समझने, कल्याण को बढ़ावा देने और नैतिक आचरण का मार्गदर्शन करते हैं। उपनिषदों की आत्मन और ब्रह्मन् की अद्वैतवादी दृष्टि ने मुक्ति के मार्ग के रूप में अनुभवात्मक ज्ञान पर जोर दिया और सभी प्राणियों की एकता में निहित नैतिकता के लिए एक सार्वभौमिक आधार प्रदान किया। अद्वैत वेदांत ने घटनात्मक दुनिया की मायावी प्रकृति पर जोर देते हुए भी सहज करुणा को प्रोत्साहित किया। भक्ति आंदोलनों ने व्यक्तिगत भक्ति को एक परिवर्तनकारी आध्यात्मिक मार्ग के रूप में समर्थन दिया, जिससे समाज में आध्यात्मिक पहुँच का लोकतंत्रीकरण हुआ और हाशिए पर पड़े समूहों को सशक्त बनाया गया। यह दार्शनिक विचारों और सामाजिक सुधार के बीच एक गतिशील अंतर्संबंध को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, रामायण और महाभारत जैसे शास्त्रीय भारतीय साहित्य, धर्म और कर्म की जटिलताओं का अन्वेषण करते हुए नैतिक दर्शन का एक समृद्ध स्रोत हैं। पतंजलि के योग सूत्र और भगवद गीता इच्छा को नियंत्रित करने और वैराग्य विकसित करने के लिए कालातीत मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, जिससे भावनात्मक लचीलापन और आंतरिक शांति मिलती है। अंत में, संगीत रत्नाकर और नाट्यशास्त्र में निहित ध्वनि और संगीत की प्राचीन भारतीय समझ, सौंदर्यशास्त्र, तत्वमीमांसा और ध्वनिक विज्ञान का एक परिष्कृत संश्लेषण है, जहाँ कला को रस के माध्यम से भावनात्मक परिष्कार और आध्यात्मिक उत्थान का एक मार्ग माना जाता है। सामूहिक रूप से, ये आयाम भारतीय विचार की स्थायी प्रासंगिकता को उजागर करते हैं, जो मानवीय अस्तित्व के प्रति अपने एकीकृत दृष्टिकोण से नैतिक दुविधाओं, मनोवैज्ञानिक कल्याण और अर्थ की खोज जैसी समकालीन वैश्विक चुनौतियों का समाधान करने के लिए गहन अंतर्दृष्टि और व्यावहारिक प्रतिमान प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. चट्टोपाध्याय, डी. (2009). भारतीय दर्शन सरल परिचय. राजकमल प्रकाशन।
2. दासगुप्ता, एस. (1973). ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी. खंड–2 यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. फ्रेडरिक मैक्स मुलर. (1919). द सिक्स सिस्टम्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी।
4. गुप्त, डी., और नाथ, एस. (1922). भारतीय दर्शन का इतिहास खंड 1 (पहला संस्करण). कैम्ब्रिज एट द यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. हरिमोहन झा. (1964). भारतीय दर्शन परिचय (1 (न्याय), दूसरा (वैशेषिक)). पुस्तक भण्डार पटना।
6. मैकडोनेल, ए. ए. (2016). ए वैदिक रीडर फॉर स्टूडेंट्स. एडिशननेक्स्ट.कॉम।
7. मैसूर हिरियन्ना. (1932). आउटलाइन्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी, एम. हिरियन्ना द्वारा. जॉर्ज एलन एंड अनविन।
8. राधाकृष्णन, एस. (1989). भारतीय दर्शन–1. राजपाल एंड संस।
9. रैंडल, एच. एन. (1976). इंडियन लॉजिक इन द अर्ली स्कूल्स।
10. आर. डी. श्रीवास्तव, और गोपीनाथ कविराज. (1941). भारतीय दर्शन का इतिहास (पहला संस्करण). शारदा प्रेस प्रयाग।
11. सतीश चंद्र विद्याभूषण. (1978). हिस्ट्री ऑफ इंडियन लॉजिक।
12. श्रीपाद कृष्ण बेलवलकर, और रानाडे, आर. डी. (1919). एन आउटलाइन स्कीम फॉर ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 204–207
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

वृषभ का प्रतीकात्मक विकास : सिंधु से गुप्त काल तक मुद्राओं में एक अनुशीलन

विशाखा पाण्डेय

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,

पं. महादेव शुक्ल कृषक पीजी कॉलेज, गौर, बस्ती, उत्तर प्रदेश।

सारांश :–

वृषभ भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्रतीकात्मक परंपराओं में एक अत्यंत महत्वपूर्ण पशु रहा है। यह न केवल शक्ति, धैर्य एवं कृषिपरक जीवन का प्रतीक रहा, बल्कि विभिन्न कालों में राजनैतिक, धार्मिक और दैवीय मान्यताओं से भी जुड़ा रहा। सिंधु घाटी सभ्यता की मुहरों से लेकर गुप्त काल की मुद्राओं तक वृषभ का अंकन एक निरंतरता और विकास की कहानी कहता है। इस शोधपत्र में सिंधु, मौर्य, शुंग, सातवाहन, कुषाण और गुप्त कालीन मुद्राओं पर वृषभ के विविध रूपों, उसकी प्रतीकात्मकता तथा उस समय के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह अनुशीलन यह स्पष्ट करता है कि वृषभ का प्रतीक कालानुक्रम में कैसे एक कृषिपरक पशु से धार्मिक एवं शासकीय सत्ता के प्रतीक में परिवर्तित हुआ।

प्रस्तावना :–

भारतीय पुरातत्व, प्रतीकवाद और मुद्रा विज्ञान के क्षेत्र में वृषभ एक अत्यंत उल्लेखनीय चिन्ह के रूप में सामने आता है। मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरणों में पशुओं का मानव जीवन से घनिष्ठ संबंध रहा है, विशेषकर कृषिप्रधान समाजों में। वृषभ, जो भारतीय परिप्रेक्ष्य में शक्ति, स्थिरता, उत्पादकता और धार्मिकता का प्रतिनिधि माना गया है, प्राचीन मुद्राओं में अपनी विशिष्ट उपस्थिति के कारण अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है।

सिंधु घाटी सभ्यता की मुद्राओं एवं मुहरों पर वृषभ का अंकन उस काल की धार्मिक आस्था, सामाजिक संरचना और आर्थिक पद्धतियों का संकेतक माना जा सकता है। तत्पश्चात मौर्य, शुंग, सातवाहन, कुषाण और गुप्त काल में वृषभ का प्रतीकात्मक स्वरूप बदलता हुआ दिखाई देता है। कहीं यह 'नंदी' के रूप में शिव की उपासना का माध्यम बना, तो कहीं राज्य की आर्थिक समृद्धि और धार्मिक वैभव का प्रतीक।

वृषभ के प्रतीकात्मक विकास को मुद्राओं के माध्यम से परखते हुए यह जानने का प्रयास करता है कि समय के साथ उसकी धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भूमिका में किस प्रकार परिवर्तन आया और किस प्रकार यह प्रतीक एक निरंतर सांस्कृतिक धारा का अंग बना रहा।

मुद्राओं में वृषभ का प्रतीकात्मक विकास :-

1. सिंधु घाटी सभ्यता (2600-1900 ई.पू.) :-

सिंधु घाटी सभ्यता की मुहरों पर वृषभ का अंकन बहुतायत में मिलता है। ये वृषभ प्रायः सींग ऊँचे उठाए, सजीव मुद्रा में अंकित हैं। इन मुहरों में एक वृषभ के सामने किसी ध्वज, वृक्ष या यज्ञ चिह्न की उपस्थिति भी देखी गई है। इससे प्रतीत होता है कि वृषभ न केवल कृषिपरक अर्थव्यवस्था का प्रतीक था, बल्कि किसी धार्मिक अनुष्ठान या शक्ति की अवधारणा से भी जुड़ा था।

शक्ति, उर्वरता, कृषिजन्य समृद्धि संभवतः किसी देवता का वाहन या प्रतिनिधि रहा,मोहनजोदड़ो की एक प्रसिद्ध मुहर पर एक शक्तिशाली सींगदार वृषभ का अंकन मिलता है, जो एक प्रमुख प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है। इस मुहर पर वृषभ को सावधान मुद्रा में खड़ा हुआ दिखाया गया है, जिसके पीछे एक रेखीय लेखन में हड़प्पा लिपि के चिन्ह भी अंकित हैं। इसी प्रकार हड़प्पा की अन्य मुहरों में भी वृषभ के साथ लिपि चिह्न अंकित पाए जाते हैं, जो उस समय की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक संरचना की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। वृषभ यहाँ शक्ति, समृद्धि और व्यापारिक जीवन का संकेतक माना जाता है।

2. मौर्य काल (321-185 ई.पू.) :-

मौर्य काल की पंचमार्क मुद्राओं में स्पष्ट वृषभ आकृति नहीं मिलती, लेकिन कुछ प्रतीकों को वृषभ से जोड़कर देखा गया है। सम्राट अशोक की नीतियों में अहिंसा और पशु संरक्षण को महत्व दिया गया, जिससे वृषभ की धार्मिक गरिमा बनी रही। धर्म और शासन के बीच संतुलन अशोक द्वारा पशु हिंसा निषेध से वृषभ की गरिमा वृषभ प्रत्यक्ष प्रतीक न होकर सांस्कृतिक आभास मात्र हैं।

3. शुंग एवं सातवाहन काल (185 ई.पू.-200 ई.) :-

इस काल में मुद्राओं और मूर्तिकला दोनों में वृषभ की छवि स्पष्ट रूप से उभरती है। सातवाहन राजाओं की मुद्राओं पर वृषभ का अंकन सामान्यतः शिव के प्रतीक 'नंदी' के रूप में मिलता है।

धार्मिक : शैव परंपरा से जुड़ा।

शासन : शक्ति और धर्म का संयोजन।

सातवाहन सिक्कों पर खड़े वृषभ की आकृति, अमरावती और नासिक की गुफाओं में वृषभ संग चित्रांकन है।

4. कुषाण काल (1st-3तक सदी ई.) :-

कुषाण काल में वृषभ की छवि और अधिक परिपक्व हो जाती है। कुषाण सम्राट विशेष रूप से बहुधर्मी और प्रतीकात्मकता के समर्थक थे। उनकी मुद्राओं पर अनेक देवी-देवताओं के साथ वृषभ भी अंकित किया गया।

वृषभ को शिव के वाहन नंदी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। यह शासक की धार्मिक सहिष्णुता और आध्यात्मिक सत्ता का प्रतीक बना है।

कुषाण काल के प्रमुख शासकों कनिष्क, हुविष्क और वसुदेव प्रथम की मुद्राओं पर वृषभ का अंकन प्रमुख रूप से दिखाई देता है। कनिष्क की मुद्राओं पर भगवान शिव के साथ खड़े वृषभ (नंदी) का सुंदर अंकन मिलता है, जो उनकी धार्मिक आस्था और शक्ति का प्रतीक माना जाता है। हुविष्क की मुद्राओं पर भी वृषभ शक्ति और

समृद्धि के प्रतीक के रूप में अंकित है, जहाँ भारतीय और विदेशी देवताओं के साथ वृषभ का चित्रण मिलता है। वसुदेव प्रथम की मुद्राओं पर तो विशेष रूप से शिव और उनके वाहन नंदी का अत्यंत स्पष्ट और कलात्मक अंकन प्राप्त होता है, जो शैव धर्म की लोकप्रियता को दर्शाता है। इस प्रकार कुषाण शासकों की मुद्राओं में वृषभ का अंकन धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक महत्व का परिचायक बनता है।

5. गुप्त काल (319–550 ई.) :–

गुप्त काल भारतीय संस्कृति का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस काल की मुद्राओं में प्रतीकात्मकता अपने चरम पर थी। वृषभ विशेष रूप से शिव के वाहन 'नंदी' के रूप में प्रमुखता से उपस्थित होता है। धर्मराज्य की अवधारणा में वृषभ शिवभक्ति का प्रतीक, राजनीतिक सत्ता का धार्मिक आधार है।

गुप्त काल के शासकों में समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त प्रथम और स्कंदगुप्त की मुद्राओं पर वृषभ का अंकन प्रमुखता से देखने को मिलता है। समुद्रगुप्त की अश्वमेध प्रकार की मुद्राओं में यज्ञ–वेदी के समीप वृषभ अंकित है, जो वैदिक परंपरा और राजशक्ति का प्रतीक माना जाता है। कुमारगुप्त प्रथम की मुद्राओं में वृषभ को शांत और सजीव मुद्रा में दिखाया गया है, जो धर्म, समृद्धि और स्थिरता का प्रतीक है। स्कंदगुप्त की मुद्राओं में भी वृषभ के अंकन के प्रमाण मिलते हैं, जो विशेष रूप से शैव धर्म के प्रति उनकी आस्था को दर्शाते हैं। गुप्त काल में वृषभ शक्ति, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक गौरव का महत्वपूर्ण प्रतीक बनकर उभरा।

सम्राट समुद्रगुप्त के स्वर्ण सिक्कों पर शिव के साथ वृषभ मंदिर स्थापत्य में वृषभ की प्रमुख उपस्थिति (यद्यपि यह सिक्कों से अलग है)

विश्लेषणात्मक निष्कर्ष :–

1. सिंधु काल में वृषभ कृषिपरक और धार्मिक शक्ति का प्रतीक था।
2. मौर्य काल में वृषभ की छवि अप्रत्यक्ष रही, किंतु उसकी धार्मिक गरिमा बनी रही।
3. शुंग–सातवाहन काल में वह शिव से जुड़कर धार्मिक प्रतीक बना।
4. कुषाण काल में वृषभ बहुधर्मी राज्य की आध्यात्मिकता का संकेतक बना।
5. गुप्त काल में वृषभ राज्य की धर्मनिष्ठता और शैव परंपरा का सीधा संकेत बना।

निष्कर्ष :–

वृषभ का प्रतीकात्मक विकास प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म और शासन की गहराइयों को दर्शाता है। सिंधु सभ्यता की प्रारंभिक मुहरों से लेकर गुप्त काल की स्वर्ण मुद्राओं तक वृषभ का अंकन यह दर्शाता है कि यह प्रतीक समय के साथ–साथ न केवल बना रहा, बल्कि उसमें गहन परिवर्तन और विस्तार भी हुआ।

प्रारंभिक चरण में वृषभ एक कृषि समाज की उर्वरता, शक्ति और स्थायित्व का प्रतिनिधि था, जबकि बाद के कालों में वह धार्मिक प्रतीक, विशेषकर शैव परंपरा में नंदी के रूप में प्रमुखता से उभरा। शुंग, सातवाहन और कुषाण कालों में उसकी धार्मिक भूमिका और सुदृढ़ हुई, वहीं गुप्त काल में यह प्रतीक धर्मराज्य और शासक की धार्मिक निष्ठा का प्रतिनिधि बन गया।

यह भी स्पष्ट होता है कि वृषभ के प्रतीक का प्रयोग केवल एक चित्र या सजावटी चिह्न के रूप में नहीं था, बल्कि उसके माध्यम से शासक, समाज और धर्म – तीनों के बीच एक वैचारिक संवाद स्थापित किया गया। प्राचीन भारतीय मुद्राओं पर इस प्रतीक की निरंतर उपस्थिति भारतीय मानसिकता में इसकी गहराई और स्थायित्व

को सिद्ध करती है।

इस अध्ययन से यह भी सिद्ध होता है कि भारतीय मुद्रा प्रणाली केवल आर्थिक विनिमय का माध्यम नहीं थी, बल्कि वह धार्मिक विश्वासों, राजनीतिक शक्तियों और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन भी थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आल्टेकर, ए. एस. द कॉइनएज ऑफ एंशिएंट इंडिया, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1957, पृ. 115–118।
2. गुप्त, पी. एल. कॉइन्स, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1969, पृ. 78–80।
3. जॉन मार्शल, मोहनजोदड़ो एंड द इंडस सिविलाइजेशन, लंदन, 1931, खंड 1, पृ. 224–227।
4. ग्रेगोरी एल. पॉसेल, द इंडस सिविलाइजेशन, 2002, पृ. 144–146।
5. रोमिला थापर, प्राचीन भारत, पेंगुइन, 2002, पृ. 192–195।
6. लक्ष्मी तनाचर्य, इंडियन आइकनोग्राफी, भारतीय कला प्रकाशन, 2001, पृ. 62–64।
7. आर. एस. शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति, मैकमिलन, 1983, पृ. 98–100।
8. आर. नागास्वामी, स्टडीज इन साउथ इंडियन कॉइन्स, खंड 3, 1985, पृ. 37–39।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 208–214
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

छत्तीसगढ़ के महान संत बाबा गुरू घासीदास जी का समाज दर्शन

अविनाश बनर्जी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सारांश :–

छत्तीसगढ़ की धरती पर "मनखे–मनखे एक बरोबर" अर्थात "मानव–मानव एक सामान" का महत्वपूर्ण नारा देने वाले,सतनाम पंथ के प्रणेता, समाज सुधारक और आध्यात्मिक गुरु, संत गुरु घासीदास जी का नाम अत्यंत सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। वे एक सच्चे सत्य के अन्वेषक थे, जिन्होंने अपने जीवन को समाज के उत्थान और मानवता की सेवा में समर्पित कर दिया। संत कबीर की तरह ही गुरु घासीदास जी भी निरक्षर थे, पढ़ना–लिखना नहीं जानते थे, फिर भी उनके ज्ञान और दूरदर्शिता का कोई सानी नहीं था। उन्होंने उस समय के समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और जातिवाद जैसी सामाजिक बुराइयों का डटकर विरोध किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को सद्कर्म, सद्वाणी, सत्संग और सद्व्यवहार जैसे मार्गों पर चलकर सद्गति प्राप्त करने का संदेश दिया। उन्होंने लोगों को आपसी प्रेम, भाईचारा और सद्भावना का पाठ पढ़ाया। उस समय सामाजिक मान्यताएं मूल्यहीन हो चुकी थीं। न्याय व्यवस्था कमजोर थी और लोग अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने से डरते थे। ऐसे कठिन समय में गुरु घासीदास जी का अवतरण हुआ। उन्होंने लोगों को अन्याय के खिलाफ लड़ने का साहस दिया और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। उन्होंने उस युग की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आवश्यकताओं को समझा और उनके समाधान के लिए प्रयास किए।

बीज शब्द :– सतनाम पंथ, संत गुरु घासीदास, जातिवाद, सात उपदेश, 42 अमृत वाणी।

प्रस्तावना :–

छत्तीसगढ़ की पावन धरती, जहाँ की माटी से अनगिनत वीर, कलाकार और संतों ने जन्म लिया है, 1756 से लेकर लगभग 1830 ई. तक संत गुरु घासीदास के कर्मक्षेत्र के रूप में इतिहास के पन्नों में अंकित है। यह वह समय था जब भारतवर्ष पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा जा रहा था और छत्तीसगढ़ भी इससे अछूता नहीं था। संत गुरु घासीदास के जन्म के समय की राजनीति, समाज और धर्म, ये तीनों ही स्तंभ अशांति और अव्यवस्था के दलदल में धँसते जा रहे थे। राजनीतिक परिदृश्य पर नजर डालें तो भोंसलों का अत्याचार और अंग्रेजों की धूर्त नीतियाँ छत्तीसगढ़ की जनता पर कहर बरपा रही थीं। लगातार बढ़ते अत्याचारों से त्रस्त जनता ने राजाओं से भी भरोसा उठा लिया था और निराशा के सागर में डूबकर ईश्वर की शरण में जा बैठी थी। उनके

हृदय में आक्रोश तो था, परन्तु दिशाहीनता के कारण वे कुछ कर पाने में असमर्थ थे। ऐसी विषम और विकट परिस्थिति में एक ऐसे मार्गदर्शक, एक ऐसे प्रकाश–पुंज की आवश्यकता थी जो इस घोर अंधकार को चीरकर जनता को सही राह दिखा सके, उन्हें आत्मविश्वास से भरकर नई ऊर्जा प्रदान कर सके। एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो कलह के कुहरे को चीरता हुआ सूर्य की भांति प्रकाशित होकर किंकर्तव्यविमूढ़, दिशाहीन और हताश जनता को सन्मार्ग पर ले जा सके। जो निरीह और निष्प्राण जनता को आत्मशक्ति और मनुष्यता के प्रति श्रद्धा और विश्वास से सशक्त बनाकर परिस्थितियों से लोहा लेने के लिए तैयार कर सके, उन्हें एक नई दिशा, एक नया उद्देश्य प्रदान कर सके।

संत गुरु घासीदास ऐसे ही युगद्रष्टा पुरुष थे, जिन्होंने उस समय की अराजकता और निराशा के बीच आशा की किरण जगाई। उन्होंने अपने ज्ञान, करुणा और दृढ़ संकल्प से लोगों में नया जोश भरा। उनके सत्य वचन और सरल उपदेश जनमानस में गहरे उतर गए। उनके उपदेशों का असर इतना गहरा हुआ कि छत्तीसगढ़ में शोषकों के प्रति विद्रोह का बिगुल बज गया। उन्होंने जिस स्पष्टता और निडरता से क्रांतिकारी बातें कहीं, वह एक युगद्रष्टा ही कह सकता है। उनके वचनों में एक अद्भुत शक्ति थी जो सीधे हृदय को छू जाती थी। जन साधारण को एहसास हुआ कि यही वह मार्ग है जिसका अनुसरण करके वे अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं। उन्होंने सत्य और अहिंसा का संदेश दिया और लोगों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार सतनाम आन्दोलन रूपी क्रांति पूरे छत्तीसगढ़ में जंगल की आग की तरह फैल गई और लोगों में एक नई चेतना का संचार हुआ। यह आंदोलन केवल एक धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि एक सामाजिक और राजनीतिक जागृति का भी प्रतीक था। इसने लोगों को अपनी शक्ति का एहसास कराया और उन्हें एकजुट होकर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया।

गुरु घासीदास का जन्म वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य के अंतर्गत रायपुर जिले (वर्तमान में बलौदा बाजार जिला) के गिरौद नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था, जिसे अब गिरौदपुरी धाम के नाम से जाना जाता है। यह गाँव महानदी के तट पर स्थित शिवरीनारायण से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। गिरौदपुरी, छाता पहाड़ की ढलान पर, प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण जोंक नदी के किनारे बसा हुआ है। संत घासीदास जी के पिता का नाम महंगूदास और माता का नाम अमरौतिन था। इनका जन्म सोमवार, 18 दिसंबर, सन् 1756 ई. को हुआ था। अल्पायु में ही संत गुरु घासीदास का विवाह सिरपुर निवासी अंजोरदास (अंजोरी) की पुत्री सफुरा के साथ संपन्न हुआ। घासीदास के चार पुत्र और एक कन्या थी। इनमें अमरदास, बालकदास, अड़गड़ियादास और आगरदास पुत्र थे तथा सहोदरा (सुभद्रा) कन्या थी। समकालीन अंग्रेज लेखक 'जे. ई. ओ. डब्ल्यू किंग्स' के अनुसार – 'बाबाजी को उच्च वर्ग के लोगों द्वारा इतना प्रताड़ित किया गया कि उन्हें गिरौदपुरी त्यागनी पड़ी। वे अपने परिवार सहित भंडारपुरी आ गए। गौतम बुद्ध के समान, उन्हें औरा–धौरा वृक्ष के नीचे ज्ञान की प्राप्ति हुई' संत गुरु घासीदास ने समाज में एक नवीन क्रांति का सूत्रपात किया। दैनिक जीवनचर्या में परिवर्तन तथा सामाजिक बदलाव लाने हेतु उन्होंने गौतम बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग के समान सात सिद्धांतों का प्रतिपादन किया और यह संदेश अपनी मातृभाषा छत्तीसगढ़ी में ही दिया था। उनके सिद्धांतों में अखंडता विद्यमान थी।

संत गुरु घासीदास जी अपने समय के एक अद्वितीय और प्रभावशाली संत थे। उनके व्यक्तित्व की तुलना उस युग के किसी अन्य संत से नहीं की जा सकती। वे न केवल उच्च कोटि के साधक थे, बल्कि एक

क्रांतिकारी समाज सुधारक और गहन विचारक भी थे। वास्तव में, उन्हें सच्चे मानव धर्म का संस्थापक कहा जा सकता है, जिसका आधार मानवता और प्रेम है। उनका जीवन दर्शन मानव समाज और जीवन को प्रकाशित करता है, मानवता के मार्ग को प्रशस्त करता है। यह दर्शन करुणा, त्याग, प्रेम, क्षमा, ममता, सहिष्णुता, बंधुत्व, सौहार्द, सेवा और समर्पण जैसे उदात्त गुणों से ओतप्रोत है। यह श्स्वश के त्याग और श्परश की स्वीकृति पर बल देता है, जो भारतीय संस्कृति के आदर्श वाक्य ष्वसुधैव कुटुम्बकमष की भावना को पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित करता है। यह दर्शन हमें सिखाता है कि संपूर्ण विश्व हमारा परिवार है और हमें सभी के साथ प्रेम और सद्भाव से रहना चाहिए।

संत गुरु घासीदास जी का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब समाज धार्मिक कट्टरता, छुआछूत और ऊँच–नींच की भावना से ग्रस्त था। निम्न जातियों का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से शोषण व्याप्त था। उच्च वर्गों का वर्चस्व समाज पर छाया हुआ था और वे निम्न वर्गों को अपवित्र मानते थे। अछूतों को छूना तो दूर, उन्हें देखना भी पाप समझा जाता था। यह एक ऐसा अंधकार युग था जहाँ मानवता कुचली जा रही थी और न्याय का नामोनिशान नहीं था। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'गुरु घासीदासरू संघर्ष समन्वय और सिद्धांत' में इस सामाजिक विषमता का मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने लिखा है कि दृ उस समय न्याय नाम की कोई चीज नहीं थी और अपराधियों का वर्गीकरण उनकी जाति के आधार पर होता था। उदाहरण के लिए, यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र की हत्या कर देता था, तो उसे केवल जुर्माना भरना पड़ता था, जबकि यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मण की हत्या करता था, तो उसे मृत्युदंड दिया जाता था। यह भेदभावपूर्ण व्यवस्था समाज में व्याप्त अन्याय और असमानता को दर्शाती है। इस सामाजिक व्यवस्था में, मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं था, खासकर निम्न जातियों के लोगों का। उन्हें उच्च वर्गों के द्वारा निरंतर उत्पीड़न और शोषण का सामना करना पड़ता था। उनके मानवाधिकारों का हनन किया जाता था और उन्हें एक सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर नहीं दिया जाता था। गुरु घासीदास जी ने इसी अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई और समाज में समानता और न्याय स्थापित करने के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने सत्य, अहिंसा और प्रेम के मार्ग पर चलते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने लोगों को जागृत किया और उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। उनका संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि उनके समय में था।

संत गुरु घासीदास जी ने अपने अनुयायियों से भी आह्वान किया कि साधु धर्म का पालन करते हुए छत्तीसगढ़ के साथ–साथ अन्य प्रदेशों में भी सतनाम का प्रचार–प्रसार करें। उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिया, अपितु स्वयं भी आचरण किया। गुरु घासीदास जी द्वारा की गई सात रावटियों (यात्राओं) का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें प्रथम रावटी – सिरपुर, महासमुंद, फिंगेश्वर, राजिम, धमतरी, चरामा, होते हुए कांकेर तकय द्वितीय रावटी – दंतेवाड़ाय तृतीय – नारायणपुर, मानपुरय चतुर्थ – मोहला–चौकीय पंचम – डोंगरगढ़य षष्ठम – खैरागढ़, भंवरदाहय और सप्तम – भोरमदेव, सेतगंगा, बेलपान, तथा अंत में जांजगीर जिले के दलहापोड़ी तक की यात्राएँ सम्मिलित हैं। दलहापोड़ी में भी उन्होंने अपने उपदेशों द्वारा सतनाम का प्रचार किया। रायपुर राजपत्र के अनुसार, सन् 1820 से 1830 ई. के बीच छत्तीसगढ़ की 12 प्रतिशत जनसंख्या गुरु घासीदास जी के अनुयायी बन चुकी थी। उन्होंने भंडारपुरी में सतनाम धाम का निर्माण करवाया और दो जोड़ी जैतखाम स्थापित किए। यह

स्थान एक धर्म नगरी के रूप में विकसित हुआ और यहीं से गुरु गद्दी को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। जैतखाम के विषय में नम्मूराम मनहर जी लिखते हैं कि जैतखाम अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रतीक है। यह भय से मुक्ति, आत्म–जागरण, आत्म–चेतना, अहंकार, राग–द्वेष, मोह–माया, काम–क्रोध, तृष्णाओं से मुक्ति, मिथ्या सोच और दृष्टि का नाश, शत्रुओं पर विजय, सुख–शांति, क्रांति, सतनाम धर्म और सतपुरुष के स्मरण का प्रतीक है। संत गुरु घासीदास जी ने जातिवाद पर प्रहार करते हुए सामाजिक एकता और बंधुत्व पर बल दिया। उनके प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि गरीब, दलित और शोषित वर्ग एकजुट होने लगे। इससे उच्च वर्ग के लोग उनके विरुद्ध हो गए, लेकिन गुरु घासीदास जी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। उनके व्यक्तित्व में अद्भुत निडरता और निर्भिकता थी। वे किसी भी विरोध या धमकी से नहीं डरे और अपने अनुयायियों के साथ उच्च वर्गीय व्यवस्था से लोहा लेते रहे। उन्होंने सदियों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी और समाज में एक नई चेतना का संचार किया। उनके उपदेशों से समाज में एक सामाजिक क्रांति का उदय हुआ, जिसने लोगों को समानता, न्याय और स्वतंत्रता का मार्ग दिखाया। उनके विचारों ने समाज में एक नई जागृति पैदा की और लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया।

धार्मिक कर्मकांडों, जातीयता एवं भेदभाव के कारण तत्कालीन समाज में विविधता दृष्टिगोचर होती थी। समाज उच्च एवं निम्न, इन दो वर्गों में विभाजित था। ये दोनों वर्ग अनेक जातीयताओं एवं प्राचीन परंपराओं के पोषक व समर्थक थे, जबकि निम्न वर्ग इनका विरोध करता था। पारस्परिक एकता और संगठन का अभाव था। सर्वत्र विषमता, विविधता, फूट और विद्वेष व्याप्त था। साथ ही, समाज में व्यभिचार और नशाखोरी जैसी कुरीतियाँ विद्यमान थीं, जिनका लाभ समाज के तथाकथित ठेकेदार उठा रहे थे। स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। जिन कन्याओं को वस्त्र धारण करने का भी अवसर नहीं प्राप्त था, उनका भी विवाह कर दिया जाता था। ये बालिकाएँ श्नग्निकाश कहलाती थीं। समाज में नग्निका कन्याओं का विवाह सर्वोत्तम माना जाता था। समाज में न केवल नारी, अपितु अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के साथ–साथ किसानों और मजदूरों की स्थिति सामाजिक और आर्थिक दोनों दृष्टिकोणों से दयनीय थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के प्रति उच्च वर्गों का व्यवहार अनुचित था। उन्हें मंदिरों में प्रवेश, धार्मिक अनुष्ठानों में भागीदारी, उत्तम वस्त्र एवं आभूषण धारण करने तथा शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रखा जाता था। समाज के अभिन्न अंग होते हुए और हिंदू धर्म में आस्था रखते हुए भी, उच्च वर्गों द्वारा उन्हें सभी अधिकारों से वंचित कर घोर नारकीय और घृणित जीवन जीने के लिए विवश किया जाता था। यह सामाजिक विषमता का स्पष्ट प्रमाण था। उनके साथ होने वाला भेदभाव अमानवीय और निंदनीय था। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था समाज के विकास में बाधक थी और मानवीय मूल्यों के विरुद्ध थी। समाज में व्याप्त कुरीतियाँ और भेदभाव समाज के पतन का कारण बन रहे थे। ऐसे समय में समाज सुधार की आवश्यकता स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी।

संत गुरु घासीदास जी ने अपने अनुयायियों से आह्वान किया कि साधु धर्म का पालन करते हुए छत्तीसगढ़ के साथ–साथ अन्य प्रदेशों में भी सतनाम का प्रचार–प्रसार करें। उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिया, अपितु स्वयं भी आचरण किया। गुरु घासीदास जी द्वारा की गई सात रावटियों (यात्राओं) का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें प्रथम रावटी – सिरपुर, महासमुंद, फिंगेश्वर, राजिम, धमतरी, चरामा, होते हुए कांकेर तकय द्वितीय रावटी – दंतेवाड़ाय तृतीय – नारायणपुर, मानपुरय चतुर्थ – मोहला–चौकीय पंचम – डोंगरगढ़य षष्ठम –

खैरागढ़, भंवरदाहय और सप्तम – भोरमदेव, सेतगंगा, बेलपान, तथा अंत में जांजगीर जिले के दलहापोड़ी तक की यात्राएँ सम्मिलित हैं। दलहापोड़ी में भी उन्होंने अपने उपदेशों द्वारा सतनाम का प्रचार किया। रायपुर राजपत्र के अनुसार, सन् 1820 से 1830 ई. के बीच छत्तीसगढ़ की 12 प्रतिशत जनसंख्या गुरु घासीदास जी के अनुयायी बन चुकी थी। उन्होंने भंडारपुरी में सतनाम धाम का निर्माण करवाया और दो जोड़ी जैतखाम स्थापित किए। यह स्थान एक धर्म नगरी के रूप में विकसित हुआ और यहीं से गुरु गद्दी को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। जैतखाम के विषय में नम्मूराम मनहर जी लिखते हैं कि – जैतखाम अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रतीक है। यह भय से मुक्ति, आत्म–जागरण, आत्म–चेतना, अहंकार, राग–द्वेष, मोह–माया, काम–क्रोध, तृष्णाओं से मुक्ति, मिथ्या सोच और दृष्टि का नाश, शत्रुओं पर विजय, सुख–शांति, क्रांति, सतनाम धर्म और सतपुरुष के स्मरण का प्रतीक है। संत गुरु घासीदास जी के समय समाज में जादू–टोना, कर्मकांड तथा अंधविश्वास व्याप्त था। प्रत्येक घर में बैगा का प्रचलन था। समस्त प्राकृतिक तत्वों जैसे पर्वत, नदी, नाले, वृक्ष, जीव–जंतु, पर्वत–पहाड़ों में विभिन्न कुल देवी–देवताओं की मान्यता थी, जो आज भी समाज में कहीं–कहीं देखने और मानने को मिल जाती है। इनके प्रकोप से बचाव हेतु जनमानस में पशु–पक्षियों की बलि और नर बलि प्रथा प्रचलित थी।

टोनही प्रथा के नाम पर समाज में तथाकथित धर्मगुरुओं द्वारा महिलाओं का शारीरिक शोषण किया जाता था। ये स्वयंभू धर्मगुरु चरित्रहीन हो चुके थे। उन्होंने धर्म का परित्याग कर दिया था और मठ–मंदिर महाजनी व्यवसाय के केंद्र बन गए थे। धर्म के नाम पर नर बलि, पशु बलि, पक्षी बलि जैसी कुप्रथाएँ समाज में व्याप्त थीं। तंत्र–मंत्र सिद्धि के लिए टोनही और बैगाओं का गांवों में आतंक था। धार्मिक स्थल व्यभिचार के अड्डे बन गए थे। मद्य–मांस सेवन समाज में सामान्य बात थी। तत्कालीन मराठा शासक आलसी, अकर्मण्य और महत्वाकांक्षी थे। साथ ही, जमींदारों, पिंडारियों और मराठा शासकों ने छत्तीसगढ़ क्षेत्र को अत्यधिक लूटा। राजा और सामंत विलासिता में लिप्त हो चुके थे। ऐसी विषम परिस्थितियों और प्रतिकूल वातावरण में संत गुरु घासीदास जी ने जगह–जगह जाकर लोगों को जागृत किया। समाज सुप्त अवस्था में था, उन्हें जागृत कर अपने सिद्धांतों और वाणियों के माध्यम से एक नई दिशा और पंथ प्रदान किया, वह था श्सतनाम पंथश। सत्य की उपासना को समाज में स्थापित किया। मनुष्य चाहे किसी भी जाति या धर्म का हो, सभी का ईश्वर एक है, वह 'सत्य' है।

तत्कालीन समय में जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन कृषि था। किन्तु कृषि भूमि जमींदारों के स्वामित्व में होती थी। किसी भी व्यक्ति का किसी भी खेत पर स्थायी अधिकार नहीं था। खेतों में कार्यरत श्रमिक केवल खेतिहर मजदूर ही थे।

संत गुरु घासीदास अपने युग की समस्त विसंगतियों एवं विषमताओं से न केवल अवगत थे अपितु उन परिस्थितियों को अनुभूत भी किया था। संत गुरु घासीदास अपने युग की विषम परिस्थितियों की ही उपज थे। इसी कारण जीवन व समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण आत्म–अनुभूत था। वे अनुभव–सिद्ध ज्ञान को सर्वोपरि मानते थे। उन्होंने शास्त्रों और ग्रंथों में वर्णित बातों को सहजता से स्वीकार नहीं किया अथवा उनका महत्त्व कम आँका। वे कहते थे –'पढ़बे–सुनबे–गुनबे तभी मानबे।' संत घासीदास ने जो संदेश अथवा उपदेश अपनी वाणियों में प्रदान किए, वे उनके जीवन–पर्यंत त्याग, तपस्या और अनुभव का परिणाम थे। संत गुरु घासीदास की 42

वाणियाँ व 7 (सात) सिद्धांत/उपदेश विश्व-विख्यात हैं, जो निम्न हैं –

गुरू घासीदास जी के सात सिद्धांत/उपदेश :-

1. सतनाम को मानो। 2. मूर्ति पूजा मत करो। 3. जाति–पांति प्रपंच से दूर रहो। 4. मांसाहार मत करो, जीव हत्या मत करो, मद्यपान मत करो। 5. पर–स्त्री को माता मानो और व्यभिचार मत करो। 6.चोरी मत करो, जुआ मत खेलो। 7. अपरान्ह में खेत/हल मत जोतो।

गुरू घासीदास जी की अमृत वार्णीयां :-

1. सत्य ही मानव के आभूषण है। 2. मनखे–मनखे एक है। 3. गुरु बनाहू जान के, पानी पीहू छान के। 4. अपनला हीनहर अऊ कमजोर झन मानहू। 5. सत अऊ ईमान में अटल रहू। 6. जइसे खाबे अन्न, तइसे बनही बन। 7. महिनत के रोटी ह, सुख के आधार ए। 8. रिस अऊ बरम ला तियाग थे, तेकर बनथे। 9. दान कभू नहीं मांगना, उधार न लेना न देना। 10. पराया धन तोर बर कौड़ी ए। 11. पहुंना ला साहेब सतमान जानिहौ। 12. सगा के जबर बइरी सगा होथे। 13. सबर के फल मीठा होथे। 14. मया के बंधना असली ए। 15. दाई–ददा अऊ गुरु ला सनमान देव। 16. मुरही गाय के दूध ला झन पीबे। 17. इहि जनम लो सुधारना सांचा हे। 18. सतनाम घर–घर म समाय हे। 19. गियान (ज्ञान) के पथ किरपान के धारा ए। 20. एक घूवा मारे, तेनो तोर बरोबर आय। 21. अपन ला देख, दूसरा ला देख, बेरा देख, कुबेरा देख। 22. जतेक हो सब मोर संग अव। 23. गाय भैंस ला नांगर म झन जोतबो । 24. मांस ल झन खाबे । 25. 25. जान के मरई हा तो मार आये, कोनो ला सपना मा मरई हा घलो मार आय। 26. पान, परसाद, नरियर, सुपार, चढ़ाना, ढोंग आय। 27. मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, संतद्वार, बनावन, मोर मन मा भावना नइये, तोला बनाय बर हे तब जलाशय बना, तरिया बना, कुंआ बना, धर्मशाला बना, अनाथालय बना, दुर्गम ला सुगम बना। 28. कोनो जीवला झन मारबे, जीवहत्या महापाप आय। 29. तैय अपन बर महीना के खर्च बटोर ले तब भक्ति भाव करवे नहिते झनकर। 30. मरे के बार पितर मनई मोला बइहा लागथे। 31. तामसी भोजन अऊ दुर्गुण ला दूर रइहो। 32. धन ला उडा झन, बने काम मा खर्च कर। 33. चुगली अऊ निंदा मा घर बिगड़थे। 34. से धरती तोर हे येकर सिंगार भर । 35. दीन दुखी के सेवा सबले बड़े धरमाए। 36. काकरोबर कांटा झन बो। 37. घमण्ड का करथस, सब नसा नई। 38. झगरा के जर नइ होय, ओखी ह खोखी होथे। 39. नियाय (न्याय) सब बर बराबर हो थे। 40. धर्मात्मा उही हरे जौन धरम करथे। 41. बइरी सन धलो पिरित रखव। 42. मोर संत मन मोला काकरो ला बढ़े झन कहिहौ, नइते मोला हुदेसना मा हुदेसन आय।

निष्कर्ष :-

संत गुरु घासीदास केवल संत ही नहीं थे, अपितु एक क्रांतिकारी विचारक भी थे। संत गुरु घासीदास जी द्वारा स्थापित सतनाम पंथ का मुख्य उद्देश्य – 'मानव–मानव एक समानष के सिद्धांत पर आधारित एक समतामूलक समाज की स्थापना करना था। इस पंथ ने समाज के सभी वर्गों को एक साथ लाने और उन्हें समानता के सूत्र में बांधने का कार्य किया। उनके विचार समाज में समानता, भाईचारे और सद्भाव को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनका 'मानव–मानव एक समान' का संदेश हमें यह सिखाता है कि हमें सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखना चाहिए और उनके साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए। बाबा जी के उपरोक्त सभी सिद्धांत वर्तमान समय में भी अत्यंत उपयोगी, अनुकरणीय व प्रासंगिक हैं।

संत गुरु घासीदास जी ने समाज में उच्च आदर्शों, सिद्धांतों एवं विचारों के माध्यम से, विशेषकर दलित

एवं वंचित वर्ग में बौद्धिक चेतना और तार्किक क्षमता का विकास किया। इसके परिणामस्वरूप, वे अशिक्षित होते हुए भी जागरूक, संगठित और संघर्षशील बनने में सक्षम हुए। गुरु घासीदास जी सम्पूर्ण मानवता के पक्षधर थे। उन्हें धर्म, सम्प्रदाय, जाति, कुल आदि के आधार पर मानव–मानव में भेदभाव स्वीकार्य नहीं था। वे सामाजिक संरचना में धर्म, जाति और सम्प्रदाय के आधार पर किए जाने वाले विभेद को एक श्रेष्ठ समाज के निर्माण में बाधक मानते थे। संत गुरु घासीदास जी के प्रत्येक उद्गार में विश्व प्रेम और सौहार्द का भाव निहित था, और वे इसी भावना को समाज में स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने जातिगत और वर्गगत श्रेष्ठता के आधार पर समाज में व्याप्त विभाजन और असमानता का खुलकर विरोध किया। इसीलिए, संत गुरु घासीदास जी को सामाजिक क्रांति का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने समाज के सभी वर्गों को समानता का अधिकार दिलाने के लिए निरंतर प्रयास किया और समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का संदेश दिया।

गुरु घासीदास जी का मानना था कि समाज की उन्नति तभी संभव है जब सभी लोग मिलजुल कर रहें और एक–दूसरे का सम्मान करें। उन्होंने अपने जीवनकाल में समाज सुधार के लिए अनेक कार्य किए और लोगों को शिक्षित और जागरूक बनाने का प्रयास किया। उनका मानना था कि शिक्षा ही समाज में बदलाव ला सकती है और लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक कर सकती है। गुरु घासीदास जी ने समाज में फैली अंधविश्वास और कुप्रथाओं का भी विरोध किया और लोगों को इनसे दूर रहने की सलाह दी। उन्होंने सत्य, अहिंसा और प्रेम का मार्ग अपनाने पर जोर दिया और लोगों को एकता और भाईचारे का संदेश दिया। उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं और समाज को दिशा प्रदान करते हैं। गुरु घासीदास जी का जीवन और उनके विचार हमें प्रेरणा देते हैं कि हम समाज के उत्थान के लिए कार्य करें और एक बेहतर समाज का निर्माण करें।

सहायक सन्दर्भ सूची :–

1. गुरु घासीदास : संघर्ष समन्वय और सिद्धांत – डॉ. हीरालाल शुक्ल, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1995
2. गुरु घासीदास : डॉ. बलदेव, जयप्रकाश मानस, रामशरण टंडन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
3. समग्र छत्तीसगढ़ : छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रन्थ अकादमी, रायपुर, 2017
4. गुरु घासीदास और उनका सतनाम पंथ : डॉ. अनिल कुमार भतपहरी, बुक्स क्लिनिक पब्लिशिंग, 2021
5. छत्तीसगढ़ का इतिहास– डॉ. भगवान सिंह वर्मा, म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2003
6. सामाजिक क्रांति के अग्रदूत : गुरु घासीदास : सं.– डॉ. राजाराम बनर्जी, अविनाश बनर्जी, स्वाक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
7. गुरु घासीदास और उनका सतनाम आन्दोलन : सर्वोत्तम स्वरुप, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 215-222

समकालीन पत्रकारिता की दृष्टि में 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

विशाल, कनिष्ठ शोध अध्येता, इतिहास विभाग,
प्रो. आशा यादव, आचार्या, इतिहास विभाग,
मुलतानीमल मोदी कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद।

सारांश :-

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता अपने चरमोत्कर्ष पर थी। कंपनी ने भारत की राजनीतिक सत्ता का अपहरण कर लिया व अपने राजनीतिक स्वार्थों एवं व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए शोषण की नीतियां बनाना प्रारंभ कर दिया था। कम्पनी ने देश के प्रत्येक वर्ग जैसे देशी रियासतों, व्यापारियों, किसानों एवं सैनिकों को अपनी शोषण की नीतियों का शिकार बनाया। ऐसे समय में सन् 1857 ई में जनमानस के विरोध का एक विस्फोट हुआ। लेकिन यह विस्फोट अचानक नहीं हुआ। अपितु इसकी पृष्ठभूमि में कई कारण रहे जिसमें समकालीन भारतीय पत्रकारिता की अपनी विशिष्ट भूमिका थी। वैसे तो भारतीय पत्रकारिता इस समय अपनी शैशवास्था में थी। लेकिन भारतीय समाचार पत्रों विशेषकर देशी भाषाओं के समाचार पत्र जिसमें हिंदी उर्दू और फारसी के समाचार पत्र प्रमुख रूप से थे। इनके लेखों एवं रिपोर्टो में कंपनी शासन के शोषण की कड़ी आलोचना की गई। विभिन्न समाचार पत्रों की लेखनी अपनी ओजस्वी वाणी से भारतीय जनमानस के मन में स्वतंत्रता की भावना भर रही थी।

इन पत्रों में पयामे आजादी, समाचार सुधावर्षण एवं देहली उर्दू अखबार प्रमुख थे। पयामे आजादी को तो इस स्वतंत्रता संग्राम का मुखपत्र तक कहा गया। इसके संपादक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी अजीमुल्ला खां थे। इस समाचार पत्र में लिखे एक गीत हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा से भारतीय क्रांतिकारियों को विशेष प्रेरणा मिली। जहां समाचार सुधा वर्षण ने डलहौजी की राज्य हड़प नीति की कड़ी आलोचना की, वहीं देहली उर्दू अखबार ने कंपनी सरकार के देशी कर्मचारियों के असमान वेतन को लेकर एक टिप्पणी प्रकाशित की। देशी समाचार पत्रों के लगातार बढ़ते प्रभाव को देखते हुए इन पर प्रतिबंध लगाया गया। पयामे आजादी पत्र की प्रति प्राप्त होने मात्र पर उसके प्राप्तकर्ता को गोलियों से भून दिया जाता। सत्य लिखने पर पत्रकारों को मृत्यु दण्ड तक की सजा दी गई। इसी समय के कंपनी सरकार समर्थक अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र इस संग्राम को जनविद्रोह ना बता सैनिकों का विद्रोह घोषित कर रहे थे तथा स्वतंत्रता सेनानियों की आलोचना कर रहे थे। इस संग्राम में पत्रकारिता ने अपनी वास्तविक एवं महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

बीज शब्द :- 1857 ई की क्रांति, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता, स्वतंत्रता आंदोलन में पत्रकारिता की भूमिका।

प्रस्तावना :-

1757 ई० के प्लासी के युद्ध के बाद भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता का औपचारिक पदार्पण हुआ। एक शताब्दी के भीतर यह सत्ता इतनी मजबूत हो गई कि भारत की लगभग प्रत्येक राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गई तथा कम्पनी ही भारत की एकमात्र वास्तविक सत्ता बन गई। चूंकि अंग्रेज यहां व्यापार करने आए थे तथा बाद में यहां की आंतरिक परिस्थितियों का लाभ उठा उन्होंने यहां की राजनीतिक सत्ता भी ग्रहण कर ली। तथा नीतियां बनाने लगे यह नीतियां उनके हितों से संबद्ध थी। तथा हर प्रकार से भारतीयों के हितों के विरुद्ध और उनके शोषण के लिए बनती थी। अतः इस शोषण के विरुद्ध धीरे-धीरे क्रांति की भावना बलवती होती चली गई। तथा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रारंभ में इसने कंपनी के शोषण के विरुद्ध एक व्यापक जन विद्रोह का रूप ले लिया। लेकिन यह जन विद्रोह अचानक प्रारंभ नहीं हुआ अपितु इसकी पृष्ठभूमि में अनेकों कारण थे। शोषण के विरुद्ध जनसामान्य की जागृति में समकालीन पत्रकारिता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों का जनता पर अत्यंत महत्वपूर्ण तथा गहरा प्रभाव पड़ रहा था।[1] ये समाचार पत्र कंपनी सरकार के शोषण के विरुद्ध लगातार लिखकर जन सामान्य को जागरुक कर रहे थे। डॉ. राम रतन भटनागर ने प्रसिद्ध फ्रांसीसी हिंदी भाषाविद् तासी का संदर्भ देकर लिखा है कि गदर के प्रारंभिक दिनों में कुछ पत्र विद्रोह और विद्रोहियों के समर्थक थे। परंतु अधिकतर भारतीय पत्र तटस्थ थे परंतु यह धारणा असत्य हैं क्योंकि उस समय के अधिकतर पत्र जो भारतीयों के प्रभाव एवं स्वामित्व में थे वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता के समर्थक थे[2] जिसके कारण उन्हें कंपनी सरकार की दमन नीति का शिकार होना पड़ा। वास्तव में पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम बन गई थी जिससे सामान्यजनों को कंपनी की शोषणकारी नीतियों का पता चल रहा था और उनके अंदर स्वतंत्रता की भावना सशक्त होती जा रही थी।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में पत्रकारिता :-

1857 ई० के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में समकालीन पत्रकारिता ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। पत्रकारों और संपादकों की लेखनी लगातार ओजस्वी लेखों के माध्यम से कंपनी सरकार की दमनकारी नीतियों एवं अत्याचार की कड़ी आलोचना करने लगी। जिसमें विशेष कर देशी भाषाओं के समाचार पत्रों ने तो जन-जन तक कंपनी के शोषण की कथाएं प्रेषित की। पयामे आजादी, समाचार सुधावर्षण, दिल्ली उर्दू अखबार और मुंबई समाचार जैसे समाचार पत्रों ने लगातार अपनी लेखनी को कार्यरत रखा। जहां एक ओर देशी भाषा के समाचार पत्र कंपनी सरकार के शोषण और नीतियों के विरुद्ध लिख रहे थे वही अंग्रेजी के अधिकतर समाचार पत्रों ने अंग्रेजों के प्रति अपनी राज भक्ति प्रदर्शित की।

1857 का यह संग्राम वास्तव में एक व्यापक संग्राम था। इस संग्राम में करीबन 4 लाख भारतीय बलिदान हुए तथा यह एक लाख वर्ग मील क्षेत्र में फैला हुआ था। 1857 के कुछ समय पहले ही भारत में रेल और तार का आगमन हुआ था पर वह बहुत सीमित इलाकों तक ही थे और डाक की गति भी बहुत धीमी थी ऐसे में एक से दूसरे जगहों पर आवाजाही या संदेश भेजना कितना कठिन रहा होगा इसकी सहज कल्पना की जा सकती

है ऐसे माहौल में भी महान क्रांति का दायरा बहुत लंबे चौड़े इलाके तक रहा[3] तो इसमें निश्चित रूप से समकालीन पत्रकारिता की भूमिका रही।

समकालीन समाचार पत्रों में छपे कुछ लेखों के उदाहरणों में कंपनी सरकार की शोषणकारी नीतियां स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। उदाहरण के तौर पर समाचार सुधा वर्षण के 18 मई 1855 के अंक में नागपुर की बात शीर्षक से छपी खबर इस प्रकार है :–

अनुवाद 'हम लोग के गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी बहादुर ने नागपुर राज्यापहरण कर राजरानियों का गहनें एवं सब खजाना लूटकर कोलकाता महानगर के तोषक खाने में रखा है। हेमलटन कंपनी के साहब लोग स्पष्ट रूप से समाचार पत्रों में विज्ञापन देकर उन पदार्थों को नीलाम कर बेचने का समय सभी को बताएंगे। और एक विशेष बात सुनने में आई है कि नागपुर के महाराज की रानियां जिस महल में वास करती है उनको उसे महल से निकालकर दूर कहीं और एक छोटे स्थान पर वास कराने की इच्छा रखते हैं और उस राज मंदिर में कमिश्नर साहब को वास करने के लिए अनुमति देने वाले हैं।'[4]

आगे यही समाचार पत्र पाठकों से प्रश्न करता है कि 'वृथा निरपराधी राजा के मरे पर उनकी विधवा रानियां को नाना प्रकार की यातना देते हैं यह क्या उचित है?'[5]

इसी समाचार पत्र के 26 मई 1857 की अंक में लिखा गया था कि हाल ही में अंग्रेजों ने हमारे धर्म को नष्ट करने का प्रयास किया अतः ईश्वर उन पर क्रुद्ध है ऐसा आभास मिलता है कि ब्रिटिश साम्राज्य का अब अंत आ गया।'[6]

अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर ने फरमान निकाला जिसमें देशवासियों से अपील की गई थी कि वह अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल दें। इस फरमान को समाचार सुधावर्षण ने दिन ज्यों का त्यों छाप दिया।[7] इसी घटनाक्रम के चलते इस समाचार पत्र पर कोलकाता के सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई हुई। बम्बई के बॉम्बे समाचार ने भारतीयों के मन की ही बात कही जब उसने डलहौजी को 'कुख्यात पिंडारी तथा राज्यों को लूटने वाला' बतलाया।[8]

21 जून 1857 को देहली उर्दू अखबार के तीसरे पृष्ठ की टिप्पणी देखिए अंग्रेजी राज्य में सैकड़ो रुपए मासिक वाले सारे बड़े पद आपस में अपने रंग वालों को दे दिए जाते थे। जैसा कि प्रसिद्ध है अंधा बांटे रेवड़ी फिर अपने–अपने को दे.... यह धन वें बड़ी कंजूसी से खर्च करते थे वह हजारों लाख रुपए बचाते थे और अपने देश ले जाते थे उनका धन किसी प्रकार का हमारे भारत वर्ष में फैलता था न ही उससे हमें कुछ लाभ होता था। भारतीयों में तो बहुत थोड़े से 100 रुपया वेतन पाते थे।[9]

समाचार पत्रों और विज्ञापनों के माध्यम से कंपनी सरकार के विरुद्ध भारतीयों के एक होने की अपील भी की जाती थी। आर के रॉय अपनी पुस्तक Race, Religion and Realm : The Political Theory of The Reigning India Crusade 1857 में लिखा है कि इस समय के इश्तहारों में बार–बार हिंदुस्तान के हिंदुओं और मुसलमान का विदेशी सरकार के विरुद्ध आह्वान किया गया है।[10]

इस तरह के प्रकाशित आलेखों ने भारतीय जनमानस को कंपनी द्वारा किए जा रहे शोषण के प्रति जागृत कर दिया। इसी जन जागरण ने आगे चलकर क्रांति का रूप धारण कर लिया।

पत्रकारिता के विरुद्ध कंपनी सरकार का दमन चक्र :–

समाचार पत्रों के उग्र लेखों ने कंपनी सरकार के अत्याचार एवं शोषण को उजागर कर दिया। इसके चलते जन सामान्य में असंतोष उत्पन्न हो गया तथा वे कंपनी शासन के विरुद्ध होते गए। तब सरकार ने जनसामान्य द्वारा किए गए इस विद्रोह, पत्रकारिता एवं इसके प्रचार–प्रसार दोनों पर अपना दमन चक्र चलाना प्रारंभ किया। प्रतिक्रियावादी प्रेस संबंधी समकालीन सरकारी अधिनियमों ने कंपनी सरकार की मंशा को उजागर कर दिया। अंग्रेजी समाचार पत्रों में भी इस पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया।

सन् 1857 ई के विद्रोह के समय पत्र जनता की भावनाओं को प्रतिबिंबित कर रहे थे उनका चरित्र राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर चुका था।[11] जिसका कारण समाचार पत्रों में प्रकाशित राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत उत्तेजित करने वाली सामग्री थी। इसलिए समाचार सुधावर्षण, देहली उर्दू समाचार, सुल्तान अल अखबार एवं दूरबीन जैसे समाचार पत्रों पर कठोर प्रतिबंधात्मक कार्यवाही हुई।

विद्रोह की आपातकालीन स्थिति को नियंत्रित करने के लिए तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने 13 जून 1857 को पत्रकारिता पर अंकुश लगाते हुए लाइसेंसिंग अधिनियम पारित किया तथा लेखन एवं मुद्रण की स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया। इसके अनुसार बिना सरकार की अनुमति के प्रेस रखना और उसको चलाना गैरकानूनी था। दरअसल यह पत्रकारिता की स्वतंत्रता पर सरकार का अंकुश था। इसीलिए इसे गैंगिंग एक्ट या गला घोंटू कानून की संज्ञा दी गई।

इस अधिनियम को पारित कराते हुए लॉर्ड कैनिंग ने कहा था कि '.....तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर पेश करने के अलावा सरकार को लगातार बदनाम किया जा रहा है अपने उद्देश्य के बारे में झूठ–मूठ ऊंचे –ऊंचे दावे पेश किया जा रहे हैं। और सरकार तथा उसके प्रजाजनों के बीच असंतोष और नफरत के बीज बोएं जा रहे हैं.... . जो टिप्पणी इस समय मैं भारतीय समाचार पत्रों के विषय में कर रहा हूं वह यूरोपियन समाचार पत्रों पर लागू नहीं होती।'[12] कैनिंग कहता है– 'पिछले कुछ हफ्तों में देसी अखबारों ने समाचार प्रकाशित करने की आड़ में भारतीय नागरिकों के दिलों में दिलेराना हद तक बगावत की भावना पैदा कर दी है।[13]

अधिनियम बनने के बाद कार्यवाही तेज हो गई। कोलकाता के सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई की तैयारी प्रारंभ हो गई। 17 जून को तीन पत्रों के संपादकों, मुद्रकों एवं प्रकाशकों पर मुकदमे चले। कलम के ये सिपाही थे दूरबीन के अहमद अली, सुल्तान अल अखबार के मोहम्मद ताहिर तथा समाचार सुधावर्षण के श्याम सुंदर सेन।[14]

इसी तरह 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दिल्ली के आसपास देहली उर्दू अखबार की उत्तेजना पूर्ण वाणी अपना कार्य कर रही थी। वास्तव में इस समाचार पत्र की लेखनी शस्त्रों से भी ज्यादा प्रभावी हो रही थी इसके संपादक मौलवी मोहम्मद बाकर अंग्रेजों को सहन नहीं हो रहे थे अतः दिल्ली पर नियंत्रण करने के बाद उन्होंने मौलवी बाकर पर राजद्रोह के आरोप लगाए। उनके आलेखों ने जनता में उत्तेजना पैदा कर दी थी। इसी नाते अखबार और उसके संपादक पर बगावत भड़काने का आरोप लगाया गया। महान सेनानी मौलवी बाकर को दिल्ली में 14 सितंबर 1858 को गिरफ्तार किया गया और मुकदमे का नाटक किए बिना ही 16 सितंबर 1858 को कुख्यात अधिकारी मेजर हडसन ने फांसी पर लटका दिया।[15]

इस कालखंड का सबसे प्रमुख समाचार पत्र पयामे आजादी था जिसे अपनी कार्यशैली एवं स्पष्ट स्वतंत्रता समर्थक लेखनी हेतु इस स्वतंत्रता संग्राम का मुख पत्र कहा गया। क्रांति की समाप्ति के बाद उसे भी सरकारी

दमन चक्र का सामना करना पड़ा। इसके संपादक अजीमुल्ला खान और प्रकाशक बहादुर शाह के पुत्र वेदार बख्त थे। इसका प्रकाशन 8 फरवरी 1857 से दिल्ली में किया गया। इसकी स्पष्ट, प्रखर और तेजस्वी वाणी ने देशवासियों में स्वतंत्रता का दीप जला दिया। इसने क्रांति के लिए एक उपयोगी वातावरण बना दिया था।

इसके प्रभाव को देखते हुए सरकार ने पूरी शक्ति के साथ इस पर अंकुश लगाने तथा इसे समाप्त करने की चरम सीमा का पालन किया। जिस व्यक्ति के पास भी इस पत्र की कोई प्रति मिल जाती तो उसे अनेक यातनाएं दी जाती इसकी सारी प्रतियों को जब्त करने का विशेष अभियान तत्कालीन सरकार ने चलाया।[16] फिर भी यह अपना कार्य क्रांति की समाप्ति से पूर्व तक करता रहा। इसी समाचार पत्र की जन जागरण करती कुछ पंक्तियां देखिए :–

हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा पयामे आजादी हिंदी का पहला पत्र था जिसने क्रांति का बिगुल बजाया। इसकी भाषा आग उगलती थी इसके विचारों में तूफान था। यही कारण था कि यदि इसकी प्रति हिंदुओं के पास मिलती तो बिना अदालत में लाए उसे जबरदस्ती गोमांस खिलाया जाता उसे सीधे गोली से उड़ा दिया जाता था। मुसलमान के पास बरामद होने पर उसे सुअर का गोश्त खिलाया जाता तथा गोलियों से भून दिया जाता था।[17]

पत्रकारिता के जन सामान्य पर बढ़ते प्रभाव ने सरकारी तंत्र को भयभीत कर दिया था। जिसके चलते कंपनी शासन ने पत्रकारिता विशेष कर देशी भाषा की पत्रकारिता का दमन करने का प्रयास किया।

पत्रकारिता की दृष्टि में संग्राम की प्रकृति, घटनाएं, कंपनी की दमन क्रिया एवं परवर्ती घटनाएं :–

1857 में कंपनी शासन की कुनीतियों एवं अत्याचारो के विरुद्ध हुए इस संघर्ष में समाज के एक बड़े वर्ग की भूमिका रही। शोषण के विरुद्ध इस संग्राम में सैनिकों, किसानों जमींदारों एवं कंपनी के नीतियों से पीड़ित अनेक राजाओं ने भाग लिया। वहीं दूसरी ओर कुछ बड़ी एवं संपन्न रियासतों जैसे ग्वालियर, पटियाला और राजपूताना की अनेक रियासतों ने अंग्रेजों की सहायता की। सिक्ख और गुरखों ने सरकार का साथ दिया था। देशी रजवाड़े ने या तो अंग्रेजों का साथ दिया था या फिर तटस्थ थे।[18]

जनसामान्य द्वारा व्यापक स्तर पर अंग्रेजों के समर्थन संबंधी विषय पर चर्चा करते हुए संग्राम के दशकों बाद प्रकाशित हुए सारसुधानिधि के प्रथम वर्ष के अंक 35 के विलायती समाचार पत्र और भारतवर्षीय राजा शीर्षक संपादकीय में लिखा गया :–

जब 1857 ई में सैन्य विद्रोह हुआ था तो कौन राजा विद्रोही होकर सामने खड़ा हुआ था। क्या इस पर भी गवर्नमेंट को विश्वास नहीं हुआ उस काल गवर्नमेंट की कितनी सेना थी। यदि भारतवासी गवर्नमेंट का पक्ष न करते तो क्या वैसे शीघ्र और सहज वह विद्रोह की शांति होती।[19]

किस तरह इस समाचार पत्र ने स्वतंत्रता संग्राम को सैन्य विद्रोह कहते हुए जन भागीदारी को अंग्रेजों के पक्ष में दिखाया तथा बताया कि अगर भारतीय अंग्रेजों के पक्ष में ना होते तो क्या वह इस विद्रोह को दबा पाते। लेकिन इसमें समर्थन से ज्यादा कटाक्ष दिखाई पड़ता है। दूसरे अर्थों में समाचार पत्र ने भारतीय जनमानस की सामूहिक शक्ति की महत्ता की ओर संकेत किया है।

इसी प्रकार जुलाई 1857 ईस्वी में लंदन टाइम्स ने लिखा : अधिकांश जनता ने विरोध के बजाय हमारे प्रति सहृदयता प्रदर्शित की है। और अनेक अवसरों पर भागते हुए अंग्रेजों को सुरक्षा प्रदान की है।[20]

लंदन टाइम्स ने इस समाचार के माध्यम से भारतीय प्रजा को राजभक्त बताने का प्रयास किया है जबकि किसी भी पीड़ित और शरण में आए व्यक्ति की सहायता करना आम भारतीय के संस्कार और परंपरा में है। अनेक ऐसे अवसरो पर अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को विशेष तौर पर संरक्षण दिया गया था। इसी प्रकार जहां भारतीय समाचार पत्रों विशेष कर देशी भाषा के समाचार पत्रों में इस जन विद्रोह और स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा दी है। वहीं दूसरी ओर राज भक्ति प्रदर्शित करते हुए अधिकतर अंग्रेज समर्थक अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्रों ने इसे राजद्रोह और सैनिक विद्रोह जैसी संज्ञा दी है।

एडिनबरा समीक्षा के अप्रैल 1859 के एक लेख में लिखा था : 'अपनी प्रगति के संपूर्ण समय में यह सैनिक विद्रोह ही रहा। अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किए गए नवीन राज्य अवध के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर नागरिक इसमें सम्मिलित नहीं हुए।'[21]

क्रांति के इस कालखंड में कंपनी सत्ता और अंग्रेजों के प्रति भारतीयों में कैसी भावना थी। उनके अंदर कितना असंतोष था इसका उल्लेख उस समय के लंदन से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र टाइम्स के संवाददाता डब्ल्यू० एच० रसल ने इस प्रकार किया है उत्तरी भारत में गोरे आदमी की गाड़ी को कोई भी मित्रता पूर्ण दृष्टि से नहीं देखता था।[22]

अवध में विद्रोह को कुचलते हुए अंग्रेजी सेना ने लखनऊ पर मार्च सन 1858 में अधिकार कर लिया तथा यहां लूटमार मचाई। लखनऊ की इस लूट का विशेष विवरण भी रसल ने ही दिया।

जब अंग्रेजी सेना ने दिल्ली पर अधिकार कर अपनी क्रूरता का प्रदर्शन किया तब इसी समाचार पत्र टाइम्स के एक पत्रकार ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा ष्शाहजहां के शहर में नादिरशाह के कत्लेआम के उपरांत ऐसा दृश्य नहीं देखा गया था।[23]

विद्रोह का दमन करते हुए अंग्रेजों की क्रूरता चरम सीमा पर थी लेकिन उनके अंदर भय भी था। समाचार सुधावर्षण ने अपने 5, 9 और 10 जून के अंकों में विद्रोही सेना की तैयारी और प्रगति के समाचारों को प्रकाशित किया था उन समाचारों से कंपनी सरकार भयभीत हो गई थी। 5 जून 1857 के अंक में समाचार सुधावर्षण ने लिखा कि मेरठ और दिल्ली के विद्रोह ने गवर्नर को इतना भयभीत कर दिया है कि उसने अपने सुरक्षा कर्मियों की संख्या बढ़ा दी और राज निवास के सभी रास्तों को प्रतिदिन ठीक आठ बजे रात्रि को बंद कर देने के आदेश दिए।[24]

इसी समाचार पत्र ने गवर्नर की दयनीय हालत का भी उल्लेख करते हुए आगे लिखा है कि गवर्नर प्रतिदिन दमदम बैरकपुर आदि स्थानों पर जाकर सिपाहियों से दोनों हाथ जोड़कर कहता कि मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा जिससे आपके धर्म को ठेस पहुंचे आपका धर्म जो कहे वही करिए इसके लिए आपको कोई नहीं रोकेगा।[25]

कंपनी सरकार जन सामान्य और शोषणकारी नीतियों के विरुद्ध सैनिकों के विद्रोह से किस प्रकार भयभीत और चिंतित थी तथा किस प्रकार गवर्नर ने धर्म का उल्लेख कर उन्हें अपने पक्ष में रखने का प्रयास किया। इस जन संग्राम में एक मुख्य कारण धार्मिक भी था ऐसे उल्लेखों से वह भी स्पष्ट हो जाता है।

समकालीन समाचार पत्रों में संग्राम की समाप्ति के घटनाक्रमों की विशेष जानकारी भी प्राप्त होती है। इस तरह के कई विशेष उल्लेख मालवा अखबार में प्रकाशित हुए। उसके 5 दिसंबर 1860 के अंक में लिखा गया

है कि 'अवध का समाचार है कि 1857 के उपद्रव के बाद मम्मू खां खान बहादुर और ज्वाला प्रसाद जो बड़ों के नेता थे पकड़े गए। नाना साहब और अजीमुल्ला मारे गए होंगे। अवध की बेगम के साथ 25000 लोग नेपाल चले गए उसमें से बहुत सारे लोग मारे गए बाकी पकड़ कर सौंप दिए गए।'[26]

मुख्य संग्राम के बाद की घटनाओं की जानकारी समाचार सुधाकर्षण में भी मिलती है उसके 29 सितंबर 1858 के अंक में उल्लेख है– 'कैप्टन मिनी के 29 सितंबर को रीवा से लिखे पत्र से पता चलता है कि कमांडर माइकेल ने महू राज्य से सेनाएं लेकर तात्या टोपे की सेनाओं पर हमला किया हम लोग लड़ाई जीत गए हैं विद्रोही हार गए हैं।'[27]

उपसंहार :–

इस प्रकार 1857 ई० के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को जब समकालीन पत्रकारिता की दृष्टि में देखा जाता है तब न केवल इसकी पृष्ठभूमि अपितु प्रकृति भी स्पष्ट हो जाती है। इसकी प्रकृति को लेकर इतिहासकारों में अलग–अलग मत है लेकिन पत्रकारिता एकदम स्पष्ट करती है कि यह सैनिक विद्रोह से ज्यादा जनविद्रोह था। देशी भाषा के समाचार पत्रों ने इसकी प्रकृति को राष्ट्रीय बताते हुए इस जनविद्रोह एवं स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा दी जबकि समकालीन सभी अंग्रेजी समाचार पत्र इस सैनिक विद्रोह बताते रहे। पत्रकारिता के विरुद्ध कंपनी सरकार का दमन चक्र इस बात का प्रमाण है कि पत्रकारिता किस प्रकार प्रभावी थी और लोगों को शोषणकारी नीतियों के विरुद्ध जागरूक कर रही थी।

संदर्भ :–

1. शीला रानी, प्रेस तथा जनमत 1947 तक, रामलखन शुक्ल (संपा०), आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, संस्करण 2022 पृ० स० 387
2. ब्रह्मानंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और उत्तर प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० स० 29
3. अरविंद कुमार सिंह, 1857 की जनक्रांति का पहला शहीद भारतीय पत्रकार मौलवी मोहम्मद बाकर, देशबंधु, https://www.deshbandhu.co.in/miscllenious/1857–की–जनक्रांति–का–पहला–शहीद–भारतीय–पत्रकार–मौलवी–मोहम्मद–बाकर–37427–2, 30/04/2025
4. डॉ० मंगला अनुजा, भारतीय पत्रकारिता नींव के पत्थर, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण 2018, पृ० स० 53
5. ––वही–– पृ० स० 53
6. ––वही–– पृ० स० 56
7. ––वही–– पृ० स० 58
8. स्नेह महाजन, 1857 का महा विद्रोह, रामलखन शुक्ल (संपा), आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृ० स० 257
9. अरविंद कुमार सिंह, ––वही––
10. स्नेह महाजन, ––वही––, पृ० स० 253

11. डॉ० अर्जुन तिवारी, हिंदी पत्रकारिता का बृहद इतिहास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० स० 98
12. ——वही—— पृ० स० 98
13. अरविंद कुमार सिंह, ——वही——
14. डॉ० मंगला अनुजा,——वही——, पृ० स० 58
15. अरविंद कुमार सिंह, ——वही——
16. डॉ० अर्जुन तिवारी, ——वही——, पृ० स० 96
17. ——वही——, पृ० स० 97
18. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2024, पृ० स० 81
19. ——वही—— पृ० स० 81
20. एल० पी० शर्मा, आधुनिक भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा—3, पृ० स० 295
21. ——वही——, पृ० स० 292
22. स्नेह महाजन, ——वही——, पृ० स० 253
23. एल० पी० शर्मा, ——वही——, पृ० स० 286
24. डॉ० मंगला अनुजा,——वही——, पृ० स० 57
25. ——वही——, पृ० स० 57
26. ——वही——, पृ० स० 43
27. ——वही——, पृ० स० 59

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 223–227

साठोत्तरी हिंदी गजल में सामाजिक यथार्थबोध

अमन कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध सार :–

साठोत्तरी हिन्दी गजल आधुनिक हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम बनकर उभरी है जो अब परंपरागत उर्दू काव्यधारा की सीमाओं से बाहर निकलकर समकालीन सामाजिक संकटों, नैतिक पतन, वर्गीय विषमता, भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता और आम आदमी की पीड़ा को स्वर दे रही है। स्वतंत्रता के बाद भारत में आए सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने जिस नए यथार्थ को जन्म दिया, साठोत्तरी गजलकारों ने उसे न केवल चित्रित किया बल्कि उस पर वैचारिक हस्तक्षेप भी किया। दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी, कुँअर बेचैन और शरद मिश्र जैसे रचनाकारों ने हिंदी गजल को जनचेतना और प्रतिरोध का औजार बना दिया। इन गजलों में प्रतीकात्मकता, व्यंग्य और मार्मिकता के माध्यम से सामाजिक विडंबनाओं को उद्घाटित किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य साठोत्तरी हिन्दी गजल में निहित सामाजिक यथार्थबोध की पहचान करना है जो इस विधा को केवल काव्यात्मक आनंद की वस्तु नहीं बल्कि एक जीवंत सामाजिक दस्तावेज के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

बीज शब्द :– साठोत्तरी हिन्दी गजल, सामाजिक यथार्थबोध, आम आदमी की पीड़ा, संवेदनहीनता, भ्रष्टाचार, आधुनिकता, सामाजिक सरोकार।

मूल आलेख :–

साठोत्तरी हिन्दी गजल आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट सामाजिक एवं कलात्मक विमर्श के रूप में स्थापित हो चुकी है, जो परंपरागत भावबोध और सौंदर्य–केन्द्रित दृष्टिकोण की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सामाजिक यथार्थ के बहुआयामी स्वरूप को कलात्मक गहनता के साथ अभिव्यक्त करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय समाज आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पुनर्संरचना की प्रक्रिया से गुजर रहा था, जहाँ औद्योगीकरण, नगरीकरण, वर्गीय विषमता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और सांप्रदायिक तनाव जैसे कारकों ने जीवन के यथार्थ को जटिल एवं विडंबनापूर्ण बना दिया। उक्त यथार्थ ने साहित्य को भी अपने प्रभाव क्षेत्र में लिया और विशेषतः गजल जैसी पारंपरिक उर्दू विधा में हिन्दी साहित्यकारों ने समकालीन सामाजिक संदर्भों की अभिव्यक्ति के नए मार्ग तलाशे। इस काव्यविधा का रूपांतरण केवल शिल्पगत नहीं बल्कि दृष्टिगत और वैचारिक स्तर पर भी था जहाँ हिन्दी गजलकारों ने प्रेम और श्रृंगार के पारंपरिक प्रतिमानों के स्थान पर संघर्ष, विसंगति, असंतोष और जनसामान्य की पीड़ा को स्वर दिया। साठोत्तरी हिन्दी गजल महज यथार्थ का चित्रण न करके उसकी अंर्तध्वनियों

को उद्घाटित करती है तथा संवेदनात्मक अनुभूति को विचारशील चेतना में रूपांतरित करती है। फलतः यह काव्यविधा एक सशक्त सामाजिक दस्तावेज के रूप में सामने आती है जो न केवल अपने समय का दर्पण है, बल्कि उसमें हस्तक्षेप की सृजनात्मक भूमिका भी निभाती है।

परंपरागत जीवन मूल्य, जिनके आधार पर भारतीय समाज ने अपने सांस्कृतिक अस्तित्व और सामूहिक जीवन का संतुलन बनाए रखा, आज आधुनिकता की दौड़ में छिन्न–भिन्न होते प्रतीत होते हैं। अहिंसा, सत्य, संयम, आत्मनियंत्रण, सादगी, सेवा और परोपकार जैसे मूल्य, जो भारतीय सांस्कृतिक मानस की रीढ़ माने जाते रहे हैं, उपभोक्तावाद और भूमंडलीकरण की तेज रफ्तार में हाशिए पर खिसकते जा रहे हैं। आधुनिक सामाजिक संरचना में भोगवादी प्रवृत्तियों, स्वार्थपरकता और प्रतिस्पर्धात्मक मानसिकता ने व्यक्ति को आत्मकेंद्रित और संवेदनाशून्य बना दिया है। मूल्यहीनता और नैतिक क्षरण की इस प्रवृत्ति को दुष्यंत कुमार अपने विशिष्ट प्रतीकात्मक शिल्प में इस प्रकार उजागर करते हैं कि समाज की भीतर तक सड़ चुकी संरचना पाठक के सामने एक बेचैन कर देने वाली यथार्थता के रूप में उपस्थित हो जाती है। वे कहते हैं :–

"हलाते जिस्म, सूरत-ए-जां और भी खराब,
चारों तरफ खराब, यहाँ और भी खराब।"[1]

वर्तमान सामाजिक संरचना एक गहरे संवेदनात्मक संकट की अवस्था में प्रवेश कर चुकी है, जहाँ मानवीय करुणा, सहानुभूति और सामूहिक चेतना जैसी मूलभूत अनुभूतियाँ दिन–ब–दिन क्षीण होती जा रही हैं। प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद और यांत्रिक जीवनशैली के प्रभाव में व्यक्ति की संवेदनशीलता लगभग शून्य होती प्रतीत होती है। आधुनिक मनुष्य केवल अपने स्वार्थ, सुविधा और सफलता तक सीमित रहकर एक स्वचालित इकाई में परिवर्तित हो गया है, जिसके भीतर दूसरे के सुख–दुख के प्रति सहभागिता की क्षमता तेजी से लुप्त होती जा रही है। पारस्परिक संबंधों में भावनात्मक जुड़ाव की जगह अब औपचारिकता और दिखावा ले चुका है। इस संवेदनहीनता और सामाजिक जड़ता की अवस्था को अदम गोंडवी अपने काव्य में गहन संवेदना के साथ रेखांकित करते हैं–

"माफ करिए, सच कहूँ तो आज हिंदुस्तान में,
कोख ही जरखेज है, एहसास बंजर हो गया।"[2]

लोकतांत्रिक संरचना में 'आम नागरिक' को शक्ति का केंद्रीय स्रोत और शासन की नैतिक आधारशिला माना जाता है, किंतु व्यावहारिक यथार्थ इससे भिन्न एक कटु विडंबना प्रस्तुत करता है। आम जन का अस्तित्व प्रायः नीतिगत घोषणाओं और चुनावी समीकरणों तक सीमित रह जाता है जबकि उसके भीतर चल रहे मानसिक, सामाजिक और आर्थिक संघर्षों की अनदेखी की जाती है। उसकी संवेदनाएँ, आकांक्षाएँ और अस्मिता अक्सर केवल संख्यात्मक आँकड़ों में समाहित कर दी जाती हैं। सत्ताशील वर्ग और सामाजिक प्रभुत्व की संरचनाएँ उसे 'नमूने' या 'आंकड़ों की भीड़' के रूप में देखती हैं न कि एक स्वतंत्र चेतना या पीड़ित मानवीय इकाई के रूप में। इसी गहरी उपेक्षा और अस्तित्वगत पीड़ा को जहीर कुरेशी अपनी संवेदनात्मक गजल में मार्मिक स्वर प्रदान करते हैं–

"मैं आम आदमी हूँ, तुम्हारा ही आदमी,
तुम काश, देख पाते मेरे दिल की चीर को।"[3]

स्वतंत्रता के बाद तीव्र शहरीकरण और ग्रामीण पलायन ने महानगरों को विकास और सुविधा के प्रतीक

के रूप में प्रस्तुत किया, किंतु यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया। महानगरों की चकाचौंध के पीछे श्रमिक वर्ग के श्रम और पसीने का कोई मूल्य नहीं रहा। आर्थिक विषमता के साथ–साथ मानसिक असुरक्षा और सामाजिक उपेक्षा की स्थितियाँ भी गहराती गईं। गाँव से आए श्रमिक के साथ शहर में भी शोषण, संदेह और उपेक्षा का ही व्यवहार हुआ। उसकी मेहनत को पहचान नहीं, बल्कि अविश्वास मिला। इस यथार्थ को कुँअर बेचौन अपनी गजल में अत्यंत मार्मिक प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं :–

"छा गया यह सोच सन्नाटा शहर में,
क्यों पसीने को गया डाटा शहर में।"[4]

आधुनिक सामाजिक वातावरण में भय केवल बाह्य या शारीरिक रूप में नहीं बल्कि जीवन की स्वाभाविक कोमलताओं जैसे सौंदर्य, प्रेम और उल्लास आदि को भी आक्रांत करने लगा है। अब संवेदनाओं पर भी एक अदृश्य नियंत्रण का दबाव है जहाँ प्रकृति तक संकोच में दिखाई देती है, फूल खिलने से कतराते हैं, हवाएँ धीमे चलती हैं और स्त्रियों को अपने शृंगार को स्थगित करने की सलाह दी जाती है। यह भय किसी एक सत्ता–व्यवस्था का परिणाम नहीं बल्कि उस मानसिकता का विस्तार है जो स्वतंत्रता की जगह नियंत्रण, और स्वाभाविकता की जगह अनुशासनित चुप्पी को वरीयता देती है। इस असुरक्षा और मानसिक दमन की छाया को शरद मिश्र अपनी गजल में अत्यंत मार्मिक प्रतीकों के माध्यम से रूपायित करते हैं :–

"कुछ तो समझौते हुए हैं उपवनों से,
आ रही ठंडी हवा वातायनों से।"[5]

भारतीय समाज में भ्रष्टाचार एक ऐसी संरचनात्मक विकृति का रूप ले चुका है, जो केवल प्रशासनिक कार्यप्रणालियों तक सीमित न रहकर संसाधनों के वितरण, नीति–निर्माण और कल्याणकारी योजनाओं के निष्पादन तक को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। जिन योजनाओं का उद्देश्य समाज के वंचित वर्गों को राहत पहुंचाना होता है वे बीच में ही सत्ता–तंत्र की स्वार्थसिद्धि में उलझकर निष्प्रभ हो जाती हैं। स्थिति इतनी सामान्य हो चली है कि अब जनता को यह अपेक्षा ही नहीं रहती कि कोई योजना पारदर्शिता के साथ अंतिम व्यक्ति तक पहुँचेगी। यह गहन अविश्वास और व्यवस्था के प्रति कटु व्यंग्य दुष्यंत कुमार के इस शेर में सघन रूप से व्यक्त होता है–

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"[6]

समकालीन सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि झूठ, छल और नैतिक विघटन अब केवल सत्ता या शासकीय तंत्र तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे जनमानस की चेतना में भी गहरे समाहित हो चुके हैं। सार्वजनिक जीवन में आदर्श, नैतिकता और संस्कृति के प्रतीक अब सौदेबाजी और बाजारीकरण की वस्तु बनते जा रहे हैं। जब सत्य भाषणों तक सीमित रह जाए, और आत्मा तक की नीलामी सामान्य हो जाए, तब सामाजिक मूल्यों का पतन केवल राजनीतिक विफलता नहीं, बल्कि सामूहिक नैतिक पराजय का संकेत बन जाता है। यह स्थिति तब और भी अधिक चिंताजनक हो जाती है जब समाज की भीड़ न केवल मौन दर्शक बन जाती है, बल्कि अन्याय और बेईमानी का तमाशा देखने में रत हो जाती है। इस विडंबना को एक तीव्र प्रतीकात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है :–

"जिस्म क्या है, रूह तक सब कुछ खुलासा देखिए,
आप भी इस भीड़ में घुसकर तमाशा देखिए।"[7]

भ्रष्टाचार की सबसे विकट विशेषता यह है कि वह प्रायः सामाजिक प्रतिष्ठा, शिष्टता और अनुशासन जैसे सतही मूल्यों की आड़ में छिपा रहता है। उसका वास्तविक स्वरूप इतना सुव्यवस्थित और परिवेश–संगत होता है कि सामान्य व्यक्ति उसके छलावे को पहचान ही नहीं पाता। यह विडंबना और गहरा हो जाती है जब तंत्र के ऊपरी स्तरों पर बैठे व्यक्ति जो समाज में प्रतिष्ठित, संयमित और मर्यादित प्रतीत होते हैं वास्तव में अनैतिक गठजोड़ और सत्ता–संरक्षित अपराध का हिस्सा होते हैं। ऐसे में भ्रष्टाचार केवल आर्थिक अपराध न रहकर एक नैतिक विघटन का सूचक बन जाता है, जिसे पहचानना और उसका प्रतिरोध करना आम नागरिक के लिए लगभग असंभव हो जाता है। इसी गूढ़ विडंबना को जहीर कुरेशी अत्यंत सूक्ष्म व्यंग्य के माध्यम से उजागर करते हैं–

"समुद्र शक्ल से कितना शरीफ लगता है,
ये तस्करों से मिला है, पता नहीं लगता।"[8]

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में नैतिक मूल्यों और आदर्शों का क्षरण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। व्यक्ति की चेतना में स्वार्थपरक प्रवृत्तियाँ इतनी गहराई से पैठ बना चुकी हैं कि सार्वजनिक हित और नैतिक उत्तरदायित्व जैसे विचार गौण होते जा रहे हैं। परिवर्तन की आकांक्षा रखने वाले अनेक व्यक्तित्व, जो कभी सामाजिक अन्याय, भ्रष्टाचार, शोषण और निर्धनता के विरुद्ध संघर्षरत थे, आज सत्ता, विलासिता और भोग के प्रतीक बनकर अपने ही आदर्शों से विमुख हो चुके हैं। इनकी वैचारिक प्रतिबद्धता अब केवल वैयक्तिक लाभ तक सीमित होकर रह गई है। लोकतांत्रिक मूल्यों, जन आकांक्षाओं एवं राष्ट्रीय संसाधनों की अभिव्यक्ति अब उनके निजी वैभव के बंगलों में कैद प्रतीत होती है। इस विडंबनात्मक स्थिति की तीव्र आलोचना करते हुए जनकवि अदम गोंडवी लिखते हैं :–

"जो व्यवस्था को बदलने के लिए बेताब थे,
कैद उनके बंगले में मुल्क की रानाई है।"[9]

समकालीन सामाजिक संरचना में नैतिक संवेदनशीलता का क्रमिक ह्रास एक गम्भीर चिंतन का विषय बन चुका है। इसका स्पष्ट उदाहरण सार्वजनिक स्थलों पर घटित होने वाली हिंसा एवं अन्यायपूर्ण घटनाओं के प्रति सामान्य नागरिकों की मौन स्वीकृति अथवा निष्क्रिय प्रतिक्रिया में देखा जा सकता है। जब अत्याचार सामने घटित हो रहा हो और बहुसंख्यक दर्शक मात्र मूकदर्शक बने रहें तो यह स्थिति न केवल व्यक्तिगत चेतना की शिथिलता को, बल्कि सामाजिक नैतिकता के विघटन को भी दर्शाती है। पीड़ित की सहायता करने की मानवीय एवं सामाजिक जिम्मेदारी का लोप भय, स्वार्थ या सामाजिक उदासीनता जैसे कारकों के कारण होता जा रहा है। यह प्रवृत्ति केवल आत्मकेंद्रित व्यवहार का परिणाम नहीं है, अपितु यह समष्टिगत चेतना के नैतिक पतन का परिचायक बन चुकी है। इस विकृत यथार्थ को शायर जहीर कुरेशी अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति में अत्यन्त मार्मिकता से रेखांकित करते हैं–

"जुल्म होते देखना आदत बनी,
लोग सड़कों पर ठहरकर देखते हैं।"[10]

निष्कर्ष :-

साठोत्तरी हिन्दी गजल आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक सशक्त सामाजिक संवेदना की वाहक विधा के रूप में स्थापित हुई है, जिसने परंपरागत सौंदर्यवादी दृष्टिकोण से हटकर सामाजिक यथार्थ की जटिलताओं को तीव्र वैचारिकता और प्रतीकात्मकता के साथ प्रस्तुत किया। इस दौर की गजलों ने मानवीय मूल्यों के क्षरण, संवेदनहीनता, भ्रष्टाचार, भय, शहरी विषमता, और आमजन की पीड़ा को केवल रेखांकित ही नहीं किया, बल्कि उन्हें काव्यात्मक प्रतिरोध में रूपांतरित किया। दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, कुँअर बेचैन, जहीर कुरेशी और शरद मिश्र जैसे कवियों की रचनाएँ सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध एक जागरूक हस्तक्षेप बनकर सामने आईं। गजल की पारंपरिक शिल्प में समकालीन संकटों की सघन प्रस्तुति इस विधा को महज भावाभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि यथार्थ के विरुद्ध एक सशक्त सामाजिक दस्तावेज बनाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि साठोत्तरी हिन्दी गजल ने अपनी वैचारिक गंभीरता से गजल की भूमिका और प्रभाव को पुनर्परिभाषित किया है।

सन्दर्भ :-

1. दुष्यंत कुमार, 2021, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 48
2. अदम गोंडवी, 2010, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 51
3. जहीर कुरेशी, 1986, चाँदनी का दुःख, प्रयाग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 15
4. डॉ. कुँअर बेचैन, 1983, शामियाने काँच के, प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 61
5. डॉ. प्रणय (संपा.), 2020, शरद सर्जना, 'गजल खण्ड तीन', भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 173
6. दुष्यंत कुमार, 2021, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 15
7. अदम गोंडवी, 2010, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 36
8. जहीर कुरेशी, 1992, समंदर ब्याहने आया नहीं है, अयन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 25
9. अदम गोंडवी, 2010, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 29
10. जहीर कुरेशी, 1986, चाँदनी का दुःख, प्रयाग प्रकाशन, दिल्ली, चाँदनी का दुःख, पृ. 47

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 228–233

हिंदी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श – सूरज सिंह नेगी के संदर्भ में

बी. कमला, पी.एच.डी शोधार्थी
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एण्ड अडवांस स्टडीज़, (VISTAS), पल्लावरम, चेन्नई।

सार :–

भारतीय संस्कृति एक सामूहिक संस्कृति है। साहित्य में स्त्री, पुरुष, बाल–बच्चे, वृद्ध, तृतीय लिंग आदि पर केंद्रित साहित्य लिखा गया है। 'वसुधैव कुडुंबकम्' परिपाटी भारत की पहचान रही है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। आधुनिक साहित्य में गद्य, पद्य, कविता, कहानी, उपन्यास, जीवनी, एकांकी आदि विधाओं की रचनाएँ शामिल है। रामायण से जान सकते हैं कि वृद्धों को महत्व दिया गया है। वैसे ही आधुनिक काल के उपन्यासकार 'सूरज सिंह नेगी' के उपन्यासों द्वारा वृद्धों को महत्व देकर माता–पिता द्वारा संतान के लिए समर्पित जीवन, अभिभावकों के प्रति उदासीनता के भाव का नष्ट, माता–पिता का स्नेह अपने संतान के प्रति–अभाव आदि मुद्दों पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :– वृद्ध, विमर्श, समाज, उदासीनता, परिवार, साहित्य, संतान का दायित्व, मानसिक परिस्थिति, समर्पण आदि।

प्रस्तावना :–

भगवान की सृष्टि में मानव का रूप धारण कर हम अपनी लंबी संघर्षमय जीवन यात्रा पर है। इस जीवन यात्रा में हमारे कर्म, उत्तरदायी, जवाबदेही, कर्तव्य आदि को निभाते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। समाज में जो परिवर्तन होती है वह परिवर्तन हमारे जीवन में भी प्रभाव पड़ता है। आधुनिक उपन्यास में वर्तमान परिस्थितियों और जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण दिखाने वाले उपन्यास होते हैं जैसे निर्मला, गबन, कर्मभूमि, प्रतिज्ञा आदि प्रेमचंद के उपन्यासों से देखने को मिलती है। आधुनिक काल को ही विमर्शों का काल कहा जाता है। इस काल में किसान–विमर्श, पर्यावरण विमर्श, आदिवासी–विमर्श, नारी–विमर्श, दलित–विमर्श, वृद्ध–विमर्श आदि उल्लेखनीय है।

विमर्श का अर्थ :–

- अमर हिंदी शब्दकोश बृहत् के अनुसार विमर्श का अर्थ – 'परीक्षण, समीक्षा, विचार, विवेचन, परामर्श, तर्क आदि।'[1]

- वर्धा हिंदी शब्दकोश के अनुसार विमर्श का अर्थ है– 'पर्यालोपन, तथ्यानुसंधान, गुण–दोष आदि की आलोचना करना, तर्क करना।'[2]

विमर्श की परिभाषा :–

विमर्श की परिभाषा कई भाषाएँ में जैसे संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी शब्दकोशों में कई विद्वानों ने अपने–अपने मत व्यक्त किए हैं। जब कोई व्यक्ति किसी विषय को लेकर अकेले में गहन या चिन्तन, मनन करके किसी समूह में जाकर उस विषय पर अन्य व्यक्तियों से तर्क–वितर्क या चर्चा करता है उसे विमर्श कहा जाता है।

- हिन्दी शब्दकोश बृहत के अनुसार, 'विमर्श की परिभाषा षविमर्श यानी समालोचना, परामर्श, परीक्षा, किसी बात पर अच्छी तरह विचार करना।'[3]
- Walter and scott :- "An informal group discussion to solve problems or understand values."[4]

मानव जीवन के विकास में विविध अवस्था :–

मानव जीवन के विकास को अनेक अवस्थाओं में विभाजित किया गया है।

- मां के गर्भ से लेकर जन्म तक की अवस्था – गर्भावस्था।
- शून्य से पाँच तक (0–5) की अवस्था – शैशवास्था।
- पाँच से बारह तक (5–12) की अवस्था – बाल्यावस्था।
- बारह से अठारह तक (12–18) की अवस्था – किशोरावस्था।
- अठारह से पच्चीस तक (18–25) की अवस्था – युवावस्था।
- पच्चीस से साठ तक (25–60) की अवस्था – प्रौढ़ावस्था।
- साठ से पचहत्तर तक (60–75) की अवस्था – युवा वृद्ध।
- पचहत्तर से मृत्यु तक (75–मृत्यु) वृद्धावस्था कहा जाता है।

मनुष्य के तन–मन की आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के सहयोग पर आधारित है। हमारे अथर्ववेद में यह उल्लेखनीय है कि 'जीवेत् शरदः शतम्।' अर्थात् सौ वर्ष तक जीने, सुनने, देखने, सोचने–विचारने तथा नए–नए पद प्राप्त करते–करते अपना जीवन सौ वर्ष तक चलने की आशा इस श्लोक पर उक्त है। सौ वर्ष का जीवन एक समान नहीं रहता बल्कि सामाजिक परिवर्तनों के कारण मनुष्य का तन–मन बुद्धि और सोच बदलता रहता हैं।

वृद्ध का अर्थ :–

मानव विकास में अंतिम अवस्था वृद्धावस्था है। 'वृद्ध' शब्द से ही वृद्धावस्था शब्द का निर्माण हुआ है।

- मानक हिन्दी शब्दकोश में वृद्ध शब्द का अर्थ 'बूढ़ा हुआ, अच्छी या पूरी तरह से बढ़ा हुआ, गुण, विद्या आदि के विचार से औरों की अपेक्षा बहुत चतुर, विद्वान या बहुत श्रेष्ठ।'[5]

वृद्ध की परिभाषा :– कुछ विद्वानों के अनुसार वृद्ध की परिभाषा निम्नलिखित है।

- डॉ. पदुमलाल पुन्नालाला बख्शी के कथन से 'वृद्ध एक ऐसी अवस्था है जिसमें लोगों के सभी भाव रस के रूप में परिणत होकर आनंदमय हो जाते है।'[6]
- The Oxford Dictionary of Sports Science and Medicine, " Old age is the final stage of life, and

is associated with declining mental and physical faculties."[7]

युवा कथाकार 'सूरज सिंह नेगी' का व्यक्तित्व और कृतित्व :-

अद्यतन हिन्दी साहित्य में युवा कथाकार सूरज सिंह नेगी का जन्म अल्मोड़ा जिले में 17 दिसंबर 1967 में हुआ। उनके पिता स्व. इंद्रसिंह नेगी तथा माता लक्ष्मीदेवी जी छत्रछाया में रहते हुए हाई स्कूल की शिक्षा पैतृक गाँव में लेने के बाद 'कॉमर्स कॉलेज' जयपुर से प्रथम श्रेणी में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात राजस्थान यूनिवर्सिटी, जयपुर से एम.कॉम तथा एम.फिल की उपाधि प्राप्त की। "A Critical Appraisal of Industrial Development of Rajasthan" शोध विषय पर पी.एच.डी की उपाधि ग्रहण की। डॉक्टर नेगी जी संप्रति सवाई माधोपुर में अतिरिक्त जिला कलेक्टर एवं अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के पद को शोभायमान कर रहे हैं। डॉ. सूरज सिंह नेगी के अब तक दो कहानी संग्रह 'पापा फिर कब आओगे' तथा 'सांझ के दीप', चार उपन्यास –'रिश्तों की आंच', 'वसीयत', 'नियति चक्र', तथा 'यह कैसा रिश्ता' प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी अप्रकाशित नाटकें भी है। साहित्य गतिविधियों और राजकीय निर्वहन के लिए नेगी जी को कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

माता–पिता द्वारा संतान के लिए समर्पित जीवन :-

जीवन मूल्यों के प्रति लेखक सूरज सिंह नेगी ने बुजुर्गों की सक्रिय एवं सूक्ष्मतम चित्रण उनके उपन्यासों में किया है। आजकल की परिस्थिति को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि परिवार के सभी सदस्यों के मन और विचारों में समानता या एकरूपता होने की संभावना नहीं है। अपने संतान के लिए अपना सारा जीवन समर्पित करते हैं। सूरज सिंह नेगी द्वारा रचित उपन्यास 'रिश्तों की आंच' में वृद्ध माता–पिता के संपूर्ण जीवन अपने संतानों के हित के लिए समर्पण करने का प्रयास किया है। वृद्धावस्था में अपनी संतान के साथ रहते हुए भी उनकी स्नेह–भरी प्रेम पाने की इच्छा होती है। वर्तमान युवा–पीढ़ी अपने माता–पिता के लिए संवेदनशील नहीं है क्योंकि उनके साथ विचार–विमर्श करने के लिए समय नहीं है। प्रयुक्त उपन्यास में रमेश मुख्य पात्र है इसके संदर्भ में –'बहते हुए पानी, सन–सन करती हुई हवा, तड़पती हुई बिजली, लपकती हुई आग की लपटें और दिग्भ्रमित युवाओं की दिशा को भला कौन रोक सकता है? रमेश भी दिग्भ्रमित हो चुका था जिसे अपने स्वार्थ के आगे बूढ़ी और बीमार माँ के आंसू, भाई का प्यार दिखाई नहीं दे रहा था।'[8]

वह अपनी एम.बी.बी.एस की पढ़ाई पूरी कर एक व्यक्तिगत अस्पताल में नौकरी मिलते ही उस अस्पताल के मालिक की बेटी से ब्याह कर अपना परिवार को तड़पते हुए छोड़कर पत्नी के साथ रहने लगा। इस व्यवहार से माँ अपनी मानसिक तनाव को अंदर दबाकर बाहर हंसते–हंसते रमेश को आशीर्वाद करती है। वृद्धावस्था की शिथिलताओं को व्यक्त करते हुए सूरज सिंह नेगी जी कहते हैं – "अक्सर बुढ़ापे में इंसान दूसरों पर निर्भर हो जाया करता है। जो काम हम यौवनावस्था में स्वयं कर लेते हैं जैसे भी आना हो, जाना हो, क्या खाना, किससे मिलना, इन सब में स्वतंत्र होते हैं। वृद्धावस्था आते ही इन सभी कामों के लिए दूसरों पर निर्भर हो जाते हैं।"[9]

माता–पिता के प्रति उदासीनता के भाव का नष्ट :-

वृद्ध माता–पिता के प्रति संवेदनशील की भावना, त्याग परोपकार, जीवन मूल्य, जीवन आदर्श जैसे शाश्वत गुणों 'वसीयत' उपन्यास में लेखक ने रेखांकित करने का प्रयास किया है। वर्तमान युवा पीढ़ी के मन में अपने अभिभावकों के प्रति उदासीनता के भाव को नष्ट करने में पूर्ण रूप से सक्षम है। उत्तराखंड की कुमाऊंनी

भाषा प्रयोग कर विवेचित उपन्यास में तीन पीढ़ियों को समकक्ष तुलना करने का प्रयास किया है। उल्लेखित उपन्यास का नायक विश्वनाथ है। विश्वनाथ की पत्नी सुधा और उनके दो बेटे है। जब विश्वनाथ पुत्र से पिता बनता है तभी उसकी जीवन में बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। नायक विश्वनाथ के पिता और विश्वनाथ के पुत्र, दोनों के व्यवहार की तुलना प्रस्तुत उपन्यास में किया है। उपन्यास की कथावस्तु पत्र एवं डायरी के रूप में ही प्रस्तुत किया है। बूढ़े होने के बाद व्यक्ति बच्चा बन जाता है और बच्चों के साथ बाहर घूमने–फिरने लगते हैं। जब विश्वनाथ अपने पोते की जन्मदिन पर चलने की तैयार में निकलता है तब बहू और बेटा, दोनों उन्हें रोकते हुए कहते हैं कि घर पर ही रहें और घर की देखभाल करें। इस संदर्भ में राजकुमार कहता है, 'बाबूजी आप भी ना! अभी तक बचपना गया नहीं है। आप क्या करेंगे चलकर बच्चों का कार्यक्रम है, आप अधिक देर तक बैठ नहीं पाएंगे, यहीं घर पर ही आराम कीजिए।'[10]

विश्वनाथ उदासीन हो जाते हैं। अगले दिन अपने मित्रों को पोते की जन्मदिन के अवसर पर उन्हें खिलाते समय भावुक होकर उनसे कहते हैं,– 'कैसे न लूं दिल से। जिस बेटे करण के लिए मैंने जिंदगी भर न जाने कितनी धूप खाई, न बारिश देखी, न आंधी और न तूफान, हमेशा उसकी सलामती की दुआ मांगी। अरे बहू तो पराये घर की बेटी है उसे क्या दोष दूं, उसने तो मेरी तकलीफें नहीं देखी है पर मेरा करण जो बचपन से ही मेरी मजबूरी देखता आ रहा है आज मेरी भावना को न समझ सका। मैंने एक–एक पल कैसे बिताया, मेरी आत्मा ही जानती है। रात के ग्यारह बजे तक बेसब्री से इंतजार करता रहा। न कोई फोन आया, न ही वह लोग पार्टी कर घर वापस लौटे। भूख के मारे हाल बेहाल हो रहा था, सोचा था पार्टी में से लौटते समय मेरे लिए खाना पैक करके ले आयेंगे। मैंने किचन में देखा कुछ न था, तभी टिफिन पर नजर पड़ गई। अक्सर सुबह की बची हुई रोटियां टिफिन में रख दी जाती हैं और शाम को काम वाली बाई को दे दी जाती हैं मैंने टिफिन में रखी रोटी निकाली और खाकर भूख शांत कर डाली।'[11]

प्रस्तुत उपन्यास के शीर्षक को सिद्ध करते हुए विश्वनाथ के पिता अपनी डायरी में लिखते हैं – 'मेरे पुरखों द्वारा आजन्म परोपकार, परहित, त्याग समर्पण और सत्य का पालन करते हुए संस्कार, जीवन मूल्यों तथा सिद्धांतों के साथ जीवन–यापन किया गया जिनका अनुसरण मैंने अपने संपूर्ण जीवन काल में किया, यही मेरी असल कमाई है, जिसे मैं आज अपने विश्वा के नाम वसीयत के रूप में समर्पित करता हूँ।'[12]

माता–पिता का स्नेह अपने संतान के प्रति–अभाव :–

माता–पिता अपने औलादों को अपना प्रेम एवं वात्सल्य के वशीभूत के साथ समर्पण कर देते हैं। इसके प्रति सूरज सिंह नेगी अपने कर–कमलों से लिखा है 'नियति चक्र' उपन्यास। जिसमें पिता का स्नेह एवं प्रेम को अपना बेटा नहीं समझता। प्रस्तुत उपन्यास का नायक सेठ नितिन घोष अपनी सारी संपत्ति अपने पुत्र चित्रांश के नाम कर देते हैं। चित्रांश 'घोष एंटरप्राइजेज' का मालिक बन जाता है। घर का मालिक बन जाने पर उसमें अहम् का भाव आ जाती है। अपने कर्तव्य, नैतिकता और जिम्मेदारियों को भूलकर सबसे पहले अपने पिता के सभी विश्वास पात्रों को नौकरी से निकालता है जिससे नितिन घोष पूरी तरह टूट जाते हैं और अंत में अपने पिता को भी घर से चले जाने को कहता है। वह वर्तमान पीढ़ी के सोच में है जो अपने अभिभावकों को बोझ समझते हैं। नियति चक्र ऐसा ही घूमता है एक दिन चित्रांश शिखर से शून्य पर आ जाता है। तब चित्रांश के शब्दों में – 'मैंने बाबूजी के जीवन काल में उनका तिरस्कार किया, मैं स्वयं उनको अपना प्रतिद्वंद्वी मान बैठा, मुझे लगा

जैसे वह पुरातनवादी विचारधारा के साथ जी रहे हैं। यहां तक कि उनके घर से जाने के बाद भी मुझे कोई असर नहीं हुआ, लेकिन इस पुण्यात्मा को सम्मान न देने का नुकसान मुझे उठाना पड़ा। धीरे–धीरे कंपनी घाटी में जाने लगी, तैयार किए जा रहे माल की गुणवत्ता घटिया होने से बाजार में खरीद दार नहीं मिले। कार्य का बोझ बढ़ता जा रहा था। इसी दौरान जब आपसे मुलाकात हुई और बाबूजी के विषय में नजदीक से जानने का अवसर मिला, मैंने प्रण कर लिया था कि उनके बताए गए मार्ग पर चलूंगा आप द्वारा सौंपी गई बाबूजी की डायरी एक जीता जागता जीवन दर्शन है।'[13]

उपर्युक्त कथन के माध्यम से यह सिद्ध होता है कि हर परिवार के बुजुर्ग लोग घर का नींव होते हैं उनके मार्गदर्शन घर के युवा पीढ़ी के लिए आवश्यक है। विवेचित उपन्यास में चित्रांश की पश्चाताप से बदलती हुई मानसिक स्थिति को दर्शाते हुए लिखते हैं–'पिताजी की डायरी जब भी किसी संकट में या असमंजस में होता हूँ मेरा मार्गदर्शन करती है, लगता है जैसे मेरे बाबूजी आज भी मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं। जिन कर्मनिष्ठ और संस्था के वफादार कर्मचारियों को मैंने अहंकार वश संस्था से निकाल दिया था उनसे पुनः संपर्क साधा और उन सबको अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करते हुए संस्था में लौट आने का आग्रह किया, आज बाबूजी के समय के कुछ वफादार कर्मचारी मार्गदर्शन को भूमिका में कार्य कर रहे हैं। सच यही है कि मैं अहंकार के वशीभूत इन नींव के पत्थरों की कद्र न कर सका और कंगारूओं को देख उन्हीं को सब कुछ मान बैठा था।'[14] अब चित्रांश समझ जाता है कि कर्म ही इंसान को महान बना सकता है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः सूरज सिंह नेगी के उपन्यासों में डायरी एवं पत्र के माध्यम से चिंताजनक एवं महत्वपूर्ण उद्देश्यों को चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में पिता–पुत्र के बीच की संबंध, उनकी विचारात्मक भाव एवं मन–स्थिति आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सूरज सिंह नेगी अपने उपन्यासों के द्वारा वर्तमान पीढ़ी अपनी अभिभावकों की दशा में जब आते हैं वह अनुभव से अपना मानसिक परिवर्तन पर प्रकाश डालते हुए पाठकों को चिंताजनक बना दिया है। इससे समाज में परिवर्तन एवं अपना दायित्व को पूरा करने की ज्ञान चक्षु खुलने की प्रयास करेंगे। एक सिक्के के दो पहलू होते हैं वैसे ही वर्तमान पीढ़ी में पहले समाज की तरफ से अनैतिक, कठोर व्यवहार, व्यक्तिवादिता आदि का व्यवहार पाए और दूसरे तरफ संवेदनशील, भावुक, परहितकारी आदि गुण पाए हैं। मुझे आशा है कि आगे आनेवाली नई पीढ़ी यह उपन्यास पढ़े एवं बुजुर्गों के प्रति आदर, सम्मान, संवेदनशील आदि गुणों को जगाने का प्रयास करेंगे। अंततः इसके संदर्भ में घनश्याम चंद्र जोशी के छंद पंक्तियों प्रस्तुत करना चाहती हूँ :–

'परिवार व समाज की बुनियाद है-बुजुर्ग
गहरी सोच व अनुभव के भंडार-बुजुर्ग
सफलता की कुंज श्रद्धा के पात्र हैं-बुजुर्ग
हमारे समग्र विकास के चिंतन है-बुजुर्ग
भारतीय संस्कृति के संरक्षक हैं-बुजुर्ग
हमारे संरक्षक एवं मार्गदर्शन है-बुजुर्ग
सिर्फ वह सिर्फ सम्मान के भूखे हैं-बुजुर्ग
परिवार व समाज की शान है-बुजुर्ग।'[15]

संदर्भ सूची :-

1. श्री प्रकाश, अमर हिंदी शब्दकोश बृहत, पृ. सं–3153
2. राम प्रकाश सक्सेना, वर्धा हिंदी शब्दकोश, पृ. सं–3184
3. संपादक रिजवी, बृहत हिंदी शब्दकोश, पृ. सं–922
4. https://www.google.com/search?q=definition+given+by+any+author+ on+discussion&client =ms-android-vivo-terr1-rso2&sca_esv=3ee233fc35809b4c&biw=392&bih=740&sxsrf= AHTn8zqNCLgNo5CrS6XbJbcB798dOcpV5g%3A1741330369985&ei=wZfKZ8LlO_y M4-EPuNiCmA0&oq=definition+given+by+any+author+on+discussion&gs_lp=EhNtb2Jpb GUtZ3dzLXdpei1zZXJwIixkZWZpbml0aW9uIGdpdmVuIGJ5IGFueSBhdXRob3Igb24gZGl zYZVzc2lvbjIKEAAYsAMY1gQYRzIKEAAYsAMY1gQYRzIKEAAYsAMY1gQYRzIKEAA YsAMY1gQYRzIKEAAYsAMY1gQYRzIKEAAYsAMY1gQYRzIKEAAYsAMY1gQYRzIKE AAYsAMY1gQYR0isnAdQAFgAcAN4AZABAJgBAKABAKoBALgBA8gBAJgCA6ACOZg DAIgGAZAGCJIHATOgBwA&sclient=mobile-gws-wiz-serp
5. रामचंद्र शर्मा, मानक हिंदी शब्दकोश, पांचवा खण्ड, पृ.सं–107
6. डॉ. भावना कमाने (सं.), वृद्ध विमर्श : परंपरा और आधुनिकता, पृ.सं–97
7. https://www.google.com/search?q=definition+given+by+any+author+on+old+age&client= ms-android-vivo-terr1-rso2&sca_esv=3ee233fc35809b4c&biw=392&bih=740&sxsrf= AHTn8zotK8xUIExr52BOHk5ney4oeFy7yA%3A1741329688645&ei=GJXKZ9v3JsyH4- EPw4fhoAM&oq=definition+given+by+any+author+on+old+&gs_lp=EhNtb2JpbGUtZ3dz LXdpei1zZXJwIiZkZWZpbml0aW9uIGdpdmVuIGJ5IGFueSBhdXRob3Igb24gb2xkICoC CAAyBRAhGKABMgUQIRigATIFECEYoAEyBRAhGKABMgUQIRigAUjwE1CrDVirDXA CeACQAQCYAXagAXaqAQMwLjG4AQHIAQD4AQGYAgKgAhbCAgoQABiwAxjWBBh HmAMAiAYBkAYIkgcBMqAHtgQ&sclient=mobile-gws-wiz-serp
8. सूरज सिंह नेगी, रिश्तों का आंच, पृ.सं–50
9. सूरज सिंह नेगी, रिश्तों का आंच, पृ.सं–101
10. सूरज सिंह नेगी, वसीयत, पृ.सं–78
11. सूरज सिंह नेगी, वसीयत, पृ.सं–80
12. सूरज सिंह नेगी, वसीयत, पृ.सं–213
13. सूरज सिंह नेगी, नियति चक्र, पृ.सं–122
14. सूरज सिंह नेगी, नियति चक्र, पृ.सं–123
15. https://akashgyanvatika.com/%E0%A4%AC%E0%A5%81%E0%A4%9C%E0%A5%81% E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%97%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%95% E0%A5%80-%E0%A4%B8%E0%A5%87%E0%A4%B5%E0%A4%BE-%E0%A4%88% E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B0-%E0%A4%AA/

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 234–239

मीडिया का समाज पर प्रभाव

डॉ. सविता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमैन।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी देखा जाए तो मीडिया का प्रभाव पूरी दुनिया पर दिखाई देता है। हमारे इस बदलते हुए वातावरण में साहित्य में भी बदलाव देखने को मिलता है। क्योंकि साहित्य में हम वही दर्शाते हैं वही लिखते हैं, जैसा समाज में चल रहा होता है। जो साहित्यिक रचनाओं में वर्णित किया जा रहा है, उसी यथार्थ को मीडिया भी प्रस्तुत कर रहा है, फिर चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। हमारे भारत देश के विकास की बात हो, राजनीतिक परिवेश की चर्चा हो या फिर हमारी संस्कृति और साहित्य की बात हो – कुछ भी मीडिया से अछूता नहीं है। सूचना प्रसारण और जनसंचार के माध्यमों के बिना वैसे भी मानव जीवन अग्रसर नहीं हो सकता है। और न ही हमारे देश या किसी भी देश की संस्कृति व सभ्यता का विकास होगा। इसलिए किसी भी देश की प्रगति व जन–जीवन के विकास के लिए साहित्य का मीडिया से संबंध रखना अति आवश्यक हो गया है। मीडिया – चाहे प्रिंट हो या इलेक्ट्रॉनिक – से संपर्क स्थापित हुए बिना मानव जीवन अधूरा है। आज के समय में मीडिया के बढ़ते हुए दायरे को देखते हुए विभिन्न विद्वानों में बहस छिड़ गई है। आपस में तर्क–वितर्क होने लगे हैं। मीडिया में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो और साहित्य एवं संस्कृति से भी इसका सह–सम्बन्ध जुड़ा हो, तभी हमारी भारतीय संस्कृति का विकास संभव होगा। मीडिया स्वतंत्र रूप से यथार्थ को प्रस्तुत करे तभी मीडिया जगत की पवित्रता बनी रहेगी और यह हमारे साहित्य से जुड़कर जनहित के लिए समाज तक पहुँच सकेगा।

साहित्य में अनेक घटनाओं का चित्रण होता है क्योंकि समाज में निरन्तर घटने वाली घटनाओं को साहित्य द्वारा मुखरित किया जा सकता है। जहाँ तक साहित्य में संस्कृति और मीडिया की भूमिका की बात है – तो मीडिया ही आज मानव के लिए यह तय कर रहा है कि मानव को क्या खाना है, क्या पहनना है, कैसे रहना है और तीज–त्यौहार कैसे मनाने हैं। कौन–सा वाहन खरीदना सही रहेगाय इसके अतिरिक्त सभी घरेलू उत्पाद भी हम बिना मीडिया में आए नहीं खरीद पाते हैं। मीडिया ने तो हमारी सोच तक पर काबू कर लिया है। मीडिया केवल समाचार वाचन, मनोरंजक कार्यक्रमों की प्रस्तुति मात्र नहीं रह गया है, बल्कि धार्मिक चौनलों पर भी चौबीसों घंटे साधु–संतों के प्रवचन, तन्त्र–मन्त्र, जादू–टोना वास्तुशास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र की जानकारी, इसके अलावा पत्थर और नगो की पहचान तक भी मीडिया समाज को बता रहा है। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं कि मीडिया ने व्यक्ति, समाज, संस्कृति और साहित्य सभी को प्रभावित किया है। इसका जीता–जागता प्रमाण यह है कि प्राचीन समय में लोग संयुक्त परिवारों में रहना पसंद करते थे, लेकिन आज मीडिया द्वारा दी गई

दूरगामी सोच की वजह से एकल परिवार में सिमटकर रह गए हैं। लोग पैसा कमाने की होड़ में अपने पुश्तैनी घरों को छोड़कर गाँव से शहर की ओर आ रहे हैं और फ्लैटों में रहकर बंद डिब्बों में मीडिया को ही अपना मित्र बना रहे हैं। इसी समाज की इसी दशा का वर्णन हमारे साहित्यकार कर रहे हैं।

लेकिन हम मीडिया और साहित्य का सकारात्मक पक्ष अगर देखें तो कुछ हद तक साहित्य और मीडिया दोनों ने ही समाज में लोगों को जोड़ा भी है, तोड़ा नहीं है। क्योंकि मीडिया के द्वारा ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखकर लोगों में जिज्ञासा पैदा हुई अपने धर्मों के प्रति अपनी संस्कृति कार्यक्रमों को देखकर लोगों में जिज्ञासा पैदा हुई अपने धर्मों के प्रति अपनी संस्कृति को जानने की। समाज में काफी परिवर्तन देखने को भी मिले हैं, जैसे – साप्ताहिक चित्रहार दिल्ली दूरदर्शन चैनल पर आता था तो पूरा परिवार एक सप्ताह तक इंतजार करता था देखने के लिए और सपरिवार एक साथ बैठकर चित्रहार का आनंद लेते थे। इसके अतिरिक्त टीवी पर प्रसारित होने वाले धारावाहिकों की सूची भी छोटी नहीं हैय उनमें – नुक्कड़, बुनियाद, हम लोग, सांझा चूल्हा, रामायण और महाभारत जैसे धारावाहिक सामाजिक और धार्मिक श्रेणी में आते थे। चाणक्य, पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप सिंह, द सॉर्ड ऑफ टीपू सुल्तान, रानी लक्ष्मीबाई, जोधा अकबर आदि ऐतिहासिक धारावाहिक रहे जो समाज ने बहुत पसंद किए। इसके अलावा शिवपुराण, श्रीकृष्णा, हर हर महादेव, देवों के देव महादेव, महाकाली – अंत ही आरम्भ है आदि पौराणिक धारावाहिक रहे जिन्होंने समाज के सामने आदर्श और नैतिक जीवन मूल्यों की स्थापना की। इन सभी धारावाहिकों का छुट–पुट चित्रण साहित्यकारों ने साहित्य में भी किया। फिल्मों की बात की जाए तो हमारे भारतीय सिनेमा में कुछ फिल्में ऐसी भी बनीं जिनमें सांस्कृतिक मूल्यों, हमारी संस्कृति और सभ्यता को दर्शाया गया है, जैसे 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे' – फिल्म में विदेश में रहते हुए भी एक भारतीय का अपने देश की संस्कृति से प्रेम दिखाया गया, ठीक वैसी ही बात फिल्म 'परदेस' में भी देखी गई। फिल्म 'पूरब–पश्चिम' में भारतीय संस्कृति को दिखाया गया। 'खानदान', 'घर का सुख', 'घर द्वार', 'हम आपके हैं कौन', 'हम साथ–साथ हैं' आदि पारिवारिक फिल्मों से समाज में पारिवारिक एकता बढ़ी। दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में लोकगीत, यात्राएँ, मेलों, उत्सवों को दिखाकर समाज में मानवीय मूल्यों को प्रेरित किया गया। आज के समय में सिर्फ टेलीविजन पर ही नहीं, समाचार पत्र–पत्रिकाओं में भी धर्मगुरुओं के सद्विचार लिखे हुए मिलते हैं जिनसे मानव जीवन पूरी तरह प्रभावित होता है। इसी संदर्भ में डॉ. रेणु साहनी लिखती हैं – "आधुनिक रचनाओं ने मानव मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदना को अभिव्यक्त किया है।"[1]

अब यदि प्रिंट मीडिया की बात की जाए तो प्रिंट मीडिया जनसंचार का पहला आधारभूत माध्यम है जिसका सशक्त साधन पत्र–पत्रिकाएँ हैं। समाज में जो भी चल रहा होता है वह पत्र–पत्रिकाओं में लिखा जाता है। इसलिए पत्र–पत्रिकाओं में समाज और संस्कृति को प्रभावित करने की क्षमता होती है। इसकी पुष्टि करते हुए डॉ. हरीश अरोड़ा कहते हैं, "जनसंचार के सभी माध्यम आज समाज और शासन दोनों की दृष्टि में महत्वपूर्ण बन चुके हैं। विकासशील समाजों की पत्रकारिता अब विकसित पत्रकारिता बन चुकी है। समाज में नित नए संदेशों और प्रेरणाओं को प्रस्तुत करती है। आज समकालीन दौर में समस्त विश्व को "विश्व–ग्राम" बनाने में पत्रकारिता का ही योगदान रहा है।"[2] अतः समाचार–पत्र–पत्रिकाओं के प्रति आज लोगों की जिज्ञासा इतनी बढ़ गई है कि सुबह उठते ही लोग नाश्ते से पहले समाचार पत्र चाहते हैं। शिक्षित समाज का समाचार–पत्र और पत्रिकाएँ आज एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी हैं। डॉ. अर्जुन तिवारी के अनुसार, "समाचार पत्र–पत्रिकाएँ जन

भावना की उद्घोषिका हैं। सभ्यता और स्वतंत्रता की वाणी होने के साथ ही यह जगत् में क्रान्ति की अग्रदूतिका है।"[3]

यदि हम समाचार पत्रों के इतिहास पर नजर डालें तो बांग्ला भाषा का पहला मासिक पत्र 'दिग्दर्शन' सन् 1818 में श्रीरामपुर बैपटिस्ट मिशन से प्रकाशित हुआ था। इसके कुछ वर्ष बाद, 1826 में कलकत्ता से 'उदन्त–मार्तण्ड' नामक हिन्दी का पहला पत्र प्रकाशित हुआ था। इसके संपादक पंडित जुगल किशोर शुक्ल थे। 'उदन्त–मार्तण्ड' हिन्दी का पहला समाचार पत्र था लेकिन यह दिसम्बर 1828 में बंद हो गया। सन् 1845 में हिन्दी भाषा का पहला हिन्दी समाचारपत्र 'बनारस अखबार' निकला – इसके प्रमुख समाचार पत्रों का कार्य लोगों में चेतना जगाना है। प्रो. हरिमोहन कहते हैं, "एक समाचार पत्र का कार्य इतना ही नहीं है कि वह तीव्र गति से समाचार मुद्रित कर लोगों तक पहुँचाए। इससे भी आगे समाचार पत्र का काम है कि जिस समाज में यह प्रसारित होता है, उस समाज की परिवर्तनशीलता की विश्वसनीय ढंग से पूरी तस्वीर सामने लाना। इसलिए आज बिना समाचार पत्र के हम किसी आधुनिक समाज या शहर की कल्पना कर ही नहीं सकते हैं।"[4]

19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में पत्रिकाओं की भी बाढ़ सी आ गई थी। सन् 1877 में 'हिन्दी प्रदीप', 1883 में 'ब्राह्मण', 1896 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा की ये सभी प्रसिद्ध पत्रिकाएँ रहीं। 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका रही। इसके अतिरिक्त 'हंस' और 'माधुरी' भी साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं और प्रतिष्ठित भी। अन्य पत्रिकाओं में प्रताप, कर्मवीर, चाँद, मतवाला, सुधा, जागरण इत्यादि रही हैं। पत्रिकाओं ने समाज में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का कार्य किया। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध इन पत्रिकाओं में आवाज उठाई गई। रूप चंद गौतम लिखते हैं कि – "आजादी के बाद पत्र–पत्रकारिता का स्वरूप बदला। मिशन रूपी पत्रकारिता व्यावहारिकता में तब्दील हो गई।"[5] आजकल की पत्रिकाओं में बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, शिक्षा, धर्म, त्यौहार–उत्सव, निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र और कविताएँ आदि विषय समाहित किए जा रहे हैं। इतना ही नहीं, आजकल की पत्रिकाओं में फैशन, साज–सज्जा, खान–पान, गृह–सज्जा, इंटीरियर डिजाइन आदि विषय भी सम्मिलित किए जा रहे हैं।

आजकल टेलीविजन, सिनेमा, रेडियो, इंटरनेट जन–संचार के माध्यम बन चुके हैं। ये इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में आते हैं। टेलीविजन की चर्चा हमने पहले ही कर दी है। अब हम बात करते हैं रेडियो यानि आकाशवाणी पर 1815 ई. में इटली के एक इंजीनियर गुग्लिएल्मो (गग्लियो) मार्कोनी ने रेडियो के माध्यम से पहला संदेश प्रसारित किया था। धीरे–धीरे रेडियो ने पूरे विश्व में धूम मचा दी। प्रो. हरिमोहन कहते हैं, "कि रेडियो जन–जीवन का एक आवश्यक कारक बन चुका है। चाहे हम घर में हों, बाहर हों, कहीं जा रहे हों या कोई काम कर रहे हों, रेडियो एक साथी का काम करता है। केवल पढ़े–लिखे ही नहीं, निरक्षर व्यक्ति भी इस जन–माध्यम से आत्मीयता रखते हैं।"[6] रेडियो में प्रसारित कार्यक्रमों में लोकगीत, शास्त्रीय संगीत, हास्य नाटक, डॉक्यूमेंटरी, कृषि जगत से संबंधित वार्ता, ज्ञानवर्धक वार्ता, समाचार वाचन आदि शामिल हैं। परंतु यह भी सच है कि जब से दूरदर्शन टेलीविजन आया तब से रेडियो में रुचि कुछ कम हुई है। लेकिन रेडियो का महत्त्व ग्रामीण समाज में आज भी बरकरार है। आज भी समाज के कुछ गिने चुने लोग ऐसे भी हैं जिनके पास टेलीविजन खरीदने के पैसे नहीं हैं उनके लिए रेडियो आज भी आकर्षक माध्यम है।

टेलीविजन का आरंभ 1925 में जॉन लोगी बेयर्ड ने पहला टेलीविजन बनाया था। भारत में टेलीविजन

का पहला प्रायोगिक केंद्र का उद्घाटन 15 सितम्बर, 1959 में देश के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के हाथों से सम्पन्न हुआ था। टेलीविजन रेडियो से उत्तम माध्यम माना जाने लगा क्योंकि यह दृश्य–श्रव्य माध्यम है। इसलिए इस संदर्भ में साहित्यकार कमलेश्वर लिखते हैं कि–"दूरदर्शन सिनेमा नहीं है। दूरदर्शन अखबार भी नहीं है। यह रंगमंच, लोक कलाओं का प्रदर्शन मंच भी नहीं है। यह एक कल्चर फैक्ट्री है।"[7] आज के माहौल को दूरदर्शन ने बदलकर रख दिया है। आज टेलीविजन पर सैकड़ों चैनल चल रहे हैं। चाहे मनोरंजन के कार्यक्रम हों, संगीत, तीज–त्यौहार, धर्म, योग से संबंधित लाभ, व्यापार संबंधी जानकारी सब टेलीविजन पर देखा–सुना जा सकता है। यही नहीं, देश–विदेश की खबर भी हम अपने ड्राइंग रूम में बैठे–बैठे ले सकते हैं। वर्तमान समय में भारत के सभी राज्यों में दूरदर्शन के अनेक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं और देश की 10 प्रतिशत जनता तक दूरदर्शन की पहुँच बन गई है।

सिनेमा भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का ही सशक्त माध्यम है। सिनेमा भी समाज के लिए प्रभावशाली साबित हुआ है। सिनेमा भारतीय समाज को डॉक्यूमेंट्री, फिल्में सब दिखा रहा है। आजकल सिनेमा नाटक, संगीत, चित्रकला, डॉक्यूमेंट्री, हिंदी फिल्में, अन्य भारतीय भाषायी फिल्में दिखा रहा है और कोई जब चाहे अपनी इच्छा से देख सकता है। इस संदर्भ में डॉ. बलबीर कुंद्रा कहते हैं, "भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों में सिनेमा सर्वाधिक लोकप्रिय और शक्तिशाली संचार माध्यम है।"[8] कुछ फिल्मों में तो फिल्मकार साहित्य की रचनाओं से ही उठा रहे हैं। फिल्मकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर फिल्में बनायी जा रही हैं। विदेशी भाषाओं की फिल्मों को भी भारतीय भाषाओं में अनूदित करके फिल्में बनाई जा रही हैं, वो इसलिए ताकि समाज अपनी समस्याओं का निदान उनसे पा सके। सिनेमा के ध्वनि, दृश्य, गीत, संगीत, कहानी, अभिनय करने वाले पात्रों की वेशभूषा और भाषा तथा फिल्म के दृश्यों का किस प्रकार समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भारत में फिल्मों का आरंभ सन् 1913 में ही हो चुका था। पहली मूक फिल्म 'सत्य हरिश्चन्द्र' बनी थी, जो भाटवाड़ेकर वाडकर उर्फ दादा साहब फालके ने बनाई थी। सन् 1931 में 'आलम आरा' भारत की पहली बोलती फिल्म थी। 1948 में बंबई में 'भारतीय फिल्म डिवीजन' की स्थापना हुई। उसके बाद 1952 में सेंसर बोर्ड का गठन हुआ। उसके बाद तो आज भारत में फिल्मों की बाढ़ सी आ गई है। अब तो प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में विभिन्न भाषाओं में फिल्में बन रही हैं। डॉ. हरीश अरोड़ा कहते हैं, "तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक जटिल होने के बावजूद भी फिल्मों ने जल्दी ही विश्व में सर्वाधिक सशक्त जन माध्यम के रूप में अपना स्थान बना लिया है। मनोरंजन के क्षेत्र में तो इसका आज भी कोई सानी नहीं है।"[9]

आज के दौर में इंटरनेट की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आज लगभग विश्व के दस करोड़ से अधिक कंप्यूटर इंटरनेट से जुड़ चुके हैं। सैटेलाइट के जरिए डिजिटल तकनीक के माध्यम से इंटरनेट की सेवा सभी के लिए आसान हो गई है। ईमेल, डब्ल्यू–डब्ल्यू–डब्ल्यू, होम पेज, सूचना भण्डार, विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए गूगल पाठशाला आदि सभी उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त अरनेट, इण्डोनेट, निक नेट, रेल नेट, खेल बुलेटिन, एफ.टी.पी. और सर्च आदि सुविधाओं के कारण इंटरनेट आज के समय में सूचनाओं के सम्प्रेषण का एक खास साधन बना हुआ है। इंटरनेट से कंप्यूटर की कार्यविधि को एक–दूसरे के साथ आन्तरिक रूप से जोड़ा जाता है। कंप्यूटर "सूचनाओं का आदान–प्रदान इन्टरनेट के द्वारा बड़ी सरलता के साथ कर रहा है। व्यापार के क्षेत्र में भी व्यापारी लोग एक–दूसरे के साथ जानकारी रखने के लिए भी इंटरनेट का उपयोग करते हैं। इस

सन्दर्भ में डॉ. चन्द्र प्रकाश मित्र लिखते है, कि "इंटरनेट पर व्यक्ति करोड़ों लोगों के साथ मिलकर सूचना समुद्र में गोते लगाकर अपनी मनचाही सूचना प्राप्त कर सकता है।"[10] हमारे समाज को इंटरनेट ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और विज्ञान जैसे विषयों की जानकारी प्रदान की है। इतना ही नहीं हिन्दी साहित्य को भी व्यावसायिक जगत में एक नई पहचान दी है।

विज्ञापन भी मीडिया का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। विज्ञापन से भी समाज के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है। विज्ञापन मुद्रित भी होते हैं जो समाज में समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में एवं सड़कों पर दुकानों के बाहर पोस्टर के रूप में भी देखने को मिलते हैं। रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट पर भी हमें विज्ञापन देखने को मिलते हैं। डॉ. हरीश अरोड़ा कहते हैं, "विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक संदेशों द्वारा उपभोक्ताओं तक पहुंचकर विज्ञापित वस्तु की ग्राहीयता को बढ़ाना होता है। व्यावसायिक प्रयोजन से अधिक गहरा सम्बन्ध होने के साथ–साथ कई बार गैर सरकारी विज्ञापनों में किसी सेवा या विचार के प्रति लोगों में आकर्षण का भाव जागृत करते हुए उसके प्रति लोगों की रूचि को गहराई देना भी विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य होता है।"[11] आज के समय में कोई भी व्यक्ति विज्ञापन के बिना किसी भी चीज को खरीदने की कल्पना नहीं कर सकता है। आज हर क्षेत्र में विज्ञापन का प्रभाव दिखाई देता है। हर क्षेत्र के लोग विज्ञापन पर भरोसा करते हैं। कोई भी उद्यमी, व्यवसायी, प्रतिष्ठान या संस्था का मालिक सभी अपने विचारों को लोगों तक पहुंचाने के लिए विज्ञापन का उपयोग करते हैं। विज्ञापन ने उपभोक्ताओं को बाजार की तरफ आकर्षित किया है।

इस प्रकार देखा जाए तो मीडिया का समाज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। क्योंकि मीडिया और समाज का घनिष्ठ संबंध है। मीडिया समाज में होने वाली उसी घटना को दिखा रहा है जो समाज में घटित हो रही हैं। बल्कि समाज में छिपी हुई कुरीतियों को भी मीडिया ने सामने लाकर रख दिया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि मीडिया शिव के तीसरे नेत्र की तरह है जो इस लोक का ही नहीं परलोक का भी देख सकता है। वैसे ही मीडिया की नजर उस जगह भी पहुंच जाती है जहाँ समाज के आम व्यक्ति की नहीं पहुंच सकती है। इसलिए मीडिया हमारे समाज की अच्छाइयाँ– बुराइयाँ सामने लाकर समाज को एक प्रकार से शिक्षित करता है और इस तरह समाज मीडिया से प्रभावित होता रहा है और होता रहेगा।

सन्दर्भ सूची :–

1. डॉ. रेणु साहनी, मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में बदलता परिवेश, पृ० सं०–10, इन्द्र प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2016
2. डॉ. हरीश अरोड़ा, 'जनसंचार', पृ० सं– 19–20, युवा साहित्य चेतना मण्डल प्रकाशन, एन–23, श्री निवास पुरी, नई दिल्ली–65, संस्करण प्रथम, मार्च, 2007
3. डॉ. पूरन चन्द टंडन, डॉ. वेद प्रकाश, 'हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति', पृ० सं० 205, प्रकाशन सतीश बुक डिपो, नई दिल्ली, सन् 2008
4. प्रो. हरिमोहन, 'आधुनिक जन– संचार और हिन्दी', तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–2, द्वितीय संस्करण, 2003
5. डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, 'भाषा साहित्य और संस्कृति', पृ० सं० 438, प्रकाशन ओरियन्ट ब्लैक स्वान, नई

दिल्ली, सन् 2007
6. प्रो. हरिमोहन, 'आधुनिक जन–संचार और हिन्दी', तक्षशिला प्रकाशन, पृ० सं० 46, अन्सारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली–2, द्वितीय संस्करण, 2003
7. डॉ. पूरन चंद टंडन, डॉ. वेद प्रकाश, 'हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति', पृ० सं०–205, प्रकाशन सतीश बुक डिपो, नई दिल्ली, सन् 2008
8. डॉ. पूरन चंद टंडन, डॉ. वेद प्रकाश, 'हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति', पृ० सं०–206, प्रकाशन सतीश बुक डिपो, नई दिल्ली, सन् 2008
9. डॉ. हरीश अरोड़ा, 'जनसंचार', पृ० सं०–35, युवा साहित्य एवं संस्कृति, पृ० सं० 438, मण्डल प्रकाशन, एन–23, श्री निवास पुरी, नई दिल्ली–65, प्रथम संस्करण, मार्च, 2007
10. डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, 'भाषा साहित्य', प्रकाशन ओरिएन्टल ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, सन् 2007
11. डॉ. हरीश अरोड़ा, 'जनसंचार', पृ० सं०–201 युवा साहित्य चेतना मण्डल प्रकाशन, श्री निवास पुरी, नई दिल्ली–65, संस्करण प्रथम, मार्च, 2007

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 240–244

हर्षवर्धन कालीन समाज एवं संस्कृति : हर्षचरित के विशेष संदर्भ में

हर्ष वार्ष्णेय
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय।

गुप्तोत्तर काल में बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्षचरित' को चरित साहित्य लेखन परंपरा के शुरुआती चरण के तौर पर देखा जाता है। साहित्य लेखन में चरित लेखन की परंपरा पूर्व मध्यकालीन भारत में कुछ नई विकेंद्रीकृत राजनीतिक इकाइयों के उदय के साथ जुड़ी हुई है। चरित साहित्य परंपरा को इतिहासकारों ने इन नवोदय विकेंद्रीकृत राजनीतिक इकाइयों द्वारा समग्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के साथ जुड़ने के प्रयासों में से एक माना है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन परंपरा के एक अंग के रूप में चरित साहित्य अपने से पूर्व लिखे गए साहित्य की तुलना में निरंतरता और परिवर्तन दोनों को अभिव्यक्त करता है। निरंतरता के तौर पर जहां वंशावली संबंधी जानकारी को अपने अंदर दर्ज करता है तो वही परिवर्तन के तौर पर ऐतिहासिक महत्व की जानकारी को अधिक स्पष्ट रूप से दर्ज करता हैं। जो भारतीय परिपेक्ष्य में पहले बहुत ही कम देखने में आता हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व प्राचीन भारतीय साहित्य में जहां ऐतिहासिक चेतना साहित्य में अंतर्निहित होती थी वही चरित साहित्य लेखन में यह ऐतिहासिक चेतना प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलती है। यदि इतिहास की पुनर्रचना की दृष्टि से हर्षचरित का अध्ययन किया जाए तो इतिहास के विभिन्न पहलु हमारे सामने आते है। किंतु यहां हम केवल तत्कालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं के संबंध में मिलने वाली जानकारियों की ही चर्चा करेंगे।

किसी अमूर्त संस्कृति के उत्पादों तथा सामाजिक व्यवस्था को जानने का सर्वोत्तम साधन उसे युग का साहित्य होता है। गुप्तोत्तर काल में आकर ले रहे समाज तथा संस्कृति को जैसे तत्कालीन समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, परंपराओं, मान्यताओं तथा जीवन मूल्यों व विभित्र प्रकार की भौतिक वस्तुओं का वर्णन करके बाणभट्ट ने हर्षचरित के मध्यम से उन्हें अभिव्यक्ति प्रदान की है। बाण की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय हमे न केवल प्रत्येक पात्र की वेशभूषा के चित्रण में ही मिलता है बल्कि बाण मानव मन के अंतर भावों को भी सशक्त साहित्य अभिव्यक्ति प्रदान करके समाज की एक बेहतर छवि का निर्माण करने में अन्य प्राचीन साहित्य से काफी आगे निकल आता है। यहां इस लेख के माध्यम से तत्कालीन युग के समाज और संस्कृति का एक सूक्ष्म परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बाण ने समाज के विभिन्न स्तरों का उल्लेख हर्षचरित में किया है। उस युग के समाज में ब्राह्मणों का

प्रमुख स्थान था। मुख्यमंत्री से लेकर कुंचकी तक राज्य के सभी प्रमुख पदों पर ब्राह्मण ही आसीन थे। दूसरी ओर शिक्षक, गुरु और ऋषि आश्रमों के आचार्य होने के कारण भी समाज में उनका विशेष आदर था। समाज में ब्राह्मणों के इस उच्च स्थान के कारण ही बाण को कहना पड़ा कि असंस्कृत बुद्धि वाले भी जन्म से ब्राह्मण होने के कारण आदरणीय हैं। द्वितीय उच्छावास के आरंभ में जब बाण लौटकर घर आया तो वहां उसने ब्राह्मण गृह का जो चित्र खींचा है उससे उनके क्रियाकलापों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। अध्ययन–अध्यापन उनका परंपरागत प्रमुख कार्य था। उनके शिष्यों में बालक–बालिकाएं दोनों होते थे। ब्राह्मणों के घरों में अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ यज्ञ भी किया जाता था। हर्षचरित में क्षत्रियों का अलग से कोई वर्णन नहीं किया गया है लेकिन कहीं–कहीं सैनिकों के चित्र देखने को मिलते हैं संभवत यह क्षत्रिय सैनिक ही रहे होंगे। उस युग में राजा क्षत्रियों के साथ–साथ वैश्य भी होते थे। विभिन्न इतिहासकारों ने हर्ष को भी वैश्य माना है। उसमें एक वैश्य के गुण का विकास न होकर क्षत्रिय राजकुमार के उपयुक्त गुणों का विकास हुआ था ब्राह्मणों से प्रभावित होने के कारण न केवल वह कवि और विद्वानों का आदर करता था अपितु उनका मित्र भी बन गया था। साथ ही वह स्वयं भी एक नाटककार था। आरंभिक छः वर्षों में उसने युद्ध कर शत्रुओं का नाश किया और अगले तीस वर्षों में राज्य को साम्राज्य में बदल दिया तथा सुख, शांति और समृद्धि का प्रसार किया। उस युग में अस्पृश्य न हो ऐसी बात नहीं लेकिन हर्षचरित में इसका बहुतायत से उल्लेख नहीं मिलता।

उस युग में प्रमुख तौर पर गृहस्थ आश्रम के साथ–साथ ब्रह्मचर्य आश्रम और वानप्रस्थ आश्रम का भी महत्व किसी न किसी प्रकार बना हुआ था। वह युग आश्रमों व गुरुकुलों का युग था राज्यश्री को ढूंढते–ढूंढते हर्ष दिवाकर मित्र के आश्रम में जा पहुंचता हैं। यह बौद्ध गुरु का आश्रम था यहां न केवल शीलों की शिक्षा दी जाती थी अपितु जातक कथाएं भी सुनाई जाती थी इस प्रकार विद्या–अभ्यास और चरित्र का विकास साथ–साथ चलता था इस आश्रम के अतिरिक्त स्थाणीश्वर के आसपास विद्यार्थियों के गुरुकुल भी थे साथ ही ब्राह्मण के घरों में भी पाठशालाएं चलती रहती थी। उपरोक्त विवरण से हमे उस युग में ब्रह्मचर्य आश्रम के महत्व के बारे में पता चलता है। इसी के साथ महाराज प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के बाद उनके कुछ सेवक, मित्र एवम् मंत्री शोकाकुल होकर संसार का परित्याग कर पर्वतों पर चले गए थे वहां उन्होंने कपिलदर्शन शास्त्र का भी अध्ययन किया था इस प्रकार हमें पता चलता है कि वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम की परंपरा अभी एकदम समाप्त नहीं हुई थी और समाज में किसी न किसी रूप में अभी भी उसका महत्व बना हुआ था।

बाणकालीन समाज में विभिन्न स्तरों के लोगों का परिचय हमें बाण की मित्र–मंडली से मिलता है। अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि ईशान, प्राकृत के लेखक वायुविकार तथा गीतकार वेणीभारत बाण के साहित्यकार मित्र थे। संगीतकारों में मृदंग बजाने वाला जीमूत, बंशी बजाने वाला मधुकर व पारावत व इनके साथ सेमिल और ग्रहादित्य गवैये भी थे। सिखंडक और तांडविक नृतको के साथ नृतकी हरिणिका की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि केवल राजदरबार में ही नृत्य का स्थान न था अपितु जन–समाज में भी उन्हें मान्यता प्राप्त थी चित्रकार वीर वर्मा और मिट्टी के खिलौने बनाने वाला कुमारदत्त भी उसके मित्र थे सोने के व्यापारी तथा हैरिक सिंधुषेण भी उसकी मित्र–मंडली के व्यावसायिक कलाकार मित्र थे। इसी के साथ भिषग, मंदारक और विषवैद्य मयूरक जहां औषिधियों से लोगों का उपचार करते थे वहां रसायनिक विहंगम और मंत्रसाधक कराल भी सामाजिक व्याधियों के प्रकोप को शांत करते थे। समाज के निम्न वर्ग के कुछ परिचरों को भी बाण ने अपनी मित्र–मंडली में शामिल

किया था। उनमें तंबूलदायक चंडक, प्रसाधिका कुरंगिका तथा संवाहिका केरलिका विशेष हैं।

इससे जहां बाण की व्यापक रुचि और लोकप्रियता का पता चलता है। वहां समाज के विभिन्न क्षेत्रों, रुचियां व व्यवसायों के व्यक्तियों से भी हमारा परिचय होता है। विभिन्न व्यवसाय होते हुए भी निजी रुचि की समता मित्रता का आधार होती थी और बाण की मित्र–मंडली में तीन–चार स्त्रियों का होना भी इस बात का प्रमाण है कि समाज में स्त्री और पुरुष स्वतंत्रता पूर्वक मिल सकते थे।

हर्षचरित से हमें बाणकालीन विभिन्न प्रकार के वस्त्रो का भी पता चलता है जैसे 'अंशुक' एक विशेष रूप से पतला और मुलायम वस्त्र था उसी के कई भेद थे कभी वह पगड़ी बांधने के लिए तो कभी उत्तरीय के रूप में प्रयुक्त होता था। नीलांशुक से मुंह ढकने की जाली का काम लिया जाता था तो पट्टांशुक सती की शोभा बढ़ाता था इसी प्रकार इसके और भी कई भेद थे। ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में इसका बहुतायत में प्रयोग होता था इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस युग में अंशुक वस्त्र निर्माण का उद्योग पर्याप्त विकसित हो चुका होगा। योगियों और सन्यासियों द्वारा बहुधा योगपट्ट वस्त्र का उत्तरीय के रूप में प्रयोग किया जाता था। यह गेरूए रंग का सादा–सा कपड़ा होता था। 'चंदांतक' ऊपर से नीचे तक लंबे चोंगे के रूप में प्रयोग आने वाला वस्त्र था। समाज में विशेष रूप से राजसेवकों में इसका बहुतायत से प्रचलन था। इसके अलावा राज्यश्री के विवाह के समय जिन वस्त्रों को संग्रहित किया गया था वे छः प्रकार के थे क्षौम, बादर, दुकूल, लालातंतुज, अंशुक तथा नेत्र। यहां वस्त्रों की रंगाई एवं छपाई का भी विशेष उल्लेख है। पहनने के अतिरिक्त बिछाने आदि के लिए भी उस समय कपड़े संग्रहित किए जाते थे। राजाओं की वेशभूषा में चार प्रकार के उत्तरीय – कुंचक, चीनचोलक, वारवाण और कूपसिक तथा तीन प्रकार के अधोवस्त्र का उल्लेख है इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में विभित्र प्रकार के वस्त्रों के प्रयोग का प्रचलन था।

प्रसाधन का सर्वोत्तम साधन आभूषण होते हैं। जो किसी काल विशेष की समृद्धि और मनोवृति के परिचायक होते हैं। हर्षचरित से भी हमें विभिन्न प्रकार के आभूषणों की जानकारी मिलती है। जैसे मकरिका सिर का आभूषण था जो कभी मुकुट के साथ प्रयोग होता था तो कभी स्वतंत्र रूप से। बटलीलाललाटिका नामक आभूषण से मस्तक को सजाते थे। संभवतः यह बिंदी जैसा कोई आभूषण रहा होगा। केशांत में मौलसिरी की माला पहनने का रिवाज था। स्त्रियां सिर पर चटुला तिलक व पद्मराग का चटुला धारण करती थी। जो उनकी मांग में से आगे लटकता रहता था कानो में कुंडल के तौर पर त्रिकटंक सबसे लोकप्रिय था। स्त्री और पुरुष दोनों ही इसका प्रयोग करते थे। पुत्र जन्म महोत्सव पर दास–दासियां भी इसे धारण कर नाच कर रही थी। कहीं–कहीं बालियो के पहनने का भी उल्लेख मिलता है। शंख की बनी हुई अंगूठियों का भी प्रयोग होता था। गले में पहने जाने वाली मालाएं कई प्रकार की होती थी। कलाई में सोने का कड़ा पहनने का रिवाज भी बहुत प्रचलित था। इतने अधिक आभूषण का प्रयोग तथा बाण के मित्रों में स्वर्णकार चामीकर का होना यह सिद्ध करता है कि उस दौर में यह उद्योग भी लोगों की आजीविका अर्जित करने का एक अच्छा साधन था।

इसके अतिरिक्त भोजन के संबंध में उस समाज में भी छुआछूत का विचार विद्यमान था। अंत्यजों के हाथ का भोजन द्विज नहीं ग्रहण करते थे। गेहूं, चावल, दूध, घी, दही आदि उस युग में प्रचलित खाद्य–पदार्थ थे। रोटी का प्रयोग होता था। इसके अलावा पात्रा पर चबेना और सत्तू का प्रयोग प्रचलित था। मिश्री या मीठे का भी प्रयोग होता था। ब्राह्मणों में मद्य–सेवन अच्छा नहीं समझा जाता था पर जनसाधारण में मद्य–पान बहुतायत

में होता था। मांस–भक्षण पर भी कोई प्रतिबंध न था। लेकिन बैल, गधा, घोड़ा, हाथी, सूअर आदि के मांस का प्रयोग केवल अंत्यज ही करते थे। उत्सवों में मदिरा का प्रयोग होता था हर्ष का जन्मोत्सव और राज्यश्री का विवाह–उत्सव इसके प्रमाण है। सैनिकों के भोज्य पदार्थों में चावल, चना, सत्तू के साथ–साथ बेर, कांजी का घड़ा और गाने का रस आदि शामिल थे। गांवों के घरों में विभिन्न प्रकार की सब्जियों का भी उल्लेख मिलता है। रसोई के बर्तनों का प्रयोग होने के भी प्रमाण मिलते हैं तापक (तवा) तापिका, तलक, अंगीठी तथा कढ़ाई आदि कुछ तांबे के बर्तनों का भी प्रयोग होता था।

हर्षचरित से हमें जन–सामान्य के मनोविनोद व मनोरंजन का भी पता चलता है। उस समाज में विद्वानों के मनोरंजन के लिए विद्यागोष्ठी का आयोजन होता था। इसके अलावा काव्य–गोष्ठी के भी प्रमाण मिलते हैं। कला–मर्मज्ञों के मनोरंजन के लिए नृत्य, वाद्य, वीणा गोष्ठियां आयोजित होती थी। श्वेत और काले खाने वाले शतरंज का खेल भी मनोरंजन का एक उत्कृष्ट साधन समझा जाता था। स्थाणीश्वर के लोगों के लिए संगीत–शालाएं, वेश्याओं के कामायतन तथा वीणा–वादन के स्थान भी मनोरंजन स्थल थे।

उस दौर में साहित्य और कलाओं का विकास सांस्कृतिक प्रगति का द्योतक हैं। हर्ष स्वतः नाटककार था। बाण संस्कृत का अद्वितीय गद्यकार हुआ। संस्कृत के साथ–साथ अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य का भी उस समय पर्याप्त विकास हो रहा था। साहित्य के अतिरिक्त संगीत का भी विकास हो रहा था वीणा, मृदंग तथा पटह के अतिरिक्त वारविलासियों द्वारा जन्मोत्सव पर वेणु, झल्लारी, तंत्री पटह, अलाबु वीणा तथा काहल आदि का प्रयोग इस बात का प्रमाण है। यह सब सीखाने के लिए स्थाणीश्वर में कई संगीत–शालाएं भी थी। बाण के ध्रुवपद ज्ञान से प्रतीत होता है कि परंपरागत संगीत पद्धतियों का भी समाज में प्रचलन था। चित्रकला की दृष्टि से भी यह काल विशेष महत्व रखता है। विवाह के बाद ग्रहवर्मा और राज्यश्री जिस वास–गृह में गए थे उसके द्वार पर भी रति और प्रीति के चित्र अंकित थे। राज्यश्री के विवाह के समय न केवल चित्रकार मांगलिक चित्र बना रहे थे अपितु महिलाएं भी कलश और सुराहियों पर चित्र बना रही थी। वेदी को पूर्णतया सजाया गया था। उज्जयिनी में अनेक चित्रशालाएं थी। जहां चित्र बनाने की कला सिखाई जाती थी और बाण के मित्रों में चित्रकार भी थे। इस सबसे स्पष्ट है कि उस युग में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ था। कपड़ों की रंगाई एवं छपाई का उल्लेख पहले ही हो चुका है राज्यश्री के विवाह मंडप के आसपास बहुत सी मूर्तियां थी। बाण ने भी आरंभ में तांडव करते हुए नटराज शिव की मूर्ति का उल्लेख किया है।

हर्षचरित से उस युग में प्रचलित प्रथाओं और रीति–रिवाजों का भी हमें परिचय मिलता है। संतानोत्पत्ति विशेषतः पुत्र जन्म के लिए समाज में अंधविश्वास पर आधारित विभिन्न साधनाओं का आश्रय लिया जाता था। सत्तारूढ़ होने के समय राजा बंदियों को छोड़ता था। हर्ष पंचवार्षिक दान भी देता था जिससे पता चलता है कि समाज में यह प्रथा अभी भी चली आ रही थी। इसके अलावा विवाह के अवसर पर अश्लील गालियों का रिवाज भी प्रचलित था। दहेज प्रथा भी देखने को मिलती है। युद्ध पर प्रस्थान करने के समय मांगलिक सूत्रों व मंत्रों का पाठ होता था, शंख बजते थे, सैनाएं सूर्य निकलने से पहले ही चल पड़ती थी। उससे पूर्व राजा विधिवत यज्ञ करता था, ग्राम दान आदि देता था। तब सफलता की कामना कर प्रस्थान करता था। प्रभाकर वर्धन की मृत्यु से पहले ही यशोमती का सती होना प्रचलित सती प्रथा का द्योतक है। अगरु काष्ठ की चिता, सरस्वती के किनारे पर दाह–संस्कार, सरिता जल में अस्थि प्रवाह आदि कुछ अन्य प्रचलित प्रथाएं थी।

हर्षचरित से तत्कालीन समय में स्त्रियों की स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। कुलीन समाज की स्त्रियां न केवल विधिवत शिक्षा पाती थी अपितु अन्य कलाओं में भी प्रवीण होती थी। सखियों सहित राज्यश्री ने नृत्य, गीत आदि कलाओं में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। सच्चरित्रता नारी का विशेष गुण समझा जाता था, पर वेश्यालय न हो ऐसी भी बात नहीं है और राजकुल की दासियों के मंत्रियों व सामंतों से गुप्त संबंध भी बने हुए थे। समाज में स्त्रियां गृहीणीयां ही थी। केवल राजकुल में विशेष रूप से अंतःपुर में परिचायिका या दासी का कार्य करती थी। स्त्रियों का विवाह प्रायः छोटी उम्र में ही हो जाता था और राजकुल की स्त्रियों को वर–चुनाव में स्वतंत्रता प्राप्त होती थी। राज्यश्री ने गृहवर्मा को चुना था। विधवा स्त्रियों भिक्षुणी या सन्यासी भी हो सकती थी बाण की मित्र–मंडली में चार स्त्रियों का होना उनकी समाज में स्वतंत्रता का परिचायक है।

वास्तव में इतिहास के पुनर्निमाण हेतु हर्षचरित का अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो स्पष्ट रूप से दर्ज किए गए तथ्यों को पढ़कर समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा खींची जा सकती है। दूसरा इसमें उपस्थित असलंग्नताओं के अध्ययन के आधार पर एक ऐसी तस्वीर प्राप्त की जा सकती है जो की बाण में छुपाने का प्रयास किया है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि हर्षकालीन इतिहास की पुनर्रचना के लिए हर्षचरित महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध करवाता है। क्योंकि बाणभट्ट हर्ष का दरबारी कवि था इसलिए यह एक आधिकारिक दस्तावेज है। इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाए, यह पूर्णतया शोधकर्ता की समझ और आलोचनात्मक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। उपरोक्त विश्लेषण में उपलब्ध सूचनाओं एवं असंलग्नताओं का अंतिम विश्लेषण नहीं है किंतु एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इसके अध्ययन की संभावना एवं चुनौतियां की ओर एक इशारा अवश्य है।

संदर्भ :–

1. ई. बी. कॉवेल एवं एफ. डब्ल्यू. थॉमस, 'द हर्षचरित ऑफ बाण', द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1968.
2. रोमिला थापर, 'समाज और ऐतिहासिक चेतना इतिहास पुराण परंपरा', आदिकालीन भारत की व्याख्या, नई दिल्ली, 1998.
3. वासुदेवशरण अग्रवाल, 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1958.
4. योगेंद्र दायमा, 'हर्षचरित : एक ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में' सहचर ई पत्रिका, 2016.
5. रोमिला थापर, 'प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की परंपरा', भारत का सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली, 2001.
6. विश्वंभर शरन पाठक, एंसिएंट हिस्टोरियंस ऑफ इंडिया, बॉम्बे, 1996.
7. पंडित श्री जगन्नाथ पाठक, हर्षचरितम, चतुर्थ संस्करण, वाराणसी, 1982.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 245-248

बेरीनाग गुफा चित्रकारी ‘गंगावली क्षेत्र’ की प्रागैतिहासिक खोज

अमन कुमार, शोधार्थी,
बबीता बोहरा, शोधार्थी,
इतिहास विभाग, लक्ष्मण सिंह महर, परिसर पिथौरागढ़।

सारांश :–

मानव सभ्यता के अतीत में जब न भाषा थी, न शब्द, न कागज और ना ही कोई लिखित दस्तावेज थे फिर भी उस समय मनुष्य अपनी भावनाओं को, स्वयं के किये कार्यों को गुफाओं, आश्रयों की दीवारों और छतों पर चित्रों, शैलाश्रय के माध्यम से व्यक्त करता था। उत्तराखंड में कई शैलाश्रय स्थल हैं जिनकी दीवारों, छतों पर चित्रकारी की गई है। अल्मोड़ा जिले में लखुउड्यार, पेटशाल, फलसीमा और ल्वेथाप, चमोली जिले के किमनी गाँव में ग्वारख्या गुफाएं आदि स्थल अपने शैलचित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। (रावत, 3 : 2022) इसी प्रकार जनपद पिथौरागढ़ के ‘गंगावली क्षेत्र’ की बेरीनाग तहसील से ‘लखु–उड्यार’ के चित्रित शैलाश्रय के समरूप चित्रांकन की नवीन खोज ने सरयू–रामगंगा के मध्यवर्ती क्षेत्र ‘गंगावली’ को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है।

मुख्य शब्द :– शैलाश्रय, गुहा–चित्रकारी, महिला–पुरुष के चित्र, पशुओं की आकृति, कपमार्क्स।

प्रस्तावना :–

जनपद पिथौरागढ़ के ‘गंगावली क्षेत्र’ का इतिहास निःसंदेह प्राचीन एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इतिहासकरों का मत है कि गंगोलीहाट कि स्थापना 1264 ई. से 1276 ई. के मध्य हुई होगी। (पांडे, 78 : 1930) ‘गंगावली क्षेत्र’ के बनकोट से प्राप्त आठ ताम्र युगीन मानव आकृतियां इस क्षेत्र में मानव सभ्यता के अस्तित्व की प्राचीनता को उजागर करती है। 1960 से वर्तमान समय तक गंगावली क्षेत्र से मिले अनेक स्थल, गुफाएं यहां गुफावासी कोल, किरात, खस, किन्नर, नाग, यक्ष–यक्षिणी आदि मानव जातियों की प्राचीनता के प्रमाण को दृष्टिगोचर करते हैं। इन जातियों के नाम से मिलते–जुलते (अपभ्रंश) नाम के इस क्षेत्र में अनेक गांव आज भी विद्यमान हैं, जो इन आदिम जातियों के अतीत के संबंध में हमे जानकारी प्रदान करते हैं।

‘गंगावली क्षेत्र’ का प्राक्–इतिहास, उत्तराखंड के प्राक्–इतिहास से संबंध रखता है। यह विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र अल्मोड़ा के गुहा–चित्र स्थलों का निकटवर्ती क्षेत्र है। सन् 1968 में अल्मोड़ा जनपद के सुयाल नदी के दाएं तट पर ‘लखु–उड्यार’ के चित्रित शैलाश्रय की खोज मध्य हिमालय की पहाड़ियों में प्रागैतिहासिक गुहा–चित्रों की प्रथम खोज थी। (कठोच, 53 : 2019)

सरयू–पूर्वी रामगंगा का मध्यवर्ती क्षेत्र 'गंगावली' 'लखु–उड्यार' के चित्रित शैलाश्रय से लगभग 30–40 किलोमीटर की परिधि पर है, संभव है कि सरयू–पूर्वी रामगंगा नदी घाटी ने भी आदिमानव को आखेट हेतु अपनी ओर आकर्षित किया होगा।

'गंगावली क्षेत्र' में गुहा–चित्रकारी या किसी अन्य प्रकार के आदिम जाति के प्रागैतिहासिक प्रमाण तो 2022 तक प्रकाश में नहीं आए थे, परंतु जनवरी 2023 पुरातत्व एवं साहसिक पर्यटन के क्षेत्र में कार्य कर रहे 'काफल हिल एडवेंचर क्लब' के अध्यक्ष तरुण मेहरा ने बेरीनाग महाविद्यालय के समीप पहाड़ी में एक गुफा खोजी, जो इस क्षेत्र के इतिहास को 'लखुउड्यार' (अल्मोड़ा) के प्रागैतिहासिक गुहा चित्रों के ही समरूप काल तक ले जाती है।

बेड़ीनाग में मिली गुफा, अंदर चट्टानों पर उकेरे गए हैं चित्र

गुफा में प्राचीन ओखली भी मिली

दैनिक जागरण : जनवरी 2023

गुफा की दीवारों पर लाल, काले व सफेद रंग से मनुष्य और जानवरों के चित्र बनाए गए हैं, एक स्थान पर लगभग 11 पुरुष–महिलाओं के चित्र हैं, इन चित्रों के ठीक नीचे एक पशु का चित्र भी है, इससे यह भी माना जा रहा है कि आदिमानव शिकार करने के बाद पशुओं को यहां लाते होंगे साथ ही एक स्थान पर चार पशुओं और चार पुरुषों के चित्र भी मिले हैं, जिनके सिर पर सींग जैसी आकृति प्रतीत होती है। जिस स्थान पर गुफा है वहां रस्सी के सहारे 20 फिट ऊपर पहुँचा जा सकता है।

गुफा की दीवारों पर मनुष्य और जानवरों के चित्र : 19/04/2024

यहां से प्राप्त चित्रांकन को चंद्र सिंह चौहान 'पुरातत्व प्रभारी' (अल्मोड़ा) द्वारा प्रमाणित किया गया है और इन्हें प्रागैतिहासिक गुहा चित्र बताया है। इस गुफा की खोज ने 'गंगावली क्षेत्र' की ऐतिहासिकता को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। गुफा में प्राचीन ओखली (कपमार्क्स) भी मिली है, तरुण मेहरा बताते हैं कि वर्ष 1856 में चम्पावत जिले में मिली प्राचीन ओखली के समरूप ही यह ओखली भी है। (दैनिक जागरण, जनवरी 2023)

गुफा के समीप प्राप्त ओखली (कप मार्क्स) : 19/04/2024

गुफावासी मानव के विकास के पश्चात् इस क्षेत्र में ऐसा मानव समूह बसा जिसने ऊंचे–ऊंचे टीलों में 'कोट' बनाकर निवास करना प्रारंभ किया, इस काल के अनेक प्रमाण इस क्षेत्र के 'कोट' नामक स्थलों के आसपास मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों के रूप में आज भी मिलते हैं। इसके पश्चात् विकास की प्रक्रिया में मानव ने कृषि एवं पशुपालन के कार्यों को आरंभ कर क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया होगा।

शोध प्रविधि :–

प्रस्तुत शोध पत्र हेतु ऐतिहासिक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। यह सामान्यतः किसी विषय के ऐतिहासिक पहलू पर ध्यान केन्द्रित करती है जिसमें अनुसंधानकर्ता वर्तमान हालातों के परिप्रेक्ष्य में भूतकालीन घटनाओं का विश्लेषण करते हैं। शोध पत्र में प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त विषय से संबंधित विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं की सहायता ली गयी है। इस शोध पत्र में प्राथमिक आकड़ों को संग्रहित करने के लिए साक्षात्कार, अवलोकन तथा द्वितीयक स्रोत के रूप में डायरी पुस्तक तथा पत्रिकाओं का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :–

किसी भी स्थल से की गयी नवीनतम खोज हमें उस स्थान कि प्राचीनता का बोध कराती है, साथ ही साथ उस क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिकता को भी जनमानस के सम्मुख उजागर करने का प्रयास करती है। बेरीनाग गुफा चित्रकारी की नवीन खोज ने सरयू, रामगंगा दो नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्र 'गंगावली क्षेत्र' के इतिहास को उत्तराखण्ड में अभी तक खोजे गये प्रागैतिहासिक स्थलों के ही समरूप काल तक पहुँचा दिया है।

यदि समय रहते इस गुफा का पुरातात्विक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संरक्षण किया जाए तो यह स्थल न केवल उत्तराखंड की सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करेगा, बल्कि क्षेत्रीय पर्यटन और विश्वविद्यालयों,

शोधकर्ताओं के लिए एक जीवंत प्रयोगशाला का कार्य कर सकता है। साथ ही यह क्षेत्र कि भविष्य की पुरातात्विक सम्भवना में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. कठोच, यशवन्त सिंह : उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास : 2019 : विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून।
2. रावत, अजय सिंह : उत्तराखण्ड का समग्र राजनैतिक इतिहास (पाषाण युग से 1949 तक) : 2022 : अंकित प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल)
3. पांडे बद्रीदत्त : कुमाऊँ का इतिहास : 1930 : श्याम प्रकाशन बुक डिपो अल्मोड़ा।
4. मेहरा, तरुण : 'काफल हिल एडवेंचर क्लब' (बेरीनाग) : 18/04/2024
5. चौहान, चंद्र सिंह : 'पुरातत्व प्रभारी' (अल्मोड़ा) : 30/04/2024

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 249-256
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

भारतीय राजनीति में जयप्रकाश नारायण का चिंतन के विशेष संदर्भ में

शिव राम, शोधार्थी
डॉ. नीता भारती, प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग, सोबन सिंह जीना, विश्वविद्यालय अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड।

सारांश :–

जयप्रकाश नारायण व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता को आवश्यक गन्तव्य स्वीकार करते है, उनका चिंतन चिर विकासशील राष्ट्र रहा है। एक राष्ट्र निर्माण के रूप में उन्होंने कभी किसी विशेष वाद के साथ अपने आपको बांधकर नहीं रखा और देश की समृद्धि के साथ कभी समझौता नहीं किया। प्रारम्भ में वे मार्क्सवादी रहे, बाद में गांधीवादी विचार के प्रभाव से समाजवादी हुए। अंत में सर्वोदय जयप्रकाश नारायण ने भारतीय राजनीति की आवश्यकता को समायोजित करने हेतु राजनीति विचारो को परिवर्तन किया। आधुनिक भारतीय राजनीति विचारों में महात्मा गांधी और विनोवा भावे के बाद जयप्रकाश का नाम आता है। भारतीय जनता ने लोकप्रिय नेता को लोकनायक की उपाधि से सम्मानित किया। जयप्रकाश ने समाजवाद से सर्वोदय तक विकास यात्रा प्रमुख वैचारिक प्रभाव उनके राजनीति चिंतन को सामाजिक आर्थिक, समानता, राष्ट्रीकरण भारतीय सांस्कृति एवं समाजवाद, दलविहिन लोकतंत्र सहभागी लोकतंत्र की अवधारणा तथा सत्ता–शक्ति के विकेन्द्रीकरण जैसे खांचो में बांटकर देखा जाता है और भारतीय राजनीति में नैतिक भ्रश्टाचार मुक्ति आर्थिक समाजवाद का उल्लेखनीय है।

मुख्य शब्द :– समाजवाद, लोकतांत्रिक दलविहीन सर्वोदय।

प्रस्तावना :–

जयप्रकाश नारायण लोक नायक के उपनाम से भी जाने जाते है। जिनका जन्म 11 अक्टूबर 1902 के बिहार प्रदेश के दुरस्त गॉव सिताबदियारा में विजयदशमी को हुआ। पिता का नाम हरसूदयाल, माता फुलरानी देवी थी। छः बच्चो में तीन भाई और तीन बहिने थी, जयप्रकाश क्रम चौथा था। हरसूदयाल नगर विभाग में सरकारी अधिकारी थे एवं साथ ही स्वभाव के संस्कारवान और राष्ट्रवादी विचारो के व्यक्ति थे, फुलरानी देवी सरल स्वभाव, धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। प्रारम्भिक शिक्षा शहर में हुई, मैट्रिक शिक्षा पटना में अध्ययनरत सन् 1921 में महात्मा गॉधी द्वारा चलाये जा रहे असहयोग आंदोलन के आकर्षण से बच नही पाये और अध्ययन का बहिष्कार कर वे इस आंदोलन में कूद पड़े। उच्च शिक्षा के लिए वे अमेरिका गये। महा वर्कले स्थित कैलिफोर्निया

विश्वविद्यालय में सन् 1930 तक अपना अध्ययन कार्य किया। अध्ययन के दौरान उन्हें गम्भीर आर्थिक छवि से भी जूझना पड़ा। शोध कार्य के जीशन में मार्क्सवाद के प्रति आकृष्ट हुए मार्क्स तथा एगल्स के अलावा उन्होंने जे0 लवस्टोन तथा मानवेन्द्र नाथ राय की रचनाओं का गहना अध्ययन किया। मार्क्सवाद के हिमायती बन गये, लेकिन यह सब कुछ बहुत दिनों तक भला और कालांतर में उनके चिंतन में मार्क्सवाद के प्रति रूझान की कमी आयी।

सन् 1930 में अमेरिका से भारत लौटने के बाद जयप्रकाश भारतीय राजनीति में सक्रिय हुए, जवाहर लाल नेहरू के निकट आये। नेहरू ने इनका व्यक्तित्व को देखकर कांग्रेस श्रम विभाग का अध्यक्ष बनाया, स्वराज आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें सन् 1932 में मद्रास से गिरफ्तार कर लिया गया[1]। एक वर्ष की कठोर कारावास नासिक जेल में रहे, 1934 में नरेन्द्र देव, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन, एम0आर0 मसानी तथा एम0एल दांतवाला जैसे अन्य भारतीय समाजवादी नेताओं के साथ कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना की। वर्ष 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गिरफ्तार कर हजारीबाग जेल में बंद कर दिया गया। जहॉ वर्ष 1946 में रिहा हुए, जब भारत स्वतंत्र हुआ तो कई सरकारी पद स्वीकार न करने का निर्णय लिया। सन् 1948 में कांग्रेस से त्याग पत्र दे दिया, तदुपरान्त भारतीय समाजवादी पार्टी की स्थापना की। सन् 1952 में विनोवा भावे के भूदान, ग्रामदान आंदोलन से अत्यधिक प्रभावित हुए और सर्वोदयी समाजवादी आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे। 1954 में एक कर्मठ जीवनदानी के रूप में उभरकर लोगो के सामने आये। सन् 1970–72 में बिहार के मुजफ्फपुर जिले में चले रहे हिंसक नस्लवाद की आग को खत्म करने का प्रयास किया। सन् 1972 में चम्बल घाटी के तकरीबन 400 कुख्यात डाकुओं का आत्म सर्मपण किया था। 1974 में जयप्रकाश ने समग्र क्रांति का नारा दिया। सरकार की अमान्य नीतियों का विरोध किया। 1975 में आपातकाल के दौरान उनके सहयोगियो और उन्हें भी जेल में जाना पड़ा था। सन् 1977 में जनता पार्टी के गठन में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिस कारण उन्हें लोकनायक के रूप में जाना जाने लगा। स्वास्थ्य खराब होने के कारण 08 अक्टूबर 1979 को यह सर्वोदयी, समाजवादी विचारक चिरनिद्रा में सो गया[2]।

भारतीय राजनीति में जयप्रकाश के विचार : जयप्रकाश नारायण के विचार तत्कालीन समपरिस्थितियों के अनुसार प्रभावित रहे। कभी सीधी रेखा की तरह विचार एक समान नहीं रहे। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में साम्यवादी फिर लोकतांत्रिक समाजवादी, गॉधीवादी सर्वोदयी विचारधारा एवं सम्पूर्ण क्रांति के रूप में परिवर्तन हुए।

1. समाजवाद की अवधारणा।
2. सर्वोदय।
3. राष्ट्रवाद।
4. आधुनिक लोकतंत्र।
5. दल विहीन लोकतंत्र।
6. समग्र क्रांति।

समाजवाद की अवधारणा :– अपने अमेरिका प्रवास के समय जयप्रकाश ने लेनिन, मार्क्स के साम्यवादी

किताबों का अध्ययन किया और भारत आने पर उनकी सोच मार्क्सवादी बन गयी। सन् 1936 में व्हाई सोसलिज्म (समाजवाद क्यों) पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने समाजवाद की भारतीय संदर्भ में व्याख्या की तथा भारत में उसकी उपयोगिता पर बल दिया और बताया कि समाजवाद एक व्यक्तिगत आचरण संहिता न होकर समाजिक संगठन की प्रणाली है तथा सामाजिक संगठन का उद्देश्य यह है कि यह संस्कृति एवं अवसर की विषमताओं को दूर किया जाये और उस दिशा को समाप्त किया जाये। जिसमें अधिकांश व्यक्ति गरीबी, भूखमरी, गन्दगी, रोग एवं अज्ञानता का जीवन जी रहे है और थोड़े से लोक आराम, संस्कृति पद एवं सत्ता का आनन्द उठा रहे है[3]।

समाजवाद क्यों? पुस्तक में लिखा है कि कोई दल समाजवाद की स्थापना तब तक नहीं कर सकता जब तक राज्य की शक्ति अपने हाथ में न लें। चाहे व जनता के समर्थन से प्राप्त करें या सरकार गिराकर और उन्होंने व्यक्त किया कि जब किसान, दलित, गरीब सभी कमजोर वर्गो में वर्ग चेतना का उदय होगा तो समाजवाद की स्थापना हो जायेगी। जयप्रकाश नारायण ने व्यक्ति को भी अपनी भौतिक आवश्यकताओं पर नियंत्रण करना होगा। इनके बिना समाजवादी समाज की स्थापना संभव नहीं है। जयप्रकाश का उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का सांमजस्यपूर्ण तथा संतुलित विकास है। समाजवाद के सम्बन्ध में उनके निरंतर विचार परिवर्तनशील रहे। मार्क्सवाद से लोकतांत्रिक समाजवाद व सर्वोदय के रूप में गांधी समाजवाद तक की यात्रा पूरी की जो तीन खण्डो में विभाजित करके देखा जा सकता है।

1. मार्क्सवादी समाजवाद।
2. लोकतांत्रिक समाजवाद।
3. गॉधीवादी समाजवाद या सर्वोदय।

मार्क्सवादी समाजवाद :– जयप्रकाश ने अपने विचारों की प्रारम्भिक चरण में मार्क्सवादी समाज का एक सिद्धांत माना है।

2. यद्यपि इस चरण में उनके समाजवादी दर्शन में मुख्यतः मार्क्सवादी धारणाओं का प्रतिपादन हुआ है तथा उन्हें मार्क्स का कट्टर अनुयायी नहीं कहा जा सकता था। क्योंकि समाजवाद की व्याख्या में उनकी स्वतंत्रता की मौलिक अंतदृष्टि भी परिलक्षित हुई।
3. जयप्रकाश ने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि समाजवाद व मार्क्सवाद के सिद्धांत भारत के लिए भी उपयुक्त है।

लोकतांत्रिक समाजवाद (लोकनीति एवं लोक शक्ति) :–

1. समाजवादी विचारों के दूसरे चरण में जयप्रकाश नारायण ने लोकतांत्रिक समाजवादी विचारों का प्रतिपादन किया।
2. इसके तहत् जयप्रकाश ने मार्क्सवाद के प्रति मत आग्रह का विरोध किया तथा समाजवाद की भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप व्याख्या पर बल दिया।
3. जयप्रकाश ने समाजवाद को ही वस्तुतः लोकतंत्र के रूप में परिभाषित किया।
4. जयप्रकाश के अनुसार समाजवाद का वास्तविक अर्थ है, सामाजिक राज्य व आर्थिक स्वत्रंतता।

5. समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसक साधनों के इस्तेमाल का विरोध किया।

गांधीवादी समाजवादी या सर्वोदय :– जयप्रकाश अंतः मार्क्सवादी से गॉधीवादी बन गये। सर्वोदय की जयप्रकाश की अवधारण मूलतः चार बिन्दुओं पर केन्द्रित थी।

1. साधनों की पवित्रता।
2. मानवीय मूल्यों की सर्वोपरिता।
3. आर्थिक और समाजिक रूपान्तरण के लिए जनता की शक्ति में विश्वास।
4. विकेन्द्रीकरण।

1. जयप्रकाश के अनुसार सर्वोदयी समाजवाद नई व्यवस्था के लिए निर्माण के लिए मूलतः प्रेस, अहिंसा व करूणा पर विश्वास करता है।
2. अहिंसा प्रेम और करूणा की शक्ति के संगठित स्वरूप को जयप्रकाश ने लोक शक्ति की संज्ञा दी।
3. जयप्रकाश ने सर्वोदयी समाज के अन्तर्गत समाजवाद के नैतिक पक्ष पर बल दिया।
4. जयप्रकाश के अनुसार सर्वोदयी समाजवाद एक अहिंसक शोषण मुक्त सरकारी समाज का आदर्श प्रस्तुत करेगा।
5. सर्वोदयी समाज की व्यवस्था का आधार प्रतियोगिता नहीं होगा अपितु यह सहयोग पर आधारित समाजिक अर्थव्यवस्था होगी।
6. सर्वोदयी समाज की संरचना जाति या वर्ग पर आधारित नही होगी। वर्ष 1949 में अपनी लेख (My Picture of Socialism) में जयप्रकाश ने निम्न विचार दिये है :–
    1. ग्राम पंचायत के द्वारा सरकारी खेती की जायेगी।
    2. भारी उद्योगो पर राज्य का स्वामित्व एवं प्रबन्धन होना चाहिए।
    3. छोटे उद्योगो पर उत्पादो का नियंत्रण होना चाहिए।
    4. राज्य की भूमिका समिति होनी चाहिए[4]।

सर्वोदय :– जयप्रकाश भी महात्मा गॉधी और विनोवा भावे की तरह सर्वोदय चरम लक्ष्य में विश्वास करते थे। सर्वोदय से उनका अभिप्राय सभी लोगो के जीवन के सभी क्षेत्रो में कल्याण से था।

सर्वोदय शब्द जॉन रस्किन की पुस्तक (Unto The Last) से महात्मा गॉधी ने किया था। इस पुस्तक का सार है, सबकी भलाई में ही अपनी भलाई है। महात्मा गॉधी और विनोवा भावे के सर्वोदय से सम्बन्धित विचारों को स्वीकार करते हुए जयप्रकाश ने भी सबके कल्याण पर बल दिया।

समाजवाद और सर्वोदय (1951) में सर्वोदय योजना को जयप्रकाश ने बुनियादी और सामाजिक क्रांति को ठोस आधार बताया। इसमें समाजवादी कल के 80 प्रतिशत अंश तत्कालीन कार्यक्रम के विद्यमान है। समाजवाद की भॉति सर्वोदय में भी वर्गहीन, वर्णहीन समाज की कल्पना की गयी थी[5]।

जयप्रकाश ने सर्वोदय के पॉच आधार बताये :

1. जाति तथा वर्ण रहित समाज की स्थापना।
2. सार्वजनिक क्षेत्र में स्वच्छ तथा कुशल प्रशासन।

3. सामाजिक व्यवस्था का आधार विकेन्द्रीकरण।

4. समस्त शक्ति जनता को प्राप्त करना।

5. अधिकारी वर्ग द्वारा स्वयं को जनता का स्वामी नहीं बल्कि सेवक समझना।

राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार :– जयप्रकाश ने भारत की एकता तथा अखण्डता के लिए राष्ट्रवाद का समर्थन किया है। उनके अनुसार भारत उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक एक साझा सांस्कृतिक धरोहर के सहभागी है। जयप्रकाश धर्म निरप्रेक्षवाद का समर्थक थे तथा उन्होंने धर्मनिरपेक्षवाद को राष्ट्रवाद की अवधारण का आधार माना है, वे हिन्दू राष्ट्रवादी अवधारणा के विरोधी है और उसे धर्मनिरपेक्षवाद का विरोधी मानते है, उनके अनुसार सम्प्रदायिकता धार्मिक आधार तथा हिन्दू राष्ट्र की स्थापना राष्ट्रवाद की भावना के लिए घातक है। जयप्रकाश के अनुसार धर्म निरप्रेक्षवाद को राज्य तथा सामाजिक जीवन के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए। जयप्रकाश के अनुसार राज्य का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ही राश्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक नहीं है। राज्य के साथ लोगो के व्यक्गित जीवन और सामाजिक जीवन में भी धर्मनिरपेक्ष के आदर्श को मान्यता मिलती है। भारतीय समाज राष्ट्रवाद तथा सम्प्रदायिकता के प्रति जितना जाग्रत रहेगा उतना ही राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा[6]।

आधुनिक लोकतंत्र :– जयप्रकाश का मानना था कि लोकतंत्र की समस्या मूलतः एक नैतिक समस्या है। लोकतंत्र में संविधान, शासन प्रणाली दलों और चुनावों की विशिष्ट भूमिका है। जब तक जनता में आध्यात्मिक गुणो तथा नैतिक गुणों को विकास नही होता तब तक हम अच्छे परिणाम की उम्मीद नहीं लगा सकते है। लोकतंत्र के सफल संचालन की कसौटियां है, सत्यप्रियता, अहिंसावाद, स्वतंत्रता, प्रेम कर्तव्य, परागता, सहिष्णुता उत्तरदायित्व तथा क्षमता समानता की भावना जयप्रकाश ने आधुनिक संसदीय पद्धति को अनुपयुक्त बताया है। उनके अनुसार संसदीय पद्धति दलगत राजनीतिक से ग्रसित है। इसके अतिरिक्त चुनावों में सत्ता में नियंत्रण बनाये रखने के लिए शक्तिशाली दल धन तथा कपटपूर्ण साधनों का प्रयोग करते है। जयप्रकाश के अनुसार नौकरशाही की शक्तियों में लगातार वृद्धि होती जा रही है तथा सरकारी अधिकारी तथा कर्मचारियों पर जनता निर्भर है। प्रशासन के सेवक की तरह व्यवहार न होकर स्वामी की तरह हो गया है[7]।

दलविहीन लोकतंत्र :– संसदीय लोकतंत्र की आलोचना को अपनी दलविहीन प्रजातंत्र की अवधारणा का आधार बनाया। उनका विचार था कि आधुनिक लोकतंत्र में दलीय व्यवस्था इतनी प्रभावित हो गयी है कि लोकतंत्र, दलतंत्र बन गया है। यह दलतंत्र राजनीतिक भ्रष्टाचार को फैलाता है और लोगों में फूट डालता है। इसकी औचित्यता शांतिपूर्ण साधनों में है। यह अनैतिक साधनों का प्रयोग करके जनतंत्र के वास्तविक अर्थ को दूषित कर रहा है। इसलिए जयप्रकाश ने दल विहीन लोकतंत्र की अवधारण का प्रतिपादन किया ताकि गैर जिम्मेदाराना भूमिका में अंकुश लग सके। दलविहीन तंत्रों को लागू करने के लिए सुझाव दिये हैं।

1. सबसे पहले लोकतंत्र में राजनीतिक दलों को समाप्त किया जाये। चुनाव प्रणाली समाप्त करके जनता द्वारा ग्राम स्तर से केन्द्रीय स्तर तक के उम्मीदवारों का प्रत्यक्ष चुनाव किया जाय। प्रत्येक गॉव में ग्रामसभा के दो सदस्य निर्वाचित करके उस निर्वाचन सूची मतदाता परिषद के पास भेजें, इसके बाद मतदाता परिषद की खुली बैठक में राज्य विधान पालिका या केन्द्रीय संसद के उम्मीदवारों के नाम प्रस्तावित द्वारा समर्थित किये जाये। इसके बारे में राय एक बनाने का प्रयास किया जाये। यदि आम राय न बन जाये तो 30 प्रतिशत से अधिक मत

प्राप्त व्यक्ति को संसद या विधान परिषद का प्रतिनिधि घोषित कर दिया जाये।

2. दलगत राजनीति से मुक्त सर्वोदय समाज की स्थापना की जाये।
3. सभी दलों को सर्वोदय के कार्य में शामिल होने के लिए आंमत्रित किया जाये ताकि दलगत भावनाओं का अंत हो।
4. निर्वाचित होने के बाद सभी उम्मीदवारों को अपने दल से नाता तोड़ लेना चाहिए ताकि दल के कठोर सिद्धान्तों के पास से मुक्ति पा सके[8]।

समग्र क्रांति :– जयप्रकाश नारायण ने 05 जून 1974 में पटना के गॉधी मैदान से इन्द्रा गांधी सरकार को अस्वीकार्य नीतियों के विरूद्ध सम्पूर्ण क्रांति की घोषणा की।

1. जयप्रकाश नारायण के अनुसार सम्पूर्ण क्रांति में व्यक्ति और समाज दोनों में सार्वजनिक परिवर्तन लाने का लक्ष्य होगा।
2. सम्पूर्ण क्रांति की धारा का उद्देश्य विद्यमान विकृत व्यवस्था को समाप्त करना ही नहीं अपितु उसके माध्यम से एक नवीन वैकल्पिक व्यवस्था की योजना भी प्रस्तुत करना है।

जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति की परधि में सात आयामों को सम्मिलित किया।

1. सामाजिक क्रांति, 2. आर्थिक क्रांति, 3. राजनीतिक क्रांति,
4. सांस्कृतिक क्रांति, 5. बौद्धिक क्रांति, 6. शैक्षिक क्रांति,
7. नैतिक अथवा अध्यात्मिक क्रांति।

सामाजिक क्रांति :– सम्पूर्ण क्रांति के एक अंग के रूप में सामाजिक क्रांति का संबंध समाज में मौजूद उन संस्थाओं एवं मान्यताओं का अंत करना है। जो अपनी प्रकृति से अनैतिक व अमानवीय है। इस दृष्टि से यह सामाजिक अन्याय को प्रतिष्ठित करने वाली जाति व्यवस्था एवं छुआछूत की परम्परा के पूर्ण उन्मूलन के समर्थक हैं। सामाजिक क्रांति दहेज प्रथा तथा मृत्यु भोज प्रथा की भी विरोधी है। सामाजिक असमानता की समाप्त करने हेतु सामाजिक क्रांति उचित समझा है[9]।

आर्थिक क्रांति :– अर्थ व्यवस्था के क्षेत्र में सम्पूर्ण क्रांति जिस रूप में प्रकट होगी उसे जयप्रकाश ने आर्थिक क्रांति कहा है। आर्थिक क्रांति का उद्देश्य शोषण, असमानता, वर्ग भेद, प्रदूषण बढ़ाने वाली पूंजीवादी एवं केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का उन्मूलन करना है और इसके स्थान पर ऐसी अहिंसक विकेन्द्रीकृत एवं आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की स्थापना करना है जिसमें श्रम–प्रधान, लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रधानता होगी[10]।

राजनीतिक क्रांति :– सम्पूर्ण क्रांति के एक अंग के रूप में राजनीतिक क्रांति का उद्देश्य नैतिक मूल्यों पर आधारित एवं लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना करना है। राजनीतिक क्रांति का प्रशासनिक क्षेत्रों में केन्द्रीकरण की उस प्रवृत्ति का अन्त करेगी जो राजशक्ति को लोकशक्ति पर थोपने में सहायक होती है यह राजनीतिक जीवन में दलीय प्रणाली का भी अन्त करेगी[11]।

सांस्कृतिक क्रांति :– उपर्युक्त नैतिक व आध्यात्मिक क्रांति तथा बौद्धिक क्रांति उस वातावरण को जन्म देती है जिसमें ऐसी सास्कृतिक क्रांति संभव होगी। जो जन समूह में उदारता, सहयोग, सहिष्णुता, त्याग, अहिंसा, करूणा, कर्तव्य परायणता, सत्य–प्रियता आदि के गुणों पर आधारित जीवन दृष्टि का विकास करने में समर्थ

होगी[12]।

बौद्धिक क्रांति :– उपर्युक्त नैतिक एवं आध्यात्मिक की पृष्ठभूमि में उस बौद्धिक क्रामित का जन्म संभव है, जो भौतिक एवं लौकिक तर्कों के आधार पर व्यक्ति के हितों में एकता स्थापित करेगी। बौद्धिक क्रांति व्यक्ति की सामाजिकता पर बल देगी और यह प्रमाणित करेगी कि एक और अनेक अथवा "अनेक" और "एक" ही सत्य के दो पहलू मात्र हैं अर्थात् व्यक्ति व समाज के हितों में आधारभूत विरोध नहीं हैं। अपितु उनमें आधारभूत एकता है[12]।

शैक्षिक क्रांति :– सम्पूर्ण क्रांति अपनी से सतत् चलाने वाली एक प्रक्रिया है और जयप्रकाश ने इस क्रांतिकारी प्रक्रिया की शुरूआत इसके कुशल संचालन तथा स्थायित्व की दृष्टि से शैक्षणिक क्रांति की भूमिका को अत्यन्त महत्पूर्ण माना है यद्यपि सामान्य रूप में शिक्षा का संबंध सभी आयु एवं वर्गों के व्यक्तियों से है, किन्तु इस विशिष्ट संबंध उन बालकों, किशोरों एवं युवाओं से है। जिसके अपने निहित स्वार्थ नहीं है। अपने इस विशेष गुण के कारण विद्यार्थीगण स्वयं में वर्ग नहीं मूलतः एक समुदाय हैं। शैक्षिक क्रांति का उद्देश्य इस समुदाय को नैतिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक गुणों से दीक्षित एवं संस्कारित करना है[13]।

नैतिक एवं आध्यात्मिक क्रांति :– सम्पूर्ण क्रांति का नैतिक आयाम की चेतना में मौजूदा उन भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के महत्व को प्रतिपादित करना है जो व्यक्ति को व्यक्ति से सहज रूप से जोड़ने वाले हैं। क्रांति का यह आयाम सार्वभौम मानव धर्म से संबंधित है और इस तथ्य पर बल देता है कि नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य स्वयं से साध्य है और समस्त भौतिक विकास व उपलब्धियां इस साध्य की प्राप्ति के साधन हैं। भौतिक अथवा व्यक्ति के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्पादन में बाधक होते हैं, किन्तु उनकी अधिकता अथवा उनका परिपूर्ण निर्भरता उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक पतन का कारण बनते हैं[14]।

निष्कर्ष :–

जयप्रकाश नारायण सामाजिक विचारक थे, उन्होंने दल विहीन लोकतंत्र का समर्थन किया और समाज में असमानता को दूर करने के लिए उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। राजनीति में भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए चुनाव प्रक्रिया को बदलने की वकालत की। समाजिक असमानता, छुवाछूत को दूर करने के लिए शिक्षा को बढ़ाने पर जोर दिया था।

संदर्भ सूची :–

1. जयप्रकाश नारायण जन क्रांति के लोक नायक डॉ0 रितेश्वर नाथ तिवारी, राजप्रकाश, पृष्ठ 334
2. वहीं, पृष्ठ सं0 335
3. अमरेश्वर एवं राजकुमार अवस्थी आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीति चिंतन रिसर्च पब्लिकेशन त्रिपोलिया, जयपुर, वर्ष 2011 पृष्ठ सं0 365
4. मिश्रा राकेश राजनीतिक विज्ञान एक समग्र अध्ययन, पृष्ठ सं0 159–160 सांतवा संस्करण।
5. रामवृक्ष बेनीपुरी सब हमारा देश स्वर्ग होना (1948) श्री जयप्रकाश नारायण जी की विचारधारा प्रकाशन जगत पटना, अक्टूबर 1948, पृष्ठ 320–323

6. शर्मा अरूण दत्ता, कुमार आशुतोष नवीन एवं विनीत अरिहंत पब्लिकेशन (इण्डिया) लि0, पृष्ठ 28
7. वहीं, पृष्ठ सं0 27
8. @margdorshan for civilse services
9. मिश्रा राकेश राजनीतिक विज्ञान एक समग्र सांतवा संस्करण अध्ययन, पृष्ठ 161
10. कृष्णादत्ता भट्ट सम्पूर्ण क्रांति के जयप्रकाश सं0 से स0 प्रकाशन वाराणसी 1985, पृष्ठ–7
11. जयप्रकाश भारतीय राज व्यवस्था की पुर्नरचना एवं सुझाव, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी 187 नोट–67, पृष्ठ 15–16
12. जयप्रकाश नारायण : ए नेशनल बिल्डिंग इन इण्डिया, वाराणसी नव चेतना प्रकाशन 1978, पृष्ठ 9–10
13. जयप्रकाश नारायण नोट–65, पृष्ठ–10
14. कृष्णा दत्त भट्ट, उपर्युक्त, पृष्ठ सं0–6
15. जयप्रकाश सम्पूर्ण क्रांति : पहला पड़ाव आखरी मंजिल शोध धर्म युग, 5 जून 1977, पृष्ठ–9

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 257-264
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद एवं विकसित भारत एक अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण।

प्रो. मधुरेन्द्र कुमार, शोध निर्देशक
चेयरपर्सन पंडित दीनदयाल उपाध्याय चेयर, राजनीति विज्ञान विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
कमलेश्वर, शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग, डी0 एस0 बी0 परिसर
कुमांऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

सारांश :-

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय महान चिंतक, श्रेष्ठ संगठक और आदर्श राजनेता थे। पंडित दीनदयाल जी का दर्शन भारत की प्रकृति से जुड़ा दर्शन हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत दर्शन को एकात्म मानववाद कहा जाता हैं। एकात्म मानववाद का उद्देश्य एक ऐसा स्वदेशी सामाजिक–आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना था जिसमें विकास के केन्द्र में मानव हो। वे पूंजीवाद एंव समाजवाद के मध्य एक ऐसी धारा के पक्षधर थे जिसमें दोनों प्रणालियों के गुण मौजूद हो। दीनदयाल जी ने अपने एकात्म मानववाद दर्शन में कहा कि दुनियॉ को पूंजीवाद या साम्यवाद नहीं बल्कि मानववाद की जरूरत हैं। उन्होने अपने दर्शन एकात्म मानववाद में साम्यवाद और पूंजीवाद दोंनो की समालोचना की और एकात्म मानववाद को स्थापित किया। विकास की धारा अविरल बहे। उसके प्रवाह में सभी शामिल हो। समावेशी विकास की यही अवधारणा पं. दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन का सार हैं। उनका दर्शन समग्रता, पारस्परिकता, सामंजस्य और एकात्म पर आधारित हैं। उनके दर्शन में व्यक्ति, समुदाय, वर्ग, समाज और राष्ट्र सभी की आकांक्षाओं और आंनद का समावेश हैं। उनका दर्शन सारी मानव जाति में एक ही आत्मा एकात्म को देखता हैं। इसलिए उनका दर्शन समावेशी विकास का मौलिक दर्शन हैं। उनके दर्शन का आधारभूत सिद्वान्त मनुष्य का संपूर्ण विकास हैं जिसमें भौकित और नैतिक विकास के प्रयासों का समावेश हैं।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन विकसित भारत के निर्माण के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं। आज से वर्षों पूर्व पंडित दीनदयाल जी ने जो एकात्म मानववाद दर्शन दिया था अगर उसी दिन से उसे फलीभूत किया जाता तो अब तक विकसित भारत की संकल्पना साकार हो चुकी होती। उनका दिया हुआ एकात्म मानववाद दर्शन आज भी उतना ही प्रासांगिक हैं जितना वर्षों पहले था।

वर्तमान समय में विकसित भारत बनने की राह में अनेक सामाजिक, आर्थिक, व राजनैतिक समस्यायें व चुनौतियां विद्यमान हैं जो विकसित भारत के निर्माण में अवरोध पैदा कर रही हैं। इन समस्याओं और चुनौतियों में बेरोजगारी, अशिक्षा, निर्धनता, भुखमरी, सामाजिक असुरक्षा, आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य, आवास, जातिवाद, सम्प्रदायवाद व क्षेत्रवाद जैसी अनेक समस्याऐं व चुनौतियॉ प्रमुख हैं। यदि सन् 2047 तक विकसित भारत की संकल्पना को पूर्ण करना है तो हमें पंडित दीनदयाल जी के द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद दर्शन को विकास के सभी क्षेत्रों में अपनाना होगा। वर्तमान समय में विकसित भारत के निर्माण में जितनी भी समस्याऐं बाधक बन रहीं हैं उन सभी समस्याओं का निराकरण एकात्म मानववाद दर्शन के मार्ग को अपनाकर किया जा सकता हैं। एकात्म मानववाद एक ऐसा मार्ग हैं जिसमें व्यक्ति समाज से और समाज चेतना से जुड़ता हैं जिससे नैतिक प्रगति होगी और नैतिक प्रगति होगी तो वह भौतिक प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। व्यक्ति का मन, अर्तंआत्मा और चेतना विकसित होगी तो निश्चित रूप से समाज भी विकसित होगा और अगर समाज विकसित होगा तो देश स्वतः ही विकसित हो जायेगा। एकात्म मानववाद के इसी मूलमंत्र के साथ 2047 तक विकसित भारत का सपना साकार किया जा सकता हैं।

इस शोध का उद्देश्य पंडित दीनदयाल जी के एकात्म मानववाद दर्शन की वर्तमान प्रांसगिता को रेंखाखित करना है तथा विकसित भारत के निर्माण में एकात्म मानववाद की क्या भूमिका हो सकती हैं के अर्तसम्बन्धों का विश्लेषण करना हैं।

मुख्य शब्द : एकात्म मानववाद, साम्यवाद, पूॅजीवाद, समालोचना, समग्रता, पारस्परिकता, समावेशी विकास, मौलिक दर्शन, प्रासंगिकता, विकसित भारत, सामाजिक असुरक्षा, भौतिक व नैतिक विकास।

प्रस्तावना :-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक महान राजनैनिक, सामाजिक चिंतक एंव दार्शनिक थे जिन्होने भारत के विकास और सुशासन हेतु भारतीय राजनीति को एक नया प्रतिरूप प्रदान किया। पंडित जी ने अपना संम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित करते हुए समाज को समता, समानता एंव सर्वोदय पर आधारित जीवन जीने का एक नवीन मार्ग दिया एक दर्शन का प्रतिपादन किया जिसे एकात्म मानव दर्शन के नाम से जाना जाता हैं। पं दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपना एकात्म मानववाद दर्शन का विस्तृत विवेचन 22 से 25 अप्रैल 1965 को भारतीय जनसंघ के बम्बई अधिवेशन में दिया था। वे एक ऐसे राजनेता थे जिन्होने सम्पूर्ण राष्ट्र समाज एंव भारतीय जनों की समस्याओं को करीब से जाना एंव अनुभूत किया। भारतीय व पाश्चात्य ग्रन्थों का अध्ययन एंव स्वंम के मौलिक चिंतन द्वारा उन्होंने राष्ट्र एंव समाज के भावी युगानुकूल स्वरूप हेतु अपने विचार प्रस्तुत किये। पं दीनदयाल ने भारत की परम्परा, दर्शन और विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए एकात्म मानववाद का प्रतिपादन किया। इसमें समाजवादी कमियों को चिन्हित कर उनको दूर किया हैं और पूंजीवादी भौतिकता को भी नई दृष्टि दी हैं। वास्तव में पंडित जी मनुष्य की भौतिक प्रगति के साथ–साथ उसके मन, मस्तिष्क और आत्मा के आनन्द के बारे में चिंतन और प्रयासों की जरूरत बताते हैं। उनके दर्शन का आधारभूत सिद्वान्त मनुष्य का सम्पूर्ण विकास हैं जिसमें भौतिक और नैतिक विकास के प्रयासों का समावेश हैं। उन्होने कहा है कि भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है कि यह जीवन को एकीकृत और समग्र रूप में देखती हैं वे मानते थे कि मानव मात्र के कल्याण का मार्ग तभी प्रशस्त हो सकता हैं जब उसके सर्वांगीण विकास के समावेशी प्रयास हो। उनका

माननना था कि व्यक्ति एंकागी नहीं बहुरंगी हैं। मानव तो शरीर मन बुद्धि और आत्मा का सम्मलित रूप हैं। पं दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानवाद दर्शन आज भी प्रासंगिक हैं। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक उपरांत भी भारत के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना हुआ है कि संपूर्ण जीवन की रचनात्मक दृष्टि से कौन सी दिशा ली जाए? मूल दिशा का पता न होने के कारण आज भी भारत के समक्ष अनेक आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्याऐं और चुनौतियां विद्यमान हैं जो विकसित भारत की राह के निर्माण में बाधक बनी हुई हैं। इन समस्याओं और चुनौतियों में अशिक्षा, निर्धनता, भुखमरी, बेरोजगारी, सामाजिक असुरक्षा, आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य, पेयजल, आवास, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, भ्रष्टाचार इत्यादि प्रमुख हैं। एकात्म मानव दर्शन एक ऐसा मार्ग हैं जिस पर चलकर भारत तात्कालिक समस्याओं और चुनौतियों का समाधान करके विकसित बनने का मार्ग प्रशस्त कर सकता हैं। यदि भारत एकात्म मानव दर्शन की समावेशी विकास की अवधारणा को अपनाता हैं तो निश्चित तौर पर 2047 तक विकसित भारत का सपना परिपूर्ण हो सकता हैं।

शोध पद्वति :-

इस शोध पत्र में ऐतिहासिक एंव विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया हैं तथा इस शोध पत्र को द्वितीयक स्त्रोतों के आधार पर निर्मित किया गया हैं।

शोध के उद्देश्य :-

(1) पंडित दीनदयाल उपाध्याय प्रणीत एकात्म मानववाद की वर्तमान प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

(2) एकात्म मानववाद एंव विकसित भारत के अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण करना।

(3) विकसित भारत के निर्माण में एकात्म मानववाद की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन करना।

एकात्म मानव दर्शन : एक परिचय :-

दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने एकात्म मानववाद की अवधारणा को मंबई में 22 से 25 अप्रैल, मई 1965 के बीच दिए गए व्याख्यानों में प्रस्तुत किया था। एकात्मता की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा था कि भारतीय संस्कृति का पहला लक्षण यह है कि हम पूरे जीवन को एकात्म रूप में देखते हैं। चार तत्व—शरीर, मन, बुद्धि एंव आत्मा एक व्यक्तित्व का निर्माण करतें हैं परन्तु ये सभी एकात्म हैं। हम प्रत्येक भाग को अलग रखने के सम्बन्ध में सोच नहीं सकतें हैं। पंडित दीनदयाल जी का एकात्म मानव दर्शन सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही दृष्टि से एक सर्वकालिक एंव सार्वभौमिक जीवन दर्शन हैं। इस दर्शन के अनुसार मानव सम्पूर्ण ब्रह्मंड के केन्द्र में अवस्थित रहकर एक सर्पिलाकार मंडलाकृति के रूप में अपने स्वंम के अतिरिक्त क्रमशः परिवार, समाज, राष्ट्र, सृष्टि, परमेष्टि के प्रति अपने बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता हुआ प्रकृति के साथ संग्रथित होता हुआ एकीकृत हो जाता हैं। इन सबके बीच परस्पर सम्बन्धों को दृष्टिगत रखते हुए ही विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अपना उपयोग व जीवनचर्या निश्चित करनी चाहिए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के अनुसार व्यक्ति व्यक्ति का विरोधी ना होकर सहयोगी होना चाहिए जो हमारी सभ्यता एंव संस्कृति के भीतर ही सम्भव हैं। पंडित दीनदयाल का स्पष्ट मानना था कि समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद व्यक्ति के एकांगी विकास की बात करते हैं, जबकि व्यक्ति की समग्र जरूरतों का मूल्यांकन किये बिना कोई भी विचार भारत के विकास के अनुकूल नहीं हो सकता। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जीवन व सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती

हैं। इसका दृष्टिकोण एकात्मवादी हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के कथनानुसार किसी भी राष्ट्र की एक आत्मा होती हैं उससे अलग जाकर विकास एक विकृति को जन्म देता हैं।

एकात्म मानववाद की वर्तमान प्रासंगिकता :-

दीनदयाल जी के एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता हैं –

(1) आज विश्व की एक बड़ी आबादी गरीबी में जीवन यापन कर रही हैं। विश्वभर में विकास के कई मॉडल लाये गए लेकिन आशानुरूप परिणाम नहीं मिला। अतः दुनिया को एक ऐसे विकास मॉडल की तलास हैं जो एकीकृत और संधारणीय हो। एकात्म मानववाद ऐसा ही दर्शन हैं जो अपनी प्रकृति में एकीकृत एंव संधारणीय हैं।

(2) एकात्म मानववाद न केवल सामाजिक–आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ता हैं, अपितु राजनैतिक एंव सांस्कृतिक स्वतंत्रता को भी बढ़ता हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त विविधता को प्रोत्साहन देता हैं अतः भारत जैसे विविधतापूर्ण देश के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

(3) एकात्म मानववाद एक ऐसा मार्ग हैं जिसको अपनाकर हम अपनी तात्कालिक एंव भावी समस्याओं का समाधान निकाल कर विकसित भारत की ओर बढ़ सकते हैं।

विकसित भारत के मापदण्ड :-

किसी भी देश को विकसित देश की श्रेणी में रखने के लिए कुछ निर्धारित मापदण्ड होते हैं। यदि वह देश उन निश्चित मापदण्डों को पूरा करता हैं तो वह विकसित देश की श्रेणी में सम्मलित हो जाता हैं। भारत को यदि 2047 तक विकसित भारत के सपने का पूरा करना हैं तो भारत को निम्मलिखित मापदण्डों को पूरा करना होगा :–

- किसी भी देश को विकसित बनने के लिए उसकी अर्थव्यवस्था सबसे अहम होती हैं। भारत इस वक्त दुनिया की 5वी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था हैं। भारत को अपनी अर्थव्यवस्था को और मजबूत करना होगा।
- खाद्यान्नों पर आत्मनिर्भरता होनी चाहिए।
- स्वास्थ्य सुविधाऐं सर्वसुलभ होनी चाहिए।
- शिक्षा सर्वसुलभ होनी चाहिए।
- मूलभूत सुविधाऐं (रोटी, कपड़ा, मकान) सभी नागरिकों को मिलना चाहिए।
- मानव विकास सूककांक उच्च होना चाहिए।
- गरीबी तथा भुखमरी समाप्त होनी चाहिए।
- बेरोजगारी को समाप्त करके रोजगार के अवसर उपलब्ध होने चाहिए।
- सामाजिक सुरक्षा जैसी सुविधाओं की गारंटी होनी चाहिए।
- वित्तीय और सामाजिक समावेशन में सुधार करके समावेशी विकास की ओर बढ़ना होगा।

विकसित भारत के निर्माण के विभिन्न क्षेत्रों में एकात्म मानववाद दर्शन की भूमिका :-

किसी भी राष्ट्र का विकास उसकी बुनियाद के आधारभूत सिद्धानों से ही सम्भव हैं प्रत्येक देश की अपनी ऐतिहासिक, सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक, और प्राकृतिक परिस्थितियां होती हैं। ये आधारभूत सिद्धान्त जो आगे

चलकर उस राष्ट्र की संस्कृति का रूप लेते हैं इन्हीं परिस्थितियों के अनुरूप होतें हैं यही परिस्थितियां देश को प्रगति के शीर्ष पर पहुंचा सकती हैं जब हम किसी राष्ट्र के विकास की नींव रखते हैं तब राष्ट्रनायक इन्ही आधारभूत स्थितियों के ताने–बाने पर विकास के स्वप्न देखता हैं स्वतंन्त्रता के संघर्ष में ऐसा ही स्वप्न पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने देखा था, जो परतंन्त्रता और स्वतंत्रता के संधिकाल में एकात्म मानववाद के सिद्धान्त के रूप में सामने आया। आज से वर्षो पहले पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने एकात्म मानववाद का जो दर्शन दिया था अगर उसी दिन से उसे फलीभूत किया जाता तो अब तक विकसित भारत की संकल्पना साकार हो चुकी होती। अभी भी विभिन्न क्षेत्रों में हम देख सकतें हैं कि उनके विचार कितने प्रासंगिक हैं। भारत की स्वतंत्रता के 100 वें वर्ष , यानी वर्ष 2047 तक भारत को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाने का लक्ष्य रखा गया हैं। विकसित भारत के इस महत्वाकांक्षी लक्ष्य को प्राप्त करने में दीनदयाल जी का एकात्म मानववाद दर्शन एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हो सकता हैं। एकात्म मानव दर्शन विकसित भारत के निर्माण के विभिन्न क्षेत्रों में किस प्रकार सहयोग कर सकता हैं उसके इस दर्शन की विवेचना निम्नलिखित आधार पर की जा सकती हैं :–

(1) शिक्षा के क्षेत्र में एकात्म मानववाद की भूमिका :–

किसी भी विकसित राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक होता हैं। भारत में आज भी शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं हैं आबादी का बड़ा हिस्सा आज भी शिक्षा से वंचित रह जाता हैं। यदि आजादी के 100वें वर्ष अर्थात वर्ष 2047 तक विकसित भारत के सपने को साकार करना हैं तो भारत को शिक्षा के क्षेंत्र में उन्नति करनी होगी। पं0 दीनदयाल जी का एकात्म मानव दर्शन को शिक्षा के क्षेत्र में अपनाकर विकसित भारत की संकल्पना का मूर्त रूप दिया जा सकता हैं। दीनदयान जी के शब्दों ''शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति सें हैं, उससे अधिक समाज से हैं, बिना शिक्षा के समाज सम्भव नहीं, यदि शिक्षा न हो तो समाज का जन्म ही न हो। अतः शिक्षा के प्रश्न को मूलतः सामाजिक दृष्टिकोण से ही देखना होगा, शास्त्रों के अनुसार यह ऋषि ऋण हैं, जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य हैं''। समाज के हित एंव विकास के लिए बच्चों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक हैं। दीनदयाल जी भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा को प्रदान के पक्षधर थें। पं0 दीनदयाल जी के शैक्षिक दर्शन से होता हैं कि शिक्षा के माध्यम प्रमुख रूप से तीन हो सकतें हैं :– संस्कार, अध्यापन, और स्वाध्याय। इस प्रकार दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद के अर्न्तगत सबको शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, व विकेन्द्रित शिक्षा पर बल दिया।

(2) ग्रामीण विकास के क्षेत्र में एकात्म मानववाद की भूमिका :–

भारत गॉवों का देश देश हैं, गॉवों को विकसित किये बिना हम विकसित भारत की कल्पना नहीं कर सकतें हैं। पं0 दीनदयाल के अनुसार आर्थिक योजनाओं तथा प्रगति की माप समाज के ऊपर की सीढ़ी पर पहुंचे व्यक्ति से नहीं, बल्कि सबसे नीचे के स्तर पर विद्यमान व्यक्ति से होनी चाहिए। आज देश में करोड़ो मानव हैं जो मानव के किसी भी अधिकार का उपभोग नहीं कर पा रहें हैं शासन के नियत और व्यवस्थाएं, योजनाऐं और नीतियां, प्रशासन का व्यवहार और भावना इनकों अपनी परिधि में लेकर नहीं चलती तथा उन्हें मार्ग का रोड़ा ही समझा जाता हैं। हमारी भावना और सिद्धान्त है कि मैले – कुचले, अनपढ़, मूर्ख लोग हमारे नारायण हैं हमें इनकी पूजा करनी चाहिए। यह हमारा सामाजिक और मानव धर्म हैं। जिस दिन इनको पक्के, सुन्दर, स्वच्छ घर बनाकर देंगे, जिस दिन हम इनके बच्चों और स्त्रियों को शिक्षा और जीवन दर्शन का ज्ञान देगें, जिस दिन हम इनके हाथ और पैर की बिवाइयों को भरेगें और जिस दिन इनको उद्योगों और धंधों की शिक्षा देकर इनकी आय को

ऊँचा उठा देंगे उस दिन हमारा भ्रातृभाव व्यक्ति होगा। गॉवों में जहॉ माता और पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ हैं, वहॉ जब तक हम आशा और पुरूषार्थ का संदेश नही पहुंचा पायेंगे तब तक हम राष्ट्र के चैतन्य को जाग्रत नहीं कर सकेगे। एकात्म मानववाद की इसी अवधारणा के साथ यदि ग्रामीण भारत का विकास किया जाए तो निश्चित रूप से 2047 तक हमारा विकसित भारत का सपना साकार होगा।

(3) रोजगार के क्षेत्र में एकात्म मानववाद की भूमिका :-

पं0 दीनदयाल जी ने अपने एकात्म मानववाद में सबको रोजगार (एंम्पलॉयमेंट फॉर ऑल) की बात की हैं। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या व अनियोजित विकास के कारण भारत में बेरोजगारी की समस्या एक गम्भीर समस्या बन गई हैं। इस समस्या के समाधान किये बगैर हम 2047 तक विकसित भारत के सपने को साकार नहीं कर सकते हैं। पं0 दीनदयाल जी ने भारत में भारत की परिस्थतियों के अनुसार रोजगार सृजन के कई महत्वपूर्ण सुझाव दियें जिसमें देश में छोटे–छोटे कुटीर उद्योगों की स्थापना करना, स्वंयसेवी क्षेत्र को बढ़वा देना, विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को अपनाना, कौशल विकास व समावेशी विकास प्रमुख हैं। प्रौद्योगिकी के द्वारा संसाधनों का उचित प्रयोंग करके रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकतें हैं। वर्तमान सरकार के द्वारा रोजगार सृजन के लिए दीनदयाल जी के विचारों के आधार पर विभिन्न कार्यक्रम, योजनांए व नीतियां चलाई जा रही हैं। प्रधानमंत्री जी द्वारा स्थानीय वस्तुओं का बढ़ावा देने के लिए ''लोकल फॉर वोकल'' का नारा दिया गया तथा विकेन्द्रित व्यवस्था की कल्पना की गई। यद्यपि वर्तमान सरकार दीनदयाल जी के दर्शन एकात्म मानववाद को अपनाकर रोजगार सृजन का प्रयास कर रही हैं जिसे लगातार बढ़ाना होगा। तभी हम 2047 तक विकसित भारत का सपना पूरा कर सकतें हैं।

(4) आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में एकात्म मानववाद की भूमिका :-

पंडित दीनयाल जी ने अपने एकात्म मानववाद में अन्त्योदय का विचार दिया उनका मानना था कि जब तक समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति का विकास नहीं हो जाता तब तक समाज और राष्ट्र का विकास सम्म्सव नहीं हैं। उनके दर्शन को अपनाकर भारत को आत्मनिर्भर बनाकर 2047 तक हम विकसित भारत का सपना पूरा कर सकते हैं।

(5) स्वास्थ्य के क्षेत्र में एकात्म मानवाद की भूमिका :-

पंड़ित दीनदयाल जी ने सदैव अपने दर्शन में ''हेल्थ फॉर ऑल'' सबको स्वास्थ्य की बात की है। उनके इस दर्शन को अपनाकर भारत के सभी जनमानस को स्वास्थ्य की मूलभूत सुविधाऐं प्रदान करके हम अपने विकसित राष्ट्र की संकल्पना को साकार कर सकते हैं।

(6) आर्थिक विकास में एकात्म मानववाद की भूमिका :-

पंडित दीनदयाल इतने दूरदर्शी थे कि वर्षों पूर्व उनके द्वारा जो एकात्म मानव दर्शन दिया गया था वह भारत की आर्थिक प्रगति के लिए आज भी प्रांसगिक है। देश की उन्नत अर्थव्यवस्था के लिए दीनदयाल जी जन –जन का आह्वान करते हैं। उनकी स्पष्ट राय है कि अर्थव्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्पूर्ण जनता के प्रयत्नों से ही संभव है। आर्थिक दृष्टि से मानव को केन्द्र में रखकर दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद का अर्थ दर्शन प्रस्तुत किया हैं। उनका ''स्वदेशी आर्थिक चिंतन'' देश के विकास में एक मील का पत्थर साबित हो सकता है। वर्तमान में भारत के आर्थिक विकास के लिए ऐसे ही विकास मॉडल की आवश्कता है जो समावेशी के साथ

साथ संधारणी भी हो। पं दीनदयाल जी के एकात्म मानववाद के आर्थिक मॉडल पर यदि भारत अपना आर्थिक विकास करता हैं तो निश्चित रूप से भारत 2047 तक विकसित राष्ट्र का सपना पूरा कर सकता हैं।

उपरोक्त क्षेत्रो के अलावा पंडित दीनदयाल जी का एकात्म मानववाद विकसित भारत के निर्माण के विभिन्न क्षेत्रों में महत्तपूर्ण साबित हो सकता हैं। देश को आत्मनिर्भर बनाना, देश से गरीबी और भूखमरी को दूर करना, देश की एकता और अखण्डता को अक्षुण्य बनाये रखना, सामाजिक समस्याओं को दूर करना तथा मानव संसाधन को विकसित करने में एकात्म मानववाद महत्तपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं। यदि विकास के सभी क्षेत्रों में एकात्म मानव दर्शन को अपनाया जाए तो अवश्य ही 2047 तक भारत अपने विकसित राष्ट्र का सपना पूरा कर सकता हैं।

निष्कर्ष :-

दीनदयाल उपाध्याय जी का एकात्म मानव दर्शन प्राचीन भारतीय संस्कृति की अवधारणा ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' एंव ''सर्वे भवन्तु सुखिन'' का दूसरा रूप है। पण्डित दीनदयाल एक दूरदर्शी राष्ट्र चिंतक थे। वर्षो पहले उनके दिये एकात्म मानव दर्शन में उन्होनें ने उन सभी तत्वों का वर्णन किया हैं जो विकसित समाज और विकसित राष्ट्र के लिए अति आवश्यक हैं। जिस पर चलकर हम वर्तमान की समस्याओं का निराकरण करते हुए भावी राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। एकात्म मानववाद का मूल उद्‌देश्य व्यक्ति और समाज की मौलिक जरूरतों में सामंजस्य स्थापित करके प्रत्येक व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करना हैं। माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा भारत की आजादी के 100वें वर्ष अर्थात वर्ष 2047 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने की संकल्पना की गई हैं। प्रधानमंत्री जी की इस विकसित भारत की संकल्पना को यदि पूरा करना है तो हमें पण्डित दीनदयाल जी के एकात्म मानव दर्शन का अपनाना होगा। वर्तमान केन्द्र सरकार भारत को आत्मनिर्भर बनाने, अर्थव्यवस्था को मजबूत करने, सबको शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधा मुहैया कराने के लिए, समावेशी विकास और रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए दीनदयाल जी के नाम व दर्शन पर अनेक योजनाएं और कार्यक्रम चला रही हैं जिससे भारत एक विकसित राष्ट्र की और अग्रसर हो रहा हैं। पण्डित दीनदयाल जी का एकात्म मानव दर्शन को अपनाकर हम 2047 तक विकसित राष्ट्र का सपना पूरा कर सकतें हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. सिंह, अमरजीत, मैं दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हूं, प्रतिभा प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2018.
2. शर्मा, महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाड्मय, (खण्ड 1 से 15), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017.
3. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 1986.
4. उपाध्याय, दीनदयाल, पोलिटिकल डायरी, सुरूचि प्रकाशन, झंडेवाला नई दिल्ली, 1986.
5 उपाध्याय, दीनदयाल, राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, 2004.
6. सिंह, अमरजीत, एकात्म मानववाद के प्रणेता : दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.
7. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद तत्व मीमांसा सिद्धान्त विवेचन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017.
8. झा, प्रभात, विचारों की दृष्टि में एकात्म मानववाद, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2019.
9. सक्सेना, मनोज कुमार, पंडित दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानव दर्शन : विविध आयाम, अनामिका

पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2018.
10. शर्मा, महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय : कर्तव्य एंव विचार, प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994.
11. पाण्डेय, राजेन्द्र, भारतीय राजनीति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय, ट्रांसवर्ल्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2020.
12. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली, 2008.
13. शर्मा, महेशचंद्र, दीनदयाल उपाध्याय : आधुनिक भारत के निर्माता, प्रकाशन विभाग, सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2002.
14. नेने, विनायक वासुदेव, पं0 दीनदयाल उपाध्याय : विचार दर्शन, खण्ड 2, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
15. द्विवेदी, संजय, भारतीया के संचारक पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विजडन पब्लिकेशन, 2015.

बेब सन्दर्भ :

- www.deendayalupadhyaysmriti.org
- http://www.dri.org.in
- www.wikipedia.org
- https://bjp.org
- https://www.drishtiias.com
- https://mib.gov.in
- http://vskbharat.com

Mail : kamleshwarmamgain@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 265–271

पैसरा की मध्य पाषाणकालीन संस्कृति : औजार प्रौद्योगिकी, जीवन शैली और तुलनात्मक अध्ययन

अमित कुमार
शोध छात्र, नेट, आई.सी.एच.आर.–जे.आर.एफ़.
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
प्रो. (डॉ.) बदर आरा
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

शोध सारांश :–

प्रस्तुत शोध पत्र बिहार के मुंगेर जिला की खड़गपुर पहाड़ी श्रृंखला में अवस्थित अश्यूलियन आवास स्थल पैसरा के मध्य पाषाणकालीन चरण का एक समग्र पुरातात्विक–विश्लेषण प्रस्तुत करता है। पैसरा में हुए उत्खनन में मध्य पाषाण काल के मानव के निवास–सह–कार्यशाला क्षेत्र के साक्ष्य मिले हैं। यहाँ से उत्खनन में अग्निकुंड के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, जिनसे अग्नि के जीवन में व्यापक उपयोग की प्रतीति होती है। इसके अतिरिक्त, विशिष्ट उपकरण निर्माण तकनीक और तत्कालीन जीवन निर्वाह प्रणाली पर भी साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इस शोध पत्र में पैसरा के मध्य पाषाण कालीन मानव के जीवन शैली, औजार प्रोद्योगिकी के साथ–साथ समान संस्कृति के अन्य क्षेत्रीय स्थलों जिसमें कंडिनी, चोरमारा, गुरमाहा और भीमबांध जैसी निकटवर्ती बस्तियां सम्मिलित हैं, के सन्दर्भों की भी विवेचना की गई है। इसके उपरांत पैसरा की तुलना पश्चिम बंगाल के बीरभानपुर एवं बिहार के कुटुम्बा से प्राप्त पुरातात्विक संदर्भों से की गई है, ताकि भारतीय मध्य पाषाण काल की क्षेत्रीय विविधताओं और बसावट के प्रारूपों को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

विशिष्ट शब्द :– मध्य पाषाण, पैसरा, लघुपाषाण उपकरण, अग्नि, बसावट प्रारूप, आखेटक–संग्राहक, बीरभानपुर, कुटुम्बा।

परिचय :–

मानव के उद्भव विकास और संस्कृति निर्माण की यात्रा में मध्य पाषाण काल का विशिष्ट स्थान है। पृथ्वी की विकास यात्रा में नूतन काल (होलोसिन) का प्रारंभ होता है तब पृथ्वी अपने धरातल का वर्तमान स्वरूप धारण करती है और साथ ही आत्यंतिक जलवायु के समापन के पश्चात समशीतोष्ण जलवायु इसी काल में प्रारंभ होती है।[1]

प्रागैतिहास में मध्य पाषाण काल एक अत्यंत महत्वपूर्ण संक्रमणकालीन चरण है, जो पुरापाषाण काल की

आखेटक–संग्राहक जीवनशैली और नवपाषाण काल की कृषि–पशुपालन आधारित स्थायी बस्तियों के मध्य संक्रमण कालीन सेतु का कार्य करता है।[2] नूतन काल के आरंभ के साथ पृथ्वी पर हुए पर्यावरणीय परिवर्तनों ने मानव को सामंजस्य बिठा कर अपनी जीवन–निर्वाह शैली और औजार तकनीक को पर्यावरण अनुकूल बनाने के लिए प्रेरित किया।[3] इस काल की सुविख्यात तकनीकी पहचान लघुपाषाण उपकरणों (माइक्रोलिथ) का विकास है[4]–छोटे, परिष्कृत पत्थर के औजार, जिन्हें लकड़ी या हड्डी के दस्ते में लगाकर उपकरणों के रूप में प्रयोग किया जाता था। इनका विकास उच्च पुरापाषाण काल के ब्लेड उद्योग से हुआ था।[5] पुरातत्व के आरंभिक विकास के चरण में पुरातत्वेत्ताओं धारणा थी की पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल एक दूसरे से असंबद्ध हैं, उनके बीच समय का लंबा अंतराल है।[6] आगे चलकर उन्नीसवीं सदी में हुए पुरातात्विक अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ कि दोनों कालों के मध्य एक संक्रमण कालीन अवस्था है, जो दोनों को एक दूसरे से आबद्ध करते हुए जोड़ती है।

इसकी खोज सर्वप्रथम 1887 ईस्वी में फ्रांस की "मास द अजी" नामक गुफा के उत्खनन से हुई।[7] इस काल को संक्रमण या संक्रांति का काल कहा गया है, क्योंकि इस काल में पूर्व के पुरापाषाण काल की विशेषताओं का ना तो पूर्ण रूप से त्याग किया गया, ना हीं आने वाले नवपाषाण काल की विशेषताओं को पूर्ण रूप से अपनाया गया है।[8] पुरापाषाण के अंतिम चरण उच्च पुरापाषाण काल के समाप्त होते होते पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे, इसके कारण विश्व के हिमायित क्षेत्रों में हम अभिगलन के परिणाम स्वरूप जगह–जगह पर सघन जंगल और विशाल घास के मैदान अस्तित्व में आए।[9] एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों के बहुत से क्षेत्रों से सघन वन घास के मैदानों में परिवर्तित हो गए, इस जलवायु परिवर्तन का प्रभाव व्यापक रूप में पेड़–पौधों की अतिरिक्त पशु पक्षियों पड़ा और विशालकाय मैमथ का स्थान छोटे पशुओं भेड़ बकरी गाय भैंस आदि ने ग्रहण किया।[10] जबकि मानव ने इस बदलते हुए पर्यावरण के अनुरूप खुद को ढालने का हर संभव प्रयास किया। जलवायु परिवर्तन के साथ हुए पर्यावरणीय प्रभाव के साथ सामंजस्य हेतु उसने अपनी उपकरण तकनीक, अपनी जीवन शैली में यथोचित परिवर्तन किया और पुरापाषाण के विशाल जानवरों के स्थान पर नूतन काल के शष्पभोजी फुर्तीले छोटे पशुओं के शिकार हेतु धनुष बाण के प्रयोग हेतु लघुपाषाण उपकरणों का निर्माण किया और जंगली घास के दानों का संग्रह भोजन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रारंभ किया, साथ ही पूर्व की तरह फल–फूल कंद–मूल आदि का भी संग्रह करता रहा।[11]

भारत में मध्य पाषाण कालीन खोज कार्य सर्वप्रथम ए०सी०एल० कार्लाइल ने 1867 सामान्य संवत में विन्ध्य क्षेत्र से लघु पाषाण उपकरण प्रतिवेदित कर के किया।[12] उसके उपरांत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काकबर्न, रिवेट कारनाक, रॉबर्ट ब्रूस फुट (1914), कामयाडे (1924), कमियाडे तथा बर्किट (1930), तथा टॉड (1932) आदि ने खोजों का प्रतिवेदन दिया। मध्य पाषाण काल के मानव अधिवास संबंधी स्तरित जमाव की सुनिश्चित प्राप्ति विभिन्न मध्य पाषाण कालीन पुरास्थलों का उत्खनन हुआ।[13] एच डी सांकलिया ने लंघनाज, बी०बी० लाल ने बीरभानपुर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्वाधान में वर्मा तथा मिश्र ने भैंसोर ग्राम (मिर्जापुर) के निकट मोरहना पहाड़, बघहीखोर, तथा लेखहिया (1963–65), जोशी तथा खरे ने आदमगढ़ (1966), तथा पंत एवं जायसवाल ने पैसरा (1981) आदि में मध्य पाषाण कालीन सुनिश्चित अधिवास स्तर उत्खनन द्वारा प्रतिवेदित किया। इन शोधों से सर्वमान्य मत निकला कि लघु पाषाण उपकरण उद्योग का विकास उच्च पुरापाषाण काल के ब्लेड उद्योग से हुआ है।[14]

पैसरा का मध्य पाषाण : एक विवेचन :–

पैसरा पुरास्थल का महत्व उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों में निहित है, जो पूर्वी भारत के मध्य पाषाणकालीन आखेटक–संग्राहक मानव जीवन के उन पहलुओं को उजागर करते हैं जो सामान्यतः अन्य पुरास्थलों के उत्खनन से स्पष्ट नहीं होते हैं।[15]

उत्खनन क्षेत्र : ट्रेंच 'बी' एवं 'एफ़' :–

पैसरा में मध्य पाषाणकालीन संस्कृति के अवशेष दो प्रमुख स्थानों से प्राप्त हुए, जिन्हें क्षेत्र 'बी' और क्षेत्र 'एफ़' के रूप में पहचाना गया है।[16]

क्षेत्र 'बी' में लगभग 15×5 मीटर के एक बड़े क्षेत्र में उत्खनन किया गया, परन्तु यहाँ से अधिवास के प्रमाण स्वरूप किसी तरह की पाषाण संरचना या खंभे गाड़ने के लिए स्तंभ गर्त नहीं मिले हैं।[17] यहां से विभिन्न प्रकार के शल्क, कुछ ब्लेड, कोर आदि प्राप्त हुए हैं, इनमें से 75 प्रतिशत ब्लेड कोर श्रेणी के हैं; केवल आठ तैयार उपकरण, कुछ पाषाण शल्क, तथा कच्चे माल के रूप में क्वार्टजाइट के कभी कभार मिलने वाले ब्लॉक सम्मिलित हैं।[18] प्राप्त आठ निर्मित उपकरणों में तीन पार्श्व खुरचनी (साइड स्क्रैपर), एक खांचेदार ब्लेड उपकरण–समूह का भाग है, परंतु इनमे से एक भी लघु पाषाण उपकरण नहीं है इसलिए इन्हे इस उद्धयोग के प्रारूपी उपकरण नहीं माना जा सकता है। लेकिन डेबिटाज में ब्लेड/ब्लेडलेट की अत्यधिक संख्या और उपकरण निर्माण के लिए महीन कण वाले ग्रे क्वार्टजाइट का उपयोग मध्यपाषाण युगीन मानवों के सांस्कृतिक अवशेष की ओर संकेत देता है। इन सभी साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि क्षेत्र–बी वास्तविक बसावट के स्थान पर बस्ती के परिधीय क्षेत्र, संभवतः औजार बनाने के बाद बचे हुए कचरे या अवशेषों को फेंकने का एक सीमांत क्षेत्र था।[19]

क्षेत्र 'एफ़', से बी की तुलना में, एक वास्तविक निवास–सह–कार्यशाला क्षेत्र के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। यहाँ लगभग 105 वर्ग मीटर के क्षेत्र में उत्खनन किया गया, जहाँ 65 से 90 सेंटीमीटर की गहराई पर मध्य पाषाण कालीन बसावट की पतली परत मिली है।[20]

अग्नि का नियंत्रित, योजनाबद्ध एवं व्यापक प्रयोग :–

पैसरा के मध्य पाषाण काल की सबसे महत्वपूर्ण और अनूठी खोज यहाँ के निवासियों द्वारा अग्नि का व्यापक और योजनाबद्ध नियंत्रित उपयोग है। क्षेत्र 'एफ़' के पूरे अधिवास स्तर पर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर अनेक बड़े और छोटे चूल्हे (पीट ओवेन) पाए गए।[21] यहाँ उत्खनन से आग जलाने की तीन विशिष्ट विधियाँ प्रकाश में आईं :

1. **सतही चूल्हे :–** यह सबसे सरल विधि थी, जिसमें मध्यपाषाणिक मानव सूखी लकड़ियों को सीधे फर्श पर इकट्ठा करके जला देते थे।[22]

2. **गीली मिट्टी के आधार वाले चूल्हे :–** इस विधि में आग जलाने से पहले फर्श पर गीली मिट्टी के कई ढेले रखे जाते थे।[23] संभवतः इसका उपयोग जानवरों के मांस को भूनने के लिए किया जाता होगा। गीली मिट्टी के ये ढेले मांस से टपकने वाले तरल पदार्थ से आग को बुझने से बचाते थे।[24]

3. **गड्ढे वाले चूल्हे :–** तीसरी विधि में, गड्ढों के भीतर आग जलाई जाती थी।[25] एक चूल्हे को पत्थरों की एक बड़ी संख्या से पाटा गया था, जो स्पष्ट रूप से उपकरण बनाने से पहले पत्थर को गर्म करने के उद्देश्य से किया

गया था।[26]

उपकरण प्रौद्योगिकी और जीवन–निर्वाह :–

कच्चा माल एवं प्रौद्योगिकी : इस क्षेत्र में क्रिप्टो–क्रिस्टलाइन सिलिका (जैसे चर्ट) जैसे उत्तम पत्थरों की कमी थी।[27] इस कारण, यहाँ के निवासियों को फाइन–ग्रेन्ड क्वार्टजाइट का उपयोग करना पड़ा।[28] यह पत्थर ब्लेडलेट और लघुपाषाण उपकरण बनाने के लिए उपयुक्त नहीं है, जो शायद यहाँ इन उपकरणों की कम संख्या का कारण है।[29] प्राप्त डेबिटाज अवशेष के तकनीकी साक्ष्य यह भी दर्शाते हैं कि वे ब्लेड डीटैचिंग की तकनीक में पूरी तरह निपुण नहीं हो पाए थे।[30]

जीवन–निर्वाह :– पैसरा के मध्य पाषाण काल के निवासी से आखेटक–संग्राहक ही थे, इसकी पुष्टि उनके उपकरणों के प्रकार और एक कूड़े के गड्ढे से प्राप्त जली हुई और बिना जली हड्डियों से होती है।[31] आखेट पर निर्भर जीवन निर्वाह शैली अनिवार्य रूप से घुमंतू होती है, और पैसरा के मध्य पाषाणकालीन बसावट की अत्यंत पतली परत इस बात का प्रमाण है कि इस काल में यहाँ के निवासी इस स्थान पर बहुत लंबे समय तक निवास नहीं किए।[32]

पैसरा के निकटवर्ती समान समकालिक अधिवास स्थल :–

पैसरा खड़गपुर पर्वत श्रृंखला की अकेली या पृथक बस्ती नहीं थी, बल्कि यह एक व्यापक सांस्कृतिक परिदृश्य का भाग थी। इस क्षेत्र में किए गए अन्वेषणों के दौरान कई अन्य मध्य पाषाणकालीन बस्तियों का पता चला, जिनमें कंडिनी, चोरमारा, गुरमाहा, और भीमबांध प्रमुख हैं।[33]

बसावट प्रारूप :– इन सभी पुरास्थल के अन्वेषण से प्राप्त पुरावशेषों और सेटलमेंट पैटर्न का अवलोकन करने पर ये सभी स्थल अल्पकालिक शिविर प्रतीत होते हैं, जिन्हें मध्य पाषाणकालीन मानव समूहों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास के दौरान संभवतः अस्थायी रूप से बसाया गया था।[34] उनका यह प्रवास पर्याप्त शिकार और अन्य खाद्य संसाधनों की खोज के लिए होता था। इस प्रकार, पैसरा व निकटवर्ती पुरास्थल मिलकर एक यायावर आखेटक–संग्राहक समाज के मौसमी या चक्रीय प्रवास के मार्गों को दर्शाते हैं। ये बस्तियाँ उस प्रणाली का हिस्सा थीं, जिनका उपयोग मानव अपने उपलब्ध खाद्य संसाधनों का अधिकतम दोहन करने के लिए करता था।

तुलनात्मक विश्लेषण :–

पैसरा से प्रकाश में आए तथ्यों को अन्य मध्य पाषाणकालीन पुरास्थलों के संदर्भ में देखने पर क्षेत्रीय अनुकूलन और सांस्कृतिक भिन्नताएँ स्पष्ट होती हैं।

बीरभानपुर (पश्चिम बंगाल) :– पश्चिम बंगाल के मेदनीपुर जिला मे अवस्थित बीरभानपुर पुरास्थल पूर्वी भारत में मध्य पाषाण काल के आरंभिक चरण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।[35] इसका उत्खनन प्रख्यात पुराविद बी॰बी॰ लाल ने किया था।

भूवैज्ञानिक संदर्भ और समानताएँ :– पैसरा की ही तरह, बीरभानपुर में भी लघु पाषाण उद्योग एक स्पष्ट भूवैज्ञानिक संदर्भ में पाया गया है।[36] जो एक मोटी रेतीली मिट्टी की परत द्वारा पूरी तरह से ढका हुआ था।[37] यह उद्योग भी मृदभांड–रहित है[38], जैसा कि पैसरा में है।

तकनीकी और भौतिक भिन्नताएँ : पैसरा में जहाँ कच्चे माल के रूप में क्वार्टजाइट के प्रयोग की

विवशता थी।[39] वहीं बीरभानपुर के निवासियों ने प्रमुख रूप से क्वाट्र्ज का इस्तेमाल किया।[40] बीरभानपुर का उद्योग प्रारूपकीय रूप से अधिक विविध है।[41] सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी अंतर यह है कि पैसरा में पत्थर को गर्म करने का स्पष्ट प्रमाण है।[42] जबकि बीरभानपुर में ऐसा कोई साक्ष्य उल्लेखित नहीं है।

कुटुम्बा (बिहार) :– बिहार के ही अरवल जिला में स्थित कुटुम्बा मध्य पाषाणिक पुरास्थल है।[43] 2012–13 एवं 2013–14 में हुए उत्खनन से लगभग 10000–8000 काल के मध्य की संस्कृति प्रकाश में आयी है।[44] इसके मध्य पाषाणिक स्तर से अज्यामितीय और ज्यामितीय दोनों प्रकार के लघु पाषाण उपकरण मिले हैं। पैसरा की तरह ही कुटुम्बा का मध्यपाषाण कालीन चरण मृदभांड रहित है।[45] कुटुम्बा का पुरास्थल बिहार में विस्तृत व व्यापक मध्य पाषाणकालीन सांस्कृतिक विस्तार की पुष्टि करता है। पैसरा इस क्षेत्रीय परिदृश्य में सबसे व्यवस्थित रूप से उत्खनित और सुनिश्चित रेडियोकार्बन तिथि 7420±110 बी॰पी॰ तिथि क्रम वाला पुरास्थल है।[46] जो कुटुम्बा जैसे अन्य स्थलों के अध्ययन के लिए एक मानक प्रदान करता है।

निष्कर्ष :–

पैसरा पुरास्थल पूर्वी भारत में मध्य पाषाणकालीन संस्कृति और उसकी जीवन निर्वाह शैली को समझने के लिए एक अद्वितीय अवसर प्रदान करता है। यहाँ उत्खनन से प्रकाशित अस्थायी मौसमी निवास–सह–कार्यशाला के स्पष्ट प्रमाण[47], अग्नि का नियंत्रित व्यापक प्रयोग (विशेषकर उपकरणों के निर्माण हेतु हीट ट्रीटमेंट)[48], और लगभग 5500 सामान्य संवत पूर्व[49] की तिथि इसे भारतीय प्रागैतिहासिक पुरातत्व में विशेष स्थान प्रदान करते हैं। कंडिनी, चोरमारा जैसे निकटवर्ती स्थलों की खोज यह प्रमाणित करती है कि पैसरा एक बड़े घुमंतू नेटवर्क का हिस्सा था, जो शिकार और भोजन की तलाश में एक चक्रीय बसावट प्रारूप का अनुसरण करता था।[50]

बीरभानपुर और कुटुम्बा जैसे पुरास्थलों से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय मध्य पाषाण काल कोई एकल, एकरूप संस्कृति नहीं थी। पैसरा जहाँ कच्चे माल की सीमाओं के भीतर तकनीकी अनुकूलन (जैसे हीट ट्रीटमेंट) का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, वहीं बीरभानपुर एक भिन्न पारिस्थितिकी में एक समृद्ध, मृदभांड–रहित उद्योग को दर्शाता है। कुटुम्बा बिहार में मध्य पाषाणिक संस्कृति के क्षेत्रीय विस्तार को प्रमाणित करता है। यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में मानव ने बदलते पर्यावरण और जलवायु के अनुसार विशिष्ट सांस्कृतिक और तकनीकी ज्ञान का विकास किया, जो इस काल की सबसे बड़ी विशेषता है।

संदर्भ सूची :–

1. वर्मा, राधा कान्त, वर्मा, नीरा, (2001), पुरातत्व अनुशीलन, परमज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–94.
2. पाण्डेय, जयनारायण, (1983), पुरातत्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, पृष्ठ–268.
3. वर्मा, राधा कान्त. उपरोक्त, पृष्ठ–94.
4. वही, पृष्ठ–94.
5. पाण्डेय, जयनारायण, उपरोक्त पृष्ठ–269.
6. वही पृष्ठ–268.
7. वही पृष्ठ–268.

8. वही पृष्ठ–268.
9. वही पृष्ठ–269.
10. जैन, वी॰के॰, (2008) भारत का प्रागैतिहास और आद्य इतिहास–एक अवलोकन, डी॰के॰प्रिंट वर्ल्ड, नई दिल्ली, पृष्ठ–54.
11. पाण्डेय, जयनारायण, उपरोक्त, पृष्ठ–269.
12. जैन, वी॰के॰, उपरोक्त, पृष्ठ–53.
13. वर्मा, राधा कान्त, उपरोक्त, पृष्ठ–95.
14. शुक्ल, गिरीश चन्द्र, पाण्डेय, विमलेश कुमार, (2002), प्राक एवं प्रागितिहासिक भारतीय पुरातत्व, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, पृष्ठ–226.
15. पंत, पी०सी०, जायसवाल, विदुला,(1991), पैसरा : द स्टोन एज सेटलमेंट ऑफ बिहार, अगम कला प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ– 136.
16. वही, पृष्ठ–131.
17. वही, पृष्ठ–131.
18. वही, पृष्ठ–131.
19. वही, पृष्ठ–131.
20. आई॰ए॰आर॰ 1985–86, पृष्ठ–10.
21. वही,
22. पन्त, पी॰सी॰ उपरोक्त, पृष्ठ–132.
23. वही, पृष्ठ– 132.
24. वही, पृष्ठ– 135.
25. वही, पृष्ठ– 132.
26. वही, पृष्ठ– 135.
27. वही, पृष्ठ– 132.
28. आइ॰ए॰आर॰, उपरोक्त, पृष्ठ–10.
29. पन्त, पी॰सी॰ उपरोक्त, पृष्ठ–132.
30. वही, पृष्ठ–132.
31. सिन्हा,बी॰पी॰, (2000), डायरेक्टरी ऑफ बिहार आर्क्योलोजी, बिहार पुराविद परिषद, पटना, पृष्ठ–88.
32. पन्त, पी॰सी॰, उपरोक्त, पृष्ठ–136.
33. वही, पृष्ठ–136.
34. वही, पृष्ठ–136.
35. लाल, बी. बी., (1958). बीरभानपुर, ए माइक्रोलिथिक साइट इन द दामोदर वैली, वेस्ट बंगाल. एंशिएंट इंडिया, 14, पृष्ठ 17.
36. वही, पृष्ठ 7.

37. वही, पृष्ठ 11.
38. वही, पृष्ठ 15.
39. पन्त, पी॰सी॰, उपरोक्त, पृष्ठ—132.
40. लाल, बी॰बी॰, उपरोक्त, 15.
41. वही, पृष्ठ—16.
42. आइ॰ए॰आर॰, उपरोक्त, पृष्ठ—10.
43. सिंह, विवेक कुमार, (2022), बिहार का पुरातात्विक एटलस, बिहार विरासत विकास समिति, पटना, पृष्ठ—263.
44. वही,
45. वही,
46. आइ॰ए॰आर॰, उपरोक्त, पृष्ठ—10.
47. पन्त, पी॰सी॰, उपरोक्त, पृष्ठ—132.
48. वही, पृष्ठ—135.
49. सिन्हा, बी॰पी॰, उपरोक्त, पृष्ठ—88.
50. पन्त, पी॰सी॰, उपरोक्त, पृष्ठ—136.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 8
पृष्ठ : 272–277

सामाजिक समरसता के सूत्रधार : गुरु नानक

डॉ. रजिंदर कौर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध सार :–

मध्यकालीन भक्ति धारा की संत परंपरा में गुरु नानक का महत्वपूर्ण तथा अमूल्य योगदान है। गुरु नानक के समय में समाज में छुआछूत, ऊंच–नीच, जात पात का बोलबाला था। गुरु नानक ने अपनी वाणी से मानवता की राह को आगे बढ़ाते हुए जाति, धर्म, तंत्र–मंत्र के सभी प्रपंचों तथा बुराइयों से मानव जाति को मुक्त कराने का आह्वान किया। समाज में समतामूलक स्थितियों को स्थापित करने में गुरु नानक की वाणी महत्वपूर्ण बन जाती है।

बीज शब्द :– अत्याचार, सामाजिक, विषमता, समरसता, प्रेम, आडंबर, मूर्ति पूजा, मानवता।

प्रस्तावना :–

सिख धर्म के प्रवर्तक तथा प्रथम गुरु, गुरु नानक का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब देश की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति अत्यंत विषम तथा दयनीय थी। चारों ओर अव्यवस्था तथा अन्याय का बोलबाला था। सिकंदर लोदी तथा बाबर की निरंकुशता तथा अत्याचार से भारतीय जनमानस त्रस्त था। आम जनता शोषण तथा अत्याचार की चक्की में पिस रही थी। धार्मिक अत्याचार, सामाजिक विषमता, जाति–पाति का भेदभाव, छुआछूत तथा भ्रष्टाचार आदि मानव समाज को रसातल में पहुंचने का प्रयास कर रहे थे। ऐसे समय में गुरु नानक ने अन्याय तथा जुल्म के विरुद्ध आवाज उठाई तथा शताब्दियों से पिसी आ रही असहाय, दीन–हीन जनता को भरसक उभारने का प्रयास किया। इस विषय में प्रसिद्ध चिंतक बलदेव वंशी का कहना है – 'नानक केवल सिख धर्म के संस्थापक ही नहीं थे, वह मानव धर्म के उन्नायक और उत्थापक भी थे। वह केवल सिखों के गुरु नहीं मानव जाति के गुरु थे। गुरु नानक ने न योग किया, न तप किया बल्कि परलोक से उतरी आत्मिक अनुभूतियों को अपने शब्दों में गाया और उनके गीत ही गीता के समान स्थान पा गए। उनकी वाणी देव वाणी तथा अमृतवाणी बन गई। गुरु नानक की अमृतवाणी उस समय के कटुता, धर्म तथा अन्याय के हाथों सताए गए लोगों के लिए काफी हद तक संजीवनी सिद्ध हुई। गुरु नानक ने अपनी वाणी से मानवता की राह को आगे बढ़ते हुए जाति, धर्म और तंत्र, मंत्र के सभी प्रपंचों तथा बंधनों व बुराइयों से मानव जाति को मुक्त कराने का आह्वान किया। उनका चिंतन सामाजिक समरसता तथा परस्पर प्रेम भाव को बढ़ावा देने वाला है।"[1]

गुरु नानक ने सामाजिक एकता की एक मजबूत पृष्ठभूमि तैयार की और फिर इसी पृष्ठभूमि पर समरसतावादी समाज का एक ढांचा खड़ा किया। उन्होंने अपने युग में होने वाले अन्याय, अत्याचार तथा

भेदभावपूर्ण व्यवहार का प्रबल विरोध किया। गुरु जी ने हर उस अत्याचारी का विरोध किया जो इस व्यवस्था का पोषक हो, फिर वह चाहे किसी भी धर्म या जाति का ही क्यों ना हो। डॉ गुरबचन सिंह तालिब के शब्दों में– 'गुरु नानक ने अपने युग के अन्याय और अत्याचार के संपूर्ण ताने–बाने का पूरी तरह से विरोध किया है। उन्होंने अत्याचारी का विरोध किया–वह हिंदू हो या मुसलमान।'[2] डॉ परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार – 'वे झूठी सांसारिक विडंबनाओं के प्रबल विरोधी, नम्रता एवं सहृदयता के सच्चे समर्थक है।"[3]

गुरु नानक की वाणी की प्रमुख विशेषता है सत्य कहने का अद्भुत साहस। गुरु नानक हर अन्याय के खिलाफ हमेशा सीना तानकर खड़े रहे। बाबर ने जब सैयदपुर पर आक्रमण किया तो उसमें लाखों लोग मारे गए, औरतों की अस्मत लूटी गई, महल अट्टालिकाएं जला दी गई। गुरु नानक ने बाबर द्वारा किए गए इस अत्याचार का डटकर विरोध किया। यही नहीं जनता की असहनीय पीड़ा को देखकर नानक ईश्वर को भी उपालंभ कर कहते हैं –

'खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगल चढ़ाइआ।
एती मार पई करसाणै तैं दरदु न आइआ।।'[4]

राजसत्ता का ऐसा तीव्र विरोध न तो किसी पूर्ववर्ती धर्म साधक ने किया और न ही किसी समकालीन संत ने मूर्ति–पूजा, छापा–तिलक, तीर्थ, व्रत, माला–फेरना आदि भक्ति के अनेक साधन माने जाते हैं। गुरु नानक ने भक्ति के इन सभी साधनों को आडंबर माना और उन्हें भक्ति के क्रम में साधक न मानकर बाधक माना। गुरु नानक का मानना था कि बाहरी आडंबरों तथा अंधविश्वासों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। दस वर्ष की आयु में इनके पिता मेहता कालू ने जनेऊ संस्कार की रस्म का आयोजन किया। सभी शास्त्रीय विधि विधान को पूरा करने के बाद पुरोहित ने जब गुरु नानक को जनेऊ धारण करने के लिए कहा तो उन्होंने साफ मना कर दिया। अपने इस अनेपक्षित निर्णय से उन्होंने सबको आश्चर्यचकित कर दिया। गुरु नानक ने पुरोहित और परिवारजन को उपदेश देते हुए कहा कि मुझे ऐसा धागा पहनाओं जिससे आत्मा का सुधार हो जाए तथा जीवन भी पवित्र हो जाए। ऐसा धागा जो न टूटे ,ना गले और ना ही नष्ट हो। जो मेरी आत्मा के साथ स्थाई रूप से रहे। अगर ऐसा हरि नाम का जनेऊ आपके पास है तो आप मुझे उसे पहना दो। गुरु नानक की इस बात को सुनकर पुरोहित भी निरुतर हो गया।

दइया कपाह सतोखु सूतु जतो गंठी सतु वट।
एमु जनेऊ जिऊ का हई तो पाडे घतु।
न ऐ हो टुटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ।
धनु सु माणस नानका जो गले चली पाई ।।[5]

तीर्थों पर स्नान करने से जुड़ी धारणा को भी गुरु नानक ने मन की पवित्रता के बिना व्यर्थ बताया। उनके अनुसार तीर्थ पर स्नान करने से या तीर्थ स्थान पर जाने से कोई फायदा नहीं है जरूरी है मन का पवित्र होना। वह कहते हैं –

नावण चले तीरथी मनि खोटे तीन चोर।
इकु भाउ लथी नातिआ दुइ भा चड़ी असु होर।

बाहरि धोती तूमड़ी अंदरि विसु निकोर।
साथ भले अरणनतिआ चोर सि चोरा–चोर।।[6]

अर्थात लोग तीर्थों पर स्नान करने जाते हैं लेकिन मन के खोटे और तन के चोर होते हैं। स्नान करने से बाहरी रूप से तो मैल उतर जाता है परंतु अहंकार, पाखंड और विभिन्न विकारों से भरा हुआ मैला भाग धुलने की बजाय और अधिक बढ़ जाता है।

जिस तरह कड़वी लौकी को बाहर से जितना धो दिया जाए परंतु भीतर वह कड़वी ही होती है, ठीक उसी तरह साधु लोग बिना नहाए भी सज्जन होते हैं और चोर नहा कर भी चोर ही रहते हैं।

गुरु नानक ने अपनी यात्राओं, जिन्हें उदासियां कहा जाता है के द्वारा भी समाज में व्याप्त विभिन्न अंधविश्वासों को दूर करने तथा मानवता के संदेश को जन–जन तक पहुंचाने का प्रयास किया। अपनी एक उदासी करते हुए जब गुरु नानक पुरी पहुंचे तो उन्होंने जगन्नाथ मंदिर में होने वाली आरती के क्रियाकलापों को देखा और परमात्मा की निरंतर चलने वाली आरती का रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा कि बाहरी दीपक, बाती ,घी से ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है। सारा आकाश ही आरती का थाल है, सूर्य और चंद्र इसमें दीपक है, तारागण मोती हैं, मलयानिल सुगंधित धूप है, पवन चंवर कर रहा है, पूरी वनस्पति ज्योति रूप परमात्मा की आरती के लिए पुष्पांजलि दे रही है। परमात्मा तक पहुंचने के लिए भीतर ही थाल सजाना होता है और आत्मा में ही आरती करनी होती है –

गगन मैं थालु रवि चंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलआनओ पवणु चवरो केर सगल बनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होइ भवखंडनातेरी आरती अनहता सबद बाजंत भेरी।।[7]

कहने का तात्पर्य है कि ईश्वर बाहरी आडंबरों पर रीझने की बजाय आत्मा की पुकार ही सुनता है। इसलिए गुरु नानक देव जी ने पूजा तथा आरती की अपेक्षा परमात्मा की एकनिष्ठ साधना पर बल दिया।

गुरु नानक ने जहां एक ओर हिंदुओं के तीर्थ स्नान, मूर्ति पूजा, कर्मकांड तथा बाहरी आडंबरों पर चोट करते हुए उन्हें मानवता का धर्म सिखाते हुए सच्चे अर्थों में हिंदू बनने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी और इस्लाम अनुयायियों को भी धार्मिक मूल्यों, सहनशीलता, धैर्य, मनुष्यता आदि पर दृढ़ रहने की प्रेरणा दी। वह सच्चे मुसलमान के गुणों की बात करते हुए कहते हैं –

मुसलमाणु कहावणु मुकसलु, जो होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अंजलि दीनु करिमिण मसंकल माना मालु मुसावै ।
होई मुसलिमु दीन मुहाणै, मरण जीवण का भरमु चुकावै।
रब की रजाई मनै सिर उपरि करता मनै आसुगवावै।
तउ नानक सरब जीआ मिहरमंति होइ त मुसलमाणु कहावै।[8]

यानी सच्चा मुसलमान वही है जो दया को अपना धर्म बनाए। अपने अंदर करुणा को संजोए। छल और बुराई से माल को लूटने की आदत छोड़ दे। जन्म और मृत्यु के भ्रम त्याग दे। ईश्वर की इच्छा को स्वीकार करे। गुरु नानक ने हिंदू और इस्लाम धर्म को निंदा की दृष्टि से नहीं देखा बल्कि दोनों को सच्चे धर्म मार्ग पर लाने का प्रयास किया। दोनों ही धर्मों में जो कुरीतियां, ऊंच–नीच आदि की भावना थी उस पर प्रहार कर गुरु नानक

ने आपसी भाईचारे की भावना समाज को प्रदान की। आपने समाज में जहां पर भी पाखंड देखा उसकी प्रबल शब्दों में भर्त्सना की यदि सिद्धों में गए तो उन्हें सीधे बात पर लाने का प्रयास किया। यदि योगियों में गए तो उन्हें सच्चे योग की युक्ति से परिचित करवाया।

समाज में अधिकतर झगड़े जाति की महानता को लेकर ही होते थे। गुरु नानक ने अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देते हुए जात–पात तथा ऊंच–नीच का विरोध किया। गुरु नानक ने संत कवियों रविदास, कबीर आदि की तरह जाति के बंधन को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि जन्म से किसी की कोई जाति नहीं होती। वह तो कर्म से कमाई जाती है।

गुरु नानक का मानना था कि जात–पात तथा उच्च वर्ग का अभिमान तथा अहंकार करना व्यर्थ है। मूर्ख व्यक्ति ही जात–पात के चक्कर में पड़कर अपना अनमोल जीवन नष्ट कर देते हैं। सेमल वृक्ष का उदाहरण देकर गुरु नानक ने जातिगत श्रेष्ठता पर करारा प्रहार किया–

सिमल रखु सराइरा अति दीरघ अति मुचु,
ओर जि आवहि आस करि जाहि निरासे कितु।
फल फिके फुल बकबके कंभि न आवहि पत,
मिठनु नीती नानका गुण चंगि आई आ ततु।[9]

यानी जिस तरह सेमल का वृक्ष बहुत ऊंचा होता है परंतु उससे कुछ प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसके फल फीके होते हैं जिससे पक्षी भी निराश हो जाते हैं उसी तरह गुण और विनय ही व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाते हैं जाति नहीं।

गुरु नानक ने जाति, संप्रदाय में भूली भटकी जनता को समझाते हुए कहा कि सभी मनुष्य समान है। संसार में बस एक ही जाति है और वह मानव। जन्म या जाति के आधार पर कोई ऊंचा नीचा नहीं होता–

खत्री ब्राह्मन सूद्र वैस की
जाति पूछि नहिं देता दाता।[10]

गुरु नानक ने बड़ी सरलता से जातिगत भेदभाव तथा उंच–नीच की समस्या को वर्णित करते हुए उसका बहुत ही सुंदर तथा सार्थक हल प्रस्तुत किया–

'फकड़ जाती फकडु नाउ। सभना जीआ इका छाउ।
आपह जे को भला कहाए। नानक तापरू जापै जा पति लेखे पाए।"[11]

यानी जात–पात अथवा उच्च वर्ग का अभिमान तथा अहंकार करना व्यर्थ है। मूर्ख व्यक्ति ही जात–पात के चक्कर में पड़कर अपना अनमोल जीवन नष्ट करते होते हैं। वास्तव में सभी मनुष्य परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं। सभी के अंदर ईश्वर रूपी परमात्मा विराजमान है। यही परम सत्य है और इस परम सत्य को जानकर कोई अपने को ऊंचा या बड़ा बताएं तो इससे वह बड़ा सिद्ध नहीं हो सकता। गुरु नानक कहते हैं कि जो परम सत्ता के दरबार में अपने प्रतिष्ठा दर्ज करवाता है वही वास्तव में उच्च कहलाने का अधिकारी है। एक जगह तो वह कहते हैं कि अगर मेरी तुलना करनी है तो समाज की उच्च वर्ग से नहीं बल्कि निम्न वर्ग से करो क्योंकि ईश्वर का वास निम्न जनों के मध्य होता है।

'नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।

नानकु तिनकै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।

जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।।[12]

यानी समाज में जो निम्न या नीचे कहीं जाने वाली जातियां हैं और उन जातियों में से भी जो बहुत नीचे है वही मेरे संगी साथी है। अगर मेरी तुलना करनी है तो दूसरों से नहीं बल्कि इन लोगों से करो। जो लोग अपने आप को उच्च या पवित्र समझते हैं उनसे मेरी क्या तुलना? वास्तव में समाज में जहां पर पीड़ित, दुखी और निम्न वर्ग का निवास होता है ईश्वर वही अपनी कृपा की दृष्टि बनाए रखते हैं। इसलिए वह कहते हैं कि मेरी तुलना इन्हीं लोगों से करो।

गुरु नानक ने इसी जाति–व्यवस्था को खंडित करने के लिए ही लंगर प्रथा चलाई, जहां कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का हो साथ बैठकर भोजन करते थे। हालांकि गुरु नानक से पहले जाति–व्यवस्था पर प्रहार किया पर इतने सरल, सहज तथा आत्मीयता से नहीं।

मध्यकालीन समाज की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थिति में विकार था। जो समाज सभी प्रकार के विकारों से युक्त था, वहां नारी की स्थिति कैसे मंगलकारी हो सकती है। उस समय नारी को पापों की गठरी समझा जाता था। नारी को तुच्छ तथा हेय की दृष्टि से देखा जाता था। गुरु नानक ने इस विषम तथा अमानवीय सोच के विरुद्ध खड़े होकर नारी के प्रति आदर भाव प्रकट किया। उन्होंने नारी को सम्मानजनक व्यवहार की अधिकारिणी माना–

भंड़ि जंनिऐ भंडि निंमोऐ भंडि मंगलु विआहु।

भंड़हु होयै दोसती भंड़हु चलै राहु। भंडु मुआ भंडु मालीऐ भंडि होयै बंधानु।

सो किउ मंदा आखीऐ जितु जैमहि राजान।[13]

यानी जिस स्त्री के गर्भ से हम जन्म लेते हैं, जन्म लेने के बाद बड़ा होने पर हमारा विवाह भी स्त्री से होता है। जिस स्त्री पर सृष्टि का चक्र आधारित है। स्त्री से ही सामाजिक संबंधों की सिद्धि होती है। बादशाह को जन्म देने वाली नारी निंदा की पात्र कैसे हो सकती है?

संभवतः सामाजिक समानता आध्यात्मिकता के आधार पर लाई जा सकती है इसलिए गुरु नानक ने एक ओंकार की सत्ता को स्वीकार किया। वे 'एक ओंकार' का माहात्म्य बताते हुए कहते हैं –

एक ओंकार सतनाम, कर्तापुरखं, निर्भोह, निर्वैरू

अकाल मुरत, अजुनी सभं, गुरू परसाद।'[14]

यानी ईश्वर एक है उसका नाम सत्य है वह सबको बनाने वाला, निराकार, निर्भय, वैर रहित तथा जन्म मरण से दूर है। उसकी प्राप्ति गुरु कृपा से होती है। वह सृष्टि में पहले से था, अब भी है और सृष्टि के बाद भी रहेगा।

ईश्वर को पाने के लिए गुरु नानक संसार को छोड़कर वनों, पहाड़ों या गुफाओं आदि में बसने की सिफारिश नहीं करते। उनके अनुसार ईश्वर को पाने के लिए संसार छोड़कर जाने की जरूरत नहीं है। सूरति ईश्वर से जुड़ गई तो तुम्हें सभी लोको का ज्ञान हो जाएगा और आवागमन के चक्र से भी मुक्ति मिल जाएगी। इसलिए वह कहते हैं –

'मँनै सुरति होवै मनि बुद्धि।

मँनै सगल भवण की सुधि।
मँनै मुहि चोटा न खाई।
मँनै जम के साथि न जाइ।।'[15]

निष्कर्ष :-

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि गुरु नानक एक उच्च कोटि के संत, समाज सुधारक, धर्म सुधारक, रूढ़ि विरोधी तथा युग पुरुष थे। उन्होंने अपने समय की परिस्थितियों को समझकर अपनी वाणी से मानवता तथा समरसता का संदेश दिया तथा बाहरी आडंबरो, जाति तथा लिंग से संबंधित भेदभाव का शांतिपूर्ण लेकिन असरकारक विरोध किया। वास्तव में गुरु नानक द्वारा दी गई शिक्षाएं उस समय भी उपयोगी थी और आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत के महान संत, बलदेव वंशी, पृष्ठ 69
2. गुरबचन सिंह तालिब, अनुवादक नरेंद्र मोहन, गुरु नानक साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ 54
3. संत काव्यधारा, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 123
4. आसा दी वार, महला 1, सलोक 39
5. गुरु ग्रंथ साहिब, आसा दी वार महला 1, पृष्ठ 471
6. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 789
7. वहीं, पृष्ठ 663
8. जीवन वृतांत श्री गुरु नानक देव जी, संपा जसबीर सिंह, पृष्ठ 68
9. नानक वाणी, अनु. जयराम मिश्र, पृष्ठ 783
10. वहीं, पृष्ठ 783
11. वहीं, पृष्ठ 169
12. वहीं, पृष्ठ 102
13. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 473
14. वही, पृष्ठ 1
15. वहीं, पृष्ठ 3

Impact Factor : 7.834
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh
SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक/ शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/चिकित्सा/ पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा/ मानविकी/कला/ सामाजिक विज्ञान/ पुस्तकालय/शिक्षा/ शारीरिक शिक्षा/ वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
✓ 1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या/ पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या/ पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

डॉ. नीरज रुवाली, पीएच.डी, डी.लिट्., ने स्नातकोत्तर (इतिहास) की परीक्षा प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल द्वारा इन्हें पीएच. डी, डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की गई। इन्हें 25 वर्षो से अधिक का शिक्षण अनुभव प्राप्त है। आपके निर्देशन में एक दर्जन से अधिक विद्यार्थियों ने शोध कार्य किया है। अपके 7 दर्जन से अधिक शोध पत्र राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने 70 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में प्रतिभाग किया है तथा विभिन्न सेमिनार कार्यशालाओं में रिर्सोस पर्सन एवं चेयरपर्सन के रुप में योगदान दिया है। ये विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में आर.डी.सी. के सदस्य हैं तथा इन्हें विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं, पुस्तकों के संपादक मंडल में स्थान दिया गया है। इन्होंने 11 पुस्तकों की रचना एवं 4 पुस्तकों का संपादन भी किया है। ये इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस एवं उत्तराखण्ड हिस्ट्री कांग्रेस के आजीवन सदस्य होने के साथ–साथ विभिन्न ऐतिहासिक परिषदों के सदस्य रहे हैं।

संप्रति – डॉ. रुवाली एम. बी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल के इतिहास विभाग में कार्यरत् हैं तथा उच्च अनुसंधान गतिविधियों में सक्रिय रुप से भाग ले रहे हैं।

मोहित कुमार शर्मा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सीनियर रिसर्च फेलो (इतिहास) हैं। वर्तमान में यह कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल में शोधरत हैं। इन्हें पाँच वर्षो से अधिक का शिक्षण अनुभव प्राप्त है। विभिन्न विषयों पर आपके 20 से अधिक शोधपत्र प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने 50 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों और कार्यशालाओं में भाग लिया है तथा अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं।

आपने 'गांधी और विवेकानंद का दार्शनिक चिंतन एवं उसके विविध आयाम', "सामाजिक सशक्तिकरण के विमर्श एवं विकसित भारत" तथा "भारतीय संस्कृति : अतीत, वर्तमान और भविष्य" जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों का संपादन किया है। आप 'बोहल शोध मंजूषा' (अंतरराष्ट्रीय पीयर–रिव्यूड शोध पत्रिका, नवम्बर 2024 अंक) के अतिथि संपादक भी रह चुके हैं।

आप विभिन्न इतिहास परिषदों के सक्रिय सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त, आपने उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया है तथा विभिन्न सरकारी एवं निजी औद्योगिक संस्थानों से प्रशिक्षण भी लिया है। शोध क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु आपको 'एकलव्य सम्मान–2024' तथा 'डॉ. बी. आर. अम्बेडकर एक्सीलेंस अवार्ड –2025' जैसे प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित किया गया है।

ज्योत्सना भट्ट, आई. सी. एच. आर. जूनियर रिसर्च फैलो (इतिहास) हैं। वर्तमान में यह एम. बी. जी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल में शोधरत हैं। इनके विभिन्न विषयों पर एक दर्जन से अधिक शोध पत्र विभिन्न जर्नलों एवं शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने 20 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों एवं कार्यशालाओं में प्रतिभाग किया है तथा अपने शोध पत्रों को प्रस्तुत किया है। ये 'बोहल शोध मंजूषा' इंटरनेशनल पियर रिव्यूड पत्रिका (नवंबर, 2024 अंक) की अतिथि सह–संपादक हैं। ये विभिन्न ऐतिहासिक परिषदों की सदस्या भी हैं। इनको गुरु फाउंडेशन, रोहतक द्वारा शोध क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए 'श्री रतन नवल टाटा मेमोरियल अवार्ड–2024' प्रदान किया गया है।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

भारतीय ज्ञान परंपरा में बौद्ध दर्शन का महत्त्व एवं योगदान

Authored by

अनूप कुमार जायसवाल
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, August 2025,
(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)
Vol. 13, Issue 8, Page No. 09-14

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

कंबुज में बौद्ध धर्म : ऐतिहासिक निरंतरता और सांस्कृतिक रूपांतरण का एक अध्ययन

Authored by

आनन्द विश्वकर्मा

शोधार्थी, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 15-18

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

डॉ. विद्या विंदु सिंह की कहानियों में मानवीय गुण

Authored by

जे. अशोक कुमार जैन, पी.एच.डी शोधार्थी

डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी,

(VISTAS), पल्लावरम, चेन्नई।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 19-22

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

8708822674

9466532152

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

भारतीय भाषाओं में इतिहास-लेखन की परंपराएं और चुनौतियाँ

Authored by

अशोक कुमार

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
जीडीसी मेमोरियल महाविद्यालय, बहल (भिवानी)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 23-26

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

भारतीय राष्ट्रवाद के विविध आयाम

Authored by

विवेक कुमार, शोधार्थी

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. ज्योति साह, इतिहास विभाग,

डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर कॉलेज, ऊँचाहार, रायबरेली।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 27-33

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

समकालीन भारतीय सिनेमा में स्त्री

Authored by

सुंदरम साहू, शोध छात्र (जे.आर.एफ.)

डॉ. ऋचा सुकुमार, प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

हेमवती नंदन बहुगुणा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लालगंज,

प्रतापगढ़।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 34-37

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

धूणी तपे तीर में वर्णित भील और मीणा जाति का संघर्ष

Authored by

सुजाता, शोधार्थी,

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

डॉ. पूनम चालिया, शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, माता सुंदरी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 38-41

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

Research Institute GD — A unit of GRE&SWS (Regd.) BHIWANI (HRY.) 2020

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

क्रांतिकारी गतिविधियां और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

Authored by

शुभम कुमार

शोधार्थी, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर, बिहार।

Published in **SANGAM** **ISSN : 2321-8037**

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 42-50

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

मध्य प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था की भूमिका

Authored by

डॉ. राकेश बघेल

सहायक प्राध्यापक वाणिज्य,

शासकीय स्नातकोत्तर आदर्श महाविघालय, झाबुआ (म.प्र.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 51-57

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

आयुर्वेद चिकित्सा : वर्तमान ग्रामीण समाज की आवश्यकता

Authored by

नरेन्द्र कुमार त्रिपाठी

शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 58-62

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

भारतीय शिक्षा प्रणाली की विकास यात्रा का एक नवीन युग : NEP 2020

Authored by

डॉ. रमेश राम

सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता), राजनीति विज्ञान विभाग
चंपावत परिसर, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 63-69

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

मीरा के काव्य में विरहानुभूति व स्त्री स्वाधीनता

Authored by

जगदीश

सहायक आचार्य,

आराधना डिग्री कॉलेज, आहोर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 70-73

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

8708822674

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

हिंदी राष्ट्रवादी कवियों के काव्य में साहित्यिक सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत के सन्दर्भ में

Authored by

काजल पौनयाँ, हिन्दी विभाग, शोधार्थी, वर्धमान कॉलेज महात्मा ज्योतिबा फुले, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ0 प्र0)

डॉ. अंजू बंसल, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज बिजनौर (उ0 प्र0)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 74-80

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

1857 की क्रांति के स्वरूप पर औपनिवेशिक इतिहास लेखन का समीक्षात्मक अध्ययन

Authored by

कोमल सोनी

जे. आर. एफ.

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 81-85

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

जहाँगीर कालीन चित्रकला

Authored by

लक्ष्मी कुमारी

पीएचडी रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा झारखण्ड।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 86-89

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान

Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

कुमाऊँ (कपकोट) की बदियाकोट भगवती मंदिर का धार्मिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

Authored by

माला

शोध छात्रा, इतिहास विभाग,

डी0 एस0 बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 90-96

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

भारतीय शिक्षा प्रणाली का युगांतकारी परिवर्तन : NEP 2020

Authored by

डॉ. कंचन आर्या

सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता), हिंदी विभाग

डी. एस. बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 97-104

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : संभावनाएं एवं चुनौतियां

Authored by

डॉ. रूपा आर्या

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी

राधेहरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर, ऊधमसिंहनगर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 105-110

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

एकदानैमिषाराये में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन

Authored by

डॉ. प्रदीप कटारा

प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस,

शहीद चन्द्रशेखर आजाद शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 111-115

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

राजा भोज परमार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Authored by

आशा शर्मा, शोधार्थी,

डॉ. अमित चमोली, शोध निदेशक,

ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

Published in SANGAM **ISSN : 2321-8037**

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 116-121

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

पूर्वी उत्तर प्रदेश की शुंग–कुषाण कालीन मृद्भाण्ड परम्पराएं

Authored by

जकिया खान

शोधार्थिनी, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 122-125

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

नव–उदारवादी अर्थव्यवस्था का भारतीय कृषि पर प्रभाव

Authored by

मृदुल मलय

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग

बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 126-130

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

ख्याल परम्परा और अलीबख्श

Authored by

राजेश कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, August 2025,
(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)
Vol. 13, Issue 8, Page No. 131-133

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

उत्तर प्रदेश में बाल श्रम उन्मूलन संबंधी सरकार की नीतियां

Authored by

निधि लोधी

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, August 2025,
(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)
Vol. 13, Issue 8, Page No. 134-138

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

चाय बागानों में महिला श्रमबल भागीदारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (कौसानी चाय बागान के विशेष संदर्भ में)

Authored by

डॉ. सावित्री

कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल, उत्तराखण्ड।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 139-146

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

सुमित्रानन्दन पंत जी के काव्य में श्रमिक-मजदूर वर्गों का संघर्ष

Authored by

राजकुमार

शोधार्थी, प्रो0 राजेन्द्र सिंह रज्जू भैया विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 147-151

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

चन्द्रावती (सिरोही) : मध्यकालीन भारत का एक सांस्कृतिक तीर्थ

Authored by

सोहन लाल

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

जय नारायण व्यास यूनिवर्सिटी, जोधपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 152-158

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

पश्चिमी राजस्थान में स्वदेशी व्यापारियों की संरचना एवं भूमिका

Authored by

विनोद कुमार शर्मा

शोधार्थी,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 159-163

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

ऐतिहासिक हस्तिनापुर, पर्यटन एवं पर्यटक : एक अध्ययन

Authored by

प्रो. देवेंद्र कुमार गुप्ता

दीपक कुमार, शोध छात्र

प्रा. भा. इ. सं. पुरातत्व विभाग,

गुरुकुल काँगड़ी सम विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 164-170

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

चंदेल कालीन स्थापत्य कला एवं संस्कृति का विशेष अंकन

Authored by

कु. आदिती जायसवाल
शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, August 2025,
(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)
Vol. 13, Issue 8, Page No. 171-175

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

सामुदायिक विकास और समाज कल्याण कार्यों में टाटा स्टील का योगदान

Authored by

डॉ. रीना कुमारी

इतिहास विभाग,

कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 176-184

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

डिजिटल युग में ऑटिज्म प्रभावित बच्चों में योग अभ्यास की सामाजिक भूमिका

Authored by

संदीप सैनी

जूनियर रिसर्च स्कॉलर, समाजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 185-193

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

प्राचीन भारतीय समाज में दंड व्यवस्था का विकास

Authored by

रविकांत वर्मा

शोधार्थी, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 194-198

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

भारतीय विचार के दार्शनिक, आध्यात्मिक और नैतिक आयाम : एक समीक्षा

Authored by

यदुनंदन

शोधार्थी,

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 199-203

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

वृषभ का प्रतीकात्मक विकास : सिंधु से गुप्त काल तक मुद्राओं में एक अनुशीलन

Authored by

विशाखा पाण्डेय

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
पं. महादेव शुक्ल कृषक पीजी कॉलेज, गौर, बस्ती, उत्तर प्रदेश।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 204-207

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

छत्तीसगढ़ के महान संत बाबा गुरु घासीदास जी का समाज दर्शन

Authored by

अविनाश बनर्जी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 208-214

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

समकालीन पत्रकारिता की दृष्टि में 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

Authored by

विशाल, कनिष्ठ शोध अध्येता, इतिहास विभाग,

प्रो. आशा यादव, आचार्या, इतिहास विभाग,

मुलतानीमल मोदी कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 215-222

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

साठोत्तरी हिंदी गजल में सामाजिक यथार्थबोध

Authored by

अमन कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 223-227

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान

Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

हिंदी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श – सूरज सिंह नेगी के संदर्भ में

Authored by

बी. कमला, पी.एच.डी शोधार्थी

डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एण्ड अडवांस स्टडीज़, (VISTAS), पल्लावरम, चेन्नई।

Published in **SANGAM** **ISSN : 2321-8037**

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 228-233

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

मीडिया का समाज पर प्रभाव

Authored by

डॉ. सविता

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमैन।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 234-239

Rekha

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

हर्षवर्धन कालीन समाज एवं संस्कृति : हर्षचरित के विशेष संदर्भ में

Authored by

हर्ष वार्ष्णेय
शोधार्थी,
दिल्ली विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, August 2025,
(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)
Vol. 13, Issue 8, Page No. 240-244

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://bohalshodhmanjusha.com/sangam
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

बेरीनाग गुफा चित्रकारी 'गंगावली क्षेत्र' की प्रागैतिहासिक खोज

Authored by

अमन कुमार, शोधार्थी,

बबीता बोहरा, शोधार्थी,

इतिहास विभाग, लक्ष्मण सिंह महर, परिसर पिथौरागढ़।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 245-248

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for paper titled

भारतीय राजनीति में जयप्रकाश नारायण का चिंतन के विशेष संदर्भ में

Authored by

शिव राम, शोधार्थी

डॉ. नीता भारती, प्रोफेसर

राजनीति विज्ञान विभाग, सोबन सिंह जीना,
विश्वविद्यालय अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड।

Published in **SANGAM** **ISSN : 2321-8037**

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 249-256

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद एवं विकसित भारत एक अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण।

Authored by

प्रो. मधुरेन्द्र कुमार, शोध निर्देशक, चेयरपर्सन पंडित दीनदयाल उपाध्याय चेयर, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

कमलेश्वर, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
डी0 एस0 बी0 परिसर, कुमांऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 257-264

Rekha
Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

पैसरा की मध्य पाषाणकालीन संस्कृति : औजार प्रौद्योगिकी, जीवन शैली और तुलनात्मक अध्ययन

Authored by

अमित कुमार

शोध छात्र, नेट, आई.सी.एच.आर.–जे.आर.एफ़.

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

प्रो. (डॉ.) बदर आरा

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 265-271

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674

9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for paper titled*

सामाजिक समरसता के सूत्रधार : गुरु नानक

Authored by

डॉ. रजिंदर कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, August 2025,

(Special Issue : New Dimension in Research from the Indian Perspective)

Vol. 13, Issue 8, Page No. 272-277

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secetary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://bohalshodhmanjusha.com/sangam

grngobwn@gmail.com